श्री कवि किशनसिंह विरचित

क्रियाकोष

श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल
श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास.

क्रिया कोष

145ए
२-जोष

श्रीमद्राजचंद्रजैनशास्त्रमाला

श्री कवि किशनसिंह विरचित

क्रियाकोष

हिन्दी गद्यानुवादक :
पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, पी-एच० डी०
सागर (म० प्र०)

प्रकाशक :
श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल
श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास

वीर निर्वाण संवत् २५११] ईस्वी सन् १९८५ [विक्रम संवत् २०४१

मूल्य रु० २६)

प्रकाशक :
मनुभाई भ० मोदी, अध्यक्ष
श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल,
श्रीमद् राजचंद्र आश्रम,
स्टेशन—अगास, वाया—आणंद,
पोस्ट—बोरिया–३८८१३० (गुजरात)

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान
पुस्तकालय
ग्रन्थ सं० 11105
संस्कृत भवन लखनऊ

प्रथम संस्करण
विक्रम संवत् २०४१
प्रतियाँ—३०००

मुद्रक :
माधवलाल बी० चौधरी
राजीव प्रिन्टर्स,
सी० १/३०८ जी० आई० डी० सी०
विठ्ठलउद्योगनगर–३८८१२१ (गुजरात)

प्रकाशकीय

श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रमकी ओरसे कवि श्री किशनसिंह विरचित इस 'क्रियाकोष' का आज प्रथम संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष होता है क्योंकि श्रीमद् राजचन्द्रने उपदेशनोंध-१५ में जो सत्श्रुतके नाम गिनाये हैं उनमें एक यही ग्रन्थ मुद्रितरूपमें अनुपलब्ध था। आजसे ४-५ वर्ष पूर्व श्रीमद् राजचन्द्र द्वारा स्थापित श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डलके सत्वाधिकारियोंने इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेका निर्णय लिया था, किन्तु मूल ग्रन्थ पुरानी हिंदी भाषामें तथा पद्यरूपमें होनेसे उसी रूपमें प्रकाशित करना उपयोगी नहीं था। अतः हमने इसका हिंदी गद्यार्थ लिखवानेका निर्णय किया और प्रस्ताव रखनेपर सागर निवासी श्री पन्नालालजी साहित्याचार्यने जिन्होंने पहले इसी संस्था द्वारा प्रकाशित 'समयसारः' का संपादन-संशोधन कार्य किया था, उन्होंने सहर्ष इस कार्यको स्वीकार किया एवं लगभग १ वर्षमें उन्होंने प्रस्तुत प्रकाशित क्रियाकोषकी पाण्डुलिपि हमें सुपुर्द कर दी।

तत्पश्चात अहिंदीभाषी क्षेत्रकी एक छोटी प्रेसमें यह कार्य सौंपनेसे मुद्रणकार्यमें लगभग दो वर्ष जितना समय निकल गया। फिर भी अनेक मुश्केलियोंको पारकर आज यह ग्रन्थ लोकभोग्य रूपमें सुंदर मुद्रणके साथ हिंदीभाषी पाठकोंके सम्मुख आ सका है, इसका हमें अत्यन्त आनन्द है।

इस ग्रन्थके सम्बन्धमें श्रीमद् लिखते हैं—

'' 'क्रियाकोष' 'क्रियाकोष' का आद्यंत अध्ययन करनेके बाद सुगम भाषामें उस विषयमें एक निबन्ध लिखनेसे विशेष अनुप्रेक्षा होगी; और वैसी क्रियाका वर्तन भी सुगम है, ऐसी स्पष्टता होगी, ऐसा सम्भव है।'' (पत्रांक ८७५)

'' 'क्रियाकोष' इससे सरल और कोई नहीं है। विशेष अवलोकन करनेसे स्पष्टार्थ होगा।

शुद्धात्मस्थितिके पारमार्थिक श्रुत और इन्द्रियजय दो मुख्य अवलंबन हैं। सुदृढतासे उपासना करनेसे वे सिद्ध होते हैं। हे आर्य ! निराशाके समय महात्मा पुरुषोंका अद्भुत आचरण याद करना योग्य है। उल्लसित वीर्यवान परमतत्त्वकी उपासना करनेका मुख्य अधिकारी है।'' (पत्रांक ८७९)

पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस 'क्रियाकोष' में बताये हुए श्रावकाचार के अनुरूप आहारशुद्धिपूर्वक आदर्शरूप क्रियाओंका पालन पर जीवनको उन्नत बनाये। तभी हमारे प्रकाशनका श्रम सफल होगा। शुभम् भूयात्।

—प्रकाशक

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास
वैसाख सुद ८, सं० २०४१

आद्य वक्तव्य

आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामीने हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पाँच पापोंसे निवृत्त होनेको चारित्र कहा है। यह चारित्र एकदेश और सर्वदेशके भेदसे दो प्रकारका होता है। जिसमें उपर्युक्त पाँचों पापोंका पूर्णरूपसे त्याग होता है वह सर्वदेश चारित्र कहलाता है। इसके धारक यथाजात निर्ग्रंथ (नग्न दिगंबर) मुद्राके धारी मुनिराज ही होते हैं। और जिसमें उपर्युक्त पाँच पापोंका एकदेश त्याग होता है वह देशचारित्र कहलाता है। इसे धारण करनेवाला श्रावक या उपासक कहलाता है। 'शृणोति इति श्रावकः' जो गुरुजनोंके द्वारा उपदिष्ट धर्मोपदेशको श्रद्धाके साथ सुनकर उसका पालन करता है उसे श्रावक कहते हैं। 'उपास्ते इति उपासकः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार जो गुरुजनोंके समीप बैठकर उनकी सेवा करता है वह उपासक कहलाता है। शब्दभेद होनेपर भी श्रावक और उपासक दोनों शब्द पर्यायवाची हैं।

सर्वदेश चारित्र अर्थात् मुनिधर्मका वर्णन करनेवाले मूलाचार, भगवती-आराधना, अनगार धर्मामृत तथा आचारसार आदि अनेक ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार एकदेशचारित्रका वर्णन करनेवाले रत्नकरण्डक श्रावकाचार, अमितगति श्रावकाचार, वसुनन्दी श्रावकाचार तथा सागार धर्मामृत आदि अनेक ग्रन्थ हैं। प्रसन्नताकी बात है कि अभी हाल जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुरने पं० हीरालालजी शास्त्रीके सम्पादकत्वमें ३४ श्रावकाचारों का प्रकाशन किया है। जिन श्रावकाचारोंका जन-साधारण नाम भी नहीं जानते थे, उन श्रावकाचारोंका प्राचीन शास्त्र भण्डारोंसे निकालकर संकलन किया गया है।

'आचारः प्रथमो धर्मः' आचार ही प्रथम धर्म है। जिस प्रकार मानव शरीरके अन्तर्गत रहनेवाला अस्थिपुंज उसे स्थिर रखता है और उस अस्थिपुंजमें जरा-सा फ्रेक्चर (स्खलन) होने पर शरीर पङ्गु हो जाता है; उसी प्रकार आचार ही धर्मको स्थायित्व देता है। आचारमें खराबी होनेसे धर्म नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। यही कारण है कि जैनागममें द्वादशाङ्गके अन्तर्गत आचाराङ्गको पहला स्थान मिला हैं। इस अङ्गमें मुनियोंके आचारका विस्तारसे वर्णन किया गया है। श्रावक सम्बन्धी आचारका वर्णन करनेवाला सातवाँ उपासका-ध्ययनाङ्ग है।

सम्यग्दर्शन धर्मरूपी वृक्षका मूल है, सम्यग्ज्ञान उसका स्कन्ध है और सम्यक्चारित्र उसकी शाखा-प्रशाखायें है। कर्मसमूहका नाशकर मोक्षरूप फलकी प्राप्ति सम्यक्चारित्रसे ही होती है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साथ जो चारित्र होता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं।

क्रियाकोषका सम्पादन

क्रियाकोषका संपादन करनेमें कुछ कठिनाइयाँ थीं, उनमें मुख्य और सर्वप्रथम कठिनाई शुद्धपाठ एवं पूर्ण पाठका निर्णय करनेकी थी। जैसे-तैसे दो-तीन मुद्रित प्रतियोंमेंसे मूलपाठको समीचीन रूप दिया गया है। इसमें सर्वाधिक आदर्श प्रतिके रूपमें श्रावकाचार संग्रहमें प्रकाशित पाठको ही स्वीकृत किया गया है। किन्तु अस्पष्टता नजर आने पर हमें कई अन्य प्रतियोंका भी अवलंबन लेना पड़ा है। इस ग्रन्थको शुद्धतम बनानेमें दो हस्तलिखित प्रतियाँ 'न' एवं 'स' का भरपूर सहयोग मिला है क्योंकि मुद्रित प्रतियोंमें बहुत छन्द छूट गये हैं तथा कुछ अपूर्ण है। आवश्यक पाठ भेद उस-उस छन्दके नीचे टिप्पणमें दिये हैं।

इस ग्रन्थ के सम्पादनमें निम्न प्रतियोंका आधार लिया गया है—

(१) 'न' प्रति नरयावलीके श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिरकी है जो श्री स्याद्वाद शिक्षण परिषद,

सागरके माध्यमसे प्राप्त हुई । यह हस्तलिखित प्रति है । इसमें कुल पृष्ठ संख्या १०६ है । पृष्ठकी लम्बाई ३२ से० मी० और चौड़ाई १४ से० मी० है । प्रत्येक पंक्तिमें लगभग ३५ अक्षर तक लिखे गये हैं तथा एक-एक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ ही लिखी गई है । इसकी प्रशस्तिमें अन्तमें लिखा है कि यह वैशाख कृष्ण षष्ठी संवत् १८७० को लिखी गई । अक्षर सुवाच्य तथा पृष्ठ जीर्णताके निकट हैं ।

(२) दूसरी हस्तलिखित प्रति 'स' है जो कि सागरके 'दिगंबर जैन मंदिर ढाकनलालजी सिंघई' से मिली । इसमें पृष्ठ संख्या १५७ है । पृष्ठकी लम्बाई २१ से० मी०, चौड़ाई १६ से० मी०, पंक्तिप्रमाण १० एवं प्रत्येक पंक्तिमें २६-३० अक्षर तक लिखे गये हैं । प्रति ग्रन्थको अपूर्ण ही छोड़ देती है अतः इसके लेखन-कालकी जानकारी अनुपलब्ध ही रह गई है । पत्र जीर्णताको प्राप्त है एवं अक्षर 'न' प्रतिकी अपेक्षा कुछ दुर्गम है ।

(३) 'क' प्रति मुद्रित प्रति है जो कि हमें अहमदाबादसे ईडरके ग्रन्थ भण्डारकी प्राप्त हुई थी । डिमाई साईज । वीर निर्वाण सं० २४७४ (वि० सं० २००४) में प्रकाशित ।

(४) दूसरी मुद्रित प्रति 'ख' है जो हमें ब्र० जिनेशजीने उपलब्ध कराई । डिमाई साईजमें हीराचंद नेमचंद शोलापुर वालोंने निर्णयसागर प्रेस द्वारा वि० संवत् १९४८ ईस्वी सन् १८९२ में प्रकाशित की थी । पेज रुग्ण हैं ।

ग्रंथकर्त्ताका परिचय

कविवर किशनसिंहके द्वारा रचित यह क्रियाकोष, श्रावकाचारका अद्वितीय ग्रन्थ है । इन्होंने अपना परिचय प्रशस्तिमें निम्नानुसार दिया है—

''नागरवाल देशके उस रामापुर नगरमें, जो देवनिवासके समान था तथा जहाँ धर्मका प्रकाश प्रगट था, खण्डेलवाल, विशाल परिवारसे युक्त 'सिंघही कल्याण' रहते थे, जो सब गुणोंके जानकार, पाटनी गोत्री तथा सुयशसे सहित थे ।''''उनके दो पुत्र थे—बड़ेका नाम सुखदेव और छोटेका नाम आनन्दसिंह था । सुखदेव के दो पुत्र थे—ज्ञानभान और किशनेश ।''''उनमेंसे किशनेश (किशनसिंह) ने इस नवीन कथाको रचना की है ।'''' माथुर वसन्तरायको समस्त संसार जानता था । उनके बड़े पुत्रका नाम सिंघही कल्याणदास था । किशन-सिंह इन्हींके पौत्र थे । परिस्थिति-वशात् अपना नगर छोड़कर वे सांगानेरमें रहने लगे । यहाँ जिनधर्मके प्रसाद से दिन सुखसे व्यतीत होने लगे ।''[1]

उपर्युक्त संदर्भसे कविके जीवन सम्बन्धी सभी तथ्य प्रकाशित हो जाते हैं । इस पर अधिक लिखना अनावश्यक होगा ।

ग्रन्थके रचनाकालको सूचित करनेवाले छन्दोंसे ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ ढुंढाहर देशके सांगानेर शहरमें जबकि जयसिंह सवाई महाराजका शासनकाल चल रहा था, संवत् १७८४ की भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा, दिन रविवारको पूर्ण हुआ ।[2]

ग्रन्थकारकी कुछ अन्य रचनाएँ भी प्रकाशमें आ चुकी है जो निम्नलिखित हैं—

(१) भद्रबाहुचरित्र, रचनाकाल वि० संवत् १७८५

(२) रात्रि भोजन त्याग व्रतकथा, रचनाकाल वि० सं० १७७३

---

१. देखिये प्रस्तुत ग्रन्थके पृष्ठ ३१०-३११ तथा तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा भाग ४ पृष्ठ २८०

२. देखिये प्रस्तुत ग्रन्थके पृष्ठ ३१२-३१३ छन्द संख्या १९२८

ग्रन्थ परिमाणके विषयमें भिन्न-भिन्न प्रतियोंसे अलग-अलग परिमाण उपलब्ध होते हैं। अतः मूल-परिमाणका निर्णय असम्भव प्रतीत होता है। इसलिये आवश्यक छन्दोंका उल्लेख पाद-टिप्पणमें किया गया है। वैसे इस ग्रन्थके अन्दर ग्रन्थकारने १७ प्रकारके छन्दोंका प्रयोग किया है जिनकी संख्या हम ग्रन्थकार द्वारा लिखित छन्द एवं प्रस्तुत ग्रंथमें उपलब्ध छन्दोंकी तुलनामें दे रहे हैं जो कि निम्नानुसार हैं—

छन्द का नाम	ग्रन्थमें उल्लिखित छन्दोंका परिमाण	प्रस्तुत ग्रन्थमें उपलब्ध छन्दोंका परिमाण
१. दोहा	२५४	२५६
२. सवैया इकतीसा	३५	३७
३. मरहठा	५	५
४. चाल	६२०	६२३
५. चौपाई	७९२	७९८
६. छप्पय	२६	२६
७. पद्धरी	३५	३५
८. सोरठा	१३	१६
९. अडिल्ल	७२	७३
१०. नाराच	८	९
११. गीता	१०	१०
१२. कुण्डलिया	३	३
१३. सवैया तेईसा	६	६
१४. द्रुतविलम्बित	४	४
१५. भुजंगप्रयात	८	८
१६. त्रोटक	३	३
१७. त्रिभंगी	९	९
उक्तं च (गाथा एवं श्लोक)	१२	१४
	१९१५	१९३५

ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय

ग्रन्थकारने मङ्गलाचरणके उपरान्त श्रावककी त्रेपन क्रियाओं[1]—आठ मूलगुण, बारह व्रत, बारह तप, समभाव, ग्यारह प्रतिमाएँ, चार दान, जलगालन, अनस्तमित भोजन, और सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रका वर्णन किया है। कविवरने इस ग्रन्थमें इन प्रत्येक क्रियाओंका वर्णन बहुत विस्तारसे किया है जो कि विषय-सूचिसे पाठकोंको अनायास ही अवगत हो जायेगा। यह ग्रन्थ श्रावककी आचारसंहिता है। श्रावकका जीवन इन क्रियाओंका पालन करनेसे सुव्यवस्थित एवं निर्दोष हो जाता है।

ग्रन्थमें रात्रिभोजनत्यागका वर्णन 'निशिभोजनकथा' के साथ किया गया है जिसे पढ़कर पाठकका हृदय रोमांचित हो उठता है। जिनमन्दिर निर्माण, देवस्थापन तथा जिनपूजनका अधिकारी कौन है इसका

१. गुणवय तव सम पडिमा दानं जलगालणं च अणच्छमियं।
दंसणणाणचारित्तं किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥ ६१ ॥

विशद वर्णन किया गया है। इस प्रकरणमें स्त्रीपूजन एवं स्त्रीप्रक्षालकी चर्चा करते हुए स्पष्ट लिखा है कि स्त्री भगवानका पूजन तो कर सकती है परन्तु अभिषेक नहीं।[1] ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन भी सविस्तर किया है। श्रावकके करने योग्य विविध व्रतों एवं तपोंका अन्यग्रन्थदुर्लभ वर्णन यहाँ किया गया है।

कविवर किशनसिंहजीने अपने 'क्रियाकोष' को मूल-परम्परासे जोड़नेका प्रयास किया है और वे श्रावकके व्रतों एवं उनके अतिचारोंके वर्णनमें पूर्णतः सफल रहे हैं। परन्तु कुछ स्थल ऐसे भी दृष्टिगत होते हैं जहाँ आधारके समझनेमें भ्रांति नजर आती है। यथा—पृष्ठ २०६ पर सूतक-पातक सम्बन्धी विवरणका आधार 'मूलाचार' निरूपित किया गया है, परन्तु इसका आधार 'मूलाचार' न होकर 'त्रिवर्णाचार' है।[2] पृष्ठ १७५ पर जिनप्रतिमाकी महिमा बताते हुए 'महाधवल' की चर्चा की है। यह 'महाधवल' उस समय उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ था, किन्तु किसी अन्य विद्वानके मुखसे सुनकर 'महाधवल' को आधार बताकर उन्होंने जिनप्रतिमाकी महिमाका वर्णन किया है जो कि 'महाधवल' में नहीं है।[3] आशा है ऐसे स्थलोंका अध्ययन पाठक स्वयं अपनी बुद्धिसे उचित रूपमें करके यथार्थताका निर्णय करेंगे।

मिथ्यामतनिषेधके सन्दर्भमें राजस्थानमें प्रचलित अनेक रूढ़ियोंका उल्लेख किया गया है। वे रूढ़ियाँ हमारे प्रान्तमें न होनेके कारण हमें उनका भाव स्पष्ट नहीं हो सका। इसलिये यह प्रकरण लेकर मैं उदयपुर गया था, वहाँ पर पूज्य आर्यिका १०५ विशुद्धमति माताजी तथा उनके दर्शनार्थ आनेवाले स्त्री-पुरुषोंसे उन रूढ़ियोंका भाव समझकर तदनुसार हिन्दी अनुवाद किया है। यदि किसी विषयका भाव स्पष्ट न हुआ हो तो विद्वज्जन उसे स्वयं अवगत कर लें।

उपसंहार (आभार दर्शन)

इस ग्रन्थका प्रकाशन श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगासकी ओरसे हो रहा है। वर्तमान सन्दर्भमें जैन गृहस्थ आदर्शपूर्ण क्रियाओंकी उपेक्षा करने लगे हैं। आशा है कि इस ग्रन्थके अध्ययन-चिन्तनसे श्रावकोंकी आदर्श क्रियाओंके पालनकी उदासीनता शीघ्र ही दूर होगी, क्योंकि इसमें कविवर किशनसिंहने उन समस्त क्रियाओंका वर्णन विस्तृत एवं सुन्दर रीतिसे किया है।

ग्रन्थकी पाण्डुलिपि तैयार करने, पाठ मिलान करने एवं पाठभेद लेनेमें सागर विद्यालयके ब्र० राकेश, ब्र० जिनेश, ब्र० महेशकुमार आदिका पर्याप्त सहयोग मिला है। हस्तलिखित प्रतियोंकी प्राप्ति भी इन्हींके माध्यमसे हुई है। अतः इन सब सहयोगी महानुभावोंका आभार प्रकट करता हूँ। आद्य वक्तव्य, अपनी अस्वस्थताके कारण, जैसे मैं चाहता था वैसे नहीं लिख सका, इसका खेद है।

एक क्रियाकोष पं० दौलतरामजी द्वारा वि० संवत् १७९५ में लिखित प्रचलित है। उसकी प्रतियाँ अब अनुपलब्ध है। अतः उसका भी हिन्दी अनुवाद सहित एक संस्करण प्रकाशित होना उपयोगी सिद्ध होगा। उसमें कई स्थल चर्चित विषयोंकी स्पष्टताके लिये पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

अन्तमें, रही त्रुटियोंके लिये मैं विद्वज्जनोंसे क्षमायाचना करता हुआ जैन गृहस्थोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे अपना जीवन 'क्रियाकोष'में बतलाये हुए आचारके अनुरूप निर्माण कर सदाचारके सोपानपर आरोहण करेंगे।

विनीत

पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

---

१. देखिये पृष्ठ २३०-२३१ छन्द नं० १४५५-१४६०। २. देखिये पृष्ठ २०९ का पादटिप्पण।

३. देखिये पृष्ठ १७६ का पादटिप्पण।

इस युगके महान् तत्त्ववेत्ता

श्रीमद् राजचन्द्र

जिस महापुरुषकी विश्वविहारी प्रज्ञा थी, अनेक जन्मोंमें आराधित जिसका योग था अर्थात् जन्मसे ही योगीश्वर जैसी जिसकी निरपराध वैराग्यमय दशा थी तथा सर्व जीवोंके प्रति जिसका विश्वव्यापी प्रेम था, ऐसे आश्चर्यमूर्ति महात्मा श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म महान् तत्त्वज्ञानियोंकी परम्परारूप इस भारतभूमिके गुजरात प्रदेशान्तर्गत सौराष्ट्रके ववाणिया बन्दर नामक एक शान्त रमणीय गाँवके वणिक कुटुम्बमें विक्रम संवत् १९२४ (ईस्वी सन् १८६७) की कार्तिकी पूर्णिमा रविवारको रात्रिके दो बजे हुआ था। इसके पिताका नाम श्री रवजीभाई पंचाणभाई मेहता और माताका नाम श्री देवबाई था। इनके एक छोटा भाई और चार बहनें थीं। श्रीमद्जीका प्रेम-नाम 'लक्ष्मीनन्दन' था। बादमें यह नाम बदलकर 'रायचन्द' रखा गया और भविष्यमें आप 'श्रीमद् राजचन्द्र' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

बाल्यावस्था, समुच्चय वयचर्या

श्रीमद्जीके पितामह श्रीकृष्णके भक्त थे और उनकी माताजी देवबाई जैनसंस्कार लाई थीं। उन सभी संस्कारोंका मिश्रण किसी अद्भुत ढंगसे गंगा-यमुनाके संगमकी भाँति हमारे बाल-महात्माके हृदयमें प्रवाहित हो रहा था। अपनी प्रौढ़ वाणीमें बाईस वर्षकी उम्रमें इस बाल्यावस्थाका वर्णन 'समुच्चयवयचर्या' नामके लेखमें उन्होंने स्वयं किया है—

"सात वर्ष तक बालवयकी खेलकूदका अत्यन्त सेवन किया था। खेलकूदमें भी विजय पानेकी और राजेश्वर जैसी उच्च पदवी प्राप्त करनेकी परम अभिलाषा थी। वस्त्र पहननेकी, स्वच्छ रखनेकी, खाने-पीनेकी, सोने-बैठनेकी, सारी विदेही दशा थी; फिर भी अन्तःकरण कोमल था। वह दशा आज भी बहुत याद आती है। आजका विवेकी ज्ञान उस वयमें होता तो मुझे मोक्षके लिये विशेष अभिलाषा न रहती।

सात वर्षसे ग्यारह वर्ष तकका समय शिक्षा लेनेमें बीता। उस समय निरपराध स्मृति होनेसे एक ही बार पाठका अवलोकन करना पड़ता था। स्मृति ऐसी बलवत्तर थी कि वैसी स्मृति बहुत ही थोड़े मनुष्योंमें इस कालमें, इस क्षेत्रमें होगी। पढ़नेमें प्रमादी बहुत था। बातोंमें कुशल, खेलकूदमें रुचिवान और आनन्दी था। जिस समय शिक्षक पाठ पढ़ाता, मात्र उसी समय पढ़कर उसका भावार्थ कह देता। उस समय मुझमें प्रीति—सरल वात्सल्यता—बहुत थी। सबसे ऐक्य चाहता; सबमें भ्रातृभाव हो तभी सुख, इसका मुझे स्वाभाविक ज्ञान था। इस समय कल्पित बातें करनेकी मुझे बहुत आदत थी। आठवें वर्षमें मैंने कविता की थी; जो बादमें जाँचनेपर समाप थी।

अभ्यास इतनी त्वरासे कर सका था कि जिस व्यक्तिने मुझे प्रथम पुस्तकका बोध देना आरम्भ किया था उसीको गुजराती शिक्षण भली-भाँति प्राप्त कर उसी पुस्तकका पुनः मैंने बोध किया था।

मेरे पितामह कृष्णकी भक्ति करते थे। उनसे उस वयमें कृष्णकीर्तनके पद मैंने सुने थे तथा भिन्न-भिन्न अवतारोंके सम्बन्धमें चमत्कार सुने थे, जिससे मुझे भक्तिके साथ-साथ उन अवतारोंमें प्रीति हो गई थी, और रामदासजी नामके साधुके पास मैंने बाल-लीलामें कण्ठी बँधवाई थी।····उनके सम्प्रदायके महन्त होवें, जगह-जगहपर चमत्कारसे हरिकथा करते होवें और त्यागी होवें तो कितना आनन्द आये ? यही कल्पना हुआ

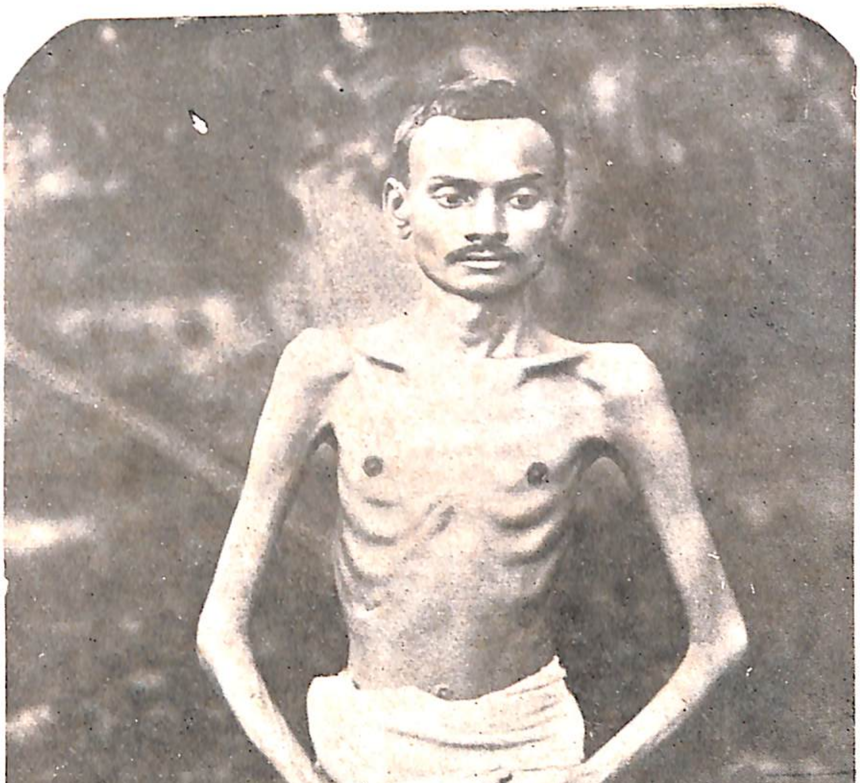

श्रीमद् राजचन्द्र

जन्म : ववाणिया

वि. सं. १९२४ कार्तिक पूर्णिमा रविवार

देहोत्सर्ग : राजकोट

वि. सं. १९५७ चैत्र वद ५ मगलवार

करती; तथा कोई वैभवी भूमिका देखता कि समर्थ वैभवशाली होनेकी इच्छा होती।''' गुजराती भाषाकी वाचनमालामें जगतकर्त्ता सम्बन्धी कितने ही स्थलोंमें उपदेश किया है वह मुझे दृढ़ हो गया था, जिससे जैन लोगोंके प्रति मुझे बहुत जुगुप्सा आती थी''''तथा उस समय प्रतिमाके अश्रद्धालु लोगोंकी क्रियाएँ मेरे देखनेमें आई थीं, जिससे वे क्रियाएँ मलिन लगनेसे मैं उनसे डरता था अर्थात् वे मुझे प्रिय न थीं।

लोग मुझे पहलेसे ही समर्थ शक्तिशाली और गाँवका नामांकित विद्यार्थी मानते थे, इसलिये मैं अपनी प्रशंसाके कारण जानबूझकर वैसे मण्डलमें बैठकर अपनी चपल शक्ति दर्शानेका प्रयत्न करता। कण्ठीके लिये बार-बार वे मेरी हास्यपूर्वक टीका करते; फिर भी मैं उनसे वाद करता और उन्हें समझानेका प्रयत्न करता। परन्तु धीरे-धीरे मुझे उनके (जैनके) प्रतिक्रमणसूत्र इत्यादि पुस्तकें पढ़नेके लिये मिलीं; उनमें बहुत विनयपूर्वक जगतके सब जीवोंसे मित्रता चाही है। अतः मेरी प्रीति इसमें भी हुई और उसमें भी रही। धीरे-धीरे यह प्रसंग बढ़ा। फिर भी स्वच्छ रहनेके तथा दूसरे आचार-विचार मुझे वैष्णवोंके प्रिय थे और जगतकर्त्ताकी श्रद्धा थी। उस अरसेमें कण्ठी टूट गयी; इसलिये उसे फिरसे मैंने नहीं बाँधा। उस समय बाँधने न बाँधनेका कोई कारण मैंने ढूँढ़ा न था। यह मेरी तेरह वर्षकी वयचर्या है। फिर मैं अपने पिताकी दूकानपर बैठता और अपने अक्षरोंकी छटाके कारण कच्छ-दरबारके उतारेपर मुझे लिखनेके लिये बुलाते तब मैं वहाँ जाता। दूकानपर मैंने नाना प्रकारकी लीला-लहर की हैं, अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं, राम इत्यादिके चरित्रपर कविताएँ रची हैं; सांसारिक तृष्णाएँ की हैं, फिर भी मैंने किसीको न्यून-अधिक दाम नहीं कहा या किसीको न्यून-अधिक तौल कर नहीं दिया, यह मुझे निश्चित याद है।'' (पत्रांक ८९)

जातिस्मरणज्ञान और तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति

श्रीमद्जी जिस समय सात वर्षके थे उस समय एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग उनके जीवनमें बना। उन दिनों ववाणियामें अमीचन्द नामके एक गृहस्थ रहते थे जिनका श्रीमद्जीके प्रति बहुत प्रेम था। एक दिन साँपके काट खानेसे उनकी तत्काल मृत्यु हो गई। यह बात सुनकर श्रीमद्जी पितामहके पास आये और पूछा— 'अमीचन्द गुजर गये क्या ?' पितामहने सोचा कि मरणकी बात सुननेसे बालक डर जायेगा, अतः उन्होंने, ब्यालू कर ले, ऐसा कहकर वह बात टालनेका प्रयत्न किया। मगर श्रीमद्जी बार-बार वही सवाल करते रहे। आखिर पितामहने कहा—'हाँ, यह बात सच्ची है।' श्रीमद्जीने पूछा—'गुजर जानेका अर्थ क्या ?' पितामहने कहा—'उसमेंसे जीव निकल गया, और अब वह चल-फिर या बोल नहीं सकेगा; इसलिये उसे तालाबके पासके स्मशानमें जला देंगे।' श्रीमद्जी थोड़ी देर घरमें इधर-उधर घूमकर छिपे-छिपे तालाबपर गये और तटवर्ती दो शाखावाले बबूलपर चढ़कर देखा तो सचमुच चिता जल रही थी। कितने ही मनुष्य आसपास बैठे हुए थे। यह देखकर उन्हें विचार आया कि ऐसे मनुष्यको जला देना यह कितनी क्रूरता! ऐसा क्यों हुआ ? इत्यादि विचार करते हुए परदा हट गया; और उन्हें पूर्वभवोंकी स्मृति हो आई। फिर जब उन्होंने जूनागढ़का गढ़ देखा तब उस (जातिस्मरणज्ञान) में वृद्धि हुई।

इस पूर्वस्मृतिरूप ज्ञानने उनके जीवनमें प्रेरणाका अपूर्व नवीन अध्याय जोड़ा। इसीके प्रतापसे उन्हें छोटी उम्रसे वैराग्य और विवेककी प्राप्ति द्वारा तत्त्वबोध हुआ। पूर्वभवके ज्ञानसे आत्माकी श्रद्धा निश्चल हो गई। सम्वत् १९४९, कार्तिक वद १२ के एक पत्रमें लिखते हैं—"पुनर्जन्म है—जरूर है। इसके लिये 'मैं' अनुभवसे हाँ कहनेमें अचल हूँ। यह वाक्य पूर्वभवके किसी योगका स्मरण होते समय सिद्ध हुआ लिखा है। जिसने पुनर्जन्मादि भाव किये हैं, उस पदार्थको किसी प्रकारसे जानकर यह वाक्य लिखा गया है।" (पत्रांक ४२४)

एक अन्य पत्रमें लिखते हैं—"कितने ही निर्णयोंसे मैं यह मानता हूँ कि इस कालमें भी कोई-कोई महात्मा गतभवको जातिस्मरणज्ञानसे जान सकते हैं; यह जानना कल्पित नहीं किन्तु सम्यक् (यथार्थ) होता है! उत्कृष्ट संवेग, ज्ञानयोग और सत्संगसे भी यह ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् पूर्वभव प्रत्यक्ष अनुभवमें आ जाता है। जब तक पूर्वभव अनुभवगम्य न हो तब तक आत्मा भविष्यकालके लिये सशंकित धर्मप्रयत्न किया करता है; और ऐसा सशंकित प्रयत्न योग्य सिद्धि नहीं देता।" (पत्रांक ६४)

अवधान-प्रयोग, स्पर्शनशक्ति

वि० सं० १९४० से श्रीमद्जी अवधान-प्रयोग करने लगे थे। धीरे-धीरे वे [1]शतावधान तक पहुँच गये थे। जामनगरमें बारह और सोलह अवधान करनेपर उन्हें 'हिन्दका हीरा' ऐसा उपनाम मिला था। वि० सं० १९४३ में १९ वर्षकी उम्रमें उन्होंने बम्बईकी एक सार्वजनिक सभामें डॉ० पिटर्सनकी अध्यक्षतामें शतावधानका प्रयोग दिखाकर बड़े-बड़े लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया था। उस समय उपस्थित जनताने उन्हें 'सुवर्णचन्द्रक' प्रदान किया था और 'साक्षात् सरस्वती'की उपाधिसे सम्मानित किया था।

श्रीमद्जीकी स्पर्शनशक्ति भी अत्यन्त विलक्षण थी। उपरोक्त सभामें उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकारके बारह ग्रन्थ दिये गये और उनके नाम भी उन्हें पढ़कर सुना दिये गये। बादमें उनकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर जो-जो ग्रन्थ उनके हाथपर रखे गये उन सब ग्रन्थोंके नाम हाथोंसे टटोलकर उन्होंने बता दिये।

श्रीमद्जीकी इस अद्भुत शक्तिसे प्रभावित होकर तत्कालीन बम्बई हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स सारजन्टने उन्हें यूरोपमें जाकर वहाँ अपनी शक्तियाँ प्रदर्शित करनेका अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्हें कीर्त्तिकी इच्छा न थी, बल्कि ऐसी प्रवृत्ति आत्मोन्नतिमें बाधक और सन्मार्गरोधक प्रतीत होनेसे प्रायः बीस वर्षकी उम्रके बाद उन्होंने अवधान-प्रयोग नहीं किये।

महात्मा गांधीने कहा था

महात्मा गांधीजी श्रीमद्जीको धर्मके सम्बन्धमें अपना मार्गदर्शक मानते थे। वे लिखते हैं—

"मुझपर तीन पुरुषोंने गहरा प्रभाव डाला है—टाल्सटॉय, रस्किन और रायचन्दभाई। टाल्सटॉयने अपनी पुस्तकों द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्रव्यवहारसे, रस्किनने अपनी एक ही पुस्तक 'अन्टु दि लास्ट' से—जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रखा है, और रायचन्दभाईने अपने गाढ़ परिचयसे। जब मुझे हिन्दु-धर्ममें शंका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करनेमें मदद करनेवाले रायचन्दभाई थे....

जो वैराग्य (अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?) इस काव्यकी कड़ियोंमें झलक रहा है वह मैंने उनके दो वर्षके गाढ़ परिचयमें प्रतिक्षण उनमें देखा है। उनके लेखोंमें एक असाधारणता यह है कि उन्होंने जो अनुभव

---

१. शतावधान अर्थात् सौ कामोंको एक साथ करना। जैसे शतरंज खेलते जाना, मालाके मनके गिनते जाना, जोड़ बाकी गुणाकार एवं भागाकार मनमें गिनते जाना, आठ नई समस्याओंकी पूर्ति करना, सोलह निर्दिष्ट नये विषयोंपर निर्दिष्ट छन्दमें कविता करते जाना, सोलह भाषाओंके अनुक्रमविहीन चारसौ शब्द कर्ताकर्मसहित पुनः अनुक्रमबद्ध कह सुनाना, कतिपय अलंकारोंका विचार, दो कोठोंमें लिखे हुए उल्टे-सीधे अक्षरोंसे कविता करते जाना इत्यादि। एक जगह ऊँचे आसनपर बैठकर इन सब कामोंमें मन और दृष्टिको प्रेरित करना, लिखना नहीं या दुबारा पूछना नहीं और सभी स्मरणमें रखकर इन सौ कामोंको पूर्ण करना। श्रीमद्जी लिखते हैं—"अवधान आत्मशक्तिका कार्य है यह मुझे स्वानुभवसे प्रतीत हुआ है।" (पत्रांक १८)

किया वही लिखा है । उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है । दूसरेपर प्रभाव डालनेके लिये एक पंक्ति भी लिखी हो ऐसा मैंने नहीं देखा ।....

खाते, बैठते, सोते, प्रत्येक क्रिया करते उनमें वैराग्य तो होता ही । किसी समय इस जगतके किसी भी वैभवमें उन्हें मोह हुआ हो ऐसा मैंने नहीं देखा ।....

व्यवहारकुशलता और धर्मपरायणताका जितना उत्तम मेल मैंने कविमें देखा उतना किसी अन्यमें नहीं देखा ।''

'श्रीमद् राजचन्द्र जयन्ती' के प्रसंग पर ईस्वी सन् १९२१ में गांधीजी कहते हैं—''बहुत बार कह और लिख गया हूँ कि मैंने बहुतोंके जीवनमेंसे बहुत कुछ लिया है । परन्तु सबसे अधिक किसीके जीवनमेंसे मैंने ग्रहण किया हो तो वह कवि (श्रीमद्‌जी) के जीवनमेंसे है । दयाधर्म भी मैंने उनके जीवनमेंसे सीखा है ।.... खून करनेवालेसे भी प्रेम करना यह दयाधर्म मुझे कविने सिखाया है ।''

गृहस्थाश्रम

वि० सं० १९४४ माघ सुदी १२ को २० वर्षकी आयुमें श्रीमद्‌जीका शुभ विवाह जौहरी रेवाशंकर जगजीवनदास मेहताके बड़े भाई पोपटलालकी महाभाग्यशाली पुत्री झबकबाईके साथ हुआ था । इसमें दूसरों-की 'इच्छा' और 'अत्यन्त आग्रह' ही कारणरूप प्रतीत होते हैं । विवाहके एकाध वर्ष बाद लिखे हुए एक लेखमें श्रीमद्‌जी लिखते हैं—''स्त्रीके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारसे रागद्वेष रखनेकी मेरी अंशमात्र इच्छा नहीं है । परन्तु पूर्वोपार्जनसे इच्छाके प्रवर्तनमें अटका हूँ ।'' (पत्रांक ७८)

सं० १९४६ के पत्रमें लिखते हैं—''तत्त्वज्ञानकी गुप्त गुफाका दर्शन करनेपर गृहाश्रमसे विरक्त होना अधिकतर सूझता है ।'' (पत्रांक ११३)

श्रीमद्‌जी गृहवासमें रहते हुए भी अत्यन्त उदासीन थे । उनकी मान्यता थी—''कुटुंबरूपी काजलकी कोठड़ीमें निवास करनेसे संसार बढ़ता है । उसका कितना भी सुधार करो, तो भी एकान्तवाससे जितना संसार-का क्षय हो सकता है उसका शतांश भी उस काजलकी कोठड़ीमें रहनेसे नहीं हो सकता, क्योंकि वह कषायका निमित्त है और अनादिकालसे मोहके रहनेका पर्वत है ।'' (पत्रांक १०३) फिर भी इस प्रतिकूलतामें वे अपने परिणामोंकी पूरी सम्भाल रखकर चले ।

सफल एवं प्रामाणिक व्यापारी

श्रीमद्‌जी २१ वर्षकी उम्रमें व्यापारार्थ ववाणियासे बंबई आये और सेठ रेवाशंकर जगजीवनदासकी दुकानमें भागीदार रहकर जवाहिरातका व्यापार करने लगे । व्यापार करते हुए भी उनका लक्ष्य आत्माकी ओर अधिक था । व्यापारसे अवकाश मिलते ही श्रीमद्‌जी कोई अपूर्व आत्मविचारणामें लीन हो जाते थे । ज्ञानयोग और कर्मयोगका इनमें यथार्थ समन्वय देखा जाता था । श्रीमद्‌जीके भागीदार श्री माणेकलाल घेला-भाईने अपने एक वक्तव्यमें कहा था—''व्यापारमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ आती थीं, उनके सामने श्रीमद्‌जी एक अडोल पर्वतके समान टिके रहते थे । मैंने उन्हें जड़ वस्तुओंकी चिंतासे चिंतातुर नहीं देखा । वे हमेशा शान्त और गम्भीर रहते थे ।''

जवाहिरातके साथ मोतीका व्यापार भी श्रीमद्‌जीने शुरू किया था और उसमें वे सभी व्यापारियोंमें अधिक विश्वासपात्र माने जाते थे । उस समय एक अरब अपने भाईके साथ मोतीकी आढ़तका धन्धा करता था । छोटे भाईके मनमें आया कि आज मैं भी बड़े भाईकी तरह बड़ा व्यापार करूँ । दलालने उसकी श्रीमद्-जीसे भेंट करा दी । उन्होंने कस कर माल खरीदा । पैसे लेकर अरब घर पहुँचा तो उसके बड़े भाईने पत्र

दिखाकर कहा कि वह माल अमुक किंमतके बिना नहीं बेचनेकी शर्त की है और तूने यह क्या किया ? यह सुनकर वह घबराया और श्रीमद्जीके पास जाकर गिड़गिड़ाने लगा कि मैं ऐसी आफतमें आ पड़ा हूँ। श्रीमद्जीने तुरन्त माल वापस कर दिया और पैसे गिन लिये। मानो कोई सौदा किया ही न था ऐसा समझकर होनेवाले बहुत नफेको जाने दिया। वह अरब श्रीमद्जीको खुदाके समान मानने लगा।

इसी प्रकारका एक दूसरा प्रसंग उनके करुणामय और निःस्पृही जीवनका ज्वलंत उदाहरण है। एक बार एक व्यापारीके साथ श्रीमद्जीने हीरोंका सौदा किया कि अमुक समयमें निश्चित किये हुए भावसे वह व्यापारी श्रीमद्जीको अमुक हीरे दे। उस विषयका दस्तावेज भी हो गया। परन्तु हुआ ऐसा कि मुद्दतके समय भाव बहुत बढ़ गये। श्रीमद्जी खुद उस व्यापारीके यहाँ जा पहुँचे और उसे चिन्तामग्न देखकर वह दस्तावेज फाड़ डाला और बोले—"भाई, इस चिट्ठी (दस्तावेज) के कारण तुम्हारे हाथ-पाँव बँधे हुए थे। बाजार भाव बढ़ जानेसे तुमसे मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये लेने निकलते हैं, परन्तु मैं तुम्हारी स्थिति समझ सकता हूँ। इतने अधिक रुपये मैं तुमसे ले लूँ तो तुम्हारी क्या दशा हो ? परन्तु राजचन्द्र दूध पी सकता है, खून नहीं।" वह व्यापारी कृतज्ञभावसे श्रीमद्जीकी ओर स्तब्ध होकर देखता ही रह गया।

भविष्यवक्ता, निमित्तज्ञानी

श्रीमद्जीका ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान भी प्रखर था। वे जन्मकुंडली, वर्षफल एवं अन्य चिह्न देखकर भविष्यकी सूचना कर देते थे। श्री जूठाभाई (एक मुमुक्षु) के मरणके बारेमें उन्होंने सवा दो मास पूर्व स्पष्ट बता दिया था। एक बार सं० १९५५ की चैत वदी ८ को मोरबीमें दोपहरके ४ बजे पूर्व दिशाके आकाशमें काले बादल देखे और उन्हें दुष्काल पड़नेका निमित्त जानकर उन्होंने कहा—"ऋतुको सन्निपात हुआ है।" तदनुसार सं० १९५५ का चौमासा कोरा रहा और सं० १९५६ में भयंकर दुष्काल पड़ा। श्रीमद्जी दूसरेके मनकी बातको भी सरलतासे जान लेते थे। यह सब उनकी निर्मल आत्मशक्तिका प्रभाव था।

कवि-लेखक

श्रीमद्जीमें, अपने विचारोंकी अभिव्यक्ति पद्यरूपमें करनेकी सहज क्षमता थी। उन्होंने 'स्त्रीनीति-बोधक', 'सद्बोधशतक', 'आर्यप्रजानी पड़ती', 'हुन्नरकला वधारवा विषे' आदि अनेक कविताएँ केवल आठ वर्षकी वयमें लिखी थीं। नौ वर्षकी आयुमें उन्होंने रामायण और महाभारतकी भी पद्य-रचना की थी जो प्राप्त न हो सकी। इसके अतिरिक्त जो उनका मूल विषय आत्मज्ञान था उसमें उनकी अनेक रचनाएँ हैं। प्रमुखरूपसे 'आत्मसिद्धि', 'अमूल्य तत्त्वविचार', 'भक्तिना वीस दोहरा', 'परमपदप्राप्तिनी भावना (अपूर्व अवसर)', 'मूलमार्ग रहस्य', 'तृष्णानी विचित्रता' है।

'आत्मसिद्धि-शास्त्र'के १४२ दोहोंकी रचना तो श्रीमद्जीने मात्र डेढ़ घंटेमें नड़ियादमें आश्विन वदी १ (गुजराती) सं० १९५२ को २९ वर्षकी उम्रमें की थी। इसमें सम्यग्दर्शनके कारणभूत छः पदोंका बहुत ही सुन्दर पक्षपातरहित वर्णन किया है। यह कृति नित्य स्वाध्यायकी वस्तु है। इसके अंग्रेजीमें भी गद्य-पद्यात्मक अनुवाद प्रगट हो चुके हैं।

गद्य-लेखनमें श्रीमद्जीने 'पुष्पमाला', 'भावनाबोध' और 'मोक्षमाला' की रचना की। इसमें 'मोक्षमाला' तो उनकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है जिसे उन्होंने १६ वर्ष ५ मासकी आयुमें मात्र तीन दिनमें लिखी थी। इसमें १०८ शिक्षापाठ हैं। आज तो इतनी आयुमें शुद्ध लिखना भी नहीं आता जब कि श्रीमद्जीने एक अपूर्व पुस्तक लिख डाली। पूर्वभवका अभ्यास ही इसमें कारण था। 'मोक्षमाला'के सम्बन्धमें श्रीमद्जी लिखते हैं—"जैनधर्मको यथार्थ समझानेका उसमें प्रयास किया है, जिनोक्त मार्गसे कुछ भी न्यूनाधिक उसमें नहीं कहा

है । वीतराग मार्गमें आबालवृद्धकी रुचि हो, उसके स्वरूपको समझे तथा उसके बीजका हृदयमें रोपण हो, इस हेतुसे इसकी बालावबोधरूप योजना की है ।"

श्री कुन्दकुन्दाचार्यके 'पंचास्तिकाय' ग्रन्थकी मूल गाथाओंका श्रीमद्जीने अविकल (अक्षरशः) गुजराती अनुवाद भी किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने श्री आनन्दघनजीकृत चौबीसीका अर्थ लिखना भी प्रारंभ किया था, और उसमें प्रथम दो स्तवनोंका अर्थ भी किया था; पर वह अपूर्ण रह गया है । फिर भी इतने से, श्रीमद्जीकी विवेचन शैली कितनी मनोहर और तलस्पर्शी है उसका ख्याल आ जाता है । सूत्रोंका यथार्थ अर्थ समझने-समझानेमें श्रीमद्जीकी निपुणता अजोड़ थी ।

मतमतान्तरके आग्रहसे दूर

श्रीमद्जीकी दृष्टि बड़ी विशाल थी । वे रूढ़ि या अन्धश्रद्धाके कट्टर विरोधी थे । वे मतमतान्तर और कदाग्रहादिसे दूर रहते थे, वीतरागताकी ओर ही उनका लक्ष्य था । उन्होंने आत्मधर्मका ही उपदेश दिया । इसी कारण आज भी भिन्न-भिन्न सम्प्रदायवाले उनके वचनोंका रुचिपूर्वक अभ्यास करते हुए देखे जाते हैं ।

श्रीमद्जी लिखते हैं—

"मूलतत्त्वमें कहीं भी भेद नहीं है, मात्र दृष्टिका भेद है ऐसा मानकर आशय समझकर पवित्र धर्ममें प्रवृत्ति करना ।" (पुष्पमाला–१४)

"तू चाहे जिस धर्मको मानता हो इसका मुझे पक्षपात नहीं, मात्र कहनेका तात्पर्य यही कि जिस मार्ग से संसारमलका नाश हो उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचारका तू सेवन कर ।" (पुष्पमाला-१५)

"दुनिया मतभेदके बन्धनसे तत्त्व नहीं पा सकी ।" (पत्रांक २७)

"जहाँ तहाँसे रागद्वेषरहित होना ही मेरा धर्म है····मैं किसी गच्छमें नहीं हूँ, परन्तु आत्मामें हूँ यह मत भूलियेगा ।" (पत्रांक ३७)

श्रीमद्जीने प्रीतम, अखा, छोटम, कबीर, सुन्दरदास, सहजानन्द, मुक्तानन्द, नरसिंह मेहता आदि सन्तोंकी वाणीको जहाँ-तहाँ आदर दिया है और उन्हें मार्गानुसारी जीव (तत्त्वप्राप्तिके योग्य आत्मा) कहा है । फिर भी अनुभवपूर्वक उन्होंने जैनशासनकी उत्कृष्टताको स्वीकार किया है—

"श्रीमान वीतराग भगवानोंने जिसका अर्थ निश्चित किया है, जो अचिन्त्य चिन्तामणिस्वरूप, परम-हितकारी, परम अद्भुत, सर्व दुःखोंका निःसंशय आत्यन्तिक क्षय करनेवाला, परम अमृतस्वरूप सर्वोत्कृष्ट शाश्वत है वह धर्म जयवन्त रहे, त्रिकाल जयवन्त रहे । उन श्रीमान् अनन्तचतुष्टयस्थित भगवानका और उस जयवन्त धर्मका आश्रय सदैव कर्तव्य है ।" (पत्रांक ८४३)

परम वीतरागदशा

श्रीमद्जीकी परम विदेही दशा थी । वे लिखते हैं—

"एक पुराणपुरुष और पुराणपुरुषकी प्रेमसम्पत्तिके सिवाय हमें कुछ रुचिकर नहीं लगता; हमें किसी पदार्थमें रुचिमात्र रही नहीं है····हम देहधारी हैं या नहीं—यह याद करते हैं तब मुश्केलीसे जान पाते हैं ।" (पत्रांक २५५)

"देह होते हुए भी मनुष्य पूर्ण वीतराग हो सकता है ऐसा हमारा निश्चल अनुभव है । क्योंकि हम भी अवश्य उसी स्थितिको पानेवाले हैं, ऐसा हमारा आत्मा अखण्डतासे कहता है और ऐसा ही है, जरूर ऐसा ही है ।" (पत्रांक ३३४)

"मान लें कि चरमशरीरीपन इस कालमें नहीं है, तथापि अशरीरी भावसे आत्मस्थिति है तो वह भावनयसे चरमशरीरीपन नहीं, अपितु सिद्धत्व हैं; और यह अशरीरीभाव इस कालमें नहीं है ऐसा यहाँ कहें तो इस कालमें हम खुद नहीं हैं, ऐसा कहने तुल्य है।" (पत्रांक ४११)

अहमदाबादमें आगाखानके बँगलेपर श्रीमद्‌जीने श्री लल्लुजी तथा श्री देवकरणजी मुनिको बुलाकर अन्तिम सूचना देते हुए कहा था—"हमारेमें और वीतरागमें भेद न मानियेगा।"

एकान्तचर्या, परमनिवृत्तिरूप कामना

मोहमयी (बम्बई) नगरीमें व्यापारिक काम करते हुए भी श्रीमद्‌जी ज्ञानाराधना तो करते ही रहते थे और पत्रों द्वारा मुमुक्षुओंकी शंकाओंका समाधान करते रहते थे; फिर भी बीच-बीचमें पेढ़ीसे विशेष अवकाश लेकर वे एकान्त स्थान, जंगल या पर्वतोंमें पहुँच जाते थे। मुख्यरूपसे वे खंभात, वडवा, काविठा, उत्तरसंडा, नडियाद, वसो, राळज और ईडरमें रहे थे। वे किसी भी स्थान पर बहुत गुप्तरूपसे जाते थे, फिर भी उनकी सुगन्धी छिप नहीं पाती थी। अनेक जिज्ञासु-भ्रमर उनके सत्समागमका लाभ पानेके लिये पीछे-पीछे कहीं भी पहुँच ही जाते थे। ऐसे प्रसंगोंपर हुए बोधका यत्किंचित् संग्रह 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें 'उपदेशछाया', 'उपदेशनोंध' और 'व्याख्यानसार' के नामसे प्रकाशित हुआ है।

यद्यपि श्रीमद्‌जी गृहवास-व्यापारादिमें रहते हुए भी विदेहीवत् थे, फिर भी उनका अन्तरङ्ग सर्वसंगपरित्याग कर निर्ग्रन्थदशाके लिये छटपटा रहा था। एक पत्रमें वे लिखते हैं—"भरतजीको हिरनके संगसे जन्मकी वृद्धि हुई थी और इस कारणसे जड़भरतके भवमें असंग रहे थे। ऐसे कारणोंसे मुझे भी असंगता बहुत ही याद आती है; और कितनी ही बार तो ऐसा हो जाता है कि उस असंगताके बिना परम दुःख होता है। यम अन्तकालमें प्राणीको दुःखदायक नहीं लगता होगा, परन्तु हमें संग दुःखदायक लगता है।" (पत्रांक २१७)

फिर हाथनोंधमें वे लिखते हैं—"सर्वसंग महास्रवरूप श्री तीर्थंकरने कहा है सो सत्य है। ऐसी मिश्रगुणस्थानक जैसी स्थिति कहाँ तक रखनी? जो बात चित्तमें नहीं सो करनी; और जो चित्तमें है उसमें उदास रहना ऐसा व्यवहार किस प्रकारसे हो सकता है? वैश्यवेषमें और निर्ग्रन्थभावसे रहते हुए कोटि-कोटि विचार हुआ करते हैं।" (हाथनोंध १-३८) "आकिंचन्यतासे विचरते हुए एकान्त मौनसे जिनसदृश ध्यानसे तन्मयात्मस्वरूप ऐसा कब होऊँगा?" (हाथनोंध १-८७)

संवत् १९५६ में अहमदाबादमें श्रीमद्‌जीने श्री देवकरणजी मुनिसे कहा था—"हमने सभामें स्त्री और लक्ष्मी दोनोंका त्याग किया है, और सर्वसंगपरित्यागकी आज्ञा माताजी देंगीं ऐसा लगता है।" और तदनुसार उन्होंने सर्वसंगपरित्यागरूप दीक्षा धारण करनेकी अपनी माताजीसे अनुज्ञा भी ले ली थी। परन्तु उनका शारीरिक स्वास्थ्य दिन-पर-दिन बिगड़ता गया। ऐसे ही अवसरपर किसीने उनसे पूछा—"आपका शरीर कृश क्यों होता जाता है?" श्रीमद्‌जीने उत्तर दिया—"हमारे दो बगीचे हैं, शरीर और आत्मा। हमारा पानी आत्मारूपी बगीचेमें जाता है, इससे शरीररूपी बगीचा सूख रहा है।" अनेक उपचार करनेपर भी स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ। अन्तिम दिनोंमें एक पत्रमें लिखते हैं—"अत्यन्त त्वरासे प्रवास पूरा करना था, वहाँ बीचमें सहराका रेगिस्तान संप्राप्त हुआ। सिर पर बहुत बोझ रहा था उसे आत्मवीर्यसे जिस प्रकार अल्पकालमें वेदन कर लिया जाय उस प्रकार प्रयत्न करते हुए, पैरोंने निकाचित उदयरूप थकान ग्रहण की। जो स्वरूप है वह अन्यथा नहीं होता यही अद्भुत आश्चर्य है। अव्याबाध स्थिरता है।" (पत्रांक ९५१)

अन्त समय

स्थिति और भी गिरती गई। शरीरका वजन १३२ पौंडसे घटकर मात्र ४३ पौंड रह गया। शायद उनका अधिक जीवन कालको पसन्द नहीं था। देहत्यागके पहले दिन शामको अपने छोटे भाई मनसुखलाल आदिसे कहा—"तुम निश्चिन्त रहना। यह आत्मा शाश्वत है। अवश्य विशेष उत्तम गतिको प्राप्त होनेवाला है। तुम शान्ति और समाधिपूर्वक रहना। जो रत्नमय ज्ञानवाणी इस देहके द्वारा कही जा सकनेवाली थी उसे कहनेका समय नहीं है। तुम पुरुषार्थ करना।" रात्रिको ढाई बजे वे फिर बोले—"निश्चिन्त रहना, भाईका समाधिमरण है।" अवसानके दिन प्रातः पौने नौ बजे कहा—"मनसुख, दुःखी न होना। मैं अपने आत्मस्वरूपमें लीन होता हूँ।" फिर वे नहीं बोले। इस प्रकार पाँच घण्टे तक समाधिमें रहकर संवत् १९५७ की चैत्र वदी ५ (गुजराती) मंगलवारको दोपहरके दो बजे राजकोटमें इस नश्वर शरीरका त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त हुए। भारतभूमि एक अनुपम तत्त्वज्ञानी सन्तको खो बैठी। उनके देहावसानके समाचारसे मुमुक्षुओंमें अत्यन्त शोकके बादल छा गये। जिन-जिन पुरुषोंको जितने प्रमाणमें उन महात्माकी पहचान हुई थी उतने प्रमाणमें उनका वियोग उन्हें अनुभूत हुआ था।

उनकी स्मृतिमें शास्त्रमालाकी स्थापना

वि० सं० १९५६ के भादों मासमें परम सत्श्रुतके प्रचार हेतु बम्बईमें श्रीमद्जीने श्रीपरमश्रुतप्रभावक-मण्डलकी स्थापना की थी। श्रीमद्जीके देहोत्सर्गके बाद उनकी स्मृतिस्वरूप 'श्रीमद्राजचन्द्रजैनशास्त्रमाला'की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत दोनों सम्प्रदायोंके अनेक सद्ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है जो तत्त्वविचारकोंके लिये इस दुषमकालको बितानेमें परम उपयोगी और अनन्य आधाररूप है। महात्मा गांधीजी इस संस्थाके ट्रस्टी और श्री रेवाशंकर जगजीवनदास मुख्य कार्यकर्त्ता थे। श्री रेवाशंकरके देहोत्सर्ग बाद संस्थामें कुछ शिथिलता आ गई थी परन्तु अब उस संस्थाका काम श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगासके ट्रस्टियोंने सम्भाल लिया है और सुचारुरूपसे पूर्वानुसार सभी कार्य चल रहा है।

श्रीमद्जीके स्मारक

श्रीमद्जीके अनन्य भक्त आत्मनिष्ठ श्री लघुराजस्वामी (श्री लल्लुजी मुनि)की प्रेरणासे श्रीमद्जीके स्मारकके रूपमें और भक्तिधामके रूपमें वि० सं० १९७६ की कार्तिकी पूर्णिमाको अगास स्टेशनके पास 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम'की स्थापना हुई थी। श्री लघुराज स्वामीके चौदह चातुर्मासोंसे पावन हुआ यह आश्रम आज बढ़ते-बढ़ते गोकुल-सा गाँव बन गया है। श्री स्वामीजी द्वारा योजित सत्संगभक्तिका क्रम आज भी यहाँपर उनकी आज्ञानुसार चल रहा है। धार्मिक जीवनका परिचय करानेवाला यह उत्तम तीर्थ बन गया है। संक्षेपमें यह तपोवनका नमूना है। श्रीमद्जीके तत्त्वज्ञानपूर्ण साहित्यका भी मुख्यतः यहींसे प्रकाशन होता है। इस प्रकार यह श्रीमद्जीका मुख्य जीवन्त स्मारक है।

इसके अतिरिक्त वर्तमानमें निम्नलिखित स्थानोंपर श्रीमद् राजचन्द्र मन्दिर आदि संस्थाएँ स्थापित हैं जहाँपर मुमुक्षु-बन्धु मिलकर आत्म-कल्याणार्थ वीतराग-तत्त्वज्ञानका लाभ उठाते हैं—ववाणिया, राजकोट, मोरबी, वडवा, खम्भात, काविठा, सीमरडा, वडाली, भादरण, नार, सुणाव, नरोडा, सडोदरा, धामण, सायला, अहमदाबाद, ईडर, सुरेन्द्रनगर, वसो, वटामण, उत्तरसंडा, बोरसद, बम्बई (घाटकोपर एवं चौपाटी), देवलाली, बैंगलोर, इन्दोर, आहोर (राजस्थान), सिवाना (राजस्थान), मोम्बासा (आफ्रिका) इत्यादि।

अन्तिम प्रशस्ति

आज उनका पार्थिव देह हमारे बीच नहीं है मगर उनका अक्षरदेह तो सदाके लिये अमर है। उनके मूल पत्रों तथा लेखोंका संग्रह गुर्जरभाषामें 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें प्रकाशित हो चुका है (जिसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकट हो चुका है) वही मुमुक्षुओंके लिये मार्गदर्शक और अवलम्बनरूप है। एक-एक पत्रमें कोई अपूर्व रहस्य भरा हुआ है। उसका मर्म समझनेके लिये सन्तसमागमकी विशेष आवश्यकता है। इन पत्रोंमें श्रीमद्‌जीका पारमार्थिक जीवन जहाँ-तहाँ दृष्टिगोचर होता है। इसके अलावा उनके जीवनके अनेक प्रेरक प्रसंग जानने योग्य है, जिसका विशद वर्णन श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम प्रकाशित 'श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला'में किया हुआ है (जिसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकट हो चुका है)। यहाँपर तो स्थानाभावसे उस महान विभूतिके जीवनका विहंगावलोकनमात्र किया गया है।

श्रीमद् लघुराजस्वामी (श्री प्रभुश्रीजी) 'श्री सद्‌गुरुप्रसाद' ग्रन्थकी प्रस्तावनामें श्रीमद्‌के प्रति अपना हृदयोद्‌गार इन शब्दोंमें प्रकट करते हैं—"अपरमार्थमें परमार्थके दृढ़ आग्रहरूप अनेक सूक्ष्म भूलभूलैयाँके प्रसंग दिखाकर, इस दासके दोष दूर करनेमें इन आप्त पुरुषका परम सत्संग और उत्तम बोध प्रबल उपकारक बने हैं····संजीवनी औषध समान मृतको जीवित करें, ऐसे उनके प्रबल पुरुषार्थ जागृत करनेवाले वचनोंका माहात्म्य विशेष-विशेष भास्यमान होनेके साथ ठेठ मोक्षमें ले जाय ऐसी सम्यक् समझ (दर्शन) उस पुरुष और उनके बोधकी प्रतीतिसे प्राप्त होती है; वे इस दुषम कलिकालमें आश्चर्यकारी अवलम्बन है। परम माहात्म्यवन्त सद्‌गुरु श्रीमद् राजचन्द्रदेवके वचनोंमें तल्लीनता, श्रद्धा जिसे प्राप्त हुई हैं या होगी उसका महद् भाग्य है। वह भव्य जीव अल्पकालमें मोक्ष पाने योग्य है।"

ऐसे महात्माको हमारे अगणित वन्दन हों !

विषय-सूची

प्रकाशकीय	(३)	
आद्य वक्तव्य	(४)	
इस युगके महान् तत्त्ववेत्ता श्रीमद् राजचंद्र	(८)	
विषय	पृष्ठ	पद्य
पीठिका—मङ्गलाचरण	१-२	१-८
ग्रंथकी उत्पत्तिके अन्तर्गत राजगृही और राजा श्रेणिकका वर्णन—विपुलाचल पर भगवान महावीरके समवसरणका आगमन तथा वनमें षट्ऋतुके फल-फूलोंका वर्णन	३-६	९-२१
वनपालके द्वारा फल-फूलोंकी भेंट समर्पित कर समवसरणके आगमनकी सूचना—राजा श्रेणिकका हर्षविभोर होकर परोक्ष नमस्कार करना तथा वन्दनाके लिये आनन्दभेरी दिलवाकर समवसरणमें जाना	६-७	२२-४१
राजा श्रेणिक द्वारा भगवान महावीर स्वामीका स्तवन तथा गौतम आदि गणधरोंका स्तवनकर मनुष्योंके कोठेमें बैठना तथा त्रेपन क्रियाओंका पूछना	७-८	४२-५८
गणधर द्वारा त्रेपन क्रियाओंका वर्णन	९-१०	५९-६२
त्रेपन क्रियाओंके अन्तर्गत आठ मूलगुणोंका वर्णन—बाईस अभक्ष्योंके दोषका वर्णन—ऋतुके अनुसार पक्वान्न आदिकी मर्यादाका कथन	११-१४	६३-८७
पाँच उदुम्बर फल, कन्दमूल तथा मदिरा, भांग आदि मादक वस्तुओं-के त्यागका उपदेश	१४-१६	८८-१००
द्विदलका वर्णन	१६-१८	१०१-११६
कांजीका वर्णन	१८-२०	११७-१३०
गोरसकी मर्यादाका कथन	२१-२२	१३१-१४५
चर्माश्रित वस्तुओंके सेवनका निषेध तथा बाजारके आटा-मेंदा आदिके त्यागका उपदेश	२३-२७	१४६-१७५
रसोई, चक्की और पानी रखनेके स्थान आदिका वर्णन और उन पर चंदेवा लगाना आदिका उपदेश	२८–३०	१७६–१९०
मुरब्बा आदिका वर्णन	३०–३१	१९१–२०१
रसोई वा भोजनकी क्रियाका वर्णन	३१–३४	२०२–२२२
रजस्वला स्त्रीकी क्रियाका वर्णन	३४–३८	२२३–२५१

विषय	पृष्ठ	पद्य
द्वादश व्रत कथन	३९–४०	२५२–२५९
अहिंसाणुव्रतका वर्णन	४०–४१	२६०–२६७
अहिंसाणुव्रतके अतिचार	४२–४३	२६८–२७७
सत्याणुव्रतका कथन	४३–४४	२७८–२८३
सत्यवचनके अतिचार	४५–४६	२८४–२९३
अदत्तत्याग अणुव्रतका कथन	४६–४७	२९४–३००
अदत्तादान व्रतके अतिचार	४८–४९	३०१–३११
ब्रह्मचर्याणुव्रतका कथन	४९–५०	३१२–३१६
शीलकी नौ बाडें।	५०–५१	३१७–३२२
शील चरित्र कथन।	५१–५२	३२३–३३०
ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार	५३–५४	३३१–३४०
परिग्रह परिमाण-अणुव्रतका कथन	५४–५५	३४१–३४८
परिग्रह परिमाण व्रतके अतिचार	५६–५८	३४९–३६२
दिग्व्रत नामक प्रथम गुणव्रत	५८–५९	३६३–३६७
दिग्व्रत गुणव्रतके पाँच अतिचार	५९–६०	३६८–३७२
देशव्रत नामक द्वितीय गुणव्रत कथन	६०	३७३–३७५
देशव्रतके पाँच अतिचार	६०–६१	३७६–३८३
अनर्थदण्ड नामक तृतीय गुणव्रत	६२–६५	३८४–४०९
अनर्थदण्ड व्रतके अतिचार	६५–६६	४१०–४२१
प्रथम शिक्षाव्रत-सामायिकका कथन	६७–६८	४२२–४३५
सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार	६९–७०	४३६–४४५
द्वितीय शिक्षाव्रत प्रोषधोपवासका वर्णन	७०–७२	४४६–४६४
प्रोषधोपवासके अतिचार	७३–७६	४६५–४९०
भोगोपभोग परिमाण नामक तृतीय शिक्षाव्रतका कथन	७६–७७	४९१–४९७
भोगोपभोग परिमाण व्रतके अतिचार	७७–७८	४९८–५०६
चतुर्थ शिक्षाव्रत-अतिथिसंविभाग व्रतका वर्णन—तदन्तर्गत पात्र, कुपात्र और अपात्रका वर्णन	७८–८१	५०७–५२९
आहारदानकी विधि	८२	५३०–५३७
उत्तम पात्रको दिये हुए दानका फल—भोगभूमिका वर्णन—वज्रजंघ और श्रीमतीकी कथा–कृत, कारित, अनुमोदनाका फल	८३–८६	५३८–५४८
भावलिङ्गी और द्रव्यलिङ्गी पात्रका विचार	८६–८८	५४९–५६२
मध्यम पात्रके दानका वर्णन	८८–८९	५६३–५७०
जघन्य पात्रके दानका वर्णन	८९–९०	५७१–५७४
कुपात्रदानके फलका वर्णन	९०	५७५–५७९

विषय	पृष्ठ	पद्य
अपात्रदानका फल	९१–९१	५८०–५८४
सुपात्रदानका फल	९१–९५	५८५–६०८
दश कुदानोंका वर्णन	९५	६०९–६१०
अतिथिसंविभाग व्रतके अतिचार	९६–९७	६११–६१८
सत्रह नियमोंका वर्णन	९७–१०२	६१९–६५४
श्रावकके सात अन्तरायोंका कथन	१०२–१०३	६५५–६६४
सात प्रकारके मौनका वर्णन	१०३–१०४	६६५–६७३
संन्यासमरणकी विधि तथा चार आराधनाओंके अन्तर्गत सम्यग्दर्शन-आराधनाका वर्णन	१०५–१०६	६७४–६७९
सम्यग्ज्ञान आराधनाका वर्णन	१०६–१०७	६८०–६८९
सम्यक्चारित्र आराधनाका वर्णन	१०८	६९०
सम्यक्तप आराधनाका वर्णन	१०८	६९१–६९३
निश्चय आराधनाका वर्णन	१०८–१११	६९४–७०२
आराधना–सल्लेखनाके अतिचार	१११–११२	७०३–७०९
बारह तपोंका वर्णन	११२–११३	७१०–७१२
समभावका वर्णन	११३–११५	७१३–७१८
एकादश प्रतिमा-वर्णन	११६	७१९–७२३
प्रथम दर्शन प्रतिमाका स्वरूप	११६–११९	७२४–७४६
द्वितीयादि प्रतिमाओंका स्वरूप	१२०–१२४	७४७–७८१
दानाधिकार	१२४–१२५	७८२–७८४
जलगालन कथन (पानी छाननेकी विधि)	१२५–१३१	७८५–८२१
अणथमी (अनस्तमितव्रत) का वर्णन	१३१–१३३	८२२–८३४
निशि भोजन कथा	१३३–१४६	८३५–९०७
दर्शन-ज्ञान-चारित्र कथन	१४६–१४७	९०८–९१५
गोंदकी उत्पत्तिका वर्णन	१४७–१४८	९१६–९२०
अफीमकी उत्पत्तिका कथन	१४८	९२१
हलदीकी उत्पत्तिका वर्णन	१४८	९२२–९२३
आँवलाकी उत्पत्ति	१४९	९२४–९२७
पानकी उत्पत्तिका वर्णन	१४९–१५०	९२८–९३२
कत्थाकी उत्पत्तिका कथन	१५०–१५१	९३३–९३८
बडी, खींचला, कूरेडी फलीका वर्णन	१५१	९३९–९४१
भडभूंजाके चबैने सिकानेका कथन	१५२	९४२–९४७
चौलाकी फली, कैर, करेली, सांगली आदिका कथन	१५२–१५४	९४८–९५९
बाजारका गिंदोडा (खौवा-मावा) आदिका वर्णन	१५४–१५५	९६०–९६८
शोधके घृतकी मर्यादा तथा पशु-पालनकी विधि	१५६–१६२	९६९–१०१२

विषय	पृष्ठ	पद्य
मिथ्यामत कथन (श्वेतांबर मतकी उत्पत्ति)	१६२–१६३	१०१३–१०२३
लुंका मतकी उत्पत्ति	१६४–१७२	१०२४–१०८७
प्रतिमा (जिनबिम्ब) की महिमा	१७२–१७७	१०८८–११२१
मिथ्यामतोंका निषेध—तदन्तर्गत अनेक कुरीतियोंका वर्णन	१७७–१९५	११२२–१२३३
विवाह समयकी मिथ्या क्रियाओंका वर्णन	१९५–२००	१२३४–१२६६
हणुमन्त कुमारकी स्थापनाका निषेध	२००–२०१	१२६७–१२७७
गंगानदीमें अस्थिविसर्जनका निषेध	२०१–२०२	१२७८–१२८४
जन्म-मरणकी क्रियाका कथन	२०३–२०६	१२८५–१३०७
सूतक-विधि	२०६–२०९	१३०८–१३३०
तमाखू-भांग निषेध वर्णन	२१०–२१२	१३३१–१३४७
ग्रहशांति-ज्योतिष वर्णन	२१३–२२३	१३४८–१४०८
निज तन सम्बन्धी क्रियाओंका वर्णन	२२३–२२५	१४०९–१४२३
जाप्य पूजाकी विधिका कथन—तदन्तर्गत पूजाके योग्य द्रव्य तथा पूजा करनेके अयोग्य व्यक्तियोंका कथन	२२५–२३२	१४२४–१४७१
जिनपूजाका फल एवं पूज्य देव-शास्त्र-गुरुका स्वरूप	२३३–२३४	१४७२–१४७८
चैत्यालयमें लगनेवाली चौरासी आसातनाओंका स्वरूप	२३४–२३७	१४७९–१५०२
त्रेपन क्रिया तथा अन्य क्रियाओंके मूल आधारका वर्णन तथा कल्पित व्रतोंका निषेध	२३८–२४४	१५०३–१५४८
व्रतोंकी विधिकी उपादेयता	२४४	१५४९–१५५०
आष्टाह्निक व्रतका कथन—तदन्तर्गत चार विधियोंका कथन एवं उसका फल	२४५–२४९	१५५१–१५८१
सोलह कारण, दशलक्षण और रत्नत्रय व्रतकी विधिका कथन एवं फल	२४९–२५१	१५८२–१५९१
लब्धिविधान व्रतकी विधि एवं फल	२५१–२५२	१५९२–१६००
अक्षयनिधि व्रत, मेघमाला व्रत, ज्येष्ठ जिनवर व्रत एवं षट्रसी व्रतकी विधि	२५२–२५४	१६०१–१६०८
पाख्या व्रत, ज्ञानपचीसी उपवास, सुखकरण व्रत, समवसरण व्रत, आकाशपंचमी व्रत, अक्षय दशमी व्रत, चंदन षष्ठी व्रत, निर्दोष सप्तमी व्रत, सुगंध दशमी व्रत एवं श्रवणद्वादशी व्रतोंका कथन एवं फल-वर्णन	२५४–२५६	१६०९–१६१९
अनन्त चतुर्दशी व्रत, नवकार पैंतीस व्रत, त्रेपन क्रियाव्रत, जिनेन्द्र गुण सम्पत्ति व्रत, सित पंचमी व्रत, शीलकल्याणक व्रत, शील व्रत, नक्षत्रमाला व्रत; सर्वार्थसिद्धि व्रत, तीन चौबीसी व्रत एवं श्रुतस्कन्ध व्रतकी विधि तथा फल-वर्णन	२५६–२६१	१६२०–१६५३
जिनमुखावलोकन व्रत, लघुसुखसंपत्ति व्रत, बडा सुखसंपत्ति व्रत, बारा व्रत, एकावली व्रत, दुकावली व्रत, रत्नावली व्रत एवं		

विषय	पृष्ठ	पद्य
कनकावली व्रतकी विधि तथा फल-वर्णन	२६२–२६६	१६५४–१६८४
मुक्तावली व्रत, मुकुटसप्तमी व्रत, नंदीश्वर पंक्ति व्रत, लघुमृदंगमध्य व्रत, बडामृदंग मध्य व्रत, धर्मचक्र व्रत, बडी मुक्तावलो व्रत, भावना-पच्चीसी व्रत, नवनिधि व्रत, श्रुतज्ञान व्रत तथा सिंहनिष्क्रीडित व्रतकी विधि एवं फलका वर्णन	२६७–२७२	१६८५–१७१०
लघु चौंतीसी व्रत व बारासौ चौतीसी व्रत वर्णन	२७२–२७३	१७११–१७१४
पंचपरमेष्ठीका गुण व्रत-वर्णन तथा फल	२७४–२७६	१७१५–१७२९
पुष्पांजलि व्रत, शिवकुमारका बेला तथा तीर्थंकरोंका बेलाकी विधि तथा फल	२७६–२७८	१७३०–१७४१
जिनपूजा पुरन्दर व्रत, रोहिणी व्रत, कोकिलापंचमी व्रत, कबल चंद्रायण व्रत, मेरुपंक्ति व्रत, पल्यविधान व्रत एवं रुक्मिणी व्रतका वर्णन	२७८–२८६	१७४२–१७९०
विमान पंक्ति व्रतकी विधि तथा फल	२८६–२८८	१७९१–१८०४
निर्जरा पंचमी व्रत, कर्मनिर्जरणी व्रत, आदित्यवार व्रत, कर्मचूर व्रत एवं अनस्तमित व्रतका वर्णन	२८८–२९१	१८०५–१८२०
पंचकल्याणक व्रत—तदन्तर्गत गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, तपकल्याणक, ज्ञानकल्याणक एवं निर्वाण कल्याणककी तिथियोंका वर्णन	२९१–२९७	१८२१–१८५७
उद्यापनकी विधि	२९७–२९९	१८५८–१८७३
निर्वाणकल्याणकका बेला	२९९	१८७४–१८७५
लघुकल्याणक व्रतकी विधि	३००–३०६	१८७६–१८९६
सभी ७५ व्रतोंकी सामान्य विधि तथा उपसंहाररूप कथन	३०६–३१०	१८९७–१९१३
ग्रन्थकारकी प्रशस्ति एवं ग्रन्थ-प्रमाणका वर्णन	३१०–३१३	१९१४–१९३०
लाघव प्रदर्शन एवं अन्तिम मंगलस्तुति	३१४–३१५	१९३१–१९३५
परिशिष्ट १—पंचकल्याणककी तिथियाँ	३१६–३१७	—
परिशिष्ट २—उद्धृत श्लोकोंकी वर्णानुक्रम सूची	३१८	—

11105

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	लक्ष्मी	पाठान्तर :	९२	९	इक सांही	इकसाही
			लछमी	९६	५	टारै	टार
२	८	मडंव	मडंव	९८	९	डाडा	डोडा
२	१५	ताराके	तासके	१०२	१२	भेद	भेव
४	४	वनपाल कआंही	वनपालक आंही	१०३	११	कही	कहो
५	११	परसन	परसत	१०४	१३	अकुलायर	अकुलाय रहै
५	१३	उरवारो	उखारो	११२	२	विनाऊं	निवाऊं
७	१०	घ्यानमांहि	ज्ञानमांहि	११४	१३	लाभ	लोभ
८	८	आनन सफल भयो	श्रवण हि सफल	११६	१२	जेय	जोय
			भये	११७	९	एव सुगुण	ए वसु गुण
९	११	प्रसन	प्रश्न	१२०	२	सिख्यात्रत	शिक्षाव्रत
११	१०	तिजारा	बिजारा	१२६	२	घाटकामें	घटिकामें
१२	९	पन्दह	पन्द्रह (पनदह	१२६	८	जा	जो
१३	७	राख	राखै	१५३	६	जाग	जोग
१३	८	धार वीवेक	सु धार विवेक	१८०	१३	गुल	गुड़
२८	१०	ताय	नाय	१८२	२	पीर	परि
३२	६	जिमे जीसो	जीमे जिसो	१८४	११	आसि	आनी
३४	१२	पावही	पाय हो	२१३	१४	पचहत्तरिका	पचहत्तरिकौं
३७	११	थकी नजरा आई	थकीन जराई	२१५	७	देह	दोह
४३	१३	वैह	व्है	२२४	१	धावणको	धोवणको
४३	२२	नीकल	निकल	२३०	६	नसोय	न सोय
५२	१३	ग्रथल	ग्रथिल	२३०	१२	जा	जो
५७	१५	वाकी	बाकी	२३१	२	सा	सो
६३	८	तदा	जदा	२३५	१७	रसोईकी आनी	रसोई लाई
६३	८	जदा	तदा	२३६	१०	लोई	लेई
६७	३	विहुं	बिहु	२३६	१५	वींवणो	वींधणो
७०	८	खाटो	खोटो	२३९	१६	समभाव	समंभाव
७३	१३	पठि	पढ़ि	२४०	९	यहै	महै
७६	८	तु	ते	२५०	६	बारह	बारहि
८६	८	कोय	लोय	२८८	४	सोला जान	सोल गनीन
९०	१२	मग	मृग	२९५	९	विमास	विभास

श्री कवि किशनसिंह विरचित

क्रियाकोष

•

श्री कवि किशनसिंह विरचित

क्रियाकोष

दोहा

समवसरणलक्ष्मी सहित वर्धमान जिनराय ।
नमों विबुधवन्दितचरण भविजन कौं सुखदाय ॥१॥
जाके ज्ञानप्रकाशमें लोक अनन्त समाय ।
जिम समुद्र ढिग गायखुर [1]यथा नीर दरसाय ॥२॥
वृषभनाथ जिन आदि दे पारस लों तेईस ।
मन वच काया भाव धरि बंदौं कर धरि सीस ॥३॥
नमों सकल परमातमा रहित अठारा दोष ।
छियालीस गुण आदि दे हैं अनन्त गुणकोष ॥४॥
वसु गुण समकित आदि जुत प्रणमों सिद्ध महंत ।
काल अनन्तानन्त थिति लोकशिखर निवसंत ॥५॥
आचारज उवझाय गुरु साधु त्रिविध निर्ग्रन्थ ।
भववनवासी[2] जननि कों दरसावें शिवपंथ ॥६॥

श्री पन्नालालजी साहित्याचार्य कृत हिंदी अनुवाद

मंगलाचरण और ग्रंथकारकी प्रतिज्ञा

जो समवसरण लक्ष्मी से सहित है, देव जिनके चरणोंको वन्दना करते हैं तथा जो भव्य जीवोंको सुखदायक हैं ऐसे वर्धमान जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥ जिनके ज्ञानके प्रकाशमें अनन्तलोक समा जाते हैं । जिस प्रकार समुद्रके समीप गोष्पद—गोखुरका जल अत्यन्त तुच्छ जान पडता है उसी प्रकार जिनके ज्ञानप्रकाशके समीप अनन्तलोक तुच्छ जान पडते हैं ॥२॥ वृषभदेवको आदि लेकर पार्श्वनाथ तक जो तेईस तीर्थंकर हैं उन्हें मन वचन कायसे अंजलि बांध शिर झुकाकर भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥३॥ जो छियालीस गुणोंको आदि लेकर अनन्त गुणोंके भण्डार हैं तथा जन्म मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं उन सकल परमात्मा अर्थात् अरहन्त परमेष्ठीको नमस्कार करता हूँ ॥४॥ जो सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंसे युक्त हैं, जिनकी स्थिति अनन्तानन्त कालकी है और जो लोकशिखर पर निवास करते हैं उन सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार करता हूँ ॥५॥ जो संसाररूपी वनमें निवास करने-वाले लोगोंको मोक्षका मार्ग दिखलाते हैं उन आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीन प्रकारके निर्ग्रंथ मुनियोंको नमस्कार करता हूँ ॥६॥ जो अरहन्त भगवानकी वाणी दिव्यध्वनि रूपमें

---

१ खाड स० २ भविजनवासी स०

जिनवाणी [1]दिवध्वनि खिरी द्वादशांगमय सोय ।
ता सरस्वतिको नमतहुं [2]मन वच क्रम जिन सोय ॥७॥
देव [3]सुगुरु श्रुतको नमूं त्रेपन किरिया सार ।
श्रावककी वरणन करूं संक्षेपहिं निरधार ॥८॥

चौपाई

जंबूद्वीप द्वीपसिर [4]जान, मेरु सुदरशन मध्य [5]बखान ।
ताकी दक्षिण दिस शुभ लसै, भरतक्षेत्र अति [6]शुभसहि वसै ॥९॥
तामें मगधदेश परधान, नगर मडंव द्रोण पुर थान ।
वन उपवन जुत शोभा लहै, ताको वरणन कवि को कहै ॥१०॥
राजगृही नगरी अति बनी, इन्द्रपुरी मानों दिव तनी ।
जिनवर [7]भवन शोभ अति लहैं, तस उपमा वरणन को कहै ॥११॥
श्रावक [8]उत्सव सहित अनेक, जिन पूजैं [9]अति धर सुविवेक ।
मन्दिर पंक्ती शोभें भली, गीतादिक पुरवैं मनरली ॥१२॥
धरमी जन [10]तामें बहु वसैं, दान चार दें चित उल्लसैं ।
चहूं फेर ताराके कोट, गोपुरजुत अति बनो निघोट ॥१३॥

खिरकर द्वादशांगरूप परिणत हुई उस सरस्वतीको मैं मन वचन कायसे नमस्कार करता हूँ ॥७॥ इस प्रकार मैं देव, शास्त्र और गुरुको नमस्कार कर संक्षेपसे श्रावककी त्रेपन क्रियाओंका वर्णन करता हूँ ॥८॥

कथाका उद्धार

जम्बूद्वीप सब द्वीपोंमें शिरमौर हैं, उसके मध्यमें सुदर्शन मेरु विद्यमान है । उसी जम्बूद्वीपकी दक्षिण दिशामें भरतक्षेत्र अत्यन्त सुशोभित है ॥९॥ उस भरतक्षेत्रमें मगध देश प्रधान है। उस देशमें नगर, मडंव तथा द्रोणमुख आदि अनेक स्थान हैं, जो वन और उपवनोंसे युक्त होकर अतिशय शोभायमान हैं । इस देशका वर्णन कौन कवि कर सकता है ? ॥१०॥ जिस प्रकार स्वर्गमें इन्द्रपुरी सुशोभित है उसी प्रकार उस मगध देशमें राजगृही नगरी अतिशय शोभायमान थी । जिसमें जिनमन्दिर अतिशय शोभाको प्राप्त हो रहे थे उसकी उपमाका वर्णन कौन कर सकता है? ॥११॥ जहाँके विवेकी श्रावक अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करते थे, जहाँ संगीत आदिसे मनको मोहित करनेवाली मन्दिरोंकी श्रेणी अत्यधिक शोभायमान रहती थी ॥१२॥ उस राजगृही नगरीमें ऐसे अनेक धर्मात्मा-जन रहते थे जिनका चित्त चार प्रकारका दान देकर उल्लसित—शोभायमान रहता था । उस

---

१ वरि दिव्यधुनि स० २ मन वच तनि जिय जोय स० ३ गुरू न० ४ जाणि ५ वखाणि ६ सुन्दरि वसै स० ७ गेहि शोभाको लसै न० ८ समकित स० ९ मनि धरि सुविवेक स० १० सब तामें बसै स०

बाडी बाग विराजैं हरे, सघन दाख [1]जाम्बु द्रुम फरे ।
और विविधके पादप जिते, फल फुल्लित दीसत हैं तिते ॥१४॥
तिह नगरीको भूप महंत, श्रेणिक नाम महागुणवंत ।
क्षायिक समकितधारी सोय, ता सम भूप अवर नहिं कोय ॥१५॥
मण्डलीक भूपति सिरदार, बहुत [2]तासु सेवै दरबार ।
परजा पालनको अति दक्ष, नीतिवान धरमी परतक्ष ॥१६॥
तास चेलना है पटनार रुपवंत रंभा उनहार ।
समकितदृष्टि सु अति गुणवती, पतिवरिता सीता सम सती ॥१७॥
देव शास्त्र गुरु भक्ति धरेय, वसुविध [3]नित सो पूज करेय ।
विधिसों देइ सुपात्रे दान, [4]जिम चहुं विध भाषो भगवान ॥१८॥
हीन दीन जन करुणा करी पोषै नित प्रति ता सुन्दरी ।
भूपति चित मनुहारी सोय, तासम त्रिया अवर नहि कोय ॥१९॥
दंपति सुख नाना विध जिते, पुण्य उदैं भोगत हैं तिते ।
जिम सुरपति इन्द्रानी जाणि, तिम श्रेणिक चेलना वखाणि ॥२०॥

नगरीके चारों ओर गोपुरोंसे युक्त सुदृढ कोट बना हुआ था ॥१३॥ वहाँके हरेभरे बाग–बगीचोंमें अंगूर तथा जामुनके सघन वृक्ष फले हुए थे । ये ही नहीं, नाना प्रकारके जितने अन्य वृक्ष हैं वे सब वहाँ फलेफूले दिखाई दे रहे थे ॥१४॥

उस राजगृही नगरीका राजा श्रेणिक था जो महा गुणवन्त और क्षायिक सम्यक्त्वका धारक था। उसके समान अन्य कोई राजा नहीं था ॥१५॥ बडे बडे मण्डलीक प्रमुख राजा उसके दरबारकी सेवा करते थे। वह प्रजाका पालन करनेमें अत्यन्त चतुर और नीतिमान था। ऐसा जान पडता था मानों धर्मका ही प्रत्यक्ष रूप हो ॥१६॥ राजा श्रेणिककी चेलना नामकी पट्टरानी थी । वह रम्भाके समान रूपवती थी । सम्यग्दृष्टि, अत्यन्त गुणवती, पतिव्रता और सीताके समान सती थी ॥१७॥ देव, शास्त्र, गुरुकी भक्ति धारण करती थी, निरन्तर अष्टद्रव्यसे उनकी पूजा करती थी । जिनेन्द्र भगवानने जो चार प्रकारके दान कहे हैं उन्हें वह विधिपूर्वक सुपात्रोंके लिये देती थी ॥१८॥ दीन हीन मनुष्यों पर दया करती थी तथा नित्यप्रति उनका पोषण करती थी । तात्पर्य यह है कि वह राजाके चित्तको हरण करती थी अर्थात् राजाको अत्यन्त प्रिय थी । उसके समान अन्य कोई स्त्री नहीं थी ॥१९॥ दम्पति, स्त्रीपुरुषोंके जितने नाना प्रकारके सुख हैं, पुण्यके उदयसे वे उनका उपभोग करते थे । जिस प्रकार इन्द्रके इन्द्राणी होती है उसी प्रकार राजा श्रेणिकके चेलना रानी थी ॥२०॥ एक

---

१ दाडिम द्रुम करे स० २ भूप स० ३ सों नित पूज करेय न० नितप्रति स० ४ जैसी विधि भाषो भगवान स०

महा मण्डलेश्वरको राज, आसन चामर [1]छतर समाज ।
भूप चिह्न धरि सभा जुराय, बैठो अब सुनिये जो थाय ।।२१।।

ढाल चाल

इक दिवस मध्य वनमांही भ्रमतो वनपाल कआंही ।
निज संबंधी परजाय, जिय वैर विरुद्ध जु थाय ।।२२।।
ते एक खेत्रके मांही, ढिग बैठे केल करांही ।
घोटक महिष इक जागा बैठे [2]धरि चित्त अनुरागा ।।२३।।
मूषाकों हरष बिलावा हियमें गहि प्रीत खिलावा ।
अहि [3]नकुल दुहूं इक ठांही मैत्रीपन अधिक करांही ।।२४।।*
इत्यादिक जीव अनेरा निज वैर छांडि ह्वै भेरा ।
बैठे लखिकैं वनपाला [4]अचरज चिंता धरि चाला ।।२५।।
मनमांहि विचारै एम यह अशुभ किधों है खेम ।
इम चिंतत भ्रमण करांही [5]वनपालक वनके मांही ।।२६।।
विपुलाचल गिरके ऊपर [6]धरणीश सुरेश मही पर ।
चहुविधजुत देव अपारा जय जय वच करत उचारा ।।२७।।

दिवस राजा श्रेणिक महामण्डलेश्वर राजाके योग्य सिंहासन, चमर तथा छत्र आदि राजचिह्नों सहित सभामें बैठा हुआ था, उस समय जो हाल हुआ वह सुनो ।।२१।।

एक दिन वनकी रक्षा करनेवाला माली कहीं वनमें घूम रहा था । उसने देखा कि जिन जीवोंका अपना पर्याय सम्बन्धी वैर विरोध है वे भी एक स्थानमें पास पास बैठकर क्रीडा कर रहे हैं । घोडा और भैंसा, इनका जन्मजात विरोध है परन्तु वे मनमें प्रीति धारण कर एक जगह बैठे हुए हैं ।।२२–२३।। बिलाव हृदयमें प्रीति धारण कर चूहेको बडे हर्षसे खिला रहा है । साँप और नेवला–दोनों एक स्थान पर बैठ कर अधिक मैत्रीभाव प्रकट कर रहे हैं ।।२४।। इन्हें आदि लेकर और भी अनेक विरोधी जीव अपना अपना वैरभाव छोडकर एकत्रित हुए हैं । उन सबको एक स्थान पर बैठे देख वनमाली आश्चर्य और चिन्ताको धारण कर चला ।।२५।। वह अपने मनमें इस प्रकारका विचार करता जाता था कि यह सब अशुभ है या मंगलकारी है ? इस तरह विचार करता हुआ वनमाली वनमें भ्रमण कर रहा था कि उसने विपुलाचल पर्वतके ऊपर धरणेन्द्र तथा सुरेन्द्र आदि नाना प्रकारके देव

---

१ छत्र २ चित्त धरि ३ मर्कट स० ४ अति अचरिज...विशाला स० अचिरज धरि चित्त...५ अद्‌भुत विरतंत लखाहि स० ६ असुरेश्वर भक्ति धरैं उरि स०

* २४वें छन्दके आगे स प्रतिमें यह छन्द अधिक है—

पुनि काननि पादप जेते, फल फूल फरे अति तेते ।
सब रितके एकहि वारा, लखि एक भयो निरधारा ।।

दसहूं [1]दिश पूरित धाई अपने चित अति हरषाई ।
अंतिम तीर्थंकर एवा श्री वर्धमान जिनदेवा ॥२८॥
समवादि सरण लखि हरषित, [2]धारो विचार इम चिंतित ।
इह परस्परे जु चिर काला परजाय वैर तजि हाला ॥२९॥*
सब मिलि बैठे इक ठाना देखे मैं इहि अभिरामा ।
इस महापुरुषको जानी माहातम मनमें आनी ॥३०॥

सवैया

*मृगी सुतबुद्धितैं खिलावे सिंह बालकों,
बघेराकों सुपुत्र गाय सुत जान परसै ।
हंससुतको बिलाव हित धारके खिलाव,
मोरनी सरप परसन मन हरषै ।
इन सब जन्तुनको जन्मजात वैर सदा,
भए मद गलित उरवारो दोष जरसै ।
समभावरूप भए कलुष प्रशमि गए,
क्षीणमोह वर्धमान स्वामी सभा दरसै ॥३१॥

समूहको जय जय शब्दोंका उच्चारण करते देखा ॥२६–२७॥ वे देव अपने चित्तमें अत्यन्त हर्षित हो दशों दिशाओंको व्याप्त कर रहे थे। वनमालीने देखा कि अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमान जिनेन्द्रका शुभागमन हुआ है। उनके समवसरणको देख कर उसने ऐसा विचार किया कि जो जीव परस्परके चिरकालीन वैरको छोडकर एक साथ बैठे हुए हैं यह इन्हीं महापुरुषका माहात्म्य है ॥२८–३०॥

हरिणी अपना पुत्र समझकर सिंहनीके बालकको खिला रही है, बघेराके पुत्रको अपना पुत्र जान कर गाय उसका स्पर्श कर रही है, बिलाव हितकी भावनासे हंसके बालकको खिला रही है, इधर मयूरी सर्पका स्पर्श कर मनमें हर्षित हो रही है। इन सब जीवोंका सदा जन्मसे ही वैर रहता है, परन्तु सब मदरहित हो रहे हैं, इन्होंने द्वेषको जडसे उखाड डाला है। ये सभी जीव वीतराग वर्धमान स्वामीकी सभाका दर्शन कर समभावको प्राप्त हुए है तथा सब कलुषताको नष्ट कर शान्त हो गये हैं ॥३१॥

---

१ दिशतैं अधिकाई, आये चित अति हरसाई स० २ धार्यो विचार इम निज चित.

★ २९वें छन्दके आगे स प्रतिमें यह छन्द अधिक है—

ते प्राणी क्रूर असारा, अहि जनम वैरके धारा ।
ते बैठे मिली इक ठौरा, वन फल फूल्यो इक वारा ॥

* स प्रतिमें यह सवैया नहीं है ।

दोहा

जय जय रवको कान सुन वनपालक तत्काल ।
षट् रितुके फल फूल ले कर धरि भेंट रसाल ॥३२॥
चल्यो नृपति दरबारको मनमें धरत [1]उछाव ।
जा पहुँचो तिस ही धरा जहं बैठो [2]नरराव ॥३३॥
सींहासन नगजडित पर [3]तिष्ठे श्री भूपाल ।
महामंडलेश्वर करहि फल दीने वनपाल ॥३४॥

चौपाई

वनपति भाषै सुनि हो देव तुम शुभ पुण्य उदयतें एव ।
विपुलाचल पर सन्मति जान समोशरन आयो भगवान ॥३५॥
[4]ऐसें सुन आसनतैं राय उठ तिहि दिशि सन्मुख सो जाय ।
सप्त पेंड अष्टांग नवाय नमस्कार कीनो हरषाय ॥३६॥
परमप्रीति पूर्वक मन आन जिन [5]आगमको उत्सव ठान ।
भूषण वसन भूप तिहि जिते वनपालकको दीने तिते ॥३७॥
ह्वै खुशाल वनपालक जबै मनमांही इम चिंतवै तबै ।
इतने सौं कर खाली जान कबहुं न मिलियो सांची मान ॥३८॥
देवथान अरु राजदुवार विद्यागुरु निज मित्र विचार ।
निमित्ति वैद्य ज्योतिषी जान फल दीये फल प्रापति मान ॥३९॥

जय जय शब्दको कानोंसे सुन कर वनपालक तत्काल षट् ऋतुओंके फल फूलोंकी रसाल ले राजदरबारकी ओर चला । वह मनमें उत्साहको धारण करता हुआ उस भूमि तक पहुँच गया जहाँ राजा श्रेणिक रत्नजडित सिंहासनके ऊपर बैठे हुए थे । वनपालकने महामण्डलेश्वर राजा श्रेणिकके हाथमें फल समर्पित किये ॥३२–३४॥

तदनन्तर वनपालकने राजासे कहा कि हे देव! सुनिये, आपके शुभ पुण्यके उदयसे विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर स्वामीका समवसरण आया है ॥३५॥ ऐसा सुनते ही राजा सिंहासनसे उठकर खडे हो गये और उस दिशामें सात कदम जा कर उन्होंने मनमें हर्षित हो अष्टांग नमस्कार किया ॥३६॥ मनमें अत्यन्त प्रीतिको धारणकर जिनेन्द्र भगवानके आगमनका उत्सव किया । उस समय राजाके शरीर पर जितने वस्त्राभूषण थे वे सब उन्होंने वनपालकको दे दिये ॥३७॥ वनपालकने हर्षित हो मनमें इस प्रकारका विचार किया कि देवमन्दिर, राजदरबार, विद्यागुरु, निज मित्र, निमित्तज्ञानी, वैद्य और ज्योतिषी इनसे कभी खाली हाथ नहीं मिलना चाहिये क्योंकि फलके देनेसे ही फलकी प्राप्ति होती है ॥३८–३९॥

---

१ उछाह स० २ नरनाह स० ३ लखिकै स० ४ इतनी सुनि स० ५ दरसन स०

आनंद भेरि नगरमें थाय सुन पुरवासी जन हरषाय ।
नगरलोक परिजन जन सबै नृप श्रेणिक ले चाल्यो तबै ॥४०॥
विपुलाचल ऊपर शुभ थान समोशरण तिष्ठे भगवान ।
पहुंच्यो भूपति हरष लहाय जिनपद नमि थुति करहि बनाय ॥४१॥
नयन जुगल मुझ सफल जु थयो चरणकमल तुम देखत भयो ।
भो तिहुं लोकतिलक मम आज प्रतिभास्यो ऐसो महराज ॥४२॥
यह संसार जलधि यों जाण आय रह्यो इक चुलुक प्रमाण ।
जै जै स्वामी त्रिभुवननाथ कृपा करो मोहि जान अनाथ ॥४३॥
मैं[1] अनादि भटको संसार भ्रमतें कबहुं न पायो पार ।
चहुंगति मांहि लहे दुःख जिते ध्यानमांहि दरशत हैं तिते ॥४४॥
तातें चरण आइयो सेव मुझ दुःख दूर करो जगदेव ।
जै जै रहित अठारा दोष जै जै भविजन दायक मोष ॥४५॥
जय जय छियालीस गुणपूर जै मिथ्यातम नाशन सूर ।
जै जै केवलज्ञान प्रकाश लोकालोक करन प्रतिभाश ॥४६॥

नगरमें आनन्दभेरी बजवाई गई जिसे सुन नगरवासी हर्षित हुए । इस प्रकार नगरवासी तथा घर कुटुम्बके सब लोगोंको साथ ले राजा श्रेणिक वन्दनाके लिये चले ॥४०॥ विपुलाचल पर्वतके ऊपर जिस शुभ स्थानमें भगवान समवसरण सहित विराजमान थे वहाँ पहुँच कर राजाने हर्षित हो उनके चरणोंमें नमस्कार किया और इस प्रकार बनाकर स्तुति की ॥४१॥

हे भगवन् ! मैं आपके चरणकमलोंका दर्शन कर सका इसलिये मेरे नयन युगल सफल हो गये हैं । हे त्रिलोकनाथ ! आज मुझे ऐसा जान पडता है ॥४२॥ कि मेरा यह संसाररूपी समुद्र एक चुल्लूंके बराबर रह गया है। हे त्रिभुवनके स्वामी ! आपकी जय हो, जय हो । अनाथ जान कर मुझ पर कृपा करो ॥४३॥ मैं अनादि कालसे संसारमें भटक रहा हूँ । भटकते भटकते मैंने कभी उसका पार नहीं पाया । चारों गतियोमें मैंने जितने दुःख प्राप्त किये हैं वे सब ध्यानमें दिखाई दे रहे हैं ॥४४॥ इसलिये हे भगवन् ! आपके चरणोंकी सेवाके लिये आया हूँ । हे जगतके नाथ ! मेरा दुःख दूर कीजिये । आप अठारह दोषोंसे रहित है इसलिये आपकी जय हो, जय हो । आप भव्य जीवोंको मोक्ष प्रदान करते हैं अतः आपकी जय हो ॥४५॥ आप छियालीस गुणोंसे परिपूर्ण हो अतः आपकी जय हो, जय हो । आप मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिये सूर्य हो अतः आपकी जय हो । आपका केवल-ज्ञान रूपी प्रकाश लोकालोकको प्रतिभासित कर रहा है अतः आपकी जय हो, जय हो ॥४६॥

१ हौं स० न०

जै भवि कुमुद विकासन चंद [1]जै जै सेवत मुनिवर वृंद ।
जै जै निराबाध भगवान भगतिवंत दायक शिव थान ॥४७॥
जै जै निराभरण जगदीश जै जै वंदित त्रिभुवन ईश ।
ज्ञानगम्य गुण [2]लिये अपार जै जै रत्नत्रय भंडार ॥४८॥
जै जै सुखसमुद्र गंभीर [3]करम शत्रु नाशन वर वीर ।
आजहि सीस सफल मो भयो जब जिन तुम चरणनको नयो ॥४९॥
नेत्रयुगल आनंदे जबै पादकमल तुम देखे तबै ।
आनन[4] सफल भयो सुन धुनी रसना सफल अबै थुति भनी ॥५०॥
ध्यान धरत हिरदे धनि भयो कर युग सफल पूजते थयो ।
कर पयान तुमलों आइयो पदयुग सफलपनो पाइयो ॥५१॥
उत्तम वार आज जानियो वासर धन्य इहै मानियो ।
जनम धन्य अबही मो भयो पापकलंक सबै भगि गयो ॥५२॥

आप भव्यरूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिये चन्द्रमा हो अतः आपकी जय हो। मुनिवरोंके समूह आपकी सेवा करते हैं अतः आपकी जय हो । हे भगवन् ! आप सब प्रकारकी बाधाओंसे रहित हैं तथा भक्तिवंत जीवोंके लिये मोक्षस्थान प्रदान करते हैं इसलिये आपकी जय हो, जय हो ॥४७॥ हे भगवन् ! आप आभूषणोंसे रहित हैं तथा समस्त जगतके स्वामी हैं अतः आपकी जय हो, जय हो । तीन लोकके ईश, इन्द्र, धरणेन्द्र तथा चक्रवर्ती आदिके द्वारा आप वन्दनीय हैं अतः आपकी जय हो, जय हो । आप ज्ञानगम्य अनन्त गुणोंको लिये हुए हैं तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयके भण्डार हैं अतः आपकी जय हो, जय हो ॥४८॥ आप सुखके गहरे समुद्र हैं तथा कर्मरूपी शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये अत्यन्त बलवान वीर हैं अतः आपकी जय हो, जय हो। हे जिनेन्द्र ! आज ही मेरा शिर सफल हुआ है क्योंकि वह आपके चरणोंमें नम्रीभूत हुआ है ॥४९॥ मेरा नेत्रयुगल तब ही आनन्दको प्राप्त हुआ जब उसने आपके चरणकमलोंके दर्शन किये। आपकी वाणी सुननेसे मेरा मुख सफल हुआ है तथा आपकी स्तुतिका उच्चारण करनेसे जिह्वा भी इसी समय सफल हुई है ॥५०॥ आपका ध्यान धारण करनेसे मेरा मन धन्य हो गया, पूजा करनेसे हस्तयुगल सफल हो गया और प्रस्थान कर आपके समीप आया हूँ अतः मेरे चरणयुगलने सफलता प्राप्त की है ॥५१॥ आजका वार उत्तम वार है, आजका ही दिवस धन्य है, मेरा जन्म अभी धन्य हुआ है और मेरे सब पाप रूपी कलंक दूर भाग गये हैं ॥५२॥ हे दयाकी खान ! जिनेन्द्र देव ! मैं भव भवमें आपकी

१ जै सेवत मुनिजन आनंद स० २ अमल स० ३ काम स० ४ आजु ही मुख पवित्र मो धनी, रसना धन्य जु तुम थुति भनी स०

भो करुणाकर जिनवरदेव भव भवमें पाऊं तुम सेव ।
जबलों शिव पाऊं [1]जगनाथ तबलों पकरो मेरो हाथ ॥५३॥
इत्यादिक थुति विविध प्रकार गद्य पद्य शत सहस अपार ।
पुनि गौतम गणधर नमि पाय अवर सकल मुनिकों सिर नाय ॥५४॥
जिती अर्जिका सभा मझार [2]श्रावक जनहि जु बुद्धि विचार ।
यथायोग्य सबकों नृप कही पुनि नर कोठै बैठो सही ॥५५॥
जाके देव भगति उतकिष्ट तासों ताकै गुरुको इष्ट ।
जिनभाषी वाणी सरधान महा विवेकी अति परधान ॥५६॥
तास महातमको अधिकार, अरु ताकै गुणको निरधार ।
वरनन कौं कवि समरथ नांहि बुधजन जानहु निज चितमांहि ॥५७॥
ता पीछें अवसर कौं पाय, गौतम प्रति नृप प्रसन कराय ।
देशव्रती श्रावककी जाणि, त्रेपन क्रिया कहहु वखाणि ॥५८॥

दोहा

होनहार तीर्थेश सुन इम भाषै भगवंत ।
त्रेपन किरिया तुझ प्रति कहों विशेष विरतंत ॥५९॥

सेवाको प्राप्त होता रहूँ । हे जगन्नाथ ! जब तक मैं मोक्ष प्राप्त करूँ तब तक मेरा हाथ पकडे रहिये—मुझे सहारा देते रहिये ॥५३॥

इस प्रकार गद्यपद्यमय नाना प्रकारकी सहस्रों स्तुतियाँ कर श्रेणिक राजाने गौतम गणधर तथा अन्य मुनिराजोंको शिर झुकाकर नमस्कार किया ॥५४॥ सभामें जितनी आर्यिकाएँ तथा श्रावकजन विद्यमान थे अपनी बुद्धिसे विचार कर राजाने सबकी यथायोग्य विनय की । पश्चात् मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये ॥५५॥ ठीक ही है जिसके उत्कृष्ट देवभक्ति होती है, जो गुरुको इष्ट मानता है, जिसे जिनवाणीकी श्रद्धा होती है और जो महा विवेकवन्त जीवोंमें अत्यन्त प्रधान होता है उसके माहात्म्य तथा गुणोंका वर्णन करनेके लिये कवि समर्थ नहीं होता है, ज्ञानी जन उसका मनमें विचार ही कर सकते हैं ॥५६–५७॥

तदनन्तर अवसर पाकर राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे प्रश्न किया कि हे भगवन् ! देशव्रती श्रावककी त्रेपन क्रियाओंका व्याख्यान कीजिये ॥५८॥ गौतमस्वामीने कहा कि हे होनहार तीर्थंकर ! भगवानने जिस प्रकार कहा है उस प्रकार मैं त्रेपन क्रियाओंका विशेष वृत्तान्त तेरे लिये कहता हूँ सो सुन ॥५९॥ इन त्रेपन क्रियाओंसे मनुष्य स्वर्ग और मोक्षके सुख प्राप्त करता है

---

१ शिवनाथ न० २ श्रावकवनिता व्रतनि विचार स०

इह त्रेपन किरिया थकी सुरग मुक्ति सुख थाय ।
भविजन मन वच काय शुध पालहु चित हरषाय ॥६०॥

त्रेपन क्रिया नाम

उक्तं च गाथा—

गुणवय तव सम पडिमा दानं जलगालणं च अणत्थमियं ।
दंसण णाण चरित्तं किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥६१॥

सवैया—इकतीसा

मूल गुण आठ अणुव्रत पंच परकार
शिक्षाव्रत चार तीन गुणव्रत जांनिए ।
तपविधि बारह और एक साम्य भाव
ग्यारा प्रतिमा विशेष चार भेद दान मांनिए ।
एक जलगालण अणथमिय एकविधि
दृग ग्यान चरण त्रिभेद मन आंनिये ।
सकल क्रियाको जोर त्रेपन जिनेश कहै
अब याकों कथन प्रत्येक तें बखानिए ॥६२॥

आठ मूल गुण

चौपाई

इस त्रेपन किरियामें जान, प्रथम मूलगुण आठ बखान ।
पीपर वर उंबर फल तीन, पाकर फल रु कठुंबर हीन ॥६३॥

इसलिये हे भव्यजन ! मन वचन कायको शुद्ध कर हर्षित चित्तसे इनका पालन करो ॥६०॥

त्रेपन क्रियाओंके नाम

जैसे कि गाथामें कहे हैं—आठ मूल गुण, बारह व्रत, बारह तप, एक समभाव, ग्यारह प्रतिमाएँ, चार दान, एक जलगालन, एक अनस्तमित भोजन और तीन दर्शन ज्ञान चारित्र—ये सब मिलाकर श्रावकको त्रेपन क्रियाएँ कही गई हैं ॥६१॥

यही भाव सवैया छन्दमें कविने प्रकट किया हैं—आठ मूल गुण, पाँच प्रकारके अणुव्रत चार शिक्षाव्रत, तीन गुणव्रत, बारह तप, एक प्रकारका सम्यग्भाव, ग्यारह प्रतिमाएँ, चार दान, एक जल छानना, एक अनथऊ (सूर्यास्तके पहले भोजन करना) और तीन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, जिनेन्द्र भगवानने इन सब क्रियाओंका जोड त्रेपन कहा है । अब इन सबका पृथक् पृथक् वर्णन करते हैं ॥६२॥

आठ मूल गुण

इन त्रेपन क्रियाओंमें सबसे पहले आठ मूल गुणोंका व्याख्यान करते हैं । पीपल, बड, ऊंमर, पाकर औरकठूमर इन पाँच फलों तथा मद्य, मांस, मधु इन तीन मकारोंका परित्याग

मद्य मांस मधु तीन मकार, इन आठोंको कर परिहार ।
अतीचार जुत तज अनचार, आठ मूल गुण धारो सार ॥६४॥
त्रस अनेक उपजैं [1]इन मांही, जिन भाष्यो कछु संशय नांही ।
अरु जे हैं बाईस अभक्ष, इनको दोष लगे परतक्ष ॥६५॥

बाईस अभक्ष्य दोषवर्णन

चौपाई

ओला [2]नाम गडालख जान, अनछाना जलको बंधान ।
[3]दहीबडाको विदल कहंत, [4]खाता पंचेंद्री उपजंत ॥६६॥
निशिभोजन खाये जो रात, अरु वासी भखिये परभात ।
बहुबीजा जामें कण घणा, कहिये प्रकट तिजारा तणा ॥६७॥
जिहिं फल बीजनके घर नांहि, सो फल बहुबीजा कहवाहिं ।
बेंगण महापापको मूर, [5]जे खावें ते पापी क्रूर ॥६८॥
संधाणेकी विधि सुन एह, जिम जिनमारग भाषी जेह ।
राइ लूण आदी बहु दर्व, फल [6]मूलादिकमें धर सर्व ॥६९॥
[7]नांखें तेलमांहि जे सही, नाम अथाणो तासों कही ।
तामैं उपजैं जीव अपार, जिह्वा लंपट खाय गंवार ॥७०॥

करना आठ मूल गुण है । उपर्युक्त आठों वस्तुओंका अतिचार और अनाचार सहित त्याग कर आठ मूल गुणोंको धारण करो ॥६३–६४॥ जिनेन्द्र भगवानने निःसंदेह कहा है कि इन सबमें अनेक त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होती है। इनके सिवाय जो बाईस अभक्ष्य कहे हैं उनका प्रत्यक्ष ही दोष लगता है ॥६५॥

बाईस अभक्ष्योंका वर्णन

ओला, जलेबी और अनछाना जल अभक्ष्य हैं । दहीबडाको द्विदल कहते हैं, इसे खाते ही पंचेन्द्रिय जीवोंकी उत्पत्ति होती है ॥६६॥ रात्रिमें भोजन करना अथवा प्रभात कालमें वासी भोजन करना अभक्ष्य है । बहुबीजक अभक्ष्य है । जिस फलमें बीजोंके घर नहीं हों वह बहुबीजक कहलाता है । बैंगन (भटा) महान पापका मूल है । जो निर्दय मनुष्य इसे खाते हैं वे क्रूर, निर्दय तथा पापी हैं ॥६७–६८॥ हे राजन्! अब तुम संधान (अथाना) की विधि सुनो जैसी कि जिनमार्गमें कही गई है । राई, नमक आदि बहुतसे पदार्थोंको एकत्रित कर उन सबको फल तथा मूली आदिकमें रखते हैं पीछे तेलमें डालते हैं । इसे

---

१ तिसि स० २ घोरि वरा लखि जान स० ३ घोरवराको न० स० ४ भक्षे स० ५ जीमें हैं ते पापी क्रूर न० ६ फूलादिक स० ७ राखैं स०

पाप [१]धर्म नहि जाने भेद, [२]ता वसि नरक लहै बहु भेद ।
नींबू लूणमांहि साधिये, [३]वाडि रावडी अरू रांधिये ॥७१॥
लूण छाछि जलमें फल डार, कैरादिक जो खाय गंवार ।
उपजैं जीव तासमें घणे, कवि तसु पाप कहां [४]लो भणे ॥७२॥
मरजादा [५]बीते पकवान, सो लखि संधानो [६]मतिमान ।
त्याग करत नहि ढील करैहु, [७]मन वच क्रम जिन वच हिय लेहु ॥७३॥
जो मर्यादाकी विधि सार, भाष्यो जिन आगम अनुसार ।
जिहिमें जलसरदी नहि रहै, तिस मरजादा लखि भवि इहै ॥७४॥
सीतकाल मांहे दिन तीस, पन्दह ग्रीषम विस्वाबीस ।
वरषा रितु भाषे दिन [८]सात, यों सुनिये जिनवाणी [९]आत ॥७५॥

उक्तं च गाथा–

[१०]हेमंते तीस दिणा गिण्हे, पणरस दिणाणि पक्कवणं ।
वासासु य सत्त दिणा, इम भणियं सूयजंगेही ॥७६॥

अथाना कहते हैं । इस अथानेमें अपार जीव उत्पन्न होते हैं । इसे जिह्वाके लोभी अज्ञानी जन खाते हैं ॥६९–७०॥ ये अज्ञानी जन पाप और धर्मका भेद नहीं जानते हैं इसलिये अनेक प्रकारके नरकको प्राप्त होते हैं । जो नींबूको नमकके साथ मिलाकर उसका अथाना बनाते है, वासी दूधकी रबडी बनाते है, और नमक मिश्रित छांछमें केला आदिको मिलाकर जो अज्ञानी जन खाते हैं उसमें बहुत जीव उत्पन्न होते हैं । कवि, उसका पाप कहाँ तक कहे ? ॥७१–७२॥ जिसकी मर्यादा बीत जाती है ऐसा पकवान भी संधान जैसा हो जाता है । मन, वचन, कायसे इसका त्याग करनेमें ढील नहीं करनी चाहिये । यह जिनेन्द्र भगवानका वचन हृदयमें धारण करो ॥७३॥ जिनागमके अनुसार मर्यादाकी जो विधि कही गई है उसे धारण करो । जिसमें जलकी सरदी नहीं रहती है ऐसे बूरे आदिकी मर्यादा शीतकालमें तीस दीन, ग्रीष्मकालमें पन्द्रह दिन और वर्षाऋतुमें सात दिनकी कही गई है ॥७४–७५॥

जैसा कि गाथामें कहा गया है :— श्रुतके पारगामी आचार्योंने पक्वान्नकी मर्यादा हेमन्त (शीत) ऋतुमें, तीस दिन, ग्रीष्मऋतुमें पन्द्रह दिन और वर्षाऋतुमें सात दिनकी कही है । भावार्थ–अगहन, पोष, माघ और फागुन ये चार माह शीत ऋतुके, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ ये चार माह ग्रीष्म ऋतुके तथा सावन, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक ये चार माह वर्षा ऋतुके माने गये हैं ॥७६॥

---

१ पुण्य स० २ ते स० न० ३ बरी रावरी स० क० ४ लगि ५ विनु जे न० ६ सम जान स० ७ मन वच तजि जिन वच सुन लेहु स०...जिनवचहि पलेहु न० ८ आठ न० स० ९ पाठ न० जिन आगम पाठ स० १० हेमंते तीस दिने गिन्हे कालहु पंन रसा । वरसाकाले सत्त दिने इम नियम सूरियं भणियं ॥ स०

चौपाई

तल्यो तेल घृतमें पकवांन, मीठे मिलियो है जो धांन ।
अथवा अन्न तणो ही होय, जलसरदी तामें कछु जोय ।।७७।।
आठ पहर मरज्याद बखान, पाछें संधाना सम जान ।
भुजिया बडा कचौरी पुवा, मालपुवा घृत तेल जु हुवा ।।७८।।
जुमक बडी लूचई जान, सीरो लपसी पुरी बखान ।
कीए पीछे सांजलो खाहिं, रात वसै तिन राख नाहिं ।।७९।।
इनमें उपजें जीव अनेक, तिन ही तजो धार वीवेक ।
तरकारी अरु कढी खीचडी, इन मरजाद सु सोला घडी ।।८०।।
रोटी प्रात थकी लों सांज, खइये भवि मरजादा मांज ।
पीछें वासी कैसे दोष, तजो भव्य जे शुभ [1]वृष पोष ।।८१।।

छन्द चाल

केते नर ऐसे भाषैं, हम नहीं अथानो चाषैं ।
कैरी नींबूके मांहीं, नानाविध वस्तु मिलाहीं ।।८२।।
सरसोंको तेल मंगावैं, सब [2]लेकर अगनि चढावैं ।
ल्योंजी तस नाम [3]कहाई, जीभ्या लंपट [4]अधिकाई ।।८३।।

जो पक्वान्न तेल अथवा घीमें तला गया है अथवा जिस अन्नमें मीठा मिलाया गया है अथवा जो अन्नरूप ही है–जिसमें मीठा नहीं मिलाया गया है परन्तु पानीकी कुछ सरदी जिसमें रहती है जैसे खाजा आदि । इनकी मर्यादा आठ प्रहरकी कही गई हैं । आठ प्रहरके पीछे उसे संधान–अथानाके समान जानना चाहिये । भुजिया, बडा, कचौडी, पुवा, मालपुवा, जुमक, बडी आदि घी और तेलमें तली जाती हैं वे, तथा हलुवा, लप्सी तथा परांयठा आदि बनानेके बाद शाम तक खाना चाहिये । रातमें उनको नहीं रखना चाहिये । क्योंकि इनमें अनेक जीव उत्पन्न होते हैं इसलिये विवेक धारण कर इनका परित्याग करना चाहिये । तरकारी, कढी और खिचडी आदिकी मर्यादा सोलह घडीकी है । प्रातःकालकी बनी रोटी सायं-काल तक खाना चाहिये । हे भव्यजीवो ! इनकी यही मर्यादा जाननी चाहिये । मर्यादाके बाद इनमें वासीका दोष लगता है इसलिये हे धर्मके पोषक भव्यजीवो ! इनका त्याग करो ।।७७–८१।।

कितने ही मनुष्य ऐसा कहते हैं कि हम अथाना तो नहीं खाते हैं परन्तु कच्चा आम और नींबूमें नाना प्रकारकी वस्तुएँ मिलाकर तथा सरसोंका तेल डाल कर सबको अग्नि पर

---

१ व्रत क० न० स० २ भेलि रु न० स० ३ कराहीं स० ४ तस खाहीं स०

ताको निरदूषण भाषै, निरबुद्धी बहु दिन राखै ।
ताके अघको नहिं पारा, सुनिये कछु इक निरधारा ॥८४॥
सब विधि छोडी नहिं जाही, खइये तत्काल कराहीं ।
अथवा सबेरलों सांजे, भखिये चहुं पहर हि मां जे ॥८५॥
पाछें अथाणाके दोषा, जानो त्रसजीवन कोषा ।
अथाणाको जो त्यागी, याकों छोडै वडभागी ॥८६॥

दोहा

किसनसिंघ विनती करे, सुनो महा मतिमान ।
याहि तजै सुख परम लहि, भुंजै दुख परधान ॥८७॥

चौपाई

पंच उदंबरको फल त्याग, करइ पुरुष सोई बडभाग ।
अरु अजाण फल दोष अपार, मांस दोष खाएं अधिकार ॥८८॥
कंदमूलमें जीव अनन्त, सूई अग्रभाग लखि संत ।
माटी मांहि असंखित जीव, भविजन तजिये ताहि सदीव ॥८९॥

चढाते है इस तरह बनी हुई वस्तुको लौंजी कहते हैं । इसे जिह्वाके लंपट लोग खाते हैं । इसे वे निर्दोष बतलाते हैं और निर्बुद्धि तो बहुत दिन तक रखे रहते हैं । इस प्रकारकी लौंजीके पापका कुछ पार नहीं है । इसका कुछ निर्धार–स्पष्टीकरण सुनिये । यदि लौंजीको सर्वथा नहीं छोडा जा सके तो उसे तत्काल बनवा कर खाइये अथवा प्रातःकाल बनवा कर संध्या तक चार प्रहरके भीतर खा लेना चाहिये । चार प्रहरके बाद उसमें अथानाका दोष होता है उसे त्रस जीवोंका खजाना जानना चाहिये । परमार्थ यह है कि जो बडभागी–संपन्न लोग अथानाके त्यागी हैं वे इस लौंजीको भी छोडें ॥८२–८६॥ क्रियाकोषके रचयिता श्री किशनसिंह विनती करते हैं–अनुरोध करते हैं कि हे बुद्धिमान जनों ! सुनो, जो इस लौंजीको छोडते हैं वे परम सुख प्राप्त करते हैं और जो खाते हैं वे अधिक दुःख पाते हैं ॥८७॥

जो मनुष्य पाँच उदम्बर फलोंका त्याग करता है वही बडा भाग्यवान् मनुष्य है । इनके सिवाय अजान फलके खानेमें भी अपार दोष लगता है । उनके खानेमें मांस खानेका दोष है । जिस फलके गुण दोष तथा भक्ष्य–अभक्ष्य होनेका अपने आपको निर्णय नहीं है वह अजान फल कहलाता है ॥८८॥ हे सत्पुरुषों ! ऐसा निश्चय करो कि सूईके अग्रभागके बराबर कंदमूलमें अनन्त जीव होते हैं । मिट्टीमें भी असंख्य जीव रहते हैं अतः हे भव्यजनों ! उसका सदा त्याग करो ॥८९॥ महुआ तथा अफीम आदिक पदार्थोंको जो खाते हैं वे प्राण त्याग करते

[1]मुहुरो आफू आदिक और, खाए प्राण तजै तिहि ठौर ।
जिहि आहार कर जो मर जाय, सोऊ विषदूषण को थाय ॥९०॥
[2]आमिष महापापको मूर, जीवघाततें उपजै क्रूर ।
मन वच काय तजै इह सदा, सुरशिवसुख पावै जिन वदा ॥९१॥
मधु माखी उच्छिष्ट अपार, जीव अनंत तास निरधार ।
ताको खावैं धीवर भील, [3]सोई हीन नर पाप कुशील ॥९२॥
संत पुरुष नहिं भीटीं ताहिं, एक कणातें धरम नसाहि ।
लूण्यों दोष महा अधिकार, ताहि भखैं नहि भवि सुखकार ॥९३॥
मदिरापान किये बेहाल, मात भगनि तिय सम तिहि काल ।
मादक वस्तु भांगि दे आदि, खात जमारो ताको वादि ॥९४॥
फल अति तुच्छ दन्त तलि देय, ताको दूषण अधिक कहेय ।
पालो राति जमावे कोय, अरु ताको खावे बुधि खोय ॥९५॥
तामें पड़ैं अधिक त्रस जीव, भविजन छांडों ताहि सदीव ।
केला आम पालमें देह, नींबू आदिक फल गनि लेह ॥९६॥

हैं । जिस आहारके करनेसे जीव मर जाता है उस आहारमें विषका दोष लगता है ॥९०॥ मांस महान पापका मूल कारण है क्योंकि वह जीवघातसे ही उत्पन्न होता है । जो जीव मन, वचन, कायसे इसका त्याग करते हैं, वे स्वर्ग और मोक्षके सुखको पाते हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवानने कहा है ॥९१॥ मधु (शहद) मक्खियोंका उच्छिष्ट है । यह निश्चित है कि उसमें अनन्त जीव उत्पन्न होते रहते हैं । उसे धीवर तथा भील आदि हीन–पापी जीव ही खाते हैं। सज्जन पुरुष तो उसका स्पर्श भी नहीं करते हैं । उसका एक कण खानेसे धर्म नष्ट हो जाता है । लूण्या (नवनीत–नैनूं) में महान दोष है अतः सुखके इच्छुक भव्य जीव उसे नहीं खाते हैं ॥९२–९३॥

मदिरा पान करनेसे जीव बेखबर हो जाता है वह उस समय माता, बहिन और स्त्रीको समान मानने लगता है । मदिराके सिवाय भांग आदि मादक वस्तुओंको जो खाता है उसका जन्म व्यर्थ ही जाता है अर्थात् उस जन्मसे वह आत्मकल्याणका कोई काम नहीं कर पाता ॥९४॥ जो मनुष्य अत्यन्त तुच्छ फलको दांतोके नीचे दबाता है अर्थात् खाता है उसे भी अधिक दोष लगता है । जिस फलके अवयव–रेखा आदिका विकास नहीं हुआ है वह तुच्छ फल कहलाता है । कोई बुद्धिहीन मनुष्य रातमें बर्फ जमा कर खाते हैं उसमें अधिक त्रस जीव उत्पन्न होते हैं इसलिये हे भव्यजनों ! उसका सदा त्याग करो । केला, आम तथा नींबू

---

१ महुडो अफीम ख० महूरो आफू न० स० २ विकलत्रय पंचेन्द्रिय जान, मूए कलेवर मांस बखान । त्रिविध तजै भविजन यह सदा ३ शूद्र हीन नर पाप कुशील न०

*खिचडी खाटो भोजन सर्व, पकवानादिक सगरे दर्व ।
निज सवाद तजि हूवै विपरीत, इह चलत रस जानों रीत ॥९७॥
जाके खाएं दोष अपार, बुधजन तजै न लावै वार ।
ए बावीस अभक्ष जिनदेव, भाषै सो भविजन सुनि येव ॥९८॥
इनहि त्याग कर मन वच काय, ज्यों सुरशिवसुख निहचै थाय ।
फूल्यो धान अवर सब फूल, त्रस जीवनको जानों मूल ॥९९॥
साकपत्र सब निन्द्य बखान, कुंथादिक करि भरिया जान ।
मांस त्यजनव्रत राखो चहैं, तो इन सबको कबहुं न गहैं ॥१००॥

विदल वर्णन

भोजन विदलतणी विधि सुनो, जिनवर भाषी निहचै मुनो ।
दोय प्रकार विदलकी रीति, सो भविजन आनो धर प्रीति ॥१०१॥
प्रथम अकाष्ठतणी विधि एह, श्रावक होय तजै धर नेह ।
सुनहु अकाष्ठतणी विधि जान, मूंग मटर अरहर अरु धान ॥१०२॥
मोठ मसूर उडद अरु चणा, चौला कुलथ आदि गिन घणा ।
इतने नाज तणी है दाल, उपजै बेलि थकी सानाल ॥१०३॥

आदिक जो फल पालमें दिये जाते हैं वे, तथा खिचडी, खटाई आदि सब प्रकारके भोजन अथवा पक्वान्न आदि सब पदार्थ जब अपना स्वाद छोड देते हैं तब उन्हें चलित रस जानना चाहिये । इन चलित रस पदार्थोंके खानेमें अपार दोष लगता है इसलिये ज्ञानीजन उनका त्याग करनेमें देर नहीं करते हैं । इस प्रकार जिनेन्द्रदेवने ये बाईस अभक्ष्य कहे हैं । हे भव्यजनों! इन्हें अच्छी तरह सुनो । जो भव्यजन इनका त्याग करते हैं वे निश्चयसे स्वर्ग और मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं । इनके सिवाय फूली हुई धान्य तथा सब प्रकारके फूलोंको त्रस जीवोंका मूल कारण जानो ॥९५–९९॥ पत्तेवाली सब शाक भी निन्दनीय है क्योंकि वह कुन्थु आदिक जीवोंसे भरी होती है । यदि कोई मांसत्याग व्रतकी रक्षा करना चाहता है तो उसे इन सभी अभक्ष्योंको कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥१००॥

द्विदल वर्णन

अब आगे भोजन सम्बन्धी द्विदलका वर्णन सुनो । जिनेन्द्र भगवानने जैसा कहा है वैसा निश्चय कर श्रद्धान करो । द्विदलकी रीति दो प्रकारकी है सो हे भव्यजनों! उसे प्रीतिपूर्वक धारण करो ॥१०१॥ दो में से पहले अकाष्ठ – अन्न सम्बन्धी द्विदलकी विधि यह है – प्रत्येक मनुष्यको श्रावक होकर इस प्रकारके द्विदलका त्याग करना चाहिये । मूंग, मटर, अरहर, धान, मोठ, मसूर, उडद, चना, चौला और कुलथी आदि अनाज कहलाते हैं इनमें

---

*यह चौपाई ख प्रतिमें नहीं है ।

खरबूजा काकडी तोरई, टींडसी पेठो पलवल लई ।
सेम करेला खीरा तणा, बीजा विधि फल कीजे घणा ॥१०४॥
तिनकी दाल थकी मिलवाय, दही छाछि सों विदल कहाय ।
मुखमें देत लाल मिलि जाय, उतरत गलै पंचेन्द्री थाय ॥१०५॥
नाज बेलि तैं उपजै जोय, सो अकाष्ठ गनियो भवि लोय ।
छाछ तणो फल बीजह जान, तिनकी दाल होय सो मान ॥१०६॥
छाछ दही मिल विदल हवन्त, यों निहचै भाष्यो भगवंत ।
चारोली [1]पिसता बादाम, बोल्या बीज सांगरी नाम ॥१०७॥
इत्यादिक तरु फलके माँहि, बीज दुफारा मींजी थाहि ।
छाछ दही सों भेलि रु खाय, विदल दोष तामें उपजाय ॥१०८॥
गलै उतरता मिलि है लाल, पंचेन्द्री उपजै तत्काल ।
ऐसो दोष जान भवि जीव, तजिए भोजन विदल सदीव ॥१०९॥
सांगर पिठोर तोरई तणा, मूरख करै राइता घणा ।
तिहका अघको पार न कोय, जो खाहै सो पापी होय ॥११०॥

जिनकी दाल होती है, वह अनाज सम्बन्धी दाल है । इनके सिवाय बेलमें नाल सहित जिनकी उत्पत्ति होती है ऐसे खरबूजा, ककडी, तोरई, टिण्डा, पेठा (कुम्हडा), पलवल, सेम, करेला और खीरा (विशेष प्रकारकी ककडी)के बीजोंकी जो दाल है उसे दही और छाछमें मिलानेसे द्विदल कहलाता है । द्विदलको मुखमें देने पर लारका सम्बन्ध होनेसे संमूर्च्छन पंचेन्द्रिय जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है और वे सब गलेके नीचे उतर कर उदरमें पहुँचते हैं । इस प्रकार अनाज और बेल(लता)से उत्पन्न होनेवाला द्विदल, अकाष्ठ द्विदल कहलाता है । द्वितीय काष्ठ द्विदलकी विधि यह है--जिन फलोंके बीजोंकी दाल होती है उसे छांछ और दहीके साथ मिलानेसे द्विदल होता है ऐसा यथार्थ रूपसे भगवानने कहा है । इस काष्ठ द्विदलमें अचारकी चिरोंजी, पिस्ता, बादाम, बोल्या(?)के बीज तथा सांगरी आदिके नाम आते हैं । इनको आदि लेकर वृक्षफलोंकी जो मींगी दो फाटवाली होती है उसे छांछ और दहीके साथ मिलाकर खानेसे द्विदलका दोष होता है । मुखके भीतर लारके मिलनेसे उनमें तत्काल पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न हो जाते हैं । इस प्रकारका दोष जान कर हे भव्यजीवों ! भोजन संबन्धी द्विदलका सदा त्याग करो ॥१०१-१०६॥

कितने ही अज्ञानी जन सांगर, पिठौर (पिठौरी?)और तोरईका रायता बनाते है, उसके पापका कोई पार नहीं है। जो उस रायतेको खाते हैं वे पापके भागी होते हैं। ऊपर कहे हुए अकाष्ठ और काष्ठ-दोनों प्रकारके द्विदलोंका जो त्याग करता है वही वास्तवमें श्रावक है।

---

१ पिसता रु बिदाम ग० न०

तजि है विदल दोय परकार, सो निहचै श्रावक निरधार ।
ककडी पेठो अरु खेलरा, इनको छाँछ दहीमें धरा ॥१११॥
राई लूण भेल जिहि माँहिं, करे रायता मूरख खांहिं ।
राई लूण परै निरधार, [1]उपजै जीव सिताव अपार ॥११२॥
राई लूण मिलो जो द्रव्य, ताहि सर्वथा तजिहै भव्य ।
कपडै बांध दहीको धरै, मीठो मेल शिखरिणी करै ॥११३॥
खारिख दाख घोल दधिमांहिं, मीठो भेल रायता खांहिं ।
मीठो जब दधिमांहिं मिलाहिं, अन्तरमुहूर्त्त त्रस उपजाहिं ॥११४॥
यामैं मीठा जुत जो दही, अन्तमुहूरत मांहे सही ।
खावो भविजनको हितदाय, पीछै सन्मूर्च्छन उपजाय ॥११५॥

उक्तं च गाथा— इक्खु दही संजुत्तं भवन्ति समुच्छिमा जीवा ।
अन्तोमुहूत्त मज्झे तम्हा भणंति जिणणाहो ॥११६॥

कांजीका वर्णन

दोहा— कांजी कर जे खात है, जिह्वा लम्पट मूढ ।
पाप भेद जाने नहीं, रहित विवेक अगूढ ॥११७॥
अब ताकी विधि कहत हों, सुणी जिनागम जेह ।
ताहि सुनत भविजन तजो, मनका सकल संदेह ॥११८॥

ककडी, पेठा और खेलरा (?) इनको छांछ और दहीमें रखकर तथा राई और नमक मिलाकर अज्ञानी जन रायता बनाते हैं तथा खाते हैं सो उसमें राई और नमकके पडनेसे शीघ्र ही अपार जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है ॥११०–११२॥ राई और नमक मिला हुआ जो भी पदार्थ है, उसका हे भव्यजीवों! त्याग करो। कितने ही लोग कपडेमें दहीको बाँध कर रखते हैं, पश्चात् मीठा मिलाकर शिखरिणी बनाते हैं। इसके सिवाय कितने ही लोग खारक और दाखके घोलको दहीमें मिलाकर तथा मीठा डाल कर रायता खाते हैं सो दहीमें मीठा मिलाने पर अन्तर्मुहूर्तमें त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। मीठा सहित दही अन्तर्मूहूर्त तक तो ठीक रहता है, भव्य जीव उसे खा सकते है। परन्तु पश्चात् उसमें संमूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते है। जैसा कि गाथामें कहा गया है—मीठा और दही मिलाने पर अन्तर्मुहूर्तमें संमूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवानने कहा है ॥ ११३–११६॥ आगे कांजीका वर्णन करते है—

जो जीभके लोभी विवेकहीन मनुष्य पापका भेद नहीं जानते हैं वे कांजी (चाट) आदि खाते हैं। अब उसकी विधि कहते हैं जैसे कि जिनागममें सुनी है। हे भव्यजीवो! उसे सुन कर

१ उपजै जंगम जीव अपार स०

चौपाई— तातौ जल अरु छाछ मिलाय, तामैं [1]सौंले लूण डराय ।
भुजिया बडा नाख तिहि मांहिं, खावै बुद्धिहीन सो ताहिं ॥११९॥
प्रथम छाछ कांजीके जाहिं, तातो जल तामांहि पराय ।
अवर नाजको कारन थाय, उपजै जीव न पार लहाय ॥१२०॥
याकी मरजादा अति हीग, तातैं तुरत तजो परवीण ।
ठंडी छाछ तासमें जाण, ताते विदलहुं दोष वखाण ॥१२१॥
प्रथम हि छाछ उष्ण अति करै, अरु वैसे ही जल कर धरै ।
जब दोऊ अति शीतल थाय, तब दुहुंवनको देय मिलाय ॥१२२॥
अगनि चढाय गरम फिरि करै, जब वह शीतलताका धरै ।
भजियादिक तामें दे डार, तसु मर्यादाको इम पार ॥१२३॥

उक्तं च गाथा—[2]चउ एइंदी विण्णि छह अट्ठह तिण्णि भणंति ।
दह चौरिंदी जीवडा बारह पंच भणंति ॥१२४॥

छन्द चाल— जब चार मुहूरत मांहि, एकेन्द्री जीव उपजाहि ।
बारा घटिका जब जाये, बेइन्द्री तामें थाये ॥१२५॥

मनका समस्त संदेह छोडो ॥११७–११८॥ गर्म जल और छांछ मिलाकर उसमें मसाले तथा नमक डालते हैं, पश्चात् उसमें भुजिया (पकोडी) तथा बडा डालकर जो खाते हैं वे बुद्धिहीन हैं । पहले छांछ अर्थात् कांजीमें गर्म जल डाला जाता है, पश्चात् भुजिया आदि अनाज डाला जाता है । इसके संयोगसे उसमें इतने जीव उत्पन्न होते हैं कि जिनका पार नहीं होता ॥११९–१२०॥ इसकी मर्यादा अत्यन्त कम है इसलिये प्रवीण जनोंको इसका शीघ्र ही त्याग करना चाहिये । छांछ ठण्डी रहती है इसलिये उसमें द्विदलका दोष बतलाया गया है । इसकी मर्यादा इस विधिसे बनती है––प्रथम छांछ और जलको पृथक् पृथक् गर्म करे, जब दोनो शीतल हो जावे तब दोनोंको मिलावे । पश्चात् दोनोंको फिर आग पर चढा कर गर्म करे, पुनः उतारने पर जब वे शीतल हो जावें तब उसमें भुजिया आदिकको डाले । इसकी मर्यादा चार मुहूर्तके पहले पहले तक है पश्चात् उसमें जीवोंकी उत्पत्ति शुरू हो जाती है । जैसा कि गाथामें कहा है ॥१२१–१२३॥

चार मुहूर्त बीतने पर एकेन्द्रिय, छह मुहूर्त बीतने पर दो इन्द्रिय, आठ मुहूर्त बीतने पर तीन इन्द्रिय, दश मुहूर्त बीतने पर चार इन्द्रिय और बारह मुहूर्त बीतने पर पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न हो जाते हैं ॥१२४॥ यही भाव ग्रन्थकार छन्द द्वारा प्रकट करते हैं––

चार मुहूर्त अर्थात् आठ घडीके बीतने पर एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं, छह मुहूर्त

---

१ राई न० स० २ दोहकका अर्थ स्वयं कवि १२५–१२६ वें छन्दमें प्रकट करते है ।

बीते जब ही दुय जामा, तब होवै तेइन्द्री धामा ।
दुय अर्ध पहर गति जानौ, उपजै चउ इन्द्री प्रानी ॥१२६॥
गमिया दश दोय मुहूरत, पंचेन्द्री जिय करि पूरत ।
ह्वै है नहि संसै आणी, यों भाषै जिनवर वाणी ॥१२७॥
बुधजन ऐसो लखि दोषा, जिय तत्क्षण अघको कोषा ।
कोई ऐसे कहिवे चाही, खाये विन जन्म गंवाही ॥१२८॥
मर्याद न सधि हैं मूला, [१]तजिये है व्रत अनुकूला ।
खायको पाप अपारा, छोडै शुभ गति है सारा ॥१२९॥

सवैया

मूढ सुनै इह कांजिय भेद, गहै मनि खेद धरो विकलाई ।
खात सवाद लहै आल्हाद, महा उनमाद रु लंपटताई ।
पातक जोर महा दुःख घोर, सहै लखि ऐसिय भव्य तजाई ।
जे मतिवंत विवेकिय संत, महा गुणवंत जिनंद दुहाई ॥१३०॥

इति कांजीनिषेध वर्णनम्

अर्थात् बारह घडीके बीतने पर दो इन्द्रिय जीव उसमें आ जाते हैं, दो प्रहर अर्थात् सोलह घडी बीतने पर वह कांजी तीन इन्द्रिय जीवोंका स्थान बन जाती है, अढाई प्रहर अर्थात् बीस घडी बीतने पर चौ इन्द्रिय जीव उत्पन्न हो जाते हैं और बारह मुहूर्त अर्थात् चौबीस घडी बीत जाने पर पंचेन्द्रिय जीवोंसे परिपूर्ण हो जाती है, इसमें संशय नहीं है । जिनेन्द्र देवने अपनी दिव्यध्वनिमें ऐसा कहा है ॥१२५–१२७॥ हे ज्ञानी जनों ! ऐसा जान कर इसे तत्काल छोडो, यह पापका भण्डार है । मर्यादाकी कमीके कारण कोई मानव ऐसा भी कहते हैं कि हम इसे खाये बिना ही जन्म व्यतीत कर लेंगे क्योंकि व्रतके अनुकूल मर्यादा पल नहीं सकेगी । मर्यादा भंगकर खानेका अपार पाप लगेगा, इसलिये बिलकुल ही छोड देना ठीक है । ऐसा करनेसे श्रेष्ठ शुभगतिकी प्राप्ति होगी ॥१२८–१२९॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि हे मूर्ख प्राणी ! तूं कांजीके इस भेदको सुन कर मनमें खेद तथा विकलता धारण कर । इसे खाते समय स्वादजनित आह्लाद उत्पन्न होता है परन्तु उससे उन्माद–विषयोंकी उत्तेजना और लंपटता बढती है । पापकी प्रबलतासे भयंकर दुःख उठाना पडता है, ऐसा जान कर हे भव्यजीवो ! इसका त्याग करो । जो मतिमान, विवेकवान और महा गुणवान संत पुरुष हैं वे जिनेन्द्र भगवानको प्रमाणभूत मानते हैं–उनकी दुहाई स्वीकृत करते हैं ॥१३०॥ इस प्रकार कांजी–चाटके निषेधका वर्णन हुआ ।

---

१ तजिहैं ले व्रत अनुकूला स०

गोरस मर्यादा कथन

छन्द चाल—अब गोरस विधि सुन एवा, भाषो श्री जिनवर देवा ।
दोहत महिषी जब गायें, तब ही मर्याद गहायें ॥१३१॥
इक अन्तमुहूरत ताई, जीव न तामें उपजाई ।
[1]राखे ताको जो सीरा, वैसे ही जीव गहीरा ॥१३२॥
उपजैं सन्मूर्च्छन जासें, कर जतन दयाधर तासे ।
दोहैं पीछे सुन वाला, धर अगनि उपरि तत्काला ॥१३३॥
फिर तामें जांवण दीजे, तबतें वसु पहर गणीजे ।
तबलो दधि खायो सारा, पीछे तजिये निरधारा ॥१३४॥
दधिको धरिके जु मथाणी, मथि है जो वनिता स्यानी ।
मथितें ही जल जामांही, डारे फिरि ताहि मथाही ॥१३५॥
वह तक्र पहर चहुं ताई, [2]खानेको जोग कहाई ।
मथिये पीछें जल नाखे, बहु वार लगे तिहि राखै ॥१३६॥
बिन छाणों जल जिम जाणों, तैसो ही ताहि बखाणों ।
तातें जे करुणा धारी, [3]खावें दधि तक्र विचारी ॥१३७॥

अब आगे गोरसकी मर्यादाका कथन करते हैं—

जिनेन्द्र देवने गोरसकी जो विधि कही है उसे अब सुनो । गाय और भैंसको जब दुहते हैं तबसे गोरसकी मर्यादा लेना चाहिये ॥१३१॥ दुहनेके एक अन्तर्मुहूर्त तक उसमें जीव उत्पन्न नहीं होते । अन्तर्मुहूर्तके बाद यदि दूधको ठण्डा रखा जाता है तो उसमें उसी जातिके बहुत संमूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये दया धारण कर जीव उत्पन्न न हों इसका यत्न करना चाहिये । यत्न यही है कि दूधको दुहनेके तत्काल बाद अग्निके ऊपर रख देना चाहिये । खूब गर्म होनेके बाद उसमें जांमन देना चाहिये । जांमन देनेके समयसे आठ प्रहर गिन लीजिये । आठ प्रहर तक वह दही खाना चाहिये, पश्चात् उसका त्याग कर देना चाहिये ॥१३२–१३४॥ उस मर्यादित दहीमें मथानी डालकर जो स्त्री उसे मथती है उसे मथनेके समय ही पानी डालकर मथना चाहिये । इस विधिसे मथ कर जो तक्र (छांछ) बनाया जाता है वह चार प्रहर तक खानेके योग्य रहता है । मथनेके बाद तक्रमें जल डाल कर यदि बहुत समय तक रखा जाता है तो वह अनछाने जलके समान हो जाता है । इसलिये जो करुणाके धारी भव्यजीव हैं वे दही और तक्रको विचारपूर्वक ही खावें । जो मर्यादाका उल्लंघन कर खाते हैं उन्हें मदिराका दोष लगता है इसमें संशय नहीं है । कितने ही लोग

---

१ पीछे न० स० २ खैवेको न० स० ३ खै है न० स०

मरजादा उलंघि जु खाहीं, मदिरा दूषण शक नाहीं ।
निज उदर भरणको जेहा, बेचैं दधि तक्र जो तेहा ॥१३८॥
वे पाप महा उपजाहीं, यामें कछु संशय नाहीं ।
तिनको जु तक्र दधि लेई, [1]खावें मति मंद धरेई ॥१३९॥
अर करय रसोई जातैं, भाजन मध्यम ह्वै तातैं ।
मरयादा हीण जो [2]खावें, दूषणको पार [3]न लावें ॥१४०॥
इह दही तक्र विधि सारी, [4]सुनिए भवि जो व्रत धारी ।
किरिया अरु जो व्रत राखे, दधि तक्र न परको चाखें ॥१४१॥
अब जांवणकी विधि सारी, [5]सुनिये भवि चित्त अवधारी ।
जब दूध दुहाय जु लावे, तबही तिहि अगनि चढावे ॥१४२॥
उबटाय उतार जो लीजै, रुपया तब गरम करीजै ।
डारै पयमांही जेहा, जमिहै दधि नहि संदेहा ॥१४३॥
बांधे कपडाके मांही, जब नीर न बूंद रहाही ।
तिहिकी दे बडी सुकाई, राखै सो जतन कराई ॥१४४॥
जलमांहि घोल सो लीजै, पयमांही जांवण दीजै ।
मरयादा भाषी जेहा, इह जांवणकूं लखि लेहा ॥१४५॥

इति गोरस मर्यादा संपूर्ण

उदरपूर्ति–आजीविकाके लिये दही और छांछको बेचते हैं वे महापापका उपार्जन करते हैं इसमें संशय नहीं है । जो अज्ञानी जन उन बेचनेवालोंसे छांछ और दही लेकर खाते है तथा उससे रसोई बनाते हैं उनके बर्तन भी खराब हो जाते हैं । तात्पर्य यह है कि जो मर्यादा रहित दही और छांछ खाते हैं उनके दोषोंका पार नहीं है ॥१३५–१४०॥ हे व्रतधारी भव्यजनो ! छांछ और दहीकी इस संपूर्ण विधिको सुन कर उसका निश्चय करो । जो क्रिया और व्रतका पालन करते हैं वे दूसरेका छांछ और दही नहीं खाते है ॥१४१॥

हे भव्यजीवो ! अब जांमनकी सब विधि सुन कर हृदयमें निश्चय करो । जब दूध दुहाकर घर लावे उसे उसी समय (छानकर) अग्नि पर चढा देना चाहिये । पश्चात ओंटा कर दूधको नीचे उतार ले और उसमें चांदीका रूपया गर्म कर डाल दे । ऐसा करनेसे दही जम जाता है इसमें संदेह नहीं है ॥१४२–१४३॥ अथवा कपडेमें दहीकी पोटली बाँधे । जब उसमें पानीकी एक भी बूंद न रहे तब उसकी बडी दे कर सुखा ले । उन बडियोंको यत्नपूर्वक रखें । जब दही जमाना हो तब उस बडीको पानीमें घोल कर दूधमें जांमन दे

---

१ खै हैं न० स० २ खेहे न० स० ३ न पैहे न० स० ४ सुनिए भवि चित्त विचारी स० ५ सुनिये हो भव्य व्रतधारी स०

चर्माश्रित वस्तु दोष वर्णन

दोहा

चरम मध्यकी वस्तुको, खात दोष जो होय ।
ताको संक्षेपहि कथन, कहूं सुनो भवि लोय ।।१४६।।

चौपाई

मूये पशुको चरम जु होय, भींटे नर चंडाल जु कोय ।
ता चंडालहि परसत जबै, छोति गिने सगरे नर तबै ।।१४७।।
घर आये जल स्नान करेय, एती [1]संख्या चित्त धरेय ।
पशू खालके [2]कूपा मांहि, घिरत तेल भंड शाल करांहि ।।१४८।।
अथवा सिर पर धर कर ल्याय, बेचै सो बाजारहिं जाय ।
ताहि खरीद लेय घरमांहि, [3]खावे सबै शंक कछु नाहि ।।१४९।।
तामें उपजें जीव अपार, जिनवाणी भाष्यो निरधार ।
[4]जैसें पशू चामके मांहि, घृत जल तेल डार है नांहि ।।१५०।।
ताही कुलके [5]जीव उपजंत, संख्यातीत कहे भगवंत ।
ऐसौ दोष जाणिकै संत, चरम वस्तु तुम तजहु तुरंत ।।१५१।।

दे । इस प्रकार जांमनकी जो मर्यादा कही गई है उसे दृष्टिमें रखना चाहिये ।।१४४–१४५।। इस प्रकार गोरसकी मर्यादाका वर्णन पूर्ण हुआ ।

अब आगे चर्ममें रखी हुई वस्तुओंके दोषका वर्णन करते हैं—

चमडेके भीतर रखी हुई वस्तुओंके खानेमें जो दोष लगता है, संक्षेपसे उसका कथन करता हूँ । हे भव्यजनो ! उसे सुनो ।।१४६।।

मृत पशुका जो चमडा होता है उसे चाण्डाल–चमार आदि नीच लोग ही तैयार करते हैं । उन चाण्डालोंके स्पर्शसे ही जब सब लोग छूत गिनते हैं तथा मनमें इतनी ग्लानि रखते हैं कि घर आकर जलसे स्नान करते हैं तब चमडेकी क्या बात कही जाय ? ।।१४७।। कितने ही लोग पशुओंकी खालसे निर्मित कुप्पाकुप्पियोंमें घी और तेल भर कर रखते हैं और कितने ही उन्हें शिर पर रख कर बाजारमें बेचने जाते हैं । उसे खरीद कर लोग घर लाते हैं और निःशंक होकर खाते हैं परन्तु उसमें अपार जीव उत्पन्न होते हैं ऐसा जिनवाणीमें कहा है । पशुचर्मसे निर्मित बर्तनोंमें घृत, तेल और जल डाल नहीं पाते कि उसमें उसी समय उसी जातिके असंख्यात जीव उत्पन्न हो जाते हैं ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवानने कहा है । ग्रन्थकार कहते हैं कि हे सत्पुरुषो ! ऐसा दोष जान कर चर्माश्रित वस्तुओंका शीघ्र ही त्याग करो ।।१४८–१५१।।

---

१ ग्लानी स० २ वासन स० ३ खेहे स० न० ४ जैसे पशु चमडाके मांही, घृत जल तेल डारि सक नाही क० जैसे पसूचामके मांहि, घृत जल तेल डारित संकै नांहि ग० ५ जिय स०

कोइ मिथ्याती कहि है एम, जिय उतपत्ति भाषिये केम ?
जीव तेल घृतमें कहुं नांहि, चरम धरें कर उपजें कांहि ॥१५२॥
ताके समझावणको कथा, कही जिनेश्वर भाषूं यथा ।
दे दृष्टांत सुदृढता धरी, मिथ्यादृष्टी संशय हरी ॥१५३॥
घृत जल तेल जोगतें जीव, चरम वस्तुमें धरत अतीव ।
उपजै जैसें जाको चाम, सो दृष्टांत कहूं अभिराम ॥१५४॥
सूरज सन्मुख दरपण धरै, रुई ताके आगे करै ।
रवि दरपणको तेज मिलाय, अगनि उपजि रुई बलि जाय ॥१५५॥
नहीं अगनि इकले रविमांही, [1]दरपण मध्य कहूं है नांही ।
दुहुयनिको संयोग मिलाय, उपजै अगनि न संशै थाय ॥१५६॥
तेम [2]चामके वासनमांहि, घृत जल तेल धरैं शक नांहि ।
उपजै जीव मिलैं दुहुं थकी, इह कथनी जिनमारग बकी ॥१५७॥
ऐसैं लखकैं भील चमार, धीवर रेंगर आदि चंडार ।
तिनके घरके भाजनतणों, भोजन भखैं दोष तिम भणो ॥१५८॥

इस संदर्भमें कोई मिथ्यात्वी जीव ऐसा कहते हैं कि जब तेल और घृतमें कहीं जीव नहीं दीखते तब चमडेमें रखने मात्रसे किस प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं ? उन्हें समझानेके लिये जिनेन्द्र देवने जैसा कहा है वैसा दृष्टान्त देकर कहता हूँ जिससे संशयमें पडे हुए मिथ्यादृष्टि श्रद्धानकी दृढताको धारण कर सकें ॥१५२–१५३॥ चमडेकी वस्तुमें रखते ही घी, जल और तेलके संयोगसे जिस पशुका चमडा है उसी जातिके असंख्यात जीव उत्पन्न हो जाते हैं । इसका सुन्दर दृष्टान्त यह है :— जैसे सूर्यके सन्मुख दर्पण रक्खो और उसके आगे रूई रक्खो तो सूर्य और दर्पणका तेज मिलनेसे अग्नि उत्पन्न हो कर रूईको जला देती है । यद्यपि अकेली रूईमें अग्नि नहीं है और अकेले दर्पणमें भी कहीं अग्नि नहीं दिखाई देती तो भी दोनोंका संयोग मिलने पर अग्नि उत्पन्न हो जाती है इसमें संशय नहीं है ॥१५४–१५६॥ इसी प्रकार चमडेके बर्तनमें घी, जल और तेलके रखते ही दोनोंके संयोगसे जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, यह कथन जिनमार्गमें कहा गया है ॥१५७॥ भील, चमार, धीवर, रेंगर तथा चंडाल आदिके घरके बर्तनोंका जो भोजन करते हैं उन्हें भी इसी प्रकारका दोष लगता है अर्थात् चमडेमें रखी वस्तुके खानेका जैसा दोष है वैसा ही दोष नीच घरोंके बर्तनोंमें रखी हुई वस्तुके खानेका दोष है । यह दोष दुर्गतिको देनेवाला तथा दुःखोंका भण्डार है । अधिक

१ दर्पणमें कछु दीसे नाहि स० २ चरमके स०

तैसो चरम वस्तुमें दोष, [1]दुरगति दायक दुःखको कोष ।
चरम वस्तु [2]भक्षण करि जेह, [3]मांसभखी सादृश है तेह ॥१५९॥
तुरत मुए पशुको जो चाम, करिकै तास भाथडी ताम ।
भरै हींग तामें मिल जाय, [4]खातो मांस दोष अधिकाय ॥१६०॥
जाके मांसत्याग व्रत होय, हींग भव्य नहिं खावें कोय ।
हींग परै जिहि भाजनमांहि, सो चमार वासण [5]समजांहि ॥१६१॥

सवैया

चामडेके मध्य वस्तु ताको जो आहार होय,
अति ही अशुद्धताहि मिथ्यादृष्टी खाय है ।
दातारके दीए बिन [6]निज इच्छा होय ऐसो,
असन लहाय नाम जतीको कहाय है ।
तिन बहिरातमा सों कहा कहै और सुनो,
बणियो सो भोजन क्रियातें हीण थाय है ।
हरित अनेक जुत मारग धरमवंत,
शुद्धता कहाय भेष धरै या गहाय है ॥१६२॥

दोहा

जीमत भोजनके विर्षे, मुवो जनावर देख ।
[7]तजै नहीं वह असनको, पुरजन दुष्ट विशेख ॥१६३॥

क्या कहे ? जो चमडेमें रखी वस्तुका भक्षण करते हैं वे मांसभक्षीके समान हैं ॥१५८–१५९॥ तुरन्त मरे हुए पशुके चमडेकी भाथडी बना कर उसमें जो हींग भरी जाती है उसमें मांस मिश्रित हो जाता है । जो इस हींगको खाते हैं उन्हें मांस खानेके समान दोष लगता है ॥१६०॥ जिस भव्यजीवके मांस त्याग व्रत है वह हींग नहीं खावे । हींग जिस बर्तनमें पडती है वह बर्तन चमारके बर्तनके समान है ।१६१॥ चमडेके भीतर रक्खी हुई वस्तुओंसे जो भोजन बनता है वह अत्यन्त अशुद्ध होता है । मिथ्यादृष्टि ही उसे खाते हैं । दातारके देने पर अपनी निजकी इच्छाके बिना भी जो ऐसे आहारको लेता है उसे कोई नाममात्रका भी साधु नहीं कहता है । ऐसा जो भोजन करते हैं उन बहिरात्माओंसे क्या कहा जाय ? उपर्युक्त पदार्थोंसे निर्मित भोजन क्रियारहित है । कितने ही धर्मात्मा अनेक प्रकारकी हरित वस्तुओंसे युक्त आहारको लेते हैं तथा उसे शुद्ध कहते हैं सो वे नाममात्रके वेषधारी हैं ॥१६२॥

भोजन करते समय मृत पशुको देखकर जो भोजनको नहीं छोडता है वह नगरवासी

---

१ दुरगतिपंथ पापको कोष स० दुरगति दायक अंघको कोष न० २ भक्षक नर जेह न० ३ मांसअहारी कहिये तेह स० ४ खातन स० खाता न० ५ सक नाहि स० सम आही न० ६ जिन क० ७ तजे न जो नर अशनको स० ४

[1]ए चाख्यों इकसे कहे, यामें फेर न सार ।
अति लंपट जिह्वा तणो, लोलुप चित्त अपार ॥१६४॥

चौपाई

[2]हटवातणों चून अरु दाल, व्रतधर इनको खावो टाल ।
घींधो अन्न पीस दल ताहि, दया रहित बेंचत है जाहि ॥१६५॥
जीव कलेवर थानक सोय, चलते हू ता माहे होय ।
परम विवेकी है सो मही, मांस दोष लख त्यागे सही ॥१६६॥
नीच लोक घरको घृत दुग्ध, तजहु विवेकी जाण अशुद्ध ।
[3]सांडि दूध दोहत तै लेय, तातो होय तहां सो देय ॥१६७॥
निंद्य वस्तु तिन उपमा इसी, कहिये मांस बराबर जिसी ।
आमिषकी उपमा इह वीर, जैसो सांढि तणो है खीर ॥१६८॥
यातें [4]सांढि दूधको तजो, मांस तजन व्रत निहचै भजो ।
संख तणों चूनो गोमूत्र, महा निंद्य भाषो जिनसूत्र ॥१६९॥
कालिंगडा घिया तोरइ, कदू बेल रु जामा निंइ ।
इत्यादिक फल काय अनन्त, तिनको तजिये तुरत महंत ॥१७०॥

जनोंमें विशेष दुष्ट माना जाता है ॥१६३॥ कोई यह कहे कि जो भोजन सामने है उसे खा लूँ, अन्य नहीं ग्रहण करूँगा; तो उसके ऐसा कहनेमें कोई अन्तर नहीं है और न कुछ सार ही है । वह जिह्वाका अत्यन्त लोभी और मनका अपार लोलुप--सतृष्ण है ॥१६४॥ बाजारका जो आटा दाल है, व्रती मनुष्यको इनका त्याग करके भोजन करना चाहिये । क्योंकि निर्दय मनुष्य घुने हुए अन्नको पीस कर तथा दाल बना कर बेचते हैं ॥१६५॥ बाजारका आटा दाल जीवशरीरोंका स्थान है, कभी कभी उसमें चलते-फिरते जीव दिखाई देते हैं इसलिये जो पृथिवी पर परम विवेकी जीव हैं वे मांसका दोष जानकर बाजारका आटा, दाल छोडें ॥१६६॥

इसके सिवाय विवेकी जन अशुद्ध जानकर नीच लोगोंके घरका घी और दूध छोडें । नीच जन दूध दोह कर उसकी साढी (मलाई) निकाल लेते है तथा उसे गर्म स्थान पर रख देते है । नीच मनुष्योंके दूधको निंद्य वस्तुकी उपमा दी जाती है । वह मांसके बराबर कहा जाता है । इसलिये उस दूधको छोडो और निश्चयसे मांस त्याग व्रतको धारण करो । इसके सिवाय शंखका चूना और गोमूत्रको जिनागममें महा निन्दनीय कहा गया है । कलींदा (तरबूज), घिया (लौंकी), तोरई, कद्‌दू (कुम्हडा), बेल, जामुन और निबोरी आदिक फल

---

१ अतीचार इनके कहे स० २ हाट तनौ चून अरु दार ३ सांढि स० सांझि न० ४ इसा दूधको तजो न०

फलिय कुवारि कली कचनार, फूल सहजणा आदि अपार ।
महानिंद जीवनका धाम, तजिये तुरत विवेकी राम ॥१७१॥

दोहा

त्रेपन किरियाके विषै, प्रथम मूलगुण आठ ।
तिन वर्णन संक्षेपतैं, कह्यो पूर्व ही पाठ ॥१७२॥

जिनवाणी जैसी कही, कथा संस्कृत तेह ।
भाषा तिह अनुसारतैं, बंध चौपई एह ॥१७३॥

पंच उदुम्बर फल त्यजन, मकारादि पुनि तीन ।
महा दोषकर जानिके, तुरत तजहु परवीन ॥१७४॥

सवैया

पीपर औ बड फल उंबर कठुंबर हु
पाकर ए पांच उदंबर फल जाणिये ।
मद्य मांस मधु तीन मकारादि अति हीन
सुनहु परवीन सबै आठ ए बखानिये ।
इनही के दोष जेतै तामें पापदोष ते ते,
लहै न संतोष ते ते नर खात मानिये ।
इनके तजे जो मन वच क्रम भव्य जीव
आठ मूलगुणके सधैया मन आनिये ॥१७५॥

अनन्तकाय कहे गये है इसलिये उत्तम जनोंको इनका शीघ्र ही त्याग करना चाहिये। गुवार फली, कचनारकी कली तथा सोहजना आदिका फूल महानिन्दनीय तथा जीवोंका स्थान है इसलिये विवेकी जनोंको इनका शीघ्र ही त्याग करना चाहिये ॥१६७–१७१॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि हमने त्रेपन क्रियाओंमें सर्व प्रथम जो आठ मूल गुण हैं उनका पहले ही अधिकारमें संक्षेपसे वर्णन किया है । जिनवाणीमें जैसा कहा है तथा संस्कृत ग्रन्थोंमें जैसा कथन किया गया है उसके अनुसार चौपाई बाँधकर भाषामें वर्णन किया है । तात्पर्य यह है कि पाँच उदुम्बर फल और तीन मकारको महादोषयुक्त जान चतुर मनुष्य शीघ्र ही छोडें ॥१७२–१७४॥

पीपल, बड, ऊमर, कठूमर और पाकर ये पाँच उदुम्बर फल हैं तथा मद्य, मांस और मधु ये तीन मकार हैं। दोनों मिलकर आठ होते हैं । इनमें जितने दोष हैं उनसे उतने ही पाप लगते हैं । जो मनुष्य संतोषी नहीं हैं वे ही इन्हें खाते हैं। जो भव्यजीव मन वचन कायसे इनका त्याग करते हैं वे ही आठ मूलगुणोंके साधनेवाले हैं, ऐसा हृदयमें श्रद्धान कीजिये ॥१७५॥

अथ रसोई चक्की वा परहिंडा (पानी रखनेका स्थान) आदिका वर्णन

चौपाई

जा घरमांहि रसोई होय, तहां तानिये चंदवो लोय ।
अवर [1]परहिंडा ऊपर जान, ऊखल चाकी है जिहि थान ॥१७६॥

फटकै नाज रु वीणै जहां, चून छानियो थानक तहां ।
जिस जागह जीमन नित होय, सयन करण जांगो अवलोय ॥१७७॥

सामायिक कीजै जिहि धीर, ए नव थानक लख वर वीर ।
[2]ऊपर वसन जहां ताणिये, [3]श्रावक चलण तहां जाणिये ॥१७८॥

चाकी ऊखलके परिमाण, ढकणा कीजै परम सुजाण ।
श्वान बिलाई [4]चाटै ताय, कीजै जतन इसी विधि भाय ॥१७९॥

खोट लिये मूसलतें नाज, धोय इकान्त धरो बिन काज ।
छाज [5]चालणा चालणी तीन, चाम तणा तजिये परवीण ॥१८०॥

चरम वस्तुको त्यागी होय, इनको कबहुं न भेंटे सोय ।
दिनमें खोटे पीसै नाज, सो खाना किरिया सिरताज ॥१८१॥

अब आगे रसोई घर, चक्की और परहिंडा आदिका वर्णन करते हैं—जिस घरमें रसोई बनती हो वहाँ चंदेवा तानना चाहिये । इसके सिवाय परहिंडा (घिनोची—पानी रखनेका स्थान), उखली तथा चक्कीका जो स्थान हो, अनाजके फटकने बीननेका स्थान, चून (आटा आदि)को चालनेका स्थान, नित्य प्रति भोजन करनेका स्थान, शयनका स्थान और सामायिक करनेका स्थान, इन नौ स्थानों पर जहाँ कपडा ताना जाता है वहाँ श्रावक धर्मका चलन जानना चाहिये ॥१७७–१७८॥

चक्की और उखलीके ऊपर उसी नापका ढक्कन बनवा कर रखना चाहिये जिससे कुत्ता तथा बिलाव आदि उन्हें चाट नहीं सके । इस विधिसे इनकी शुद्धिका यत्न करना चाहिये ॥१७९॥ मूसलसे अनाज कूट लेनेके बाद उसे धोकर अलग एकान्त स्थानमें रख देना चाहिये । चमडेसे निर्मित सूपा, चलना तथा चलनीका त्याग करना चाहिये । जो चर्मनिर्मित वस्तुका त्यागी है उसे इनका संग्रह कभी नहीं करना चाहिये । दिनमें अनाज कूटना तथा पीसना, यह भोजन सम्बन्धी क्रियाओंमें प्रमुख क्रिया है ॥ १८०–१८१ ॥ दिनमें अनाज अपनी दृष्टिसे शोधा जा सकता है इसलिये दयाका विस्तार होता है । जो रात्रिमें पीसते और दलते हैं

---

१ घिनोची स० २ ऊपर वसन ताणिये जोय स० ३ श्रावक चलत जानिये सोय स० ४ चांटे तांहि, यातें जतन भलो शक नांहि न० ५ तराजू चलनी स०

नाज नजरतें सोध्यो परै, तातें करुणा अति विस्तरै ।
निसिको जो पीसै अरु दलै, जातें करुणा कबहुं न पलै ॥१८२॥
चाकी गालै चून रहाय, चींटी अधिक लगै तसु आय ।
निसिको पीस्यो नजर न परै, ताके दोष केम ऊचरै ॥१८३॥
नाजमांहि ऊपरतें कोय, प्राणी आय रहे जो होय ।
सोई नजर न आवै जीव, यातें दूषण लगै अतीव ॥१८४॥
एते निसि पीसणके दोष, जान लेहु भवि अघके कोष ।
ताते निसि पीस्यौ नहि भलो, त्यागो ते किरियाजुत चलो ॥१८५॥
चून तणी मरयादा कहूं, जिनमारगमें जैसे लहूं ।
सीतकाल दिन सात बखान, पांच दिवस ग्रीषम ऋतु जान ॥१८६॥
बरषा काल मांहि दिन तीन, ए मरयादा गहौ प्रवीन ।
इन उपरांत जानिये इसो, दोष चलितरस भाष्यो तिसो ॥१८७॥
निसिको नाज भिगौ जो खाय, अंकूरा तिनमें निकसाय ।
जीव निगोद तणो भंडार, कंदमूल सम दोष अपार ॥१८८॥
तातैं जिते विवेकी जीव, दोष जाणकै तजहु सदीव ।
श्रावककी है घर जो त्रिया, किरिया मांहि निपुण तसु हिया ॥१८९॥

उनसे दयाका पालन कभी नहीं होता ॥१८२॥ चक्की झाड लेने पर भी उसमें कुछ चून रह जाता है । उस चूनके कारण चींटी आदि जीव अधिक लग जाते हैं । रात्रिको पीसने पर वे दिखाई नहीं देते—सब पिस जाते हैं अतः इसका दोष कैसे कहा जा सकता है? ॥१८३॥ पीसे जाने वाले अनाज पर भी ऊपरसे कोई जीव चढ जाते हैं जो रात्रिमें दिखाई नहीं देते । इससे बहुत दोष लगता है । हे भव्यजीवो ! रात्रिमें पीसनेके ये दोष जानो, ये सभी दोष पापके भण्डार हैं इसलिये रात्रिमें पीसना अच्छा नहीं है । इसका त्याग कर क्रियापूर्वक चलना चाहिये ॥१८४–१८५॥

आगे आटा आदिकी मर्यादा जैसी जिनमार्गमें कही गई है वैसी कहता हूँ । शीतकालमें सात दिनकी, ग्रीष्म कालमें पाँच दिनकी और वर्षाकालमें तीन दिनकी मर्यादा कही गई है । मर्यादा बीत जाने पर इनमें चलित रस जैसा दोष जानना चाहिये ॥१८६–१८७॥ जो लोग रातमें भिगो कर रखे हुए अनाजको खाते हैं उसमें अंकुर निकल आनेसे अनन्त निगोदिया जीव उत्पन्न हो जाते हैं जिससे वह कन्दमूलके समान हो जाता है । उसे खानेसे अपार दोष लगता है इसलिये विवेकी जीव दोष जान कर रात्रिके भिगोये हुए अनाजका सदा त्याग करें ।

ईंधन सोध रसोई मांहि, लावे तासों असन कराहिं ।
तातैं पुन्य लहै उत्कृष्ट, भव भव में सुख लहै गरिष्ट ॥१९०॥

अथ मुरब्बादिक वर्णन

चौपाई—कोऊ मान बडाई काजे, अरु जिह्वा लोलुपता साजे ।
खांड तणी चासणी कराय, दाख छुहारा मांहि डराय ॥१९१॥

नाना भांति अवर भी जान, करइ मुरब्बा नाम बखान ।
कैरी अगनि उपरि चढवाय, खांडपात मांहे [1]नखवाय ॥१९२॥

कहै नाम तसु कैरीपाक, कर वावै तस अशुभ विपाक ।
तिनकी मरजादा वसु जाम, व्रतधरके पीछे नहि काम ॥१९३॥

जेती उष्ण नीरकी वार, तेती इन संख्या निरधार ।
रहित विवेक मूढता जान, राखे घरमें बहु दिन आन ॥१९४॥

मास दुमास छमास न ठीक, वरस अधिक दिन सों तहकीक ।
काहूमें तो पेस करेय, मांगैं तिनको मांगा देय ॥१९५॥

जातें लखै बडाई आप, तिस समान कछु अवर न पाप ।
मदिरा दोष लगै सक नांहि, तातें भविजन [2]येहिं तजांहि ॥१९६॥

श्रावकके घर जो स्त्री होती है उसका हृदय इन क्रियाओंके पालन करनेमें निपुण रहता है ॥१८८-१८९॥ वह ईंधन शोध कर रसोई घरमें लाती है तथा उसीसे रसोई बनाती है इसलिये उसे उत्कृष्ट पुण्य प्राप्त होता है और उस पुण्यसे वह भवभवमें श्रेष्ठ सुख प्राप्त करती है ॥१९०॥ आगे मुरब्बा आदिकका वर्णन करते हैं :

कोई मनुष्य मान-बडाई और जिह्वाकी लोलुपतासे शक्करकी चासनी बनवा कर उसमें दाख और छुहारा डालते हैं । इसी प्रकार और भी पदार्थ उस चासनीमें डाल कर उसका मुरब्बा नाम रखते हैं । आमको अग्नि ऊपर चढाकर पश्चात् शक्करकी चासनीके पात्रमें डालते है और कैरीपाक नामसे कहते हैं । इस प्रकारके पाकसे अशुभ फल ही प्राप्त होता है । इनकी मर्यादा आठ प्रहरकी है इसलिये व्रती मनुष्यको मर्यादा पीछे खाने योग्य नहीं है । गर्म जलकी जितनी मर्यादा है उतनी ही इन मुरब्बा तथा पाकोंकी है । विवेक रहित मूर्ख जन इन्हें लाकर अपने घरमें बहुत दिन तक रखे रहते हैं । मास, दो मास, छह मासका कुछ ठीक नहीं है एक वर्षसे अधिक दिन तक भी रखे रहते हैं । वे यह मुरब्बा आदिक किसीके लिये स्वयं देते है और किसीको माँगने पर देते हैं । जिसमें अपनी मान-बडाई देखते हैं वैसा करते हैं । ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि इसके समान अन्य पाप नहीं हैं । इसमें मदिरापानका दोष लगता है

---

१ डरवाय स० २ याहिं न० स०

जो मनमें खावेको चाव, खावे जीमत वार कराव ।
अथवा कीए पीछे ताम, लैनो जोग आठ ही जाम ॥१९७॥

साठोंका रसको उबटाहि, राखे नरम चासनी ताहिं ।
गागर मटकी भरके राख, ताको बहु दिन पीछे चाख ॥१९८॥

ताहूंमें मदिराको दोष, महानन्त जीवनिको कोष ।
अधिको कहां करो आलाप, अहोरात्रि पीछें बहु पाप ॥१९९॥

याको षटरस नाम जु कहै, पुन्यवान कबहू नहि गहै ।
मन वच तन इनको जो तजै, मदिरा त्याग वरत सो भजै ॥२००॥

दोहा

जे विशुद्ध मदिरा त्यजन, पालैं वरत महन्त ।
मरजादा ऊपर गए, तुरत त्यागिए सन्त ॥२०१॥

रसोई वा भोजनकी क्रिया वर्णन

चौपाई

होत रसोई थानक जहां, खिचडी रोटी व्यंजन तहां ।
चांवल और विविध परकार, निपजै श्रावककै घर सार ॥२०२॥

इसमें संदेह नहीं है। इसलिये हे भव्यजनो! इसका परित्याग करो ॥१९१–१९६॥ यदि मनमें खानेका उत्साह है तो भोजन करते समय ही बनवा कर खाना चाहिये अथवा बनवानेके बाद आठ प्रहर तक खानेके योग्य होता है ॥१९७॥

कोई लोग गन्नेके रसको ओंटा कर गर्म चासनीमें डालते हैं पश्चात् उसे गागर या मटकेमें रख कर बहुत दिन बाद खाते हैं उसमें भी मदिराका दोष लगता है क्योंकि वह अनन्त जीवोंका भण्डार हो जाता है। अधिक क्या कहें? एक दिन–रातके बाद खानेमें बहुत पाप होता है। इस पाकको लोग षट्रस कहते है परन्तु पुण्यवान जीव इसे कभी नहीं खाते हैं। जो मन वचन कायसे इसका त्याग करते हैं वे ही मदिरा त्याग व्रतके धारी हो सकते हैं ॥१९८–२००॥ जो मनुष्य निर्दोष रूपसे मदिरा त्याग व्रतका पालन करना चाहते है उन्हें मर्यादा बीत जाने पर इन सबका त्याग कर देना चाहिये ॥२०१॥ आगे रसोई वा भोजनकी क्रियाका वर्णन करते हैं:

श्रावकके श्रेष्ठ घरमें रसोई बनानेका स्थान पृथक् होता है जिसमें खिचडी, रोटी और विविध प्रकारके चाँवल आदि भोजन बनाया जाता है। रसोई घरके पास जीमनेका जो निश्चित

जीमण थानक जो परमाण, तहां जीमिए परम सुजाण ।
रांधणके भाजन हैं जेह, चौका बाहिर काढि न तेह ॥२०३॥
जो काढै तो मांहि न लेह, किरियावंत सो नहि संदेह ।
असन रसोई बाहिर जाय, सो वटवोयी नाम कहाय ॥२०४॥
अन्य जाति जो भीटै कोय, जिह भोजनको जीमे सोय ।
शूद्रनि भेले जिमे जीसो, दोष बखान्यो है वह तिसो ॥२०५॥
अन्य जातिके भेले कोई, असन करै निरबुद्धी होई ।
यातें दूषण लगे अपार, जिमि पर जूंठि भखै मति छार ॥२०६॥
[1]निज सुत पिता भ्राता जान, चाचा मित्रादिक जो मान ।
भेलौ तिनके जीमण सदा, किरिया मांहि वरणो नहिं कदा ॥२०७॥
तो परजात तणी कहा वात, क्रियाकांड ग्रंथन विख्यात ।
भाजन निज जीमन को जेह, मांग्यो परको कबहू न देह ॥२०८॥
अरु परके वासणमें आप, जीमेतें अति बाढैं पाप ।
ग्रामान्तर जो गमन कराय, वसिहैं ग्राम सरायां जाय ॥२०९॥

स्थान है वहाँ ज्ञानीजनोंको भोजन करना चाहिये । भोजन बनानेके जो बर्तन हैं उन्हें चौकाके बाहर नहीं ले जाना चाहिये और ले जाय तो फिर चौकाके भीतर नहीं ले जाना चाहिये । चौकाकी क्रियाका पालन करने वालोंको इसका ध्यान रखना चाहिये । जो भोजन रसोई घरसे बाहर ले जाया जाता है वह मार्गचला कहलाता हैं ॥२०२–२०४॥ अन्य जातिके लोगोंके साथ मिल कर–साथ बैठ कर जो भोजन करते हैं उसमें शूद्रोंके साथ मिल कर भोजन करनेका दोष बताया गया है ॥२०५॥ अन्य जातिके लोगोंके साथ मिलकर जो निर्बुद्धि भोजन करते हैं उसमें अपार दोष लगते हैं । वह भोजन परकी जूठन खानेके समान हैं ॥२०६॥ अपने पुत्र, पिता, भ्राता तथा चाचा, मित्र आदिके साथ एक थालीमें भोजन करनेका निर्देश जब क्रियाप्रतिपादक ग्रन्थोंमें नहीं किया गया है तब अन्य जाति वालोंकी तो बात ही क्या है? ऐसा क्रियाकाण्डके ग्रन्थोंमें विख्यात है। अपने भोजन करनेका जो बर्तन है वह माँगने पर दूसरी जाति वालोंको कभी नहीं देना चाहिये ॥२०७–२०८॥ दूसरी जातिके बर्तनोंमें भोजन करनेसे बहुत पापकी वृद्धि होती है। अन्य ग्रामको जाते समय यदि किसी ग्रामकी सरायमें रहना पड़े और वहाँके बर्तन माँग कर उनमें खावे, भले ही खाद्य सामग्री अपने घरकी हो तो भी दूसरेके बर्तनोंमें खानेसे मांस खानेके बराबर दोष लगता है इसमें

---

१ निज सुत पिता भ्राता जानिजै, चाचा मित्रादिक जानिजै स०

मांगे वासन खावे वाहि, जो सीधो घरहूं को आहि ।
खाये दोष लगै अधिकार, मांस बराबर फेर न सार ॥२१०॥
गूजर मीणा जाट अहीर, भील चमार तुरक बहु कीर ।
इत्यादिक जे हीण [1]कहात, तिन [2]वासनमें भोजन [3]खात ॥२११॥
[4]ताके घरको वासण होई, तातें तजौ विवेकी लोय ।
श्रावक कुल अति लह्यो गरिष्ट, किरिया बिन सो जानहु भिष्ट ॥२१२॥
जे बुध क्रिया विषें परवीन, अन्य तणो वासन न गहीन ।
तामें भोजन कबहु न करै, अधिको कष्ट आयजो परै ॥२१३॥
जैन धरम जाके नहि होय, अन्यमती कहिये नर सोय ।
निपज्यो असन तास घरमांहि, जीमण योग वखाणो नांहि ॥२१४॥
अरु तिनके घरहु को कियो, खानो जिनमतमें वरजियो ।
पाणी छाणि न जाणै सोय, सोधण नाज विवेक न होय ॥२१५॥
ईंधण देख न बालो जिके, दया रहित नर जाणो तिके ।
जीवदया षट मतमें सार, दया विना करणी सब छार ॥२१६॥
यातें जे करुणा प्रतिपाल, असन आन घरि कर तजि चाल ।
निज व्रत रक्षक है नर [5]जेह, [6]यों जिनवर भाष्यो न संदेह ॥२१७॥

कुछ भी फेर नहीं है ॥२०९–२१०॥ गूजर, मीणा, जाट, अहीर, भील, चमार आदि जो नीच कहलाते हैं वे भी उन सरायके बर्तनोंमें भोजन करते हैं, अथवा वे बर्तन उन नीच लोगोंके घरके हैं; अतः विवेकी जनोंको उनका त्याग करना चाहिये । हे भव्यजनो ! तुम्हें श्रावकका अतिशय श्रेष्ठ कुल मिला है परन्तु क्रियाके बिना वह भ्रष्ट हो जावेगा । इसलिये जो ज्ञानी जन क्रियामें चतुर हैं वे दूसरी जातिके हीन बर्तनोंको लेकर उनमें कभी भोजन नहीं करे, भले ही अधिक कष्ट क्यों न आ पडे ? ॥२११–२१३॥

जिसके जैन धर्म न हो उसे अन्यमती कहते हैं । उसके घरमें भोजन करना योग्य नहीं है । इसके सिवाय उनके घर बना हुआ भोजन भी जिनमतमें वर्जनीय कहा गया है । जो पानी छानना नहीं जानते, जिन्हें अनाज शोधनेका विवेक नहीं है और जो ईंधन देख कर नहीं जलाते वे निर्दय कहलाते हैं । षड् दर्शनोंमें जीवदयाको श्रेष्ठ कहा गया है तथा दयाके बिना सभी कार्य सारहीन कहे गये हैं इसलिये जो दयाके प्रतिपालक हैं उन्हें पर घरके भोजनकी चाल छोडना चाहिये । ऐसे ही जीव अपने व्रतकी रक्षा कर सकते हैं ऐसा जिनेन्द्र

---

१. कहंत स० २. भाजन स० ३. करंत स० ४. ताके घरसम वास न कोय स० न० ५. जेहि स० ६. क्रिया शुद्ध चालत है तेहिं स०

छन्द चाल—जे आठ मूल गुण पालैं, [1]इतने दोषनको टालैं ।
दीजे जिम मंदिर नींव, गहिरी चौडी अति सींव ॥२१८॥
ता पर जो काम चढावै, बहु दिन लों डिगण न पावै ।
तिम श्रावकव्रत गृह केरी, इनि विनिही नींव अनेरी ॥२१९॥
दरशन जुत ए पलि आवै, व्रत मंदिर अडिग रहावै ।
यातें जे भविजन प्राणी, निहचै एह मनमें आणी ॥२२०॥
दृग् गुण विनु सब व्रतधारी, प्रतिमा नहि कारिजकारी ।
प्रतिमा ग्यारा जो भेद, आगे कहिहों तजि खेद ॥२२१॥
अडिल्ल—किसनसिंह यह अरज करे भविजन ! [2]सुनो ।
पालो वसु गुण मूल [3]निजातम ही गुनो ॥
दरशनजुत व्रत त्रिविध शुद्ध मन लाइ हो ।
सुरग संपदा भुंजि मोक्षसुख पावही ॥२२२॥

रजस्वला स्त्रीकी क्रियाका वर्णन

चौपाई—अवर कथन इक कहनो जोग, सो सुन लीज्यौ जे भवि लोग ।
अबै क्रिया प्रगटी बहु हीण, यातें भाषूं लखहु प्रवीण ॥२२३॥

देवने कहा है इसमें संदेह नहीं है ॥२१४–२१७॥ जो आठ मूल गुणोंका पालन करते हैं उन्हें इतने दोषोंको दूर करना चाहिये । जिस प्रकार मन्दिर बनवाते समय लम्बी चौडी नींव भर कर उसके ऊपर काम चढाया जाता है तो वह बहुत दिन तक डगमग नहीं होता । उसी प्रकार श्रावकके व्रतरूपी घरकी ये मूल गुण ही नींव है ॥२१८–२१९॥ यदि ये मूल गुण सम्यग्दर्शनके साथ पाले जावें तो व्रतरूपी मन्दिर अडिग रहेगा । इसलिये जो भव्य प्राणी हैं वे यही बात मनमें रखते हैं । सम्यग्दर्शन गुणके बिना जो व्रत धारण करते हैं उनकी प्रतिमाएँ कार्यकारी नहीं है । प्रतिमाओंके जो ग्यारह भेद हैं उन्हें खेद तज कर आगे कहूँगा ॥२२०–२२१॥ ग्रन्थकार किशनसिंह कहते हैं कि, हे भव्यजनो ! सुनो, इन आठ मूल गुणोंका पालन करो तथा निजात्माका मनन करो । जो मनुष्य सम्यग्दर्शनसे युक्त हो मन वचन काय संबंधी शुद्धताको मनमें धारण करते हैं वे स्वर्गकी संपदा भोगकर मोक्षसुखको प्राप्त करते हैं ॥२२२॥

इस प्रकार रसोई घरका वर्णनकर अब रजस्वला स्त्रीकी क्रियाका वर्णन करते हैं :–

अब यहाँ एक अन्य क्रिया कहनेके योग्य है सो हे भव्यजनो ! उसे सुनो। इस समय रजस्वला स्त्रीकी बहुत ही हीन क्रियाएँ प्रकट हुई हैं इसलिये हे चतुर पुरुषो ! मै उन्हें कहता

---

१. ईनके स० न० २. सुणो ग० ३. निजातमकौ मुणो ग०

ग्रंथ त्रिवर्णाचारजु मांहि, वरणन कीयो है अधिकाहि ।
मतलब सो तामें इक जान, मैं संक्षेप कहूं सुखदान ॥२२४॥
रितुवंती वनिता जब थाय, चलण महा विपरीत चलाय ।
प्रथम दिवसतें ही गृहकाम, देय बुहारी सिगरे धाम ॥२२५॥
अवर हाथमांहीं ले छाज, फटके सोधै वीणै नाज ।
बालक कपडा पहिरा होय, वाहि खिलावैं सगरे लोय ॥२२६॥
आपसमें तिय हूजे सबै, न करे शंका भींटत जबै ।
मांजै सब हंडवाई सही, जीमणकी थाली हू गही ॥२२७॥
जिह थालीमें सिगरे खांहि, ताहीमें वा असन करांहि ।
जल पीवेको कलस्यो एक, सबही पीवें रहित विवेक ॥२२८॥
[1]क्रियाकोष ग्रंथनमें कही, रितुवंती जो भाजन लही ।
गृह चंडार तणा को जिसो, वोहू भाजन जाणो तिसो ॥२२९॥
और कहा कहिये अधिकाय, वह वासणमांही जो खाय ।
ताके दोषतणो नहि पार, क्रियाहीण बहु जाणि [2]निवार ॥२३०॥
निसिको पति सोवत है जहां, वाहू सयन करत है तहां ।
दुहुं आपसमें परसत देह, यामें मत जाणो संदेह ॥२३१॥

हूँ । त्रिवर्णाचार ग्रन्थमें इन क्रियाओंका विस्तारसे वर्णन हैं । मैं यहाँ उनका सार संक्षेपमें कहता हूँ ॥२२३–२२४॥ जब स्त्री ऋतुमती होती है तब वह अत्यन्त विपरीत प्रवृत्ति करती है । वह पहले ही दिन संपूर्ण घरमें झाड़ने–बुहारनेका काम करने लगती है, हाथमें सूप लेकर अनाजको फटकती एवं शोधती है, कपड़ा पहिने हुए बालकको खिलाती है, फिर उसी बालकको सब लोग खिलाने लगते हैं, आपसमें स्त्रियाँ एकत्रित हो मिलने तथा बात करनेमें कोई शंका नहीं करती, घरके बर्तनोंको माँजती है, थालीमें भोजन करती हैं, यही नहीं, जिस थालीमें घरके सब लोग भोजन करते हैं उसीमें भोजन करती हैं, पानी पीनेका कलश भी वही रखती हैं जिससे सब लोग पीते हैं ॥२२३–२२८॥ क्रियाकोष ग्रन्थोंमें कहा गया है कि ऋतुमती स्त्री जिस बर्तनमें भोजन करती है वह चाण्डालके बर्तनके समान है, उसमें अपार दोष लगता है । इन सब हीन क्रियाओंको जान कर उनका निवारण करना चाहिये ॥२२९–२३०॥ रात्रिमें पति जिस कक्षमें शयन करता है उसीमें ऋतुमती स्त्री भी शयन करती हैं । दोनोंका परस्पर शरीरस्पर्श भी निःसंदेह होता है । कोई दुर्बुद्धि मनुष्य विकल

---

१. क्रियाकाण्ड न० स० २. गमार स०

कोऊ विकल महा कुमतिया, दुय तीजे दिन सेवै तिया ।
महा पाप उपजावे जोर, [1]या सम अवर न क्रिया अघोर ॥२३२॥

महा ग्लानि उपजै तिहि वार, [2]चमारणिहुं तें अधिकार ।
जाको फल वे तुरत लहाय, जो कहुं उस दिन गरभ रहाय ॥२३३॥

भाग्यहीण सुत वेटी होय, पर तिय नर सेवै बुधि खोय ।
क्रोधी होय अर वचन न ठीक, जदवा तदवा कहै अलीक ॥२३४॥

रितुवंती तिय किरिया जिसी, भाषों भवि सुणि करिये तिसी ।
वनिता धर्म होत जब बाल, सकल काम तजिकैं तत्काल ॥२३५॥

ठाम एकांत बैठि है जाय, भूमि तृणा संथारि कराय ।
निसि दिन तिह पर थिरता धरै, निद्रा आये सयन जु करै ॥२३६॥

इह विधि निवसै वासर तीन, तबलों एती क्रिया प्रवीन ।
प्रथमहि असन गरिष्ठ न करे, पातल अथवा करमें धरे ॥२३७॥

माटी वासण जलका साज, फिरिवे हैं आवें नहि काज ।
इह भोजन जल पीवन रीति, अवर क्रिया सुनिये धर प्रीति ॥२३८॥

(बेचैन) हो दूसरे तीसरे दिन स्त्रीका सेवन करने लगता है इसमें महान पाप उत्पन्न होता है। इसके समान दूसरी नीच क्रिया नहीं है। ऋतुमती स्त्रीके साथ भोग करनेमें चंडालिनके भोगसे भी अधिक महान ग्लानि उत्पन्न होती है। उसका फल भी ऐसे लोगोंको शीघ्र ही मिलता है। यदि उस दिन गर्भ रह जाता है तो भाग्यहीन पुत्र–पुत्री जन्म लेते हैं। पुत्र परस्त्री–सेवी होता है और पुत्री परपुरुषका सेवन करनेवाली होती है। वे क्रोधी प्रकृतिके होते हैं और जैसा तैसा मिथ्या भाषण करते हैं ॥२३१–२३४॥

ऋतुमती स्त्रीकी जैसी क्रिया होती है वैसी मैं कहता हूँ। हे भव्यजीवो! उसे सुनो। जब स्त्री–धर्म शुरू होता है अर्थात् रजोधर्म प्रारम्भ होता है उसी समय सब काम छोड देना चाहिये, एकान्त स्थानमें बैठना चाहिये और भूमि पर घास पयाल आदिका आसन बना कर उसी पर रात–दिन स्थिर रहना चाहिये। नींद आवे तो उसी आसन पर शयन करना चाहिये। इस विधिसे तीन दिन रहना चाहिये। इन दिनोंमें इतनी क्रियाएँ करना चाहिये। प्रथम तो गरिष्ठ भोजन न करें, द्वितीय पातल अथवा हाथमें भोजन करें, पानीका बर्तन मिट्टीका रक्खें, पश्चात् उसे काममें नहीं लाना चाहिये। यह भोजन और पानी पीनेकी क्रिया कही। अब प्रीति धारण कर अन्य क्रियाएँ सुनो ॥२३५–२३८॥ ऋतुमती स्त्री दिनमें नहीं सोवे, हास्य तथा कौतूहल न करे, शरीर पर तेल, फुलेल न लगावे, आंखोंमें काजल

---

१. या सम क्रिया न और अघोर स० २. चंडालिनिहूं न० स०

छन्द चाल

दिनमें नहि सयन कराहीं, हासी न कौतूहल थाहीं ।
तनि तेल फुलेल न लावे, काजल [1]नयना न अंजावे ॥२३९॥
नखको नहि दूर करावे, गीतादिक कबहुं न गावे ।
तिलक न दे रोली केशर, [2]कर पग नख दे न महावर ॥२४०॥
इक दिवस तीन लों भोग, रितुवंती न करीवो जोग ।
पुरुषनको नजर न धारे, निज पतिहूंको न निहारे ॥२४१॥
वनिता ह्वै धरम जु निसिकों, दिन गिण लीजे नहि तिसको ।
सूरज नजरों जो आवे, वह दिन गिणतीमें लावे ॥२४२॥
दूजै दिन स्नान कराही, धोबी कपडा ले जाही ।
संकोच थकी नजरा आई, औरनकी नजर न आई ॥२४३॥
तीजे दिन जलतें न्हावें, [3]तनु वसन ऊजले लावे ।
चौथे दिन स्नान करंती, मनमें आनंद धरंती ॥२४४॥
तन वसन ऊजले धारे, प्रथमहि पति नयन निहारे ।
निसि धरे गरभ जो वाम, पति सूरतको अभिराम ॥२४५॥
निपजावै उत्तम बालक, बडभाग जगह प्रतिपालक ।
तातै यह निहचै जानी, चौथे दिन स्नान जु ठानी ॥२४६॥

नहीं लगावे, नाखून नहीं काटे, गीतादिक नहीं सुने, रोली तथा केशर आदिका तिलक नहीं लगावे, हाथ, पैर तथा नाखूनों पर महावर न लगावे ॥२३९–२४०॥ पहले दिनसे लेकर तीसरे दिन तक ऋतुमती स्त्रीका भोग करना योग्य नहीं है। ऋतुमती स्त्री पुरुषकी ओर दृष्टि न डाले, यहाँ तक कि अपके पतिकी ओर भी नहीं देखे ॥२४१॥ यदि ऋतुधर्म रातको शुरू होता है तो उस दिनको गिनतीमें नहीं लेना चाहिये। सूर्योदयसे दिनकी गिनती शुरू करना चाहिये ॥२४२॥ दूसरे दिन स्नान करा कर धोबी कपडे ले जावे। संकोचके कारण स्त्री दूसरोंकी दृष्टिसे ओझल–अन्तर्हित रहती है। तीसरे तीन जलसे स्नान करे और शरीर पर उज्ज्वल वस्त्र धारण करे। चौथे दिन स्नान करती हुई मनमें हर्षित हो तथा शरीर पर उज्ज्वल वस्त्र धारण करे। शुद्धि होने पर सर्वप्रथम पतिको देखना चाहिये। जो स्त्री चतुर्थ स्नानके बाद रात्रिमें गर्भ धारण करती है वह पतिके समान आकृतिवाले सुन्दर पुत्रको जन्म देती है ॥२४३–२४५॥ वह बालक बडा भाग्यशाली और जगतकी रक्षा करनेवाला

---

१. नहि नैन अंजावे स० २. दरपण देखे न महावर स० ३. तब स०

पतिवरत त्रिया जो धारे, निज पतिको नयन निहारे ।
नर अवर नजर जो आवे, तस सूरत सम सुत थावे ।।२४७।।

शीलहि कलंकको लावे, अपजस जग पडह बजावै ।
यातैं शुभ वनिता जे हैं, किरियाजुत चाले ते हैं ।।२४८।।

निज पति बिन अवर न देखे, [1]सासू ननदी मुख पेखे ।
ताके घरमांहीं जाणो, लछमीको वास बखाणो ।।२४९।।

अति सुजस होय जगमांही, ता सम वनिता कहुं नांही ।
इह कथन लखो बुध टीका, भाषों नहि कछू अलीका ।।२५०।।

दोहा

क्षत्री ब्राह्मण वैश्यकी, क्रिया विशेष बखान ।
ग्रंथ त्रिवर्णाचारमें, देख लेहु मतिमान ।।२५१।।*

इति रजस्वला स्त्री क्रिया वर्णनम्

होता है । ऐसा जानकर चतुर्थ स्नान करनेवाली पतिव्रता स्त्री अपने पतिका दर्शन करे । यदि अन्य पुरुषकी ओर देखती है तो उसी आकृतिवाले पुत्रको उत्पन्न करती है । ऐसी स्त्री शीलमें कलंक लगाती है और अपकीर्तिका ढोल बजाती है अर्थात् संसारमें उसका अपयश फैलता है । इसलिये जो उत्तम स्त्रियाँ है वे उपर्युक्त क्रियासे चलती है; अपने पतिके बिना अन्य पुरुषको नहीं देखती हैं, स्त्रियोंमें सासु और ननदका मुख देखती हैं । ग्रन्थकार कहते हैं कि जिस घरमें ऐसी स्त्री होती हैं उस घरमें लक्ष्मीका निवास होता है । उस स्त्रीका सुयश संसारमें फैलता है और उस स्त्रीके समान दूसरी स्त्री नहीं होती । हे विद्वज्जनो ! इस कथनको तुम यथार्थ जानो, मैं कुछ मिथ्या नहीं कह रहा हूँ ।।२४६–२५०।। त्रिवर्णाचार ग्रन्थमें क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्योंकी क्रियाओंका विशेष वर्णन है उसे ज्ञानवान मनुष्य वहाँसे देख लें ।।२५१।।

इस प्रकार रजस्वला स्त्रीकी क्रियाका वर्णन हुआ । आगे बारह व्रतोंका व्याख्यान करते है :

---

१. सासू नैनाहि मुख देखे क० ग०

* छन्द २५१ के आगे स० प्रतिमें निम्नलिखित अडिल्ल छन्द अधिक है —

रितुवंती तिय प्रथम दिवस चंडारणी.
ब्रह्मघातिका दिवस दूसरेमें घणी ।
तृतिय दिवसके मांहि निंद्य इम रजनकी,
वासर चौथे अस्नान किये सी सुधि–मनी ।।

द्वादश व्रत कथन

दोहा

कियो मूलगुण आठको, वर्णन बुधि अनुसार ।
अब द्वादश व्रतको कथन, सुनहु भविक व्रतधार ॥२५२॥
बारा व्रतमांही प्रथम, पांच अणूव्रत सार ।
तीन गुणव्रत चार फुनि, शिक्षाव्रत सुखकार ॥२५३॥

छन्द चाल

इह व्रत पालै फल ताको, भाषों प्रत्येक सुजाको ।
जे अव्रत दोष अपार, कहिहों तिनको निरधार ॥२५४॥
समकित जुत व्रत फलदाई, तिहकी उपमा न कराई ।
विनु दरशन जे व्रतधारी, तुष खण्डन सम फलकारी ॥२५५॥

अडिल्ल छन्द

जो नर व्रतको धरैं सहित समकित सही,
[1]सुर नर और फणिंद्र संपदाको लही ।
केवल विभव प्रकाश समवसृत लही तदा,
सिद्धिवधू [2]कुचकुंभ पाय क्रीडित सदा ॥२५६॥

दोहा

भाग्यहीन जस वित्त गुण, धनधान्यादिक नाहि ।
भीतमूर्ति नित ही दुखी, वरतरहित नर थांहि ॥२५७॥

हमने अपनी बुद्धिके अनुसार आठ मूलगुणोंका वर्णन किया । अब बारह व्रतोंका कथन करते हैं सो हे व्रतके धारक भव्यजीवो ! सुनो ॥२५२॥ बारह व्रतोंमें प्रथम पाँच अणुव्रत, फिर तीन गुणव्रत, पश्चात् चार शिक्षाव्रतोंको जानो ॥२५३॥ इन बारह व्रतोंका पालन करनेसे जो फल प्राप्त होता है उसका प्रत्येकका वर्णन करेंगे । अव्रत अर्थात् व्रतका पालन नहीं करनेसे जो अपार दोष होता है उसका भी निर्धार करेंगे ॥२५४॥ सम्यग्दर्शन सहित व्रत फलदायक होते हैं । उनकी कोई उपमा नहीं हैं । सम्यग्दर्शनके बिना व्रतका धारण करना तुषखण्डनके समान है अर्थात् जिस प्रकार धानके छिलके कूटनेसे चावलोंकी प्राप्ति नहीं होती उसी प्रकार सम्यग्दर्शन रहित व्रत धारण करनेसे इष्ट फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥२५५॥ जो मनुष्य सम्यग्दर्शन सहित व्रतको धारण करते हैं वे देव, मनुष्य और धरणेन्द्रकी संपदाको प्राप्त होकर तथा केवलज्ञानके वैभवसे प्रकाशमान समवसरणको प्राप्त हो मुक्तिरमाके साथ क्रीडा करते हैं ॥२५६॥ जो मनुष्य व्रतसे रहित हैं वे भाग्यहीन, कीर्तिहीन, गुणहीन तथा धान्यादिकसे रहित होते हैं । वे निरन्तर भयभीत और दुःखी रहते हैं ॥२५७॥ जो मनुष्य शुद्ध

---

१. सुर नर फनि चक्री सुसंपदाको लही स० २. वर नार स०

गीता छन्द

जो सुद्ध समकित धार अतिही नरभव सुखकर को लहैं,
संसारमें जे सार सारहि भोगि सो मुनिव्रत गहैं ।
सो मुक्ति वनिताके पयोधर हार [1]सम जे रति करें,
तहं जनम मरण न लहैं कबही सुख अनंता अनुसरैं ॥२५८॥

दोहा

[2]कुबुद्धि भवि संसारमें, भ्रमत चतुरगति थान ।
जिन आगम तत्वार्थको, विकल होय सरधान ॥२५९॥

अहिंसा अणुव्रत

चौपाई

त्रसकी घात कबहुं नहिं जाण, जो कदाचि छूटे निज प्राण ।
थावर दोष लगै तिह थकी, प्रथम अणुव्रत जिनवर बकी ॥२६०॥
थावर हिंसा इतनी [3]तजै, त्रसके घात दोषको [4]भजै ।
सो धरमी सो परम सुजान, जीवदया प्रतिपालक मान ॥२६१॥

छन्द नाराच

करोति जीवकी दया नरोत्तमो मही सही,
सुवैर वर्ग वर्जितो निरामयो तनू लही ।
त्रिलोक हर्म्य मध्य रत्नदीप सो बखानिए,
[5]वरै विमोक्ष लक्ष्मी प्रसिद्ध सिद्ध जानिए ॥२६२॥

सम्यक्त्वको धारण कर नरभवको सुखकारी करते हैं तथा संसारके सारभूत भोगोंको भोग कर मुनिव्रत स्वीकृत करते हैं वे मुक्तिरमाके साथ क्रीडा करते हुए जन्ममरणसे रहित होकर अनन्त सुखका अनुभव करते हैं ॥२५८॥ जो जिनदेव, जिनागम और जिन प्रणीत तत्वार्थके श्रद्धानसे रहित हैं वे दुर्बुद्धि प्राणी चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमण करते रहते हैं ॥२५९॥

अब अहिंसाणुव्रतके लक्षण कहते हैं :—

जिसमें कदाचित् अपने प्राण भले ही छूट जावें परन्तु त्रस जीवोंका घात नहीं होता तथा स्थावर घातका दोष लगता है उसे जिनेन्द्र भगवानने प्रथम अहिंसाणुव्रत कहा है । जो निष्प्रयोजन स्थावर हिंसाका त्याग करते हैं तथा त्रसघातके दोषोंसे दूर भागते हैं वे धर्मात्मा हैं, परम विवेकी हैं और जीवदयाके पालन करनेवाले हैं ॥२६०–२६१॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि जो उत्तम पुरुष पृथिवी पर जीवदया करता है वह शत्रुओंके समूहसे रहित होता हुआ नीरोगी शरीरको प्राप्त होता है । तीनलोकरूपी भवनके बीच वह रत्नमय दीपकके समान कहा जाता है और अन्तमें वह मोक्षरूपी प्रसिद्ध लक्ष्मीका वरण करता है ॥२६२॥ जिन

---

१. शृंगाररति करे स० २. उदधि घोर संसारमे न० स० ३. भजे स० ४. तजे स० ५. वरै सुमोक्ष लक्ष्मी प्रसिद्ध सिद्धि जानिए स०

दोहा—खाद्य अखाद्य न भेद कछु, हिंसा करत न ढील ।
महा पापको मूल नर, ज्यों चँडाल अरु भील ॥२६३॥

अडिल्ल—जीव [1]वद्ध कर पाप उपार्जित पाक तैं,
घोर भवोदधि मांहि परै निज आपतै ।
नरक तणा दुख सबै बहुत विधितैं सहैं,
फिर फिर दुर्गतिमांहि सदा फिरते रहैं ॥२६४॥

दोहा—करुणा अरु हिंसा तणो, प्रगट कह्यो फल भेद ।
वह उपजावे सुख महा, अदयातें ह्वै खेद ॥२६५॥
ऐसे लख भविजन सदा, धरो दया चित राग ।
सुपनेहू अदया करत, भाव तजहु बडभाग ॥२६६॥

सवैया—पूरव ही मुनिराय दया पाली षटकाय,
महासुखदाय शिवथानक लहायो हैं ।
प्रतिमा धरैयाके उपासकादि केते कहूं,
करुणा सहाय जाय देवलोक पायो है ।
अजहूं जीवनिकी रक्षाके करैया भवि,
सुर शिव लहैं जिनराज यों बतायो है ।
यातें हिंसा टार क्रिया पार चित्त धार जिन,
आगम प्रमाण कृष्णसिंह ऐसे गायो है ॥२६७॥

मनुष्योंको भक्ष्य और अभक्ष्यका कुछ भी भेद नहीं हैं तथा हिंसा करनेमें जिन्हें देर नहीं लगती वे चाण्डाल और भीलके समान महापापके कारण हैं ॥२६३॥ जो जीववध कर पापका उपार्जन करते हैं वे उसके फलस्वरूप अपने आप महाभयंकर संसाररूपी सागरमें पडते हैं । नरक गति सम्बन्धी छेदन, भेदन, ताडन आदि नाना प्रकारके दुःख सहन करते हैं और वहाँसे निकलकर बारबार खोटी गतियोंमें भ्रमण करते हैं ॥२६४॥ इस प्रकार हमने करुणा और हिंसाके फलका स्पष्ट अन्तर कहा है । करुणा महान सुख उपजाती है और अदया–हिंसासे बहुत खेद प्राप्त होता है ॥२६५॥ ऐसा जानकर हे भव्यजीवो ! मनमें सदा दया सम्बन्धी प्रीतिको धारण करो और स्वप्नमें भी यदि अदयाका भाव आता हो तो उसका त्याग करो ॥२६६॥ पहले भी मुनिराज षट्कायके जीवोंकी दयाका पालन कर महा सुखदायक मोक्षको प्राप्त हुए हैं । प्रतिमाओंको धारण करनेवाले कितने ही श्रावक करुणाभावकी सहायतासे स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं और आज भी जीवोंकी रक्षा करनेवाले भव्यजीव स्वर्ग और मोक्षके सुख प्राप्त

---

१ घात करि स०

अहिंसाणुव्रतके अतिचार

छन्द चाल—बांधे नर पशुयन केई, रज्जूबंधन दृढ देई ।
लकुटादिकतें अति मारें, पाहन मूठी अधिकारे ॥२६८॥
नासा करणादिक छेदें, परवेदनको नहिं वेदें ।
पशुयनको भाडो करि हैं, इतनो हम बोझ जु धरि हैं ॥२६९॥
पीछें लादें बहु भार, जाके अघको नहि पार ।
खर बैल ऊंट अरु गाडो, मरयाद जितो कर भाडो ॥२७०॥
हासिलको भय करजानी, बुधि भार न अधिक धरानी ।
घोटक रथ ह्वै असवारे, चालै निस सांज सवारे ॥२७१॥
तसु भूख त्रिषा नहिं छूजे, ताको पर दुख नहिं सूजे ।
काहू नरके सिर दाम, ताको रोकैं निज धाम ॥२७२॥
तिहिं खान पान नहिं देई, [1]क्रोधादिक अधिक करेई ।
ए अतीचार भनि पांच, अदयाको कारण सांच ॥२७३॥

करते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवने बतलाया है । इसलिये हिंसापूर्ण क्रियाओंको छोडकर करुणाभाव हृदयमें धारण करो, ऐसा क्रियाकोष ग्रन्थके रचयिता कृष्णसिंह (किशनसिंह) कवि कहते हैं ॥२६७॥

आगे अहिंसाणुव्रतके अतिचार कहते हैं—

कितने ही मनुष्य गाय, भैंस आदि पशुओंको बाँधकर रखते हैं और उन्हें मजबूत रस्सीका बंधन देते हैं, यह बन्ध नामका अतिचार है । कितने ही लकडी, पत्थर तथा मुक्के आदिसे मारते हैं, यह वध नामका अतिचार है ॥२६८॥ कितने ही लोग पशुओंके नाक, कान आदि अंगोंको छेदते हैं और उनकी वेदना—पीडाका अनुभव नहीं करते, यह छेद नामका अतिचार है । कितने ही लोग पशुओंका भाडा करते हैं, भाडा करते समय कहते हैं कि हम इतना बोझा रक्खेंगे; परन्तु अधिक बोझ—अधिक भार लाद देते हैं, यह अतिभारारोपण नामका अतिचार है । इसके पापका पार नही है इसलिये गधा, बैल, ऊँट और बैलगाडी आदिका भाडा करते समय जो मर्यादा निश्चित की है उससे अधिक भार नहीं लादना चाहिये । कितने ही लोग घोडागाडी आदिकी सवारी रखते हैं उसमें वे घोडेको रातमें तथा प्रातःकालसे शाम तक जब चाहे तब चलाते हैं परन्तु उसके भूख प्यास आदिका ध्यान नहीं रखते, उसके दुःखका अनुभव नहीं करते । किसी मनुष्यसे रुपये लेना है उसे कितने ही लोग अपने घर रोक रखते हैं परन्तु उसे भोजन—पानी नहीं देते, प्रत्युत क्रोधादिक कषाय प्रकट करते हैं। यह अन्नपाननिरोध नामका अतिचार है । ये पाँचों अतिचार अदयाके कारण है ॥२६९—२७३॥ जो करुणाव्रत—दयाव्रतके पालक हैं वे मनमें स्नेह धारणकर इन अतिचारोंको टालते हैं । अतिचारके

१ त्रासादिक स०

करुणा व्रतपालक जेह, टालें मनमें धर नेह ।
विन अतीचार फल सारा, सुखदायक हो अधिकारा ।।२७४।।
जे धन्य पुरुष जगमांहीं, ते करुणा भाव धराहीं ।
करुणा सब विधि सुखदायक, पदवी पावै सुरनायक ।।२७५।।
अथवा चक्री धरणेश, [1]विद्याधर श्रेणि नरेश ।
इन [2]पदवी कहा बडाई, [3]संसार तरण सुखदाई ।।२७६।।
यातें तीर्थंकर होई, संदेह न आणो कोई ।
तातें सुनिये भवि जीव, करुणा चित धार सदीव ।।२७७।।

सत्याणुव्रतका कथन

चौपाई—झूठ थूल कबहुं न मुख कहै, संकट पडै मौनको गहै ।
त्याग असत्य सर्वथा नाहीं, यातें लघु खिर है मुखमाही ।।२७८।।
जीव दया पाली है जदा, झूठ वचन बोलै है तदा ।
वैह असत्य सांच ही जाण, जहां जीवकै बचिहैं प्राण ।।२७९।।

बिना ही श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति होती है और व्रत अधिक सुखदायक होते हैं ।।२७४।। संसारमें जो धन्य पुरुष हैं वे करुणाभावके धारक होते हैं । करुणा सब प्रकारके सुखोंको देनेवाली है । इस व्रतके धारक मनुष्य इन्द्रपद प्राप्त करते हैं अथवा चक्रवर्ती, धरणेन्द्र और विद्याधर श्रेणियोंके राजपदको प्राप्त होते हैं । अथवा इन पदोंकी क्या महिमा है ? करुणा व्रत तो संसारसे पार करनेका सरल उपाय है । इस व्रतके प्रभावसे मनुष्य तीर्थंकर होता है इसमें संदेह नहीं है । इसलिये हे भव्यजीवो ! सुनो और हृदयमें सदा करुणाव्रत धारण करो ।।२७५–२७७।। आगे सत्याणुव्रतका कथन करते हैं –

जो स्थूल झूठ मुखसे कभी नहीं कहता । यदि कभी संकट आ पड़ता है तो मौन ले लेता है । असत्यका सर्वथा त्यागी नहीं है इसलिये कभी मुखसे सूक्ष्म झूठ नीकल पडता है । यदि झूठ बोलनेसे जीवदया पलती दिखती है तो झूठ वचन भी बोलता है । ऐसा वचन झूठ होने पर भी सत्य ही जानना चाहिये क्योंकि उससे जीवके प्राणोंकी रक्षा होती है । भावार्थ :– लोकमें एक कथा प्रसिद्ध है––एक शिकारी हाथमें चिड़ियाको पकडकर उसकी गर्दन पर अंगूठा रख कर मुनिराजसे पूछता है––बताओ, यह चिड़िया जीवित है या मरी ? मुनिराजने उसे जीवित जानते हुए भी कह दिया कि मरी है । मुनिराजका उत्तर सुन शिकारीने मुठ्ठी खोल चिड़ियाको उड़ाते हुए कहा कि यह तो जीवित थी, आपने उसे झूठ ही मरी कह दिया । मुनिराजने कहा कि यदि मैं इसे जीवित कहता तो तुम उसकी गर्दन पर रखे अंगूठेको दबा कर तत्काल मार डालते और कहते–जीवित कहाँ है ? यह तो मरी है । यहाँ मुनिराजने जीवदयाको लक्ष्य कर जीवित चिड़ियाको मरी हुई कहा, यह झूठ नही है, सत्य है ।।२७८–२७९।।

---

१ कै नृप दुहु श्रेणि खगेश न० २ पदकी स० न० ३ संसार तणा क० न०

छन्द नाराच

सदीव सत्य भावतैं अलंघ्यवेंन तासको,
तजै विवाद सिद्धि चार नाद होय जासको ।
समृद्धि रिद्धि वृद्धि तीन लोककी लहायकों,
त्रिया जो मोक्षगेह माहीं [1]तिष्ठहै सुजायकों ॥२८०॥

दोहा

वचन न जाको ठीक कछु, अति लवार मति क्रूर ।
तातैं फल अति कटुक सुन, महा पापको मूर ॥२८१॥

अडिल्ल छन्द

नष्ट जीभ वच परतें निंदित मानिए,
गर्दभ ऊंट बिलाव काक सुर जानिए ।
जड विवेकतें रहित मूकताको धरैं,
झूठ वचनतें मनुज इते दुख अनुसरैं ॥२८२॥

दोहा

सांच झूठ फल है जिसो, तिसो कह्यो भगवान ।
सत्य गहो झूठहि तजो, यहै सीख मन आन ॥२८३॥

सदा सत्य वचन बोलनेसे बोलनेवालेको ऐसे वचन प्राप्त होते हैं जिन्हें कोई अमान्य नहीं करता। सत्य बोलनेवालेको विवाद रहित सिद्धि प्राप्त होती है तथा सब ओर उसका यशोगान होता है। तीनों लोकोंकी समृद्धि, ऋद्धि और वृद्धि उसे प्राप्त होती है तथा मुक्तिरूपी रमा मानों उसके घरमें ही आकर रहने लगती है ॥२८०॥ जिसके वचन प्रमाणित नहीं है वह अत्यन्त झूठा और क्रूरबुद्धि कहलाता है। असत्य बोलने वालेको महापापका मूलभूत अत्यन्त कटुक फल प्राप्त होता है ॥२८१॥ असत्य बोलनेसे यह मनुष्य नष्टजिह्व–स्पष्ट बोलनेकी शक्तिसे रहित होता है, गधा, ऊँट, बिलाव और कौएके स्वरके समान इसका स्वर होता है। विवेकरहित अज्ञानी जीव असत्य वचन बोलनेके फलस्वरूप मूकताको प्राप्त होते हैं अर्थात् गूंगे होते हैं। असत्य वचन बोलनेसे मनुष्य इन दुःखोंको प्राप्त होता है ॥२८२॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि जिनेन्द्र भगवानने सत्य और झूठका जैसा फल कहा है वैसा हमने कहा है इसलिये हे भव्यजीवों ! सत्य वचन बोलो और झूठ वचनका त्याग करो, मनमें इस शिक्षाको धारण करो ॥२८३॥

आगे सत्य वचनके अतिचार कहते है :–

स्वयं तो झूठ वचन नहीं बोलता है परन्तु दूसरोंको झूठ बोलनेका उपदेश देता है यह मिथ्योपदेश नामका अतिचार है। स्त्री–पुरुषोंकी गुप्त बातको जो प्रकट करता है वह रहोभ्याख्यान

---

१ वैवहे न०

सत्यवचनके अतिचार

छन्द चाल—निज झूठ वचन नहिं भाखे, अवरनि उपदेश जु आखे।
[1]परगुप्त वात जो थाही, ताको तें प्रगट कराही ॥२८४॥*
पत्री झूठी नित मांडे, केलवणी हिय नहिं छांडे।
लेखी फुनि मांडे झूठो, खत हू लिख है जो अपूठो ॥२८५॥
तासों शुभ कर्मजु रूठो, अघ अधिक महा करि तूठो।
[2]को धरिहै धरोकडि आई, जासों जा मुकरि सु जाई ॥२८६॥
साक्षी दस पांच बुलावै, तस झूठो करि ठहरावै।
इस पापतणों नहि पारा, कहिए कहुंलो निरधारा ॥२८७॥
दुहुं पुरुष जुदे बतलावै, तिन मिलती हिए अणावै।
दुहुं मुख आकार लखाई, परसों सो प्रगट कराई ॥२८८॥
दूखें उनके परिणाम, अघदायक हैं इह काम।
लख अतीचार दुइ तीन, व्रत सत्य तणा परवीन ॥२८९॥

नामका अतिचार है ॥२८४॥ जो झूठी चिट्ठी लिखता है, अपनी लेनीको कभी नहीं छोडता, उसे वसूल करनेके लिये झूठे लेख लिखता है तथा बनावटी दस्तावेज आदि लिखता है, यह कूट लेख क्रिया नामका अतिचार है। कवि कहते हैं कि ऐसा करनेवालेसे शुभ कर्म—पुण्य कर्म रुष्ट हो जाते हैं और पापकर्म अधिक संतुष्ट होते है। तात्पर्य यह है कि वह पापबन्ध करता है कोई धरोहर रख गया हो उसे देनेसे मुकर जाना तथा दश पाँच लोगोंको बुला कर उनके सामने उसे झूठा सिद्ध कर देना; अथवा धरोहर रखनेवाला धरोहरकी संख्या भूल कर थोड़ा माँगने लगे तो उससे कहना कि जो तुम्हारा हो सो ले जाओ—इस तरह पूरी धरोहर अथवा उसके अंशको हड़प करनेके वचन कहना न्यासापहार नामका अतिचार है। ग्रन्थकार कहते हैं कि इस पापका कोई पार नहीं है उसका निर्धार कहाँ तक कहूँ? ॥२८५–२८७॥ दो पुरुष परस्पर किसी बातको कह रहे हैं उनकी मुखाकृति आदिसे उनके हृदयकी बातको जान कर दूसरोंके सामने उसे प्रकट कर देना यह साकार मंत्रभेद नामका अतिचार है। इस कार्यसे बात करने वाले लोगोंका परिणाम—भाव दुःखी होता है इसलिये यह कार्य पापको देने वाला

---

१ परद्रव्य गुपत जो थाही स० २ को धरी है धरोहर लाई, पीछें संख्या विसराई ख०

* छन्द २८४ के आगे स प््रतिमें निम्नलिखित पाठ अधिक है—

पत्री पर तनी छिपावे, जो कूट लेख सो थावे।
लेखो कूटलेख लखावे, परकाज काज दरसावे॥
कोउ धरै मालनी ल्याई, पीछे संख्या विसराई।
तसु हीन दीन परिनामा, न्यासापहार इम नामा॥
काहू रुचि लखि मन पावे, तसु मतलब हिय न आवे।
मुखको आकार लखाई, परसों जो प्रकट कराई॥

इनकों त्यागै जो जीव, शुभ गति सुख लहै अतीव ।
ए अतीचार पण भाखे, व्रत सत्य जेम जिन आखे ॥२९०॥
शिवभूति भयो द्विज एक, पापी धर मन अविवेक ।
नग पांच सेठ सुत धरिके, पाछैं सों गयो मुकरके ॥२९१॥
सत्यघोष प्रगट तसु नाम, नृपतिय झूठा लखि ताम ।
जुवा रमि करे चतुराई, तसु तियतें रत्न मंगाई ॥२९२॥
तिह सेठ परीक्षा कारी, [1]जिह लिये निज नग टारी ।
[2]द्विज मरिकै पन्नग थायो, तत्क्षण असत्यफल पायो ॥२९३॥

अदत्तत्याग अणुव्रत कथन

चौपाई—धरो परायो अरु वीसरो, लेखामें भूलो जो करो ।
मही परो नहिं लेहै सोय, जो अदत्त त्यागी नर होय ॥२९४॥
चोरी प्रगट अदत्ता सर्व, अणुव्रतधारी तजिहै भव्य ।
लगै व्योपारादिकमें दोष, एक देश पलिहै शुभ कोष ॥२९५॥

कहा गया है। सत्यव्रतकी रक्षा करनेमें प्रवीण जो पुरुष इन पाँचों अतिचारोंको जान कर इनका त्याग करते हैं वे शुभगति––देव और मनुष्य गतिके सुखको प्राप्त होते हैं। ये पाँच अतिचार इसलिये कहे हैं कि जिससे सत्यव्रत अखण्ड रूपसे पाला जा सके ॥२८८–२९॥

आगे न्यासापहारके संदर्भकी कथा कहते हैं :–

एक शिवभूति नामका ब्राह्मण था जो पापी और मनमें अविवेकको धारण करने वाला था। उसके पास एक सेठका पुत्र पाँच रत्न रख गया। पीछे वह शिवभूति देनेसे मुकर गया अर्थात् कहने लगा कि हमारे पास रत्न नहीं रख गये हो। शिवभूति ब्राह्मणका नाम सत्यघोष प्रसिद्ध था। सब लोग उसे सत्यवादी समझते थे परन्तु रानीने सत्यघोषका झूठ पकड़ लिया। उसने सत्यघोषके साथ जुआ खेलना शुरू किया और उसके जनेऊ तथा चाकू आदि जीत कर चतुराईसे उसकी स्त्रीके पास भेजे तथा उस प्रमाणसे सेठके रत्न मँगा लिये। सेठकी भी उसने परीक्षा कीं। उन रत्नोंको उसने दूसरे रत्नोंमें मिला कर सेठसे कहा कि इनमें जो रत्न तुम्हारे हों उन्हें ले लो। सेठने छाँट कर अपने रत्न उठा लिये। इस असत्यके अपराधसे सत्यघोषको दण्डित किया गया जिससे मर कर वह साँप हुआ ॥२९१–२९३॥

आगे अदत्तत्याग––अचौर्याणुव्रतका वर्णन करते हैं––

जो दूसरोंके रखे हुए, भूले हुए, हिसाबमें भूले हुए तथा पृथिवी पर पड़े हुए धनको नहीं लेता है वह अदत्तत्याग व्रतका धारक होता है ॥२९४॥ लोकमें जो प्रकट रूपसे चोरी मानी जाती है, अणुव्रतका धारी भव्यजीव उन सबका त्याग करता है। यतश्च उसके व्यापारादिकमें कदाचित् दोष लगता है अतः उसके एक देश ही पालन होता है। भाव यह है

---

१ उन लीनो स० २ द्विज लहि संकट अहि थायो स०

छन्द नाराच

तजेहि द्रव्य पारको [1]सुसंनिधिं निरन्तरं,
भवन्ति भूमिनाथ भोगभूमि पाय है वरं ।
लहेवि सर्वबोध सिद्धकान्तया सुनैन को,
अतीव मूर्ति तासकी सहाय चैन दैन को ॥२९६॥

दोहा

जाकी कीरति जगतमें, फैले अति विस्तार ।
उज्ज्वल शशिकिरणां जिसी, जो अदत्तव्रत धार ॥२९७॥
सदा हरै परद्रव्यको, महापाप मति जोर ।
पड्यो रह्यो [2]भूमें धर्यो, गहै सु निहचै चोर ॥२९८॥

अडिल्ल छन्द

सदा दरिद्री शोक रोग भय जुत रहै,
पापमूर्ति अति क्षुधा तृषा वेदन सहै ।
पुत्र कलत्र रु मित्र नहीं कोउ जासके,
चोरी अर्जित पाप उदै भो तासके ॥२९९॥

दोहा

त्यजन अदत्त सुवरतको, अरु चोरी फल ताहि ।
सुनहि गहो व्रतको सुधी, चोरी भाव लजाहि ॥३००॥

कि अचौर्याणुव्रती मनुष्य स्थूल चोरीका ही त्याग करता है, सूक्ष्म चोरीका नहीं । लोकमें जिसे सब लोग चोरी मानते हैं वह स्थूल चोरी कहलाती है और जो लोकमें चोरी नामसे प्रसिद्ध नहीं है वह सूक्ष्म चोरी कहलाती है ॥२९५॥ जो अदत्त पर द्रव्य ग्रहणका त्याग करता है वह निरन्तर उत्तम निधियोंको प्राप्त होता है, पृथिवीपति होता है, उत्तम भोगभूमिको प्राप्त करता है, केवलज्ञानको प्राप्त कर मुक्तिकान्ताको प्राप्त होता है और संसार दशामें उसका शरीर सुन्दर तथा सुखदायक होता है ॥२९६॥ जो अदत्त त्याग व्रतको धारण करता है उसकी चन्द्रकिरणके समान उज्ज्वल कीर्ति जगतमें अत्यन्त विस्तारको प्राप्त होती है । जो किसीके पडे, रखे अथवा पृथ्वीमें गडे धनको हरण करता है वह निश्चित ही चोर है ॥२९७–२९८॥ जो सदा दरिद्री रहता है, रोग शोक और भयसे सहित होता है, पापकी मूर्ति जैसा जान पड़ता है, क्षुधा तृषाकी पीड़ा सहन करता है और पुत्र, स्त्री तथा मित्र आदिसे रहित होता है उसके चोरीसे अर्जित पापका उदय जानना चाहिये ॥२९९॥ ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि हे ज्ञानीजनों ! अदत्तत्याग व्रत और चोरीके फलको जानकर व्रतको ग्रहण करो और चोरीका त्याग करो । यह चोरीका भाव लज्जाको उत्पन्न करने वाला है ॥३००॥

---

१ निधीश ह्वै निरन्तरं स० २ भूले धर्यो ख० स०

अदत्तादान व्रतके अतिचार

छन्द चाल

चोरी [1]करनेकी बात, सिखवावे औरनि घात ।
जावो परधनके काज, लावो इस विधि बलि साज ॥३०१॥
कोऊ चोरी कर ल्यावे, बहुमोली वस्तु दिखावे ।
ताको तुच्छमोल जु देहै [1]बहु धनकी वस्तु सु लेहै ॥३०२॥
कपडो मीठो अरु धान, लावे बेचैं ले आन ।
तिनको हासिल नहिं देई, नृप आज्ञा [2]एम हनेई ॥३०३॥
जो कहुं नरपति सुन पावै, तिहि बांध वेग मंगवावे ।
घर लूट लेइ सब ताको, फल इह आज्ञा हणिवाको ॥३०४॥
गज हाथ पंछेरी बांट, जाणो इह मान निराट ।
चौपाई पाई दे वाणी, सोई मानी परमाणी ॥३०५॥
इनको लखिये उनमान, तुलिहै मपिहै बहु वान ।
ओछो दे अधिको लेई, अपनो शुभ ताको देई ॥३०६॥
उपजावै बहुतैं पाप, दुरगतिमें लहै संताप ।
केसर कसतूरि कपूर, नानाविध अवर जकूर ॥३०७॥

आगे अदत्तादान व्रतके अतिचार कहते है :– जो लोगोंको चोरी करना सिखलाता है, जाओ पराया धन हरकर लाओ, इस विधिसे लाओ आदि शिक्षा देकर दूसरोंको चोरीके लिये प्रेरित करता है वह स्तेनप्रयोग नामका अतिचार लगाता है ॥३०१॥ कोई अन्य मनुष्य चोरी कर आता है तथा बहुमूल्यकी वस्तु दिखाता है, उसे तुच्छ मूल्य देकर बहुमूल्य वस्तुको ले लेता है यह तदाहृतादान नामका अतिचार है ॥३०२॥ कोई कपडा, नमक तथा अनाज आदि लाकर बेचते हैं परन्तु उसका कर (टेक्स) नहीं देते; इस तरह राजाकी आज्ञाका घात करते हैं, यह राजाज्ञा–विलोप नामका अतिचार है ॥३०३॥ यदि कहीं राजा इस बातको सुनता है तो वह अपराधीको पकड़कर बुलवाता है और उसका सब घर लूट लेता है । यह राजाज्ञा भंग करनेका फल है ॥३०४॥ गज, हाथ, पंसेरी आदि बांट इन्हें मान कहते हैं। और चौपाई, पाई, दो पाई, मानी तथा परमानीको उन्मान कहते हैं । इनसे वस्तुओंको तोलकर या नापकर बेचा जाता है सो देते समय हीन मानोन्मानसे देना और लेते समय अधिक मानोन्मानसे लेना यह हीनाधिक मानोन्मान नामका अतिचार है । इस अतिचारको लगाने वाला मनुष्य अपना पुण्य दूसरेको देता है और स्वयं पापका उपार्जन कर दुर्गतियोंमें संतापको भोगता है । केशर, कस्तूरी,

---

१ वा नरकी स० २ भंग करेई स०

घृत हींग लूण बहु नाज, तंदुल गुल खांड समाज ।
इन मांही भेल कराहीं, हियरे अति लोभ धराहीं ॥३०८॥
कपडो बहुमोलो ल्यावै, कोऊ कह आण गहावै ।
ताके बदलें धरि वैसो, अगिलो रंग होवै जैसो ॥३०९॥
व्रत दान अदत्ता कीजै, पण अतीचार ए लीजै ।
ताते सुणिये भवि प्राणी, दुरगति दुःखदायक जाणी ॥३१०॥
तजिये इनकौं अब वेग, भवि जीवनिको इह नेग ।
त्यागै सुधरै इह लोक, पर भव सुख पावे थोक ॥३११॥

ब्रह्मचर्य अणुव्रत कथन

चौपाई—नारि पराई को सर्वथा, त्याग करै मन वच क्रम यथा ।
निजवयतैं लघु देखे ताहि, पुत्री सम सो गिनिये जाहि ॥३१२॥
आप बराबर [1]जो वय धरै, निज भगिनी सम लख परिहरै ।
आप थकी वय अधिकी होय, ताहि मात सम जाणहि जोय ॥३१३॥
इम परतियको गनिहै भव्य, सो सुख सुरनरके लहि सर्व ।
निज वनितामांहि संतोष, करिये इस विध सुणी शुभ कोष ॥३१४॥

कपूर, नाना प्रकारके सुगंधित पदार्थ, घी, हींग, मक्खन, अनेक प्रकारके अनाज, चावल, गुड़ तथा शक्कर आदिमें कोई भेल कराता है तथा हृदयमें अत्यधिक लोभका भाव रखता है यह प्रतिरूपक व्यवहार नामका अतिचार है ॥३०५–३०८॥ कोई बहुमूल्य वाले कपडे लाता है तथा किसीसे कह कर बुलवाता है तो बदल कर उसी रंगके अल्पमूल्य वाले वस्त्र रख देता है यह भी प्रतिरूपक व्यवहार नामका अतिचार है ॥३०९॥ अदत्तादान व्रत ग्रहण करे और उपर्युक्त पाँच अतिचार लगावे तो उसे दुर्गतिके दुःख भोगने पडते हैं। इसलिये हे भव्यजीवों ! इन्हें श्रवण कर शीघ्र ही इनका त्याग करो जिससे यह लोक सुधरे और परलोकमें सुख प्राप्त हो ॥३१०–३११॥

आगे ब्रह्मचर्याणुव्रतका कथन करते है :—

परस्त्रीका मन वच कायसे सर्वथा त्याग करना चाहिये । अपनी अवस्थासे जो स्त्री छोटी दीखे उसे पुत्रीके समान गिनना चाहिये ॥३१२॥ जो अपनी समान अवस्थाको धारण करने वाली है उसे बहिनके समान जान कर छोड़ना चाहिये और जो अपनेसे अधिक अवस्थाकी हो उसे माताके समान जानना चाहिये ॥३१३॥ इस प्रकार जो परस्त्रीको पुत्री, बहिन और माताके समान मानता है वह भव्य जीव देव और मनुष्यके सब सुखोंको प्राप्त होता है । यह सुन कर निज स्त्रीमें ही संतोष करना चाहिये । यह स्वदार संतोषव्रत शुभकोष अर्थात्

---

१ जोबन. ग०

आप व्रती तियको व्रत जबै, दोऊ दिन सील गहै बुध तबै ।
आठे चौदस परवी पांच, शीलव्रत पालै मन सांच ॥३१५॥

भादों मास अठाई पर्व, महा पूज्य दिन लखिये सर्व ।
ब्रह्मचर्य पाले इनमांहि, सुरसुख लहियत संसय नाहि ॥३१६॥

शीलकी नौ बाडे

चौपाई

फुनि व्रतधर इतनी विधि धरे, ताहि शीलव्रत त्रिविध सु परे ।
[1]जेहि वनिताको जूथ [2]महन्त, तहां वास नहि करिये सन्त ॥३१७॥

रुचि धर प्रेम न निरखै त्रिया, ताको सफल जनम अरु जिया ।
पडदाके अंदर तिय ताहि, मधुर वचन भाषै नहि जाहि ॥३१८॥

पूरव भोग केलि की जती, तिनहिं न याद करे शुभमती ।
लेइ नहीं आहार गरिष्ठ, तुरत शीलको करै जु भिष्ट ॥३१९॥

कर शुचि तन शृंगार बनाय, किये शीलको दोष लगाय ।
जिह पलंगमें सोवे नार, सो सज्या तज बुध व्रतधार ॥३२०॥

मनमथ कथा होय जिहि थान, तहँ क्षण रहै नहीं मतिवान ।
निज मुखतें कबहूं नहिं कहै, ब्रह्मचर्य व्रतको जो गहै ॥३२१॥

कल्याणोंका खजाना है ॥३१४॥ जिस दिन आपके व्रत है और जिस दिन स्त्रीके व्रत है उन दोनों दिनोंमें ज्ञानी जन शील व्रत धारण करते हैं। अष्टमी, चतुर्दशी तथा पंचमीको सत्य मनसे शील व्रतका पालन करना चाहिये ॥३१५॥ भादोंका महिना तथा अष्टाह्निका पर्व ये सब अत्यन्त पूज्य दिन हैं। इनमें जो ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं वे देवगतिका सुख प्राप्त करते हैं इसमें संशय नहीं है ॥३१६॥ आगे शीलकी नौ बाडें कहते हैं :—

शील व्रतका धारी मनुष्य इतनी विधि करे तो उसका शील व्रत मन वचन कायसे परिपालित होता है। जहाँ स्त्रियोंका समूह रहता हो वहाँ निवास नहीं करना चाहिये। जो रुचिसे प्रेमपूर्वक स्त्रियोंको नहीं देखता है उसीका जन्म और जीवन सफल होता है। जो स्त्री परदेके भीतर स्थित है उससे मधुर–रसीले वचन नहीं बोलना चाहिये। पहले जो भोगक्रीडा की है उसका स्मरण नहीं करना चाहिये। गरिष्ठ आहार नहीं लेना चाहिये क्योंकि वह शीलको शीघ्र ही भ्रष्ट कर देता है। शरीरको उज्ज्वल कर शृंगार बनानेसे शीलको दोष लगता है। जिस पलंग पर स्त्री शयन करती है, उस शय्याका व्रती मनुष्यको त्याग करना चाहिये। जिस स्थान पर कामवर्धक कथाएँ हो रही हों वहाँ बुद्धिमान मनुष्यको एक क्षण भी नही

---

१ जह वनितनको जूथ महन्त स० २ बसन्त ख०

उदर भरो भोजन नहिं करे, ताते इन्द्री बहु बल धरे ।
ए नव वाडि पालिये जबै, शील शुद्ध व्रत पलिहै तबै ॥३२२॥

शील चरित्र कथन

सवैया—**ब्राह्मी सुंदरी ने आदि दे के सोला सती भई,**
शील परभाव लिंग छेदी सुर ते भई ।
तिनि मांही केऊ नृप सोई शिवथान लह्यो,
केऊ मोक्ष जैहें भूप होय तहांतें चई ।
अनन्तमती तुंकारी ने आदि केती कहूं,
महा कष्ट पाई सील दिढता मई ठई ।
सीलतें अनन्त सुख लहे कछु संसो नाहि,
सील भंग भये भ्रमें नरक [1]महा पई ॥३२३॥

दोहा—**सेठ सुदर्शन आदि दे, शील तणे परभाव ।**
लहै अनन्ते मोक्ष [2]सुख, कहां लो करो बढ़ाव ॥३२४॥

रहना चाहिये। जिसने ब्रह्मचर्य व्रत लिया है उसे अपने मुखसे भी कभी कामकथा नहीं करनी चाहिये। व्रती मनुष्यको पेटभर भोजन भी नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे इन्द्रियोंका बल पुष्ट होता है। ग्रन्थकार कहते हैं कि जब इन नौ बाडोंका पालन किया जाता है तभी शुद्ध शील व्रतका पालन होता है।

भावार्थ :— शील व्रतकी रक्षाके लिये निम्नलिखित नौ बातोंका त्याग करना चाहिये— १. स्त्री संसक्त निवासका त्याग २. रुचि और प्रेमपूर्वक स्त्री निरीक्षणका त्याग ३. स्त्रियोंसे रागवर्धक मधुर वार्तालापका त्याग ४. पूर्वभोग स्मरणका त्याग ५. कामोत्तेजक गरिष्ठ आहारका त्याग ६. शरीरकी सजावटका त्याग ७. स्त्रीकी शय्या पर बैठनेका त्याग ८. कामकथा श्रवण त्याग और ९ पेटभर भोजनका त्याग ॥३१७–३२२॥ आगे शीलकी महिमा कहते हैं :—

ब्राह्मी और सुन्दरीको आदि लेकर सोलह सती हुई है जो शीलके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेद कर देव हुई है। उनमें कितने ही देव, राजा होकर मोक्षको प्राप्त कर चुके, कोई स्वर्गसे च्युत हो राजा होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। अनन्तमती तथा तुंकारी आदि कितनी ही सतियोंने महान कष्ट पाकर भी शील व्रतमें दृढता रखी। परमार्थ यह है कि शीलसे अनन्त सुख प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है और शील भंग होनेसे यह जीव नरकमें पड़ कर परिभ्रमण करता है ॥३२३॥ ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि अधिक विस्तार कहाँ तक करूँ? इतना ही कहना पर्याप्त है कि सुदर्शन सेठको आदि लेकर अनन्त नर शीलके प्रभावसे मोक्षसुखको प्राप्त कर चुके हैं ॥३२४॥ हे सत्पुरुषों! सुनो, ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेसे मनुष्य कामदेवके समान

---

१ मही पई न० मांही सही स० २ फल स०

नाराच छन्द—सुनो वि सन्त ब्रह्मचर्य पालवा थकी इसो,
अतीव रूपवान थाय कामदेवको जिसो ।
मनोज्ञ योषिता लहाय पुत्र पौत्र सोभितो,
अनेक भूषणादि द्रव्य औरकैं नहीं इतो ॥३२५॥
गहै सुदिक्षया लहै विज्ञानको प्रकासही,
अनन्त सुक्ख बोध दर्शनादि वीर्य भासही ।
सुमोक्ष सिद्ध थाय काल वीतहै अपार सो,
सुसिद्धि योषिता मुखावलोकनेन गार सो ॥३२६॥

दोहा—लंपट विषयी पुरुषके, निज पर ठीक न होइ ।
दुरगति दुखफल सो लहै, भ्रमिहै भवदधि सोइ ॥३२७॥

अडिल्ल छन्द—ह्वै कुरूप दुर्गंध निंदि निरधन महा,
वेद नपुंसक दुर्भग व्याधि कुष्टहिं गहा ।
अंग विकल अति होय ग्रथल जिमि भासही,
परतिय संग विपाक लहीं ह्वै इम सही ॥३२८॥

दोहा—व्रत परवनिता त्यजनको, कथन कह्यो सुखकार ।
अरु लंपट विषयी तणो, भाष्यो सहु निरधार ॥३२९॥
सील थकी सुर नर विमल, सुख लहि सिवपुर जांहि ।
दुरगति दुख भवभ्रमणकौं, विषयी लंपट पांहि ॥३३०॥

अत्यन्त रूपवान होता है, सुन्दर स्त्रियोंको प्राप्त होता है, पुत्र, पौत्र आदिसे सुशोभित रहता है, अन्य मनुष्योंको दुर्लभ आभूषणादि संपत्तिको प्राप्त होता है, पश्चात् दीक्षा लेकर विज्ञान अर्थात् केवलज्ञानको प्राप्तकर अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन तथा अनन्त वीर्यसे सुशोभित होता है, तदनन्तर मोक्ष प्राप्तकर सिद्धालयमें मुक्तिकान्ताका मुखावलोकन करता हुआ अनन्त काल व्यतीत करता है ॥३२५–३२६॥ इसके विपरीत विषयलंपटी मनुष्यको स्वपरका कुछ विवेक नहीं होता । वह दुर्गतियोंमें दुःखरूपी फल भोगकर संसारसागरमें भ्रमण करता है ॥३२७॥ कोई मनुष्य कुरूप, दुर्गन्धयुक्त, निन्दनीय, निर्धन, नपुंसक, भाग्यहीन, कुष्ठ आदि रोगोंसे पीडित, विकलांग और गांठदार शरीरसे युक्त होते हैं सो उनकी यह दशा परस्त्रीसंगसे उपार्जित पापकर्मके उदयसे हुई है ऐसा जानना चाहिये ॥३२८॥ कवि कहते हैं कि हमने परस्त्रीत्याग व्रतका सुखदायक कथन किया, साथ ही विषयलंपट मनुष्योंका भी वर्णन किया । सबका सार यह है कि शीलके प्रभावसे देव और मनुष्यगतिके सुख प्राप्तकर यह जीव मोक्षको प्राप्त होता है और विषयलंपट मनुष्य दुर्गतिके दुःख भोगता हुआ भवभ्रमणको प्राप्त होता है ॥३२९–३३०॥

11105

ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार

छन्द चाल

परकी जो करै सगाई, [1]बतलावे जोग मिलाई ।
अरु व्याह उपाय बतावै, निज व्रतको दोष लगावै ॥३३१॥
विभचारिण जै है नारी, परिगृहीत नाम उचारी ।
जिनको वेश्यादिक कहिये, [2]तिनि संगम नहीं गहिये ॥३३२॥
हास्यादि कुतूहल कीजै, सीलै तब मलिन करीजै ।
अपरिगृहीत सुनि नाम, पति परणी है जे वाम ॥३३३॥
तसु महा कुसीला जाणी, जसु संगति करै जु प्राणी ।
हास्यादिक वचन सुभाखे, सो सील मलिनअति राखे ॥३३४॥
जे लंपट विषयी क्रूर, ते पावै भव दुख पूर ।
अतीचार तीसरो एह, सुणिये अब चौथो जेह ॥३३५॥
क्रीडा अनंग विधि एह, हस्तसुं परसत तिय देह ।
विकलप मनमें ही आनै, परतक्ष ते सीलहि भानै ॥३३६॥

आगे ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार कहते है :—

जो अपनी संरक्षित संतानके सिवाय अन्य पुरुषोंकी संतानकी सगाई करावे अथवा उनका योग मिलावे अथवा उनके विवाहका उपाय बतलावे वह अपने व्रतको दोष लगाता है। यह अन्य विवाहकरण नामका अतिचार है ॥३३१॥ जो वेश्यादिक व्यभिचारिणी स्त्रियाँ हैं वे परिगृहीतेत्वरिका* हैं उनके साथ मेलजोल नहीं करना चाहिये और न ही हास्य तथा कुतूहलकी बात करना चाहिये। ऐसा करनेसे शीलव्रत मलिन होता है। यह परिगृहीतेत्वरिका गमन नामका अतिचार है। जिन स्त्रियोंको उनके पतिने परणा है—उनके साथ विवाह किया है वे अपरिगृहीत* कहलाती हैं। इन अपरिगृहीत स्त्रियोंमें भी कोई कोई महा कुशील—दुराचारिणी होती हैं। उन स्त्रियोंकी जो प्राणी संगति करते हैं तथा उनके साथ हास्यादिकके वचन कहते हैं वे अपने शीलको मलिन करते हैं। जो दुष्ट मनुष्य विषयलंपट होते है वे भवभवमें तीव्र दुःख प्राप्त करते हैं। यह अपरिगृहीते त्वरिका गमन नामका तृतीय अतिचार है। अब चतुर्थ अतिचारका स्वरूप सुनिये ॥३३२–३३५॥ हाथसे स्त्रीके शरीरका स्पर्श करना अनंगक्रीडा नामका अतिचार है। हाथसे स्त्रीके शरीरका स्पर्श करनेसे मनमें दुर्विकल्प हो जाते है और उनसे शीलव्रत भंग हो जाता है। यह चतुर्थ अतिचार ज्ञानीजनोंको कभी नहीं लगाना चाहिये।

---

१ विधि लावे स० २ तिनि संग गमन नहि लहिये स०

* यहाँ अपरिग्रहीता और परिग्रहीताकी परिभाषामें व्यत्यय जान पडता हैं। अन्यत्र वेश्या तथा कन्या आदिको अपरिग्रहीता तथा अन्यकी विवाहिता स्त्रीको परिग्रहीता कहा गया है।

इह अतीचार चौथो ही, बुध करय न कबहूं योही ।
पंचम भनिये अतीचार, सुपनेमें मदन विकार ॥३३७॥
उपजै तिय सेवन काम, विकलपता अति दुखधाम ।
औषधके पाक बनावै, बहुविध रसधातु मिलावै ॥३३८॥
अति विकल होय निजतियकों, सेवै हरषावे जियकों ।
बुधजन इह रीति न जोग, पण अतीचार [1]इस भोग ॥३३९॥

दोहा

इनहि टाल व्रत सीलको, पालो मन वच काय ।
इह भवतें सुरपद लहै, फिरि नृप ह्वै शिव जाय ॥३४०॥

परिग्रह परिमाण-अणुव्रत कथन

चौपाई

क्षेत्र वास्तु आदिक दस जाण, परिग्रहतणों करै परिमाण ।
इनको दोष लगावै नहीं, वहै देशव्रत पंचम कही ॥ ॥३४१॥

नाराच छन्द

[2]करोति मूर्च्छना प्रमाण कर्ण सेवना विखैं,
त्रिलोक वेद ग्यान पाय श्री जिनेश यों अखैं ।
भवन्ति सौख्यसागरो अनन्त शक्तिकौं गहै,
त्रिलोक वल्लभो सदा भवंतरे सिवं लहै ॥३४२॥

अब कामतीव्राभिनिवेश नामका पंचम अतिचार कहते हैं। कितने ही मनुष्योंको स्वप्नमें काम-विकार उत्पन्न होता है, स्त्रीसेवनकी तीव्र इच्छा रहती है तथा मनमें अत्यन्त विकलता विद्यमान रहती है। कितने ही लोग कामोत्तेजक पाक बनवाकर उनमें नाना प्रकारके शक्तिवर्धक रस मिलाते है तथा अत्यन्त विकल होकर निज स्त्रीका सेवन करते हुए मनमें हर्षित होते हैं। ज्ञानीजनोंको शीलव्रतमें ये पाँच अतिचार लगाना योग्य नहीं है ।।३३६-३३९।। ग्रन्थकार कहते है कि हे भव्यजनों! इन अतिचारोंको टालकर मन वचन कायसे शीलव्रतका पालन करो क्योंकि इसके प्रभावसे मनुष्य इस देहसे देवपदको प्राप्त होता है और पश्चात् राजा होकर मोक्ष प्राप्त करता है ।।३४०।।

आगे परिग्रहपरिमाणाणुव्रतका कथन करते हैं :-

खेत, वास्तु (मकान) आदि दश प्रकारके परिग्रहका परिमाण करना परिग्रह परिमाणाणुव्रत है। पंचम गुणस्थानवर्ती देशव्रती श्रावकको इसमें दोष नही लगाना चाहिये ।।३४१।। तीन लोकके ज्ञाता श्री जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि जो जीव इन्द्रियविषयों-भोगोपभोगके पदार्थों-का

---

१ संजोग न० २ करे प्रमाण संगको जु अक्ष [ईच्छ] सेवन सही, त्रिलोक वेदग्यान पाय श्री जिनेश यों कही। क० स०

दोहा

[1]मन विकलप पसरै अधिक, विभव परिग्रह मांहि ।
लहै नहीं अघके उदै, फल नरकादि लहांहि ॥३४३॥

अडिल्ल

जनम जरा फुनि मरण सदा दुखको सहै,
बहु दूषणको थान रोग अतिही लहैं ।
भ्रमैं जगतके मांहि कुगति दुःखमें परैं,
[2]विषयनि मूर्च्छामांहि न संवर जे करैं ॥३४४॥

दोहा

व्रत परिग्रह प्रमाण नर, किये लहै फल सार ।
[3]मन मुकलावे ठीक तजि, दुख भुगते नहिं पार ॥३४५॥
यातैं व्रत धरि भव्य जे, मन विकलप विस्तार ।
ताहि तजै सुख भोगवै, यामें फेर न सार ॥३४६॥
जे संतोष न आदरैं, ते भव भ्रमैं सदीव ।
दुख करि याको जानिकै, त्यागैं उत्तम जीव ॥३४७॥
दोष लगै या समझकैं, अतीचार [4]पणि जाणि ।
तिनको वरणन भेद कछु आगे कहौं वखाणि ॥३४८॥

परिमाण करते हैं वे सुखके सागर होते हैं, अनन्त बलको प्राप्त होते हैं, सदा तीन लोकके प्रिय होते हैं और भवान्तरमें मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥३४२॥ वैभव या परिग्रहमें मनके अनेक विकल्प प्रसारको प्राप्त होते हैं परन्तु पापके उदयमें यह जीव वैभव या परिग्रहको प्राप्त नहीं कर पाता । प्रत्युत इसके विपरीत नरकादि गतिको प्राप्त होता है ॥३४३॥ जो मनुष्य विषयोंकी मूर्च्छा—ममत्वभावका संवर नहीं करते हैं अर्थात् उसे रोकते नहीं है वे जन्म, जरा और मरणके दुःखको सहते हैं, अनेक दोषोंके स्थानभूत भयंकर रोगको प्राप्त होते हैं, संसारमें भ्रमण करते हैं और कुगतिके दुःखोंमें पडते हैं ॥३४४॥ परिग्रहपरिमाण व्रतके प्रभावसे मनुष्य श्रेष्ठ फलको प्राप्त होता है अतः मनकी उत्कण्ठा——परिग्रह विषयक आसक्तिका त्याग करो । परिग्रही मनुष्य अपार दुःखको भोगते हैं ॥३४५॥ इसलिये जो भव्यजीव परिग्रहपरिमाण व्रतको धारण कर मनके विकल्पोंको छोड़ते हैं वे सुखका उपभोग करते हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३४६॥ जो संतोषका आदर नहीं करते हैं वे सदा संसारमें परिभ्रमण करते हैं । इसीलिये उत्तम जीव इस परिग्रहको दुःखदायक जानकर इसका त्याग करते हैं ॥३४७॥ पाँच अतिचारोंसे इस व्रतमें दोष लगता है, यह समझकर आगे उन अतिचारोंका कुछ वर्णन करते हैं ॥३४८॥

---

१ मन विकलप तृष्णा अधिक क० २ नियम न मूर्च्छामाहि न० ३ परिग्रह व्रत धारे नही क० ४ पुणि स०न०

परिग्रह परिमाण व्रतके अतिचार

चौपाई

क्षेत्र कहावे धरती मांहि, हल खेडनिकी जो विधि आहि ।
वास्तु कहावे रहवा तणा, मंदिर हाट नोहरा तणा ॥३४९॥
हिरण्य रूपाको परमाण, करै जितो राखै बुधिवान ।
सुवरण सोनो ही जाणिये, ताकी मरज्यादा ठाणिये ॥३५०॥
धन महिषी घोटक अरु गाय, हस्ती बैल ऊंट जे थाय ।
इत्यादिक चौपद जे सही, तिन सिगरेकी संख्या गही ॥३५१॥
[1]सालि मूंग गोधूम अरु चणा, नाज विविधके जे है घणा ।
इन सबकी मरज्यादा गही, बहुत जतनतैं राखै सही ॥३५२॥
खरच जितो घरमांही होय, तितनो नाज खरीदै सोय ।
वणिज निमित्त जेतो परमाण, जीव पडैं नहि तैसे जाण ॥३५३॥
बहु उपाय करिकै राखिहै, ऐसे जिनवाणी भाखिहै ।
वरस एकमें बीके नहीं, दूजो वरस आइ है सही ॥३५४॥
मरज्यादा माफिक थो जितो, अधिक लेय नहि राखे तितो ।
दुपद परिग्रहमें ए कहे, वनिता दासी दास हू लहे ॥३५५॥

क्षेत्रका अर्थ वह पृथिवी है जिसमें हल आदि चलाकर अन्न उपजाया जाता है और वास्तुका अर्थ रहनेका मकान, बाजार तथा मोहोल्ला आदि है। इनके परिमाणका उल्लंघन करना क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम नामका अतिचार है ॥३४९॥ हिरण्य चांदीको कहते हैं और सुवर्णका अर्थ सोना है । ज्ञानीजन इसका प्रमाण करते हैं अर्थात् इसकी मर्यादा रखते हैं । इस मर्यादाका उल्लंघन करना सो हिरण्यसुवर्णातिक्रम नामका अतिचार है ॥३५०॥ गाय, भैंस, घोडा, हाथी, बैल तथा ऊंट आदि चौपायोंको धन कहते हैं । परिग्रह परिमाण व्रतमें इन सबकी संख्याका निर्धार किया जाता है । धान्य, मूंग, गेहूँ और चना आदि जो नाना प्रकारके अनाज है वे धान्य कहलाते है। इन सबकी जो मर्यादा ली है उसकी बहुत यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ऐसा जिनागममें कहा है । यदि संग्रहित अनाज एक वर्षमें न बिक सके तो आगामी वर्षमें उतना ही अनाज खरीदे, जितनी मर्यादा की थी, अधिक खरीद नहीं करे । उपर्युक्त धन-धान्यकी मर्यादाका उल्लंघन करना धनधान्यप्रमाणातिक्रम नामका अतिचार है। स्त्री तथा दासी दास द्विपद परिग्रह कहलाते है इनकी सीमाका उल्लंघन करना सो दासीदास प्रमाणातिक्रम नामका अतिचार है ॥३५१–३५५॥ कुप्य परिग्रहमें बर्तन, चन्दन आदिकी लकडीसे निर्मित

---

१ सालि उरद गौहूं अरु चना स०

कुप्य परिग्रहमें ये जाण, [1]चरवा चंदन अतर वखाण ।
रेसम सूत ऊनका जिता, कपडा होय कहा है तिता ॥३५६॥
तिनहूंकी मरज्यादा गहै, यों नायक श्री जिनवर कहै ।
रुपया भूषण रतन भंडार, [2]वहुरि सोनयिया अरु दीनार ॥३५७॥
इनकी मरज्यादा करि लेहु, हंडवाई वासन [3]फुनि एहु ।
बहु विधि तणा किराणा भणी, अवर खांड गुड मिश्री तणी ॥३५८॥
मरज्यादा ले सो निर्वहे, भंग कियो दूषणको लहै ।
मन वच काया पाले जेह, भव भव सुख पावे नर तेह ॥३५९॥

सवैया

वरत करैया ग्यारा प्रतिमा धरैया जे जे,
दोषके टरैया मनमांही ऐसें आंनिके ।
जैसो जिह थान जोग तैसो भोग उपभोग,
चरन तिजोगमांही कह्यो है वखानिके ।
आदरे तितो ही तेहि वाकी सवै छांडि देह,
ग्रंथ संख्या व्रत एह श्रावककों जानिके ।
तदभव सुर थाय राजऋद्धिकौं लहाय,
पावै सिवथान दुखदानि भव भांनिके ॥३६०॥

उपकरण तथा रेशम, सूत और ऊनसे निर्मित वस्त्र आते हैं। इन सबकी मर्यादा करनी चाहिये ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है । रुपया, आभूषण, रत्नभण्डार, सुवर्णनिर्मित वस्तुएँ, दीनार, बर्तन-भाण्डे, अनेक प्रकारका किराना, गुड़, खांड तथा मिश्री आदिकी जो मर्यादा ली है उसका निर्वाह करना चाहिये। भंग करनेसे अनेक दोष लगते हैं । इन उपर्युक्त वस्तुओंकी सीमाका उल्लंघन करना सो कुप्य प्रमाणातिक्रम नामका अतिचार है । ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि जो मनुष्य मन वचन कायसे मर्यादाका पालन करते हैं वे भवभवमें सुख प्राप्त करते हैं ॥३५६–३५९॥ ग्यारह प्रतिमाओंको धारण करनेवाले जो देशव्रती श्रावक हैं वे उपर्युक्त दोषोंका मनमें विचार कर परित्याग करते हैं। चरणानुयोगके ग्रन्थोंमें जिस प्रतिमामें भोग–उपभोगका जितना जैसा रखना योग्य बतलाया है उतना ही रखना चाहिये, शेष सबका त्याग कर देना चाहिये। यही श्रावकका परिग्रहपरिमाणव्रत कहलाता है। इस व्रतके धारक जीव देवपद प्राप्तकर वहाँसे च्युत हो राजसम्पदाको प्राप्त होते हैं और दुःखदायक संसारका छेदकर मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥३६०॥

---

१ चोवा ग० स० न० २ मौहर सुनहरि अरु दीनार स० ३ गण स०

मरहटा छन्द

जो परिग्रह राखे दोष न भाखे चित अभिलाखे हीन,
विकलप मुकुलावै विषय बढावै आढ न पावै दीन ।
बहु पाप उपावै जो [1]मन भावै आवै बात कहीन,
मूर्च्छाको धारी हीणाचारी नरक लहै सुख छीन ॥३६१॥

भुजंगप्रयात

कह्यो मूर्च्छना दोष भारी अपारी,
लहै सुभ्र संसै न जानै लगारी ।
तजै सर्वथा मोक्ष सौख्यं लहंती,
यहै जान भव्यान याको गहंती ॥३६२॥

दिग्व्रत नामक प्रथम गुणव्रत कथन

चौपाई

चार दिशा विदिशा फुनि चार, ऊर्ध्व अधो दुहुं मिलि दस धार ।
दिगव्रत पालन नर परवीन, मरयादा लंघै न कदीन ॥३६३॥

जिते कोसलों फिरियो चहै, दिशा विदिशाकी संख्या गहै ।
अधिक लोभको कारिज बणै, व्रतधर मरयादा नहि हणै ॥३६४॥

इसके विपरीत जो परिग्रह रखते हैं, उसमें दोष नहीं मानते, दीन हीन होकर चित्तमें उसीकी अभिलाषा रखते हैं, नाना प्रकारके विकल्प उत्पन्न करते हैं, विषयसामग्रीको बढाते रहते हैं, उसका कभी अन्त नहीं करते, जो मनमें रुचता है वैसा अधिक पाप करते हैं और मूर्च्छा–ममता भावको धारणकर हीन आचरण करते हैं वे नरकका दुःख प्राप्त करते हैं ॥३६१॥ मूर्च्छाको बहुत भारी दोष कहा गया है। इसके धारी जीव श्वभ्र–नरकको प्राप्त होते हैं इसमें संशय नहीं है। इसके विपरीत जो इसका त्याग करते हैं वे मोक्षसुखको प्राप्त होते हैं। यही जानकर भव्यजीव इस व्रतको धारण करते हैं ॥३६२॥

आगे दिग्व्रत नामक प्रथम गुणव्रतका कथन करते हैं—

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ये चार दिशाएँ, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य ये चार विदिशाएँ और ऊपर नीचे मिला कर दश दिशाएँ होती हैं। दिग्व्रतका पालन करनेमें निपुण मनुष्य इनकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करता है ॥३६३॥ दिशा और विदिशामें जितने कोश तक भ्रमण करनेकी इच्छा है उतनी मर्यादा कर ले। यदि कदाचित् अधिक लोभका कारण बनता है तो भी व्रतधारी मनुष्य मर्यादाका घात नहीं करता है ॥३६४॥ कार्य पड़ने पर वहीं तक जाता है

---

१ मति स०

जिम मरयादाकी आखडी, तहंलौं जाय कामवसि पडी ।
घरि बैठा निति धारै ठीक, पाले कबहुं न चले [1]अधीक ॥३६५॥

दोहा

[2]दिगव्रतको पालै थकी, उपजै पुन्य अपार ।
सुरगादिक [3]फल भोगवै, यामें फेर न सार ॥३६६॥

मरयादा लीए बिना, फल उतकिष्ट न होय ।
हमैं पलै नहिं इम कहे, वहै विकलमति जोय ॥३६७॥

दिग्व्रत गुणव्रतके पाँच अतिचार

छन्द चाल

मन्दिर निज परकी आड, चढियो फुनि कोई पहाड ।
ऊरध संख्या सो कहिये, टालैतैं दोषहि गहिये ॥३६८॥
तहखाना कूप रु [4]खाय, गिरि गुफा मांहि जो जाय ।
इह अधोभूमि मरयाद, टालै दूषण परमाद ॥३६९॥
दिसि विदिसि सौंह जे लीनी, तिरछौ चलवे मति दीनी ।
सो तिरजिग गमन कहाई, अतिचार तृतिय इह थायी ॥३७०॥
निज खेत भूमि जो थाय, सीमातैं अधिक बधाय ।
सो क्षेत्र वृद्धि तुम जाणो, चौथो अतिचार वखाणो ॥३७१॥

जहाँ तक की मर्यादा करता है। अपने घर बैठकर ही कार्य सिद्ध करता है, मर्यादासे अधिक कभी नहीं चलता है ॥३६५॥ दिग्व्रतका पालन करनेसे अपार पुण्यकी प्राप्ति होती है। इसका पालन करनेवाला मनुष्य स्वर्गादिकका सुख भोगता है इसमें कुछ भी अन्तर नहीं है। मर्यादाके विना उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति नहीं होती। 'हमसे मर्यादाका पालन नहीं होता' ऐसा जो कहते हैं वे बुद्धिहीन हैं—अज्ञानी हैं ॥३६६–३६७॥ आगे दिग्व्रतके पाँच अतिचार कहते हैं :—

अपने भवनकी ऊपरी सीमा अथवा पहाड़ पर चढ़ना यह ऊर्ध्व संख्या कहलाती है। इसका उल्लंघन करनेसे दोष लगता है। यह ऊर्ध्वव्यतिक्रम नामका अतिचार है ॥३६८॥ तहखाना, कूप, खदान तथा पर्वतकी गुफा आदि नीचले स्थानोंमें जानेकी जो मर्यादा की है, उसका प्रमादवश भंग करनेसे अनेक दोष लगते हैं। यह अधोव्यतिक्रम नामका अतिचार है ॥३६९॥ दिशा और विदिशामें जानेका जो नियम लिया है वह तिर्यग्गमन कहलाता है। इसका उल्लंघन करना तिर्यग्–व्यतिक्रम नामका तृतीय अतिचार है ॥३७०॥ अपने आने जानेके क्षेत्रकी जो सीमा निश्चित की थी उसमें वृद्धि कर लेना यह क्षेत्र वृद्धि नामका चतुर्थ अतिचार है

---

१ अलीक ग० २ या व्रतको पाले थकी स० न० ३ सुख स० न० ४ वाय न०

जिह वस्तु तणो परमाण, प्रथमहि कीयो थो जाण ।
तिहकौं वीसरि सो जाई, स्मृतिजु अतिचार कहाई ॥३७२॥

देशव्रत नामक द्वितीय गुणव्रत कथन

चौपाई

दिशि विदिशाके जे जे देश, जिह पुरलों जे करे प्रवेश ।
हरै नहीं मरयादा कोई, तिनको पलै देशव्रत सोई ॥३७३॥

[1]मन प्रसरण वारणके हेत, मन वच कर मरयादा लेत ।
[2]आप लंघि कर कबहुं न जाय, तहां थकी बढतो नहि जाय ॥३७४॥

दोहा

सो लहिये बिन वरतको, नेम न मूल कहाय ।
यातें गहिये आखडी, ज्यों फल विस्तर थाय ॥३७५॥

देशव्रतके पाँच अतिचार

छन्द चाल

[3]कीयो जे देश प्रमाण, तिहि पार थकी सों सुजाण ।
कोई नहि वस्तु मंगावै, कबहूं नहि लोभ बढावै ॥३७६॥

॥३७१॥ जिस वस्तुका पहले जितना प्रमाण किया था उसे भूल जाना, यह स्मृत्यन्तराधान नामका पंचम अतिचार है ॥३७२॥

आगे देशव्रतका कथन करते हैं :

दिशाओं और विदिशाओंमें जो देश हैं उनके अमुक नगर तक हम प्रवेश करेंगे ऐसी मर्यादा कर जो उसका भंग नहीं करते हैं उनके देशव्रत पलता है ॥३७३॥ मनका प्रसार रोकनेके लिये मन और वचनसे जो मर्यादा ली जाती है उसका उल्लंघन कर कभी आगे नहीं जाना चाहिये । जहाँ तककी मर्यादा है वहीं तक जावे, आगे नही जावे । विशेष :—अन्य ग्रन्थोंमें देशव्रतका यह लक्षण बताया गया है कि दिग्व्रतमें जन्म पर्यन्तके लिये की हुई विस्तृत मर्यादामें घडी, घंटा, दिन, महिना आदिकी अवधि लेकर विस्तृत क्षेत्रको और भी संकुचित करना देशव्रत है ॥३७४॥ व्रतको लिये बिना नियमका मूल नहीं कहलाता है इसलिये व्रत अवश्य ही लेना चाहिये जिससे उसके फलमें बिस्तार होता जाय। भावार्थ :—कितने ही लोग अन्यत्र आते जाते नहीं हैं परन्तु आने जानेका नियम नहीं लेते, उनके लिये कहा गया है कि व्रत लिये बिना कोई नियम नहीं होता, अतः अपनी सामर्थ्यके अनुसार नियम अवश्य लेना चाहिये ॥३७५॥

आगे देशव्रतके पाँच अतिचार कहते हैं :

जितने देशका प्रमाण किया है उसके बाहरसे कोई वस्तु नहीं मंगाना चाहिये और न ही लोभ बढ़ाना चाहिये ॥३७६॥ जहाँ तककी जो मर्यादा की है उसका उत्तम पुरुष कभी भंग

---

१ मन सैन्य ख० ग० २ आप जहाँ दिशि कबहुं न जाय, तहाँ तणो बडती नहीं खाय। ख० ग० ३ कीनो जिहि स०

जहं लों मरयादा ठानी, भांजे नहिं उत्तम प्राणी ।
भांजे मरयादा जास, अतीचार कहावे तास ।।३७७।।
मरयादा बारैं कोई, नरकों न बुलावै जोई ।
अरु आप नहीं बतरावै, बतराए दोष लगावै ।।३७८।।
निज रूपहि सोंह सिवाई, काहू जो देइ दिखाई ।
यह अतीचार चौथो ही, जिनदेव वखाण्यो यो ही ।।३७९।।
मरयाद जिती जिहिं धारी, तिह वारे करतें डारी ।
कंकरी कपडो कछु और, पाहण लकडी तिहिं ठौर ।।३८०।।
इत्यादिक वस्तु बहु नाम, वरनन कहंलौं के ताम ।
[1]ऐसी मति समझे कोई, देशांतर ठीक जु होई ।।३८१।।
चैत्यालय वा घरमांही, अथवा देशांतर तांही ।
धरिहै जिम जो मरयाद, पालै तिमि तजि परमाद ।।३८२।।
इह देश वरत तुम जाणो, दूजो गुणव्रत परमाणो ।
अब अनरथदंड जु तीजो, बहुविध तसु कथन सुणीजो ।।३८३।।

नहीं करते । यदि कदाचित् मर्यादाका भंग करता है तो 'आनयन' नामका अतिचार लगता है ।।३७७।। मर्यादासे बाहरके किसी पुरुषको नहीं बुलाना चाहिये और न ही मर्यादाके बाहर किसीको भेजना चाहिये । इसके विपरीत कार्य करनेसे 'प्रेष्यप्रयोग' नामका अतिचार लगता है। मर्यादाके बाहर स्थित मनुष्यसे कोई बात नहीं करना चाहिये। यदि करता है तो वह 'शब्दानुपात' नामका अतिचार है । मर्यादासे बाहरके लोगोंको अपना रूप दिखा कर कार्य करनेमें सचेत करना यह 'रूपानुपात' नामका चौथा अतिचार है। जितनी मर्यादा रक्खी है उसके बाहर कंकड़, वस्त्र, पत्थर या लकडी आदि वस्तुओंको फेंकना 'पुद्गलक्षेप' नामका पाँचवाँ अतिचार है । देशव्रतके विषयमें ऐसा नहीं समझना चाहिये कि इसमें किसी अन्य देशका रहना निश्चित किया जाता है; परन्तु इसमें यह विचार किया जाता है कि मैं चैत्यालयमें, घरमें अथवा किसी अन्य स्थानमें इतने समय तक रहूँगा। जहाँ रहनेकी जो भी मर्यादा की है उसका प्रमाद छोड़कर पालन करना चाहिये । इसे देशव्रत जानना चाहिये । यह देशव्रत दूसरा गुणव्रत है। अब तीसरा गुणव्रत जो 'अनर्थदण्ड' है उसका नाना प्रकारका कथन सुनिये ।।३७८–३८३।।

अनर्थदण्ड पाँच प्रकारका होता है :–पहला पापोपदेश, दूसरा हिंसादान, तीसरा अपध्यान, चौथा दुःश्रुति और पाँचवाँ प्रमादचर्या । अपने घरके कार्य बिना, अन्य दूसरोंके लिये पाप-

---

१ कर ही जो कोई इशारा, ये अतीचार निरधारा। क०

अनर्थदण्ड नामक तृतीय गुणव्रत कथन

चौपाई

अनरथदंड पंच परकार, प्रथम पाप उपदेश असार ।
हिंसादान दूसरो जाण, तीजो खोटो ध्यान वखाण ॥३८४॥
तुरिय कुशास्त्र कहै मन लाय, पंचम प्रमादचर्या थाय ।
निज घरि कारिज विनु ते और, तिनके पाप तणी जो ठौर ॥३८५॥
पसू वणिज करवावे जाय, अरु तिह बीच दलाली खाय ।
हिंसाकौ आरंभ जु होई, ताके उपदेसै जो कोय ॥३८६॥
मीठो लूण तेल घृत नाज, मादिक वस्तु मोम विनु काज ।
[1]धोलिधाहम्या हरडै लाख, आल कसूंभाको अभिलाख ॥३८७॥
[2]नील हींग आफू मोहरो, भांग तमाखू सावण परो ।
तिलदाणा सिण लोह असार, इन उपदेश देहि अविचार ॥३८८॥
कुवा तलाव हवेली वाय, वाडी बाग कराय उपाय ।
कपडा वेगि धुवावेहु मींत, निज गृह कारिज राखहु चींत ॥३८९॥
परधन हरण तणी जे वात, सिखवावे बहुतेरी घात ।
इतने पाप तणै उपदेश, कियें होय दुरगति परवेश ॥३९०॥
चाकी [3]ऊखल मूसल जिते, कुशी कुदाल फाहुडी तिते ।
तवो कडाही अरु दातलो, ए मांग्या देवो नहि भलो ॥३९१॥

कार्योंका उपदेश देना, जैसे पशुओंका व्यापार करवाना और उसमें दलाली खाना, हिंसाकारक जो आरंभ व्यापार आदि हैं उनका उपदेश देना, मीठा, नमक, तेल, घी, अनाज, नशीली वस्तुएँ, मोम.......हरडे, लाख, आल और कुसुंभके रंग, नील, हींग, अफीम, मोहरा, भांग, तमाकु, साबुन, तिलदाना, सन और लोह आदिके व्यापारका विचाररहित होकर उपदेश देना, कुआ, तालाब, मकान, बाग–बगीचा बनवानेका उपाय बतलाना, शीघ्र कपड़ा धुलवानेकी बात कहना तथा दूसरेके धनहरण सम्बन्धी बहुत उपाय सिखलाना, इन पापके कार्योंका उपदेश देना सो पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड है । इसके करनेसे जीवका दुर्गतिमें प्रवेश होता है ॥३८४–३९०॥

चक्की, उखली, मूसल, कुश, कुदाली, फावड़ा, तवा, कडाही और दांतला (हंसिया) इन्हें कोई माँगे तो नहीं देना श्रेष्ठ है । धनुष, कमान, तीर, तलवार, पिंजड़ा, छुरी, कुल्हाडी, सिल, लोढ़ा, दांतन धोवण, बाण, जेवरा (रस्सी), बेडी, रथ, गाडी, वाहन, अग्नि तथा उपला

---

१ धोलिधावडा हरडो लाख स० २ नील फूल आफू माहुरो स० ३ उखली स०

धणहि कमान तीर तरवार, जमधर छुरी कुहाडया टार ।
सिल लोढो दांतण धोवणो, वाण जेवडा बेडी गणो ॥३९२॥
रथ भाडा वांहण अधिकार, अगनि ऊपलादिक निरधार ।
इत्यादिक कारण जे पाप, मांगे [1]दिये बढै संताप ॥३९३॥
यातैं व्रतधारी जे जीव, मांग्या कबहुं न देय सदीव ।
द्वेष भाव कर वैर लखाय, वध बन्धण मारण चित थाय ॥३९४॥
परतिय देखि रूप अधिकार, ऐसो चितवन अति दुखकार ।
खोटे शास्त्र वखांणै तदा, सुणत दोष रागी ह्वै जदा ॥३९५॥
हिंसा अरु आरंभ बढाय, मिथ्याभाव उपरि चित थाय ।
जामैं एते कहै वखाणि, सो कुशास्त्र अघकारण जाणि ॥३९६॥
विनही कारण गमन कराय, जलक्रीडा औरनि ले जाय ।
बालै अगनि काम विनु सोय, छेदै तरु अति उद्धत होय ॥३९७॥
मेला देखनि चलिये यार, [2]असवारी यह खडी तयार ।
गोटि करै निज खरचै दाम, ए सब जांणि पापके काम ॥३९८॥

(गोबरके कंडा) आदिक जो पापके कारण है, माँगे जाने पर उनका देना संतापकारक है इसलिये व्रती जीवको माँगने पर नहीं देना चाहिये। विशेष :––यदि कोई परदेशी सहधर्मी भाई रसोई बनानेके लिये अग्नि या तवा कड़ाही आदि उपकरण माँगता है और उसका उपयोग उचित मालूम होता है तो उनका देना निषिद्ध नहीं है। यह सब हिंसादान नामका दूसरा अनर्थदण्ड है। व्रती मनुष्यको इसका त्याग करना चाहिये।

द्वेषभावसे वैर कर किसीके वध बन्धन या मृत्युका मनमें विचार करना तथा रागवश परस्त्रीको देख उसकी सुन्दरताका चिन्तवन करना अपध्यान नामक अनर्थदण्ड है। यह अत्यन्त दु:खको करनेवाला है।

कोई खोटे शास्त्रोंका व्याख्यान कर रहा हो उसे रागी होकर सुनना दु:श्रुति नामका अनर्थदण्ड है। जिनमें हिंसा, आरंभ बढ़ाने तथा मिथ्याभाव आदिका व्याख्यान हो वे पापके करनेवाले कुशास्त्र हैं ॥३९१–३९६॥

बिना कारण गमन करे, स्वयं जलक्रीडा करे तथा दूसरोंको ले जावे, बिना प्रयोजन अग्नि जलावे, उद्धत होकर वृक्षोंका छेदन करे, दूसरोंसे कहे कि चलो मित्र ! मेला देखने चले, सवारी तैयार खडी है और अपने दाम खर्च कर गोट (पार्टी) करे, ये सब पापके काम हैं ॥३९७–३९८॥ बहुत जनोंका मन बहलानेके लिये कहें– चलो होला वालें खावें, बाजराके

१ देत न० २ असवारी जु खडी दरवार स०

बहुजन तणो मनावै भलो, होला डंहगी खावें चलो ।
बिरा बाजरा अवर जुवारि, फलही भाजी सबनि पचारि ॥३९९॥
चलो साथि लै जैहै खेत, वस्त खुवायनिको मन हेत ।
अनरथ दण्ड न जाणै भेद, पाप उपाय लहै बहु खेद ॥४००॥
सुवा कबूतर मैंना जाण, तूती बुलबुल अघकी खांण ।
[1]पंखिया और जनावर पालि, राखै बंदि पींजरै घालि ॥४०१॥
इनि पालेको पाप महंत, अनरथदंड जाणिये संत ।
कूकर वांदर हिरण बिलाव, मींढादिक रखिये धरि चाव ॥४०२॥
पालि खिलावै हरषि धरेय, अनरथदंड पाप फल लेई ।
मन हुलसै चित्राम कराय, त्रस जीवन सूरति मंडवाय ॥४०३॥
हस्ती घोटक मींडक मोर, हिरण चौपद पंखी और ।
कपडा लकडी माटी तणा, पाषाणादिक करिहै घणा ॥४०४॥
जीव [2]मिठाई करि आकार, करै विविधके हीण गमार ।
तिणिको मोल लेई जन घणा, बांटै परघरमें लाहणा ॥४०५॥
इह प्रमादचर्या विधि कही, अनरथ दंड पापकी मही ।
जो न लगावे इनको दोष, सो धरमी अघ करिहै शोष ॥४०६॥

बिरा, जुवार, फल, तथा सब प्रकारकी भाजी आदि खावें। इस प्रकार अनेक लोगोंको साथ ले जाकर खेत पर जावे तथा वहाँ अनेक वस्तुएँ खिलावे, यह सब अनर्थदण्डके भेद हैं । इन्हें जाने बिना पाप उपार्जन कर अज्ञानी जीव बहुत दुःख प्राप्त करते हैं ॥३९९–४००॥ कितने ही लोग तोता, कबूतर, मैना, तूती, बुलबुल, पापकी खान स्वरूप पक्षियों तथा अन्य जन्तुओंको पालकर पिंजडेमें बन्द रखते हैं। इनके पालनेका महान पाप होता है। इसे अनर्थदण्ड जानना चाहिये । कितने ही लोग कुत्ता, बन्दर, हरिण, बिलाव तथा मेंढ़ा आदिकको बडी शौकसे पालकर रखते हैं, उन्हें खिलाते तथा हर्षित होते हैं। वे भी अनर्थदण्डका फल प्राप्त करते हैं। कितने ही लोग मनोरंजनके लिये त्रस जीवोंके चित्र बनवाते हैं, उनकी आकृतियाँ मढवा कर रखते हैं। जैसे हाथी, घोडा, मेंढा, मोर, हरिण आदि चौपाये और पक्षी आदिकी आकृतियाँ बनवाते हैं। ये आकृतियाँ कपड़ा, लकडी, मिट्टी तथा पत्थर आदिकी बनाई जाती हैं। कितने ही अज्ञानी लोग मिठाईके रूपमें इन जीवोंकी आकृतियाँ बनवाते हैं, लोग उन्हें मूल्य देकर खरीद ले जाते हैं और दूसरोंके घर उपहारके रूपमें बाँटते हैं। यह सब प्रमादचर्या अनर्थदण्डका निरूपण किया । यह अनर्थदण्ड पापकी भूमि है। जो इन दोषोंको नहीं लगाते हैं वे धर्मात्मा हैं तथा पापका शोषण करनेवाले हैं ॥४०१–४०६॥

---

१ पंसी स० २ मिठावे करि आकार स०

दोहा

जो इस व्रतकौं पालिहै, मन वच काय सुजाण ।
सो निहचै सुरपद लहै, यामें फेर न जाण ।।४०७।।
विणु कारज ही सबनिको, दोष लगावै कोय ।
ताके अघके कथनकौ, कवि समरथ नहि होय ।।४०८।।
अघसैं नरकादिक लहै, इह जानो [1]तहकीक ।
[2]अतीचार या विरतको, सुनौ पांच इह ठीक ।।४०९।।

अनर्थदण्डव्रतके अतिचार

छन्द चाल

अति हास कुतूहलकार, मनमांही सोच विचार ।
इह अतीचार इक जांणी, जिन आगम कह्यो वखांणी ।।४१०।।
क्रीडा उपजावन काम, बहु कलह करै दुखधाम ।
नृत्यादिक देखण चाव, वादीगर लखि यह दाव ।।४११।।
मुखतै बहु गाली देई, वच ज्यों त्यों ही भाषेई ।
इह अतीचार भणि तीजो, बुध त्यागहु ढीऊ न कीजो ।।४१२।।
मनमें चिंतै कोइ काम, इतनौं करस्यों अभिराम ।
तातै अधिकौ जु कराई, दूषण इह चौथो थाई ।।४१३।।

ग्रन्थकार कहते हैं कि जो ज्ञानी मनुष्य, मन वचन कायसे इस व्रतका पालन करते हैं वे देवपद प्राप्त करते हैं इसमें संशय नहीं जानना चाहिये। जो कोई बिना प्रयोजन ही सबको दोष लगाता है उसके पापका कथन करनेके लिये कोई समर्थ नहीं है। उस पापके फलस्वरूप वे नरकादि गतियोंको प्राप्त होते हैं यह निश्चित जानना चाहिये। आगे इस व्रतके पाँच अतिचारोंका वर्णन करते हैं, उन्हें सुनो ।।४०७–४०९।।

कुतूहलवश मनमें सोच विचार कर अत्यधिक हँसीके वचन कहना यह कंदर्प नामका पहला अतिचार है। क्रीडा–कुतूहलके कारण तीतुर तथा मेंढ़ा आदिकका दुःखदायक युद्ध कराना तथा नृत्यादिक देखनेकी अभिलाषासे वादीगर आदिकी कलाओंको देखना, यह कौत्कुच्य नामका दूसरा अतिचार है। ।।४१०–४११।। मुखसे गाली देना और जैसे तैसे निरर्थक वचन बोलना यह मौखर्य नामका तीसरा अतिचार है। ज्ञानीजनोंको इसका शीघ्र ही त्याग करना चाहिये ।।४१२।। मनमें किसी कामका विचार करना कि मैं इतना करूँगा, पश्चात् उससे अधिक करना कराना यह असमीक्ष्याधिकरण नामका चौथा अतिचार है ।।४१३।। भोग–उपभोगकी वस्तुओं पर

---

१ सब कोय स० २ अतीचार ए पंच हैं, फेर न जानो सोय स०

जेती सामग्री भोग, अथवा उपभोग नियोग ।
परनर जो मोल गहांही, निज अधिको मोल चढाही ॥४१४॥
लोलुपता अति ही ठानै, हठ करिस्यौं अपनो आनै ।
¹इह पंचम दोष सुठीक, यामें कछु नाहि अलीक ॥४१५॥
भणिया ए पण अतिचार, बुधजन मन धरि सुविचार ।
नित ही इनकौं जो टालै, मन वच क्रम व्रत सो पालै ॥४१६॥
इह कथन सबै ही भाख्यौ, जिनवाणी माफिक आख्यौ ।
जो परम विवेकी जीव, इनकौ करि जतन सदीव ॥४१७॥
जे अनरथदण्ड लगावै, ते अघको पार न पावै ।
अघ महा कुगतिको दाई, भव भांवरी अंत न थाई ॥४१८॥
वच भाषै लागे पाप, ऐसो न करै हु अलाप ।
मन वच तन व्रत जे पालैं, वे सुरगादिक सुख भालै ॥४१९॥
अनुक्रमि सिव थांनक पावैं, कबहूं नहि भवमें आवैं ।
सुख सिद्धतणा जु अनंत, भुगतैं जो परम महंत ॥४२०॥

दोहा

गुणव्रत लखि इह तीसरो, अनरथदंड सु जाणि ।
कथन कह्यौ संक्षेपतैं, किसनसिंघ मन आणि ॥४२१॥

जो मूल्य पड़ा हुआ है उसे काट कर अधिक मूल्य चढ़ाना, अधिक लोभ करना और हठसे मनमानी करना यह भोगोपभोगानर्थक्य नामका पाँचवाँ अतिचार है । इसका ठीक निर्णय करना चाहिये ॥४१४–४१५॥ अनर्थदण्ड व्रतके ये पाँच अतिचार कहे गये हैं । ज्ञानीजन इनका मनमें विचार कर निरन्तर इन्हें टाले और मन वचन कायसे व्रतका निर्दोष पालन करें । ग्रन्थकार कहते हैं कि यह सब कथन जिनवाणीके अनुसार किया गया है । जो परम विवेकी जीव हैं वे इनका सदा यत्न करते हैं अर्थात् अतिचार टालनेका ध्यान रखते हैं । जो अनर्थदण्ड करते हैं उनके पापका पार नहीं है । पाप महासंसारको देनेवाला है । उनके भव-भ्रमणका अन्त नहीं होता ॥४१६–४१८॥ जिस वचनके कहनेसे पाप लगता हो ऐसा वचन कभी नहीं बोलना चाहिये । जो मनुष्य मन वचन कायसे व्रतका पालन करते हैं वे स्वर्गादिकके सुख भोगते हैं, अनुक्रमसे मोक्षमें जाते हैं और लौट कर संसारमें कभी नहीं आते । वे परमात्मा सिद्धोंका अनन्त सुख भोगते रहते हैं ॥४१९–४२०॥ ग्रन्थकर्ता श्री किशनसिंहजी कहते हैं– यह अनर्थदण्डव्रत तीसरा गुणव्रत है, इसका संक्षेपसे हमने कथन किया है ॥४२१॥

---

१ इमि स०

प्रथम शिक्षाव्रत-सामायिकका कथन

चौपाई—सब जीवनिमें समता भाव, संयममें शुभ भावन चाव ।
आरति रुद्र ध्यान तिहुं त्याग, सामायिक व्रत जुत अनुराग ॥४२२॥
प्राणी सकल थकी मुझ क्षांति, वे ऊक्षम मुझ परि करि सांति ।
मेरो बैर नहीं उन परी, वे मुझतें कछु द्वेष न करी ॥४२३॥
इत्यादिक वच करिवि उचार, जो नर सामायिकको धार ।
परजंकासन ठाढो तथा, सकति प्रमाण थापिहै यथा ॥४२४॥
पूर्वाह्निक मध्याह्निक चाल, अपराहूनिक ए तीनों काल ।
मरयादा जेती उचरै, तेती वार [1]पाठ सो करै ॥४२५॥
दुहुं आसनके दोष जु जिते, सामायिक जुत तजिहै तिते ।
जो विशेष सुणिवाको चाव, ग्रंथ श्रावकाचार लखाव ॥४२६॥
हूं एकाकी अवर न कोई, सुद्ध बुद्ध अविचलमय जोई ।
करमा तैं बेढयो तउ जाणि, मैं न्यारौं तिहुं काल वखाणि ॥४२७॥
इस संसारै मुझ को नाहीं, मैं न किसीको इह जगमांही ।
बंध्यो अनादि करमतैं सही, निहचै बंधन मेरे नहीं ॥४२८॥

आगे शिक्षाव्रतोंका कथन करते हैं जिसमें प्रथम सामायिक शिक्षाव्रतका वर्णन करते हैं—

सब जीवोंमें समता भाव रखना, संयम धारण करनेकी मनमें शुभभावना और उत्साह होना, तथा आर्त और रौद्र ध्यानका त्याग कर प्रीतिपूर्वक सामायिक करना यह सामायिक शिक्षाव्रत है। "समस्त प्राणियों पर मेरा क्षमाभाव है और वे भी मुझ पर शान्तभाव धारण करें। मेरा उन पर वैर नहीं है और वे भी मुझ पर वैर न करें" इत्यादि वचनोंका उच्चारण कर जो मनुष्य सामायिक करनेका नियम लेते हैं वे पर्यङ्कासन या खड्गासनका अपनी शक्ति प्रमाण नियम लेते हैं। पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न ये तीन सामायिकके काल हैं। इन कालोंमें सामयिकको जितनी मर्यादा की है उतने समय तक सामायिक पाठका उच्चारण या मंत्राराधना करनी चाहिये। उपर्युक्त दोनों आसनोंके जो दोष चरणानुयोगमें कहे गये हैं उनका त्याग करना चाहिये। यदि इन दोषोंका विशेष वर्णन सुननेकी उत्कंठा है तो श्रावकाचार ग्रन्थोंको देखना चाहिये ॥४२२-४२६॥

सामायिकमें बैठा मनुष्य ऐसा विचार करे कि मैं शुद्ध, बुद्ध, अविचल स्वभाववाला अकेला हूँ, दूसरा कोई मेरा नहीं है। यद्यपि मैं कर्मोंसे वेष्टित हूँ, सहित हूँ, तथापि तीनों काल उनसे पृथक् हूँ। इस संसारमें मेरा कोई नहीं है और मैं भी किसीका नहीं हूँ। यद्यपि मैं

---

१ भावसों स०

राग द्वेष करि मेलो जदा, तिन दुहु इनतें मिलन न कदा ।
देह वसंतो रहत सरीर, चेतन शक्ति सदा मुझ तीर ॥४२९॥

चिंता आठौं मद आरम्भ, चितवन मदन कषाय रु दम्भ ।
इनिकौं जिस बिरियां परिहार, करय सुबुधि सामायिक धार ॥४३०॥

सीत उसन वरषा फुनि वात, दंसादिक उपजत उतपात ।
जिनवर वचन विषैं अति धीर, सहिहै जिके महा वरवीर ॥४३१॥

पूर्वाचारिजके अनुसार, जे सुविचक्षण करय विचार ।
तीन मुहूरत दुइ इक जाणि, उत्तम मध्यम जघन वखाणि ॥४३२॥

जैसी शक्ति होय जिहिं पासि, करिए ह्वै भवभ्रमण विनासि ।
भव्य जीव इहि विधि जे करै, तिनकी महिमा कवि को करै ॥४३३॥

दोहा

इह व्रत पालै जे सुनर, मन वच क्रम धरि ठीक ।
सुर नरके सुख भुंज करि, सिव पावै तहकीक ॥४३४॥

जे कुमती जिननामकौ, लैन करै परमाद ।
सो दुरगति जैहै सही, लहिहै दुक्ख विषाद ॥४३५॥

अनादि कालसे कर्मोसे बँधा हुआ हूँ तो भी निश्चयनयसे मुझे कर्मोका बन्धन नहीं है । रागद्वेष भी मुझमें है परन्तु इन दोनोंसे मेरा मेल नहीं है—ये मेरे स्वभाव नहीं हैं । यद्यपि मैं शरीरमें वास कर रहा हूँ तो भी शरीरसे रहित हूँ । एक चैतन्यशक्ति ही मेरे निकट है ॥४२७–४२९॥ मनुष्यके जो आठों प्रकारके मदकी चिन्ता चल रही है तथा काम, कषाय और कपटका चिन्तवन होता रहता है इनका जब त्याग होता है तभी सामायिक होती है । शीत, उष्ण, वर्षा, वायु तथा डांस, मच्छर आदिका जो उत्पात होता है उसे भी जिनेन्द्रदेवके वचनोंमें श्रद्धा रखनेवाला धीर वीर मनुष्य समताभावसे सहता है । पूर्वाचार्योंके कहे अनुसार ज्ञानी जीव सामायिकमें विचार करते हैं । सामायिकका उत्कृष्ट काल तीन मुहूर्त, मध्यम काल दो मुहूर्त और जघन्य काल एक मुहूर्त है सो जिसकी जैसी शक्ति हो वैसा कर संसार भ्रमणका नाश करना चाहिये । ग्रन्थकार कहते हैं कि जो भव्यजीव इस विधिसे सामायिक करते हैं उनकी महिमाका वर्णन कौन कवि कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥४३०–४३३॥ जो उत्तम मनुष्य मन, वचन, कायसे इस सामायिक शिक्षाव्रतका पालन करते हैं वे देव और मनुष्य गतिके सुख भोगकर मोक्षको प्राप्त होते हैं । इसके विपरीत जो दुर्बुद्धिजन जिनेन्द्रदेवका नाम लेनेमें प्रमाद करते हैं वे निश्चित ही दुर्गतिमें जाकर दुःख और विषाद प्राप्त करते हैं ॥४३४–४३५॥

सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार

छन्द चाल

मन वच क्रमके ए जोग, परमादी होय प्रयोग ।
परिणाम दुष्टता भारी, राखे नहिं ठीक लगारी ।।४३६।।
सामायिक पाठ करंत, बतरावै परसों मंत ।
बोलै फुनि वारंवार, जानों दूजौ अतिचार ।।४३७।।
आसणकौ करै चलाचल, तनकूं जु हलावे पल पल ।
फेरै मुख चहुं दिसि भारी, तिजहू अतिचार विचारी ।।४३८।।*
सामायिक करत अनादर, मनमें न उछाह धरै पर ।
[1]विन लगन भाव हू खोट, किनि सिर पर दीजिय मोट ।।४३९।।*
सामायिक पाठ करंतो, चितमांहे एम धरंतो ।
मै पाठ पढ्यौ अक नांही, फुनि फुंनि इम वीसरि जांही ।।४४०।।
ए अतीचार पण भाखै, जिनवाणीमें जिन आखै ।
जे भवि सामायिक धारी, प्रथम हि ए दोष निवारी ।।४४१।।

आगे सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार कहते हैं :—

मन वचन काय ये तीन योग है । प्रमादी होकर इनका प्रयोग करना सो योग दुष्प्रणिधान नामके तीन अतिचार हैं। पहला अतिचार मनोयोग दुष्प्रणिधान है जिसका भाव यह है कि मनमें दुष्टताका भाव रखना और मनका ठीक उपयोग नहीं करना, किसीका अहित चिंतन करना आदि। दूसरा अतिचार वाग्योग दुष्प्रणिधान है। इसका अर्थ यह है कि सामायिक पाठ करते समय दूसरोंसे वार्तालाप करना तथा बार बार बीचमें बोलना । तीसरा अतिचार है काययोग दुष्प्रणिधान, जिसका अर्थ है आसनको चलायमान करना, शरीरको क्षण क्षणमें हिलाना और चारों दिशाओंकी ओर मुख घुमाना अर्थात् सामायिक करते समय इधर उधर देखना ।।४३६–४३८।। चौथा अतिचार अनादर है । इसका अर्थ है अनादरके साथ सामायिक करना, मनमें कोई उत्साह नही रखना क्योंकि आन्तरिक उत्साहके बिना खोटे भाव होने लगते हैं और ऐसा लगने लगता हैं मानों किसीने सिर पर बड़ा भार रख दिया हो ।।४३९।। पाँचवाँ अतिचार है स्मृत्यनुपस्थान । इसका अर्थ है–सामायिक पाठ करते समय मनमें ऐसा भाव आना कि मैंने यह पाठ पढ़ा या नहीं; पाठ पढ़ते समय उसे बार बार भूल जाना ।।४४०।। ग्रन्थकार कहते हैं कि जिनवाणीमें जिनेन्द्र भगवानने जैसा कहा है तदनुसार सामायिक शिक्षाव्रतके ये पाँच अतिचार कहे हैं । जो भव्यजीव सामायिक शिक्षाव्रतके धारी हैं उन्हें इन अतिचारोंका निवारण

---

१ विन लगन भाव जो होत, जिम सिर पर लादे बोज क०

* क्रम ठीक करनेके लिये ४३८ और ४३९ संख्याके पद्योंमें क्रम व्यत्यय किया गया है ।

तिहुं काल करै सामायक, सब जीवनिकौं सुखदायक ।
सामायिक करता प्राणी, उपचार मुनी सम जाणी ॥४४२॥
सामायिक दृग जुत करिहै, उतकृष्ट देवपद धरिहै ।
अनुक्रम पावै निरवाण, यामैं कछु फेर न जाण ॥४४३॥
मुनि द्रव्यलिंगको धारी, सामायिक बल अनुसारी ।
कहांलौं करिये जु बडाई, नव ग्रीवां लग सो जाई ॥४४४॥
यातैं भविजन तिहुं काल, धरिये सामायिक चाल ।
जातैं फल पावै मोटो, नसि जाय करम अति खोटो ॥४४५॥

द्वितीय शिक्षाव्रत प्रोषधोपवासका वर्णन

चौपाई

सामायिक व्रत कह्यौ वखाणी, अब प्रोषधव्रतकी सुन वाणी ।
एक मासमें परव जु चार, दुइ आठैं दुइ चौदसि धारि ॥४४६॥
इन दिनमें प्रोषध विसतरैं, ते वसु कर्म निर्जरा करैं ।
वे जिनधर्म विषैं अति लीन, वे श्रावक आचार प्रवीन ॥४४७॥
अब प्रोषधकी विधि सुनि लेह, भाष्यों जिन आगममें जेह ।
सातैं तेरसके दिन जानि, जिन श्रुत गुरु पूजाको ठांनि ॥४४८॥

पहले ही कर लेना चाहिये ॥४४१॥ सामायिक तीनों काल करना चाहिये । सामायिक सब जीवोंको सुखदायक है। सामायिक करनेवाला प्राणी उपचारसे मुनिके समान है। जो मनुष्य सम्यग्दर्शनसे युक्त होकर सामायिक करता है वह उत्कृष्ट देवपदको प्राप्त होता है और क्रमक्रमसे निर्वाणपद पाता है इसमें कुछ भी अन्तर नहीं जानना चाहिये । सामायिककी प्रशंसा कहाँ तक की जावे? सामायिकके बलसे द्रव्यलिंगी मुनि नवम ग्रैवेयक तक जाता है। इसलिये हे भव्यजीवों ! तीनों काल सामायिक करो, जिससे विशाल फलकी प्राप्ति हो और खोटे कर्म नष्ट हो जावें ॥४४२–४४५॥

आगे द्वितीय शिक्षाव्रत प्रोषधोपवासका वर्णन करते हैं :—

अब तक सामायिक व्रतका व्याख्यान कहा, अब प्रोषधव्रतकी बात सुनो । एक मासमें दो अष्टमी और दो चतुर्दशी, इस प्रकार चार पर्व होते हैं। इन पर्वके दिनोंमें जो प्रोषधव्रत करते हैं वे आठों कर्मोंकी निर्जरा करते हैं । प्रोषध करनेवाले जिनधर्ममें लीन रहते हैं तथा श्रावकाचारमें प्रवीण कहलाते हैं ॥४४६–४४७॥ अब प्रोषधकी विधि जैसी जिनागममें कही है उसे सुनो । सप्तमी और त्रयोदशीके दिन जिनदेव शास्त्र और गुरुकी पूजा करे । पूजाके

पूजा विधि कर श्रावक सोइ, भोजन वेला मुनि अवलोइ ।
जिन मंदिरतें तब निज गेह, एक ठाम अण पाणी लेह ॥४४९॥
मध्याह्निक [1]समया को धारि, करै प्रतग्या सुबुद्धि विचार ।
षोडश पहर लेइ मरयाद, चौविह हार छांडि परमाद ॥४५०॥
खादि स्वादि लेई अरु पेय, अतीचार ते सबहि तजेय ।
दुपटी धोती विधि वत लेइ, अवर [2]वस्तु तनसौं तजि देइ ॥४५१॥
स्नानादिक भूषण परिहरै, अंजन तिलक व्रती नहि करै ।
जिनमंदिर वन उपवन ठांहि, अथवा भूमि मसांणहि जाहि ॥४५२॥
षोडश जाम ध्यान जो धरै, धरम कथा जुत तहि अनुसरै ।
पंच पाप मन वच क्रम तजै, श्री जिन आज्ञा हिरदै भजै ॥४५३॥
धरमकथा गुरु मुखतें सुणै, आप कहै निज आतम मुणै ।
निद्रा अलप पाछिली राति, ह्वै नौमी पून्यो परभाति ॥४५४॥
मरयादा पूरव गुणधार, जिनमंदिर आवै निज द्वार ।
द्वारापेखण परि चित धारि, खडो रहे निज घरिके बार ॥४५५॥
पात्रदान दे अति हरषाय, एका भुक्ति करै सुखदाय ।
पारण दिन पिछली छह जाम, च्यारि अहार तजै अभिराम ॥४५६॥

बाद श्रावक भोजनके समय मुनियोंका द्वाराप्रेक्षण करे, पश्चात् जिनमन्दिरसे अपने घर जाकर एक स्थान पर बैठ कर अन्न पानी ग्रहण करे अर्थात् एकाशन करे ॥४४८–४४९॥ तदनन्तर मध्याह्नकी सामायिक कर विचारपूर्वक प्रोषधोपवासकी प्रतिज्ञा करे । सोलह प्रहरकी मर्यादा लेकर तथा प्रमाद छोड़कर खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय, इन चारों प्रकारके आहारका निरतिचार त्याग करे । शरीर पर धोती दुपट्टा धारण कर अन्य सब वस्तुओंका परित्याग कर दे ॥४५०–४५१॥ स्नान, आभूषण, अंजन तथा तिलक आदि नहीं करे । जिनमन्दिर, वन, उपवन अथवा स्मशान भूमिमें जाकर सोलह प्रहरका ध्यान करे । धर्मकथा करते हुए ध्यानके समयको पूरा करे । पाँच पापोंका मन, वचन, कायसे त्याग करे, श्री जिनेन्द्र देवकी आज्ञाको हृदयमें धारण करें, गुरुके मुखसे धर्मकथा सुने अथवा स्वयं धर्मकथा करे और अपनी आत्माका मनन करे । पिछली रात्रिमें थोडी निद्रा ले । जब नवमी अथवा पूर्णिमाका प्रभात हो तो पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार जिनमन्दिर जाकर पूजा करे । पश्चात् घर आकर द्वाराप्रेक्षण करता हुआ घरके बाहर खड़ा रहे । पात्रदान देकर अत्यन्त हर्षित हो स्वयं एकभुक्ति–एकाशन करे । पश्चात् पारणाके दिनके जो छह प्रहर शेष रहे है उनमें चार प्रकारके आहारका त्याग करे ॥४५२–४५६॥ यह उत्कृष्ट

---

१ सामायिक धारि स० २ वसन न०

इह उतकिष्ट कह्यौ उपवास, करै कर्मगणको [1]अति नास ।
सुरसुख लहि अनुक्रमि सिव लहे, सत वायक इह जिनवर कहे ॥४५७॥
कहुं मध्यम उपवास विचार, षट् कर्मोपदेश अनुसार ।
प्रथम दिवस एकंत करेय, घरी दोय दिनतैं जल लेइ ॥४५८॥
जिनमंदिर अथवा निजगेह, पोसह द्वादश पहर धरेह ।
धर्मध्यानमें बारा जाम, गमिहै घरिके तजि सब काम ॥४५९॥
जा विधि दिवस धारणै जाणि, सोही दिन पारणै बखाणि ।
तीन दिवस लौं पाले शील, सो सुरके सुख पावै लील ॥४६०॥
जघन्य वास भवि विधि सौं करौ, प्रथम दिवस इह संख्या धरो ।
पछिलो दिवस घडी दोय रहै, ता पीछें पाणी नहि गहै ॥४६१॥
निसिको शील व्रत पालियै, प्रात समय पोसो धारियै ।
आठ पहर ताकी मरयाद, धरम ध्यान जुत तजि परमाद ॥४६२॥
दिवस पारणै निसि जल तजै, वासर तीन शील व्रत भजै ।
प्रोषध तो उतकिष्ट हि जाणि, मध्यम जघन्य उपवास बखाणि ॥४६३॥
त्रिविधि वासकौं जो निरवहै, सो प्राणी सुरके सुख लहै ।
अब याको जे हैं अतिचार, कहूं जिनागमतें निरधार ॥४६४॥

प्रोषधकी विधि कही है। यह उत्कृष्ट उपवास कर्मसमूहका नाश करता है। इसे करनेवाला मनुष्य देवगतिके सुख प्राप्तकर क्रमसे मोक्षको प्राप्त होता है, ऐसा सत्यवादी जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥४५७॥

अब षट्कर्मोपदेश—श्रावकके छह कर्मोंका उपदेश—देनेवाले श्रावकाचारके अनुसार मध्यम उपवासका विचार करते हैं। उपवासके पूर्व दिन एकाशन करे, पश्चात् जब दो घडी दिन रह जाय तब जल लेकर जिनमन्दिर अथवा अपने ही घर बारह प्रहरके उपवासका नियम धारण करे। घरके सब काम छोड कर बारह प्रहर धर्मध्यानमें व्यतीत करे ॥४५८–४५९॥ जो विधि धारणाके दिनकी कही है वही पारणाके दिनकी कही गई है। तीन दिन तक शील व्रत—ब्रह्मचर्यका पालन करे। इस मध्यम उपवासको करनेवाला अनायास ही देवगतिके सुख प्राप्त करता है ॥४६०॥

जघन्य उपवासको भी भव्यजीव विधिपूर्वक धारण करे। उसकी विधि इस प्रकार है :—जब दिनमें दो घडी शेष रह जावे तबसे अन्न पानीका त्याग कर दे। रात्रिमें शीलव्रतका पालन करे। पर्वके प्रातःकाल उपवासका नियम लेवे। उसकी मर्यादा आठ प्रहरकी होती है। आठ प्रहर तक प्रमाद छोड़ कर धर्मध्यानमें समय व्यतीत करना चाहिये ॥४६१–४६२॥ पारणाके दिन रात्रि–जलका त्याग करे तथा तीन दिन शीलव्रतका पालन करे। ग्रन्थकार कहते हैं कि प्रोषधोपवास तो उत्कृष्ट ही कहलाता है, मध्यम और जघन्य उपवास कहलाते हैं। जो प्राणी इन तीनों

---

१ है नास न० स०

प्रोषधोपवासके अतिचार

छन्द चाल

पोसो धरिहै जिहि भूपरि, देखै नहि ताहि नजर करि ।
इह अतीचार इक जाणी, दूजेको सुनो वखाणी ॥४६५॥
जेती पोसहकी ठाम, प्रतिलेखै नांही ताम ।
दूषण लागै है जाकौ, सुणि अतीचार तीजाकौ ॥४६६॥
पोसो धरणेकी वार, मोचै न मल मूत्र विकार ।
मरज्याादा विनसौ डारै, संथारो जो विसतारै ॥४६७॥
बैठै उठै तजि ठाम, तीजै दूषणको पाम ।
पोसो धरता मनमांही, उच्छवको धारे नांही ॥४६८॥
बिनु आदर ही सों ठानै, मरज्यादा मनमें आनै ।
चौथो इह है अतिचार, अब पंचम सुणि निरधार ॥४६९॥
पठि है जो पाठ प्रमाण, ठीक न ताको कछु जाण ।
इह पाठ पढ्यो इक नांही, अब पढिहों एम कहांही ॥४७०॥
ए अतीचार भणि पंच, भाषै जिन आगम संच ।
पोसो जो भविजन धरिहै, इनको टालो सो करिहै ॥४७१॥

प्रकारके उपवासोंका पालन करते हैं वे देव गतिके सुख प्राप्त करते हैं। अब इस व्रतके जो अतिचार हैं उनका जिनागमके अनुसार कथन करते हैं ॥४६३–४६४॥

प्रोषधोपवास व्रतके अतिचार

जिस भूमि पर प्रोषधका नियम धारण करना है उस भूमिको अच्छी तरह नहीं देखना, यह पहला अतिचार है। अब द्वितीय अतिचारका व्याख्यान सुनो। प्रोषधका जो स्थान है उसका कोमल वस्त्रादिसे प्रतिलेखन––परिमार्जन नहीं करना यह दूसरा अतिचार है। प्रतिलेखन न करनेसे प्रमादजन्य दोष लगता है। अब तृतीय अतिचार सुनो––प्रोषध धारण करनेके समय मलमूत्रादि विकारको नहीं छोडना अर्थात् इन क्रियाओंके करनेमें प्रमादवश लगनेवाले दोषोंको नहीं छोडना, जो सांथरा आदि बिछावे उसे मर्यादापूर्वक अर्थात् देखभाल कर नहीं बिछाना तथा अपना स्थान छोड़ इधर उधर उठना बैठना यह तीसरा अतिचार है। प्रोषध रखते समय मनमें उत्साह नहीं होना, आदरके बिना ही मनमें मर्यादा लेना यह चतुर्थ अतिचार है। अब पंचम अतिचारका वर्णन सुनो—जो पाठ पढ़ता है उसका ठीक ठीक स्मरण नहीं रखना, यह पाठ मैंने पढ़ा है या नहीं पढ़ा है, अब पढ़ूंगा इस प्रकार स्मृतिका ठीक नहीं होना यह पाँचवाँ अतिचार है ॥४६५–४७०॥ जिनागमके अनुसार ये पाँच अतिचार कहे हैं। जो भव्यजीव

फल लहे यथारथ सोई, यामें कछु फेर न जोई ।
प्रोषध व्रतकी इह लीक, माफिक जिन आगम ठीक ॥४७२॥
अरु सकलकीर्तिकृत सार, ग्रंथ हु श्रावक आचार ।
ता मांहै भाष्यो ऐसें, सुणिये ग्याता विधि जैसें ॥४७३॥
उपवास दिवस तजि वीर, छाण्यो सचित्त जो नीर ।
लेते दूषण बहु थाई, उपवास वृथा सो जाई ॥४७४॥
पीवै सो प्रासुक करिकैं, दुतियो जु दरव मधि धरिकैं ।
वैहू विरथा उपवास, लेणो नहि भविजन तास ॥४७५॥
अरु सकतिहीन जो थाई, जलतें तन ह्वै थिरताई ।
तो अधिक उसन इम वीर, विन हुकम किये जो नीर ॥४७६॥
अन्नादिक भाजन केरो, दूषण नहिं लागै अनेरो ।
ऐसो आवै जे पाणी, ताकी विधि एम वखाणी ॥४७७॥
उपवास आठमो वांटो, [1]वहि है इम जाणि निराटो ।
इनमें आछी विधि जाणी, करियै सो भविजन प्राणी ॥४७८॥
संसो मनि इहै न कीजै, प्रोषधमें कबहु न लीजै ।
पोसह विन जो उपवासै, तामैं ऐसी विधि भासै ॥४७९॥

प्रोषधव्रत धारण करते हैं वे जब इनका निराकरण अवश्य करते हैं, तभी यथार्थ फल प्राप्त करते हैं इसमें अन्तर नहीं है। प्रोषधव्रतकी यह विधि जिनागमके अनुसार कही है ॥४७१–४७२॥

अब सकलकीर्ति आचार्य द्वारा विरचित श्रावकाचारमें जैसी विधि कही है उसे हे ज्ञानीजनों! सुनो ॥४७३॥ जो मनुष्य उपवासके दिन अपनी शक्ति छोड़कर छाना हुआ सचित्त पानी लेते हैं उसमें बहुत दोष लगता है, उसका उपवास व्यर्थ हो जाता है; इसलिये जल प्रासुक करके पीना चाहिये। उस पानीमें सोंफ या काली मिर्च आदि दूसरे पदार्थ मिला कर पीते हैं उनका भी उपवास व्यर्थ होता है इसलिये हे भव्यजनों! ऐसा पानी लेना योग्य नहीं है। यदि शक्ति क्षीण हो गई हो और जलसे शरीरमें स्थिरता आती हो तो अपनी आज्ञाके बिना जो गर्म किया गया हो और अन्नादिकके पात्र अर्थात् सकराका दोष जिसमें न हो ऐसा पानी आवे तो उसके लेनेकी विधि कही गई है ॥४७३–४७७॥ उपवासमें जो उपहार आदि बांटते हैं वह भी ठीक नहीं है। इनमें जो अच्छी विधि हो उसे ही भव्य प्राणियोंको करना चाहिये ॥४७८॥ इसमें मन संशयपूर्ण नहीं करना चाहिये। प्रोषधव्रतमें इसे नहीं करना चाहिये किन्तु प्रोषधके दिन जो उपवास किया हो उसमें उपहार आदि बांटनेकी विधि होती

१. घटि है न० स०

उत्तम फलकौं जे चाहैं, ते इह विधि नेम निवाहै ।
उपवास दिवसमें नीर, संकट हू मैं तजि वीर ।।४८०।।
अब सुणहु कथन इक नीको, अति सुखकरि व्रतधर जीको ।
एकांत दिवसकी सांझ, धरि दुतिय दरव जल मांझ ।।४८१।।
प्रासुक करि पीवै नीर, तामैं अति दोष गहीर ।
एकासण जब सु करांही, जल असन लेइ इक ठांही ।।४८२।।
जिन आगमकी इह रीति, उपरांत चलण विपरीत ।
जल लेण सांझ ठहरायो, सबही मनि यों ही भायो ।।४८३।।
तो दूजो दरव मिलाई, लैणो नहि योग्य कहाही ।
ताको दूषण इह जाणौ, भोजन दूजा जिम छांणौं ।।४८४।।
भोजन जिहि बिरियां कीजै, पाणी तब उसन धरीजै ।
कै प्रासुक पाणी लीजै, कै शक्ति जांणि तजि दीजै ।।४८५।।
कुमती ढुंढ्यादिक पापी, जिनमततैं उलटी थापी ।
हांडीको धोवण लेई, चावल धोवै जल लेई ।।४८६।।
तिणकौं प्रासुक जल भाखै, ले जाय सांझको राखै ।
इक तो जल काचौ जाणी, अन्नादिक मिली तसु आणी ।।४८७।।

है ।।४७९।। जो मनुष्य उत्तम फलको चाहते हैं वे इस नियमका निर्वाह करें कि कितना ही संकट हो फिर भी उपवासके दिन जल ग्रहण न करें ।।४८०।।

अब एक हितकारी कथन सुनो जो व्रती मनुष्यके हृदयको अतिशय सुखकारी है। कितने ही लोग एकासनके दिन संध्या समय जलमें काजू, किसमिस या बादाम, दो तीन पदार्थ मिला कर तथा उसे प्रासुक कर पीते हैं सो इसमें बहुत भारी दोष है। जिनागममें तो यह रीति बतलाई है कि जब एकासन करे तब एक ही स्थान पर बैंठ कर भोजन पानी ग्रहण करना चाहिये इसके उपरांत प्रवृत्ति करना विपरीत है। संध्या समय जल लेना यह यदि सबको रुचिकर है तो उसमें दूसरे पदार्थ मिला कर लेना सर्वथा योग्य नहीं है। उसके लेनेमें दोष यह है कि वह दूसरा भोजन होगा और उससे एकासन व्रत खण्डित हो जायगा ।।४८१–४८४।। जिस समय भोजन करे उस समय गर्म पानी लेना चाहिये। संध्याके समय यदि पानी लेनेकी आवश्यकता हो तो मात्र गर्म पानी लेना चाहिये अथवा शक्ति है तो बिलकुल ही त्याग कर देना चाहिये ।।४८५।।

मिथ्यामती पापी ढूढिया आदिकने जिनमतमें विपरीत रीति चला दी है। वे हंडी धोनेके जलको अथवा चावल धोनेके जलको लेते हैं। ऐसे ही जलको वे प्रासुक जल कहते हैं। गृहस्थोंके घरसे ले जाकर ऐसे जलको वे संध्या तक रखे रहते हैं। प्रथम तो वह जल कच्चा

तामैं घटिका दो मांही, प्राणी निगोदिया थांही ।
ताकै अघको नहि पार, मिथ्यामत भाव विकार ॥४८८॥

उक्तं च गाथा—

अन्नजलं किंचिठिई, पच्चक्खाणं न भुंजए भिक्खू ।
घडी दोय अंतरिया, णिगोइया हुंति बहु जीवा ॥४८९॥

दोहा

जो पोसह विधि आदरै, ते सुख पावै धीर ।
प्रमाद सेवै तु मुगध, किम लहिहैं भवतीर ॥४९०॥

भोगोपभोग परिमाण नामक तृतीय शिक्षाव्रतका कथन

चौपाई

व्रत भोगोपभोग जे धरैं, दोय प्रकार आखडी करैं ।
यम मरयाद मरण पर्यंत, नियम सकति माफिक धरि संत ॥४९१॥
अन्न पान आदिक तंबोल, अंजन तिलक कुंकुमा रोल ।
अतर अरगजा तेल फुलेल, ते [1]सब वस्तु भोगके खेल ॥४९२॥
एक वार ही आवै काम, बहुरि न दीसै ताकौ नाम ।
ते सब भोग वस्तु जाणिये, ग्रंथ कथन लखि एम माणिये ॥४९३॥

रहता है फिर अन्नादिकके कण उसमें मिल जाते हैं अत: दो घडीके भीतर उसमें निगोदिया (संमूर्च्छन) जीव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे पानीको जो पीते हैं उनके पापका पार नहीं है। यह मिथ्यामत भावोंको विकृत करने वाला है ॥४८६–४८८॥

जैसा कि कहा है--अन्न मिश्रित जलकी कोई मर्यादा नहीं है, उसका त्याग ही करना चाहिये। साधु ऐसे जलका सेवन न करे क्योंकि उसमें दो घडीके भीतर बहुत निगोदिया जीव उत्पन्न हो जाते हैं ॥४८९॥ ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि जो इस प्रोषधविधिका आदर करते हैं--श्रद्धापूर्वक उसका पालन करते हैं वे धीर वीर सुख प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत जो अज्ञानी जन प्रमाद करते हैं वे संसारसागरके तटको कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? ॥४९०॥

आगे भोगोपभोगपरिमाण नामक शिक्षाव्रतका कथन करते हैं--

जो भोगोपभोगपरिमाणव्रतको रखते हैं वे दो प्रकारकी प्रतिज्ञा लेते हैं--एक यमरूप और दूसरी नियमरूप। जो मर्यादा मरण पर्यन्तके लिये की जाती है वह यम कहलाती है और जो शक्तिके अनुसार कुछ समयके लिये की जाती है उसे नियम कहते हैं ॥४९१॥ अन्न, पानी, तांबूल, अंजन, तिलक, कुंकुम या रोली, इत्र, अरगजा, तेल और फुलैल ये सब वस्तुएँ भोग कहलाती हैं। जो एक ही बार काममें आवे, दूसरी बार जिसका नाम न लिया जाय उसे भोग कहते

---

१ सहु न०

वस्त्र सकल पहिरनके जिते, निज घरमें आभूषण तिते ।
रथ वाहन डोली सुखपाल, वृषभ ऊँट हय गय सुविशाल ।।४९४।।
वनिता अरु सज्याको साज, भाजन आदिक वस्तु समाज ।
बार बार [1]उपभोगवि जेह, सो उपभोग नहीं संदेह ।।४९५।।
तिन दोन्यूंमें सकति प्रमाण, यम वा नियम करै जो जाण ।
जनम पर्यंत त्याग यम जांणि, वरस मास पखि नियम वखाणी ।।४९६।।
दिन वा पहर घडी मरयाद, करै सदैव तजै परमाद ।
किये प्रमाण महा फल सार, विन संख्या फल नहीं लगार ।४९७।।

दोहा

सुणहु भोग उपभोगके, अतीचार पण तेह ।
[2]इनहि टालि व्रत पालिहै, विरती श्रावक जेह ।।४९८।।

छन्द चाल

भेलै सचित्त जो आंही, भोगनकी वस्तु जु मांही ।
उपभोग वसन भूषणमैं, [3]कुसुमादिक है दूषणमै ।।४९९।।
एह अतीचार गणि एक, दूजो सुनि धरि सुविवेक ।
भोजन पातरि परिआवै, अरु सचित थकी ढकि ल्यावै ।।५००।।

हैं । इनका शास्त्र देख कर निर्धार करना चाहिये ।।४९२–४९३।। अपने घरमें पहिननेके जो वस्त्र है, जो आभूषण है, रथ, वाहन, डोली, सुखपाल (मियानो), बैल, ऊँट, घोड़ा, हाथी, स्त्री, शयन करनेकी शय्या तथा बिस्तर आदि सामग्री, और बर्तन आदि जितनी वस्तुएँ हैं वे बार बार भोगनेमें आनेसे उपभोग कहलाती हैं इसमें संदेह नहीं है ।।४९४–४९५।। उन भोग-उपभोगरूप दोनों प्रकारकी वस्तुओंका शक्तिके अनुसार यम अथवा नियमरूप परिमाण करना चाहिये । जन्मपर्यन्तके लिये जो त्याग किया जाता है उसे यम कहते हैं और वर्ष, माह, पक्ष, एक दिन, अथवा प्रहर, घडी आदिके लिये जो त्याग किया जाता है उसे नियम कहते हैं । प्रमाद छोड़कर सदा इनका परिमाण करना चाहिये, क्योंकि परिमाण करनेसे महान फलकी प्राप्ति होती है और परिमाणके बिना कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता ।।४९६–४९७।। आगे भोगोपभोग-परिमाण व्रतके पाँच अतिचार सुनो । इन्हें टालकर व्रती श्रावक व्रतका पालन करते हैं ।।४९८।।

भोगकी वस्तुओंमें मिले हुए किसी सचित्त पदार्थका सेवन करना और उपभोगकी वस्त्र-आभूषण आदि वस्तुओंमें पुष्पमाला आदि सचित्त वस्तुको धारण करना यह सचित्ताहार नामका पहला अतिचार है । अब विवेक धारण कर दूसरा अतिचार सुनो । जो भोजन सचित्त पत्तल पर परोसा गया है और सचित्त पत्तलसे ढका हुआ हैं अथवा वस्त्रादिकसे ढक कर लाया

१ भोगिये जेहि स० २ तिनहि स० ३ कुसुमादि गहै न०

अथवा [1]वस्त्रादिक जांणि, धरि ढकि अर आणै प्राणी ।
वह दूजो दोष गणीजै, तीजो अब भवि सुणि लीजै ॥५०१॥

जे सचित अचित बहु वस्तु, भेलै मिलि जाय समस्तु ।
जाको लेकै भोगीजै, यह अतीचार गणि लीजै ॥५०२॥

मरयाद भोग उपभोग, कीनो जो वस्तु नियोग ।
तिहतैं जो लेय सिवाय, चौथो यह दूषण थाय ॥५०३॥

कछु कोरो कछु यक सीजै, अथवा [2]दाह्यो गह लीजै ।
लघु भूख लेई अधिकाई, अति दुखकरि असन पचाई ॥५०४॥

दुहु पक्व आहार सु जानी, पंचम अतिचार बखानी ।
भोगोपभोग व्रत पारी, टालै इनको हित धारी ॥५०५॥

दोहा

कथन भोग उपभोगकौ, कियो यथावत सार ।
आगै अतिथि विभागकौ, सुणियो भवि निरधार ॥५०६॥

चतुर्थ शिक्षाव्रत अतिथि-संविभाग व्रतका वर्णन

चौपाई

प्रथम आहारदान जानिये, दुतिय दान औषध मानिये ।
तीजो शास्त्रदान है सही, [3]अभयदान फुनि चौथो कही ॥५०७॥

गया है वह सचित्त सम्बन्धाहार नामका दूसरा अतिचार है। अब हे भव्यप्राणियों ! तीसरे अतिचारका वर्णन सुनो । परस्पर मिली हुई सचित्त अचित्त वस्तुओंका सेवन करना सचित्त संमिश्राहार नामका तीसरा अतिचार है। भोगउपभोगकी वस्तुओंकी जितनी मर्यादा की है उससे अधिक ग्रहण करना यह मर्यादातिक्रम* नामका चौथा अतिचार है । कुछ कच्चे, कुछ पक्के और कुछ जले हुए आहारको ग्रहण करना, अथवा भूख कम हो किन्तु अधिक भोजन कर लेना, अथवा जो कष्टसे हजम हो ऐसे गरिष्ठ आहारको लेना दुष्पक्वाहार नामका पाँचवाँ अतिचार है। इस प्रकार भोगोपभोग परिमाण व्रतके पाँच अतिचार कहे। व्रतके धारक मनुष्योंको इन्हें टालना चाहिये ॥४९९-५०५॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि इस तरह भोगोपभोग परिमाण व्रतका यथार्थ वर्णन किया। अब अतिथिसंविभाग व्रतका वर्णन सुनो ॥५०६॥

प्रथम आहारदान, द्वितीय औषधदान, तृतीय शास्त्रदान और चतुर्थ अभयदान, इस प्रकार दानके चार भेद जानने चाहिये। आहारदान देनेसे अनेक भोगोंकी प्राप्ति होती है ।

---

१ पात्रादिक स० २ वार्यो न० ३ चौथो अभयदान है सही स०

* अन्य ग्रन्थोंमें इसके स्थान पर अभिषवाहार नामका अतिचार माना गया है जिसका अर्थ होता है गरिष्ठाहार ।

लहै आहार थकी बहु भोग, औषधतें तनु होय निरोग ।
अभय थकी निरभय पद पाय, शास्त्रदानतें ज्ञानी थाय ।।५०८।।
[1]अत्र पातरकौ सुणहु विचार, जैसो जिन आगम विस्तार ।
पात्र कुपात्र अपात्र हि जाण, दीजै जिम तिम करहुं वखाण ।।५०९।।
पात्र प्रकार तीन जांनिये, उत्तम मध्यम जघन्य मांनिये ।
मुनिवर श्रावक दरसण धार, कहै सुपात्र तीन विधि सार ।।५१०।।
तीन तीन तिहुं भेद प्रमाण, सुणहु विवेकी तास वखाण ।
उत्तममें उत्तम तीर्थेश, उत्तममें मध्यम हैं गणेश ।।५११।।
मुनि सामान्य अवर है जिते, उत्तम मध्यम जघन्य है तिते ।
मध्यम पात्र तीन परकार, तिहिमाहे उत्तम [2]मुनि सार ।।५१२।।
क्षुल्लक एलक दुहुं ब्रह्मचार, अरु दसमी प्रतिमा व्रत धार ।
मध्यममांहि उत्तम ए जाण, मध्यममांहि मध्यम कहुं वखाण ।।५१३।।
सात आठ नव प्रतिमा धार, मध्यममें मध्यम पातर सार ।
पहिलीतें षष्ठी पर्यंत, मध्यममें जघन्य भणि सन्त ।।५१४।।
दरसनधारी जघन्य मझार, उत्तम क्षायिक समकित धार ।
क्षयोपशमी मध्यम गनि लेहु, जघन्य उपशमी जानौ एहु ।।५१५।।

औषधदानसे शरीर नीरोगी रहता है। अभयदानसे निर्भय पद प्राप्त होता है और शास्त्रदानसे मनुष्य ज्ञानी होता है ।।५०७–५०८।। अब पात्रका विचार सुनो जैसा कि जिनागममें विस्तारसे कहा गया है । पात्र, कुपात्र और अपात्र ये तीन प्रकारके पुरुष हैं उनमें जिन्हें आहार दिया जाता है उनका व्याख्यान करते हैं । उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे पात्र तीन प्रकारके जानने चाहिये । उत्तम पात्र मुनिराज, मध्यम पात्र श्रावक और जघन्य पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि हैं । ये तीनों सुपात्र हैं ।।५०९–५१०।। इन तीनों सुपात्रोंके उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन तीन भेद जानने चाहिये । हे विवेकीजनों ! इन भेदोंका व्याख्यान सुनो। उत्तममें उत्तम पात्र तीर्थङ्कर है, उत्तममें मध्यम पात्र गणधर है और इनके सिवाय जितने अन्य मुनि हैं वे उत्तममें जघन्य पात्र हैं । मध्यम पात्र भी तीन प्रकारके हैं उनमें एलक क्षुल्लक तथा दशम प्रतिमाधारी मध्यममें उत्तम पात्र हैं, सातवीं, आठवीं और नवमी प्रतिमाके धारी मध्यममें मध्यम पात्र है तथा पहलीसे छठवीं प्रतिमा तकके श्रावक मध्यममें जघन्य पात्र कहलाते हैं ।।५११–५१४।। अविरत सम्यग्दृष्टियोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि उत्तम पात्र हैं, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि मध्यम

---

१ अब पात्रदानको सुनहु विचार स. २ व्रत धार स०

दोहा

उत्तम पात्र सु तीन विधि, तिनहि भेद नव जान ।
पुनि कुपात्र तिहुं भेदको, वरनन कहुं बखान ॥५१६॥

छन्द चाल

गुन मूल अठाइस धार, [1]चारित तेरा परकार ।
मुनिवर पदकौ प्रतिपाल, तप करै कठिन दर हाल ॥५१७॥
[2]समकित बिन जीवन जाकौ, मिथ्यात उदै है ताकौ ।
ऐसो कुपात्र तिनमांही, उत्कृष्ट कुपात्र कहांही ॥५१८॥
व्रतधर श्रावक है जेह, मध्यम कुपात्र भनि तेह ।
गुरु देव शास्त्र मनि आनै, आपा पर कबहुं न जानै ॥५१९॥
वाहिज कहै मेरे ठीक, अंतरगति सदा अलीक ।
ते जघन कुपात्र हि जानो, सरधानी मनमें आनो ॥५२०॥

दोहा

कह्यो कुपात्र विशेष इह, [3]जिनवायक परमाण ।
अब अपात्रके भेद तिहुं, सो सुणि लेहु सुजाण ॥५२१॥

छन्द चाल

अंतर समकित नहि जाकै, बाहिर मुनिक्रिया न ताकै ।
विपरीत रूपके धारी, जिह्वादिक लंपट भारी ॥५२२॥

पात्र हैं और औपशमिक सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं ॥५१५॥ इस प्रकार तीन उत्तम पात्रोंके नौ भेद जानने चाहिये। अब आगे कुपात्रोंका वर्णन करतें हैं ॥५१६॥

जो अट्ठाईस मूलगुणोंको धारण करते हुए तेरह प्रकारका चारित्र रखते हैं, मुनिपदका पालन करते हैं और कठिन तपश्चर्या करते हैं परन्तु अंतरंगमें मिथ्यात्वका उदय रहनेसे जिनका जीवन सम्यग्दर्शनसे रहित है वे उत्कृष्ट कुपात्र कहलाते हैं ॥५१७–५१८॥ जो बाह्यमें श्रावकके व्रत धारण करते हैं परन्तु अंतरंगमें सम्यग्दर्शनसे रहित हैं वे मध्यम कुपात्र हैं; और जो देव, शास्त्र, गुरुकी तो श्रद्धा करते हैं परन्तु स्व-परका कुछ भेद नहीं जानते, बाह्यमें तो कहते हैं कि मेरे सब ठीक है परन्तु अन्तर्गति सदा मिथ्या रहती है वे जघन्य कुपात्र कहलाते हैं ऐसी श्रद्धा मनमें करो ॥५१९–५२०॥ इस प्रकार यह जिनागमके अनुसार कुपात्रोंका विशेष वर्णन किया। अब अपात्रोंके भेद कहते हैं सो सुनो ॥५२१॥

जिनके अंतरंगमें सम्यक्त्व नहीं है, बहिरंगमें मुनिकी क्रिया नहीं है, विपरीत रूपके जो धारी हैं तथा जिह्वादिक इन्द्रियोंके भारी लंपटी हैं वे उत्कृष्ट अपात्र हैं। अतिशय बुद्धिमान

---

१ वनवासी है तप चारा स० २ समकित शिवबीज न जाके, मिथ्यात उदै हैं ताके न० स० ३ जिनवरवचन प्रमाण स०

उतकिष्ट अपात्र जै लच्छन, परखैं अति परम विचच्छन ।
ऐसें ही मध्यम जानौ, समकित विनु व्रत मनि आनौ ॥५२३॥
तनु स्वेत वसनके धारी, मानै हम हैं ब्रह्मचारी ।
दूजौ अपात्र लखि यों ही, सुनि जघन अपातर जो ही ॥५२४॥
गृहपति सम वसन धरांही, मिथ्या मारग चलवांही ।
नर नारिनि कौं निज पाय, पाडैं अति नवन कराय ॥५२५॥
वचन आप चिरंजी भाखैं, मनमैं निज गुरुपद राखैं ।
मिथ्यात महा घट व्यापी, ए जघन [1]अपात्र जे पापी ॥५२६॥
बाहिज अभ्यंतर खोटे निति पाप उपावैं मोटे ।
श्रुतदेव विनौ नहि जाणै, नवरस युत ग्रंथ वखाणै ॥५२७॥
रुलिहै भवसागर मांही, यामैं कछु संसै नांही ।
इनके वंदक जे जीव, दुरगति महि भमइ सदीव ॥५२८॥

दोहा

पात्र कुपात्र अपात्रके, भेद भने सब पांच ।
तिनकी साखा पंचदस, चिहन कहै सब सांच ॥५२९॥

लोग इन चिह्नोंसे उनकी परीक्षा करते हैं। इन्हींके समान मध्यम अपात्रोंको जानना चाहिये। ये सम्यक्त्व रहित होते हुए व्रतोंके पालनकी इच्छा रखते हैं, शरीर पर श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और अपनेको ब्रह्मचारी मानते हैं, इन्हें द्वितीय अपात्र जानना चाहिये। अब जो जघन्य अपात्र हैं उनका वर्णन सुनो ॥५२२–५२४॥

जो गृहस्थोंके समान वस्त्र रखते हैं, मिथ्यामार्ग चलाते हैं, नर नारियोंसे अपने पैर पुजवाते हैं, नमस्कार कराते हैं, आशीर्वादके रूपमें उन्हें 'चिरंजीव' कहते हैं, मनमें अपने आपको गुरु मानते हैं, परन्तु जिनके हृदयमें महा मिथ्यात्व व्याप्त हो रहा है वे पापाचारी जघन्य अपात्र हैं। ये जघन्य अपात्र बाह्य और अंतरंगके खोटे हैं, निरन्तर स्थूल पाप करते है, देव शास्त्रकी विनय नहीं जानते, नौ रसोंसे युक्त मिथ्या शास्त्रोंका व्याख्यान करते हैं। ग्रंथ कर्ता कहते हैं कि ऐसे जीव संसारसागरमें ही रुलते हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो जीव इनकी वंदना करते हैं वे सदा दुर्गतियोंमें भ्रमण करते हैं ॥५२५–५२८॥

पात्र, कुपात्र और अपात्रके पाँच भेद कहे। इनके शाखा भेद पन्द्रह होते हैं। इन सबके जो यथार्थ लक्षण है उनका कथन किया हैं। ॥५२९॥ अब श्रावक इन्हें जिस विधिसे आहार देता

---

१ अपातर पापी न० स०

अब इनकों आहार जू, श्रावक जिहि विधि देव ।
सो वरनन संक्षेपतैं, भवि चित धरि सुनि लेव ।।५३०।।
दोष छियालिस टालिकै, श्रावकके घरमांहि ।
व्रती जोग निपजै असन, सुखकारी सक नांहि ।।५३१।।

छन्द चाल

दिनपतिकी घटिका सात, चढिया श्रावक हरषात ।
द्वारापेखणकी वार, फासू जल निज कर धार ।।५३२।।
मुनिवर आयो पडिगाहै, अति भक्तिवंत उरमांहै ।
दातार तणें गुण सात, ता मांहै है [1]विख्यात ।।५३३।।
फुनि नवधा भक्ति करेहि, अति पुन्य महा संचेइ ।
निज जनम सफल करि जाणैं, बहुविधि मुनि [2]स्तुति वखाणैं ।।५३४।।
मुनिवर वन गमन कराई, पीछै अति ही सुखदाई ।
भोजनसालामें जाई, जीमें श्रावक सुचि पाई ।।५३५।।
जो द्वारापेखण मांही, मुनिवर नहिं जोग मिलाहीं ।
तो निज अलाभ करि जाणै, चिंता मनमैं अति [3]आणै ।।५३६।।
हियमैं ऐसी ठहराय, हम अशुभ उदै [4]अधिकाय ।
करिहै श्रावक उपवास, अथवा रसत्याग प्रकास ।।५३७।।

है उस विधिका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ सो हे भव्यजनों ! चित्तको स्थिर कर सुनो ।।५३०।। छियालीस दोष टालकर व्रतीजनोंके योग्य आहार श्रावकके घर बनता है इसमें संशय नहीं है ।।५३१।।

जब सूर्य सात घडी चढ़ जाता है तब श्रावक यह विचार कर हर्षित होता है कि द्वाराप्रेक्षणका समय हो गया। वह अपने हाथमें प्रासुक जलका कलश ले द्वार पर खड़ा होता है। ज्यों ही मुनिराज आते हैं त्यों ही वह हृदयमें भक्तियुक्त होता हुआ उन्हें पड़गाहता है। दातारमें जो श्रद्धा, भक्ति, तुष्टि आदि सात गुण बतलाये हैं वे उस श्रावकमें होते हैं। पड़गाह कर वह नवधाभक्ति कर महान पुण्यका संचय करता है, अपने जन्मको सफल जानता हुआ नाना प्रकारसे मुनिराजकी स्तुति करता है। जब आहार लेकर मुनिराज वनको चले जाते हैं तब वह अत्यन्त सुखका अनुभव करता है। पश्चात् अपनी भोजनशालामें जाकर शुद्धतापूर्वक भोजन करता है। यदि कदाचित् द्वाराप्रेक्षण करने पर मुनिराजका योग नहीं मिलता है तो अपने अलाभकर्मका उदय जान मनमें चिन्ता करता है। वह ऐसा विचार करता है कि आज हमारे अशुभकर्मका तीव्र उदय है जिसके कारण मुनिराजका योग नहीं मिला। ऐसा विचार कर वह श्रावक उपवास करता है अथवा रस परित्याग कर भोजन करता है ।।५३२-५३७।।

---

१ संख्यात न० २ थुतय स० सतुति न० ३ ठाणे स० ४ कछु आय स०

सोरठा

दान थकी फल होय, जो उत्कृष्ट सुपात्रकौं ।
सो सुणियो भवि लोय, अति सुखकारी है सदा ।।५३८।।

सवैया

तीर्थङ्कर देवनिकौ प्रथम आहार देय,
वह दानपति तदभव मोक्ष जाय है ।
पीछै दान देनहार दृगकौं धरैया सार
श्रावक सुव्रत धार ऐसो नर थाय है ।
जो पै मोक्ष जाय तो तो मनै न कहाया कहूं
निश्चय हूं नाहि देवलोककौं सिधाय है ।
पायकैं अनेक रिद्धि नर सुरकी समृद्धि
निकट सुभव्य निरवाण पद पाय है ।।५३९।।

उतकिष्ट पात्रनिमें उतकिष्ट तीर्थङ्कर
तिनि दानको तो फल प्रथम बखांनियो ।
अब उतकिष्ट त्रिकमांहि रहै मध्य फुनि,
जघन मुनीस दान फल ऐसो जांनियो ।
दानी दृग व्रत धारी तिनही असन दिये,
कलप वसैया सुर ह्वै है सही मांनियो ।
अवर विशेष कछु कहनो जरूर इहां,
तेउ सुनो भव्य सुखदाई मनि आंनियो ।।५४०।।

अब उत्कृष्ट सुपात्रको दान देनेका जो फल होता है उसे हे भव्यजनों! सुनो। वह फल सदा सुखकारी होता है ।।५३८।। जो तीर्थङ्करको प्रथम आहार देता है वह दानपति कहलाता है और उसी भवसे मोक्ष जाता है। प्रथम आहारके बाद जो द्वितीयादिक आहार देते हैं वे सम्यग्दृष्टि श्रावकके व्रत धारण कर उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। यदि कोई मोक्ष जाता है तो उसका निषेध नहीं है। परन्तु प्रथम आहार देनेवालेके समान निश्चय–नियम नहीं है। इतना नियम अवश्य है कि वह देव गतिको प्राप्त होता है। वह निकटभव्य मनुष्य और देव गतिकी अनेक ऋद्धियोंको तथा समृद्धियोंको प्राप्त कर निर्वाणपदको प्राप्त होता है ।।५३९।। तीर्थङ्कर, उत्कृष्ट पात्रोंमें उत्कृष्ट पात्र हैं अतः उनके दानका फल पहले कहा है। अब उत्कृष्ट पात्रोंके तीन भेदोंमें जो मध्यम और जघन्य पात्र हैं उनके दानका फल ऐसा जानना चाहिये। यदि दान देने वाला सम्यग्दृष्टि हैं तो वह कल्पवासी देव होता है इसमें संशय नहीं मानना चाहिये। इस प्रकरणमें कुछ विशेष कहना आवश्यक है सो हे

प्रथम मिथ्यात भाव मध्य बंध मानवकै,
पर्यों पीछैं द्दग पाय व्रत धरि लियो है ।
फुनि मुनिराजनिकौ त्रिविध सुविधि जुत,
दोष अंतराय टालि असनजु दियो है ।
ताहि बंध सेती उतकिष्ट भोगभूमि जाय,
जुगल्या मनुज थाय पुन्य उदै कियो है ।
तहां आयु पूरी करि देवपद पाय अहो,
मुनिनकौं दान देति ताकौ धनि जियो है ॥५४१॥

सुख उतकिष्ट भोगभूमिके कछुक ओजौं,
कहूं तीन पल्य तहां आयु परमांनियै ।
कोमल सरल चित्त पादप कलप नित्य,
दस परकार नाना विधि भोग दांनियै ।
जुगल जनम थाय मात पिता खिर जाय,
छींक औ जमाही पाय ऐसी विधि मानियै ।
निज अंगूठाको सुधारस पान करि दिन,
[1]इकईस मांझ तनु पूरनता ठांनियै ॥५४२॥

भव्यजनों! मनमें सुख देने वाले उस विशेष कथनको सुनो ॥५४०॥ यदि किसी मनुष्यने मिथ्यात्व अवस्थामें पहले मनुष्यायुका बन्ध कर लिया है, पश्चात् सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर व्रतधारी हुआ है; वह यदि किन्हीं मुनिराजको मन वचन काया अथवा कृत कारित अनुमोदनासे विधिपूर्वक दोष और अन्तराय टालकर आहार देता है तो वह पूर्वबन्धके अनुसार उत्कृष्ट भोगभूमिमें युगलरूपसे मनुष्य होता है। पुण्योदयसे वहाँकी आयु पूर्णकर देवपद प्राप्त करता है। ग्रन्थकार कहते हैं कि जो मुनियोंको आहारदान देते हैं उन्हींका जीवन धन्य है ॥५४१॥

अब उत्कृष्ट भोगभूमिके सुखोंका कुछ कथन करते हैं। वहाँ तीन पल्यकी आयु होती है। वहाँके मनुष्य कोमल और सरल चित्त वाले होते हैं। दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे नाना प्रकारके सुख भोगते हैं। उनका युगल जन्म होता है, जन्म लेते ही मातापिताका जीवन समाप्त हो जाता है, माताको छींक और पिताको जम्हाई आनेसे उनकी मृत्यु हो जाती है। वहाँकी यही रीति माननी चाहिये। अपने अंगूठेमें संचित अमृत रसका पान कर वे युगल–युगला इक्कीस दिनके भीतर शरीरकी पूर्णताको प्राप्त हो जाते हैं ॥५४२॥ तीन दिन बीतनेके

---

१ उनचास स०

दोहा

तीन दिवस बीतै पछै, लघु बदरी परिमाण ।
लेय अहार सुखी महा, अरु निहार नहि जाण ।।५४३।।

उत्तम पात्र आहारको, दाता फल अति सार ।
पावै अचरिज कछु नहीं, अब सुनियो निरधार ।।५४४।।

कृत कारित अनुमोदना, तीनहुं सम सुख देन ।
कही भली ताकी कथा, कहूं यथा जिन वैन ।।५४५।।

छप्पय छन्द

वज्रजंघ श्रीमती [1]सर्प सरवरके ऊपरि,
चारण जुगल सुमुनि हि भक्तिजुत दियो असन परि;
तहां सिंघ अरु [2]सूर नकुल वानर चहुं जीव हि,
करि अनुमोदन बंध लियो सुखयुगल अतीव हि;
सुर होइ भुगति नर सुर सुखहि, पुत्र वृषभ तीर्थेशके ।
हुइ धरि उग्र तप कौं भए सिवतियपति नव वेसके ।।५४६।।

वज्रजंघ नृप आप अवर श्रीमती त्रिया भनी,
भोगभूमि ह्वै जुगल भुगति सुरसुखहि विविधनी;

पश्चात् वे छोटे बेरके बराबर आहार लेते हैं, अत्यन्त सुखी होते हैं और निहार–मलमूत्रकी बाधासे रहित होते हैं ।।५४३।। उत्तम पात्रको आहार देनेसे दाता अत्यन्त श्रेष्ठ फलको प्राप्त होता है इसमें आश्चर्य नहीं है । अब एक निर्धार निर्णय सुनो। दानके विषयमें कृत, कारित और अनुमोदना–तीनों ही समान फल देते हैं । इसकी जिनागमके अनुसार उत्तम कथा कहता हूँ ।।५४४–५४५।।

भगवान आदिनाथके भवान्तरोंकी कथा है। जब वे वज्रजंघकी पर्यायमें थे तब उन्होंने अपनी रानी श्रीमतीके साथ सर्प सरोवरके तटपर चारणऋद्धिके धारक युगल मुनियोंको भक्तिभावसे आहार दिया था । आहार देते समय सिंह, शूकर, नकुल और वानर ये चार जीव भी वहाँ खडे थे । उन्होंने दानकी अनुमोदना कर भोगभूमिका बन्ध कर लिया। वहाँसे देव होकर पश्चात् मनुष्य और देव होते हुए वे भगवान वृषभदेवके पुत्र हुए और उग्र तप धारण कर मुक्तिवधूके स्वामी हुए ।।५४६।। राजा वज्रजंघ और उनकी रानी श्रीमती भोगभूमिमें युगल हुए । वहाँके सुख भोग कर देव हुए। पश्चात् मनुष्य और देवोंकी ऋद्धियोंका सुख भोग कर दशवें भवमें

---

१ साथ क० २ सूकर क०

फुनि दिववासी देव नृपति रिधि भुगती सुखदायक,
दशमैं भव नृप जीव तीर्थङ्कर वृषभ सुखदायक;
श्रीमतीय जीव श्रेयांस हुइ, ऋषभनाथको दान दिय ।
दुहू पात्र दानपति तप विमल करि होय सिद्धसुख अमित लिय ।।५४७।।

दोहा

कृत कारित अनुमोदिकी, कही सुणी हित धारि ।
अति विशेष इच्छा सुणन, महापुराण मझारि ।।५४८।।
इहां प्रसन कोऊ करै, मिथ्यादृष्टी कोय ।
बाहिज श्रावक पद क्रिया, कही यथावत होय ।।५४९।।
भावलिंग मुनि तास घरि, [1]जुगत आहार क नांहि ।
सो मुझकूं समझाय कहु, जिम संसय मिटि जांहि ।।५५०।।
अथवा श्रावक दृग सहित, [2]किरिया पात्र प्रसार ।
द्रव्यलिंग मुनिराजकौं, देय क नहीं आहार ।।५५१।।

छन्द चाल

ताके मेटन संदेह, अब सुनियै कथन सु एह ।
जैसें सुनियौं जिनवानी, तैसै [3]मैं कहूं बखानी ।।५५२।।
श्रावककी किरिया सार, [4]मिथ्या तन छांडी लार ।
चरया बिरियां मुनि राई, [5]आई जो लेइ घटाई ।।५५३।।

राजा वज्रजंघ वृषभदेव तीर्थङ्कर हुए और श्रीमतीका जीव राजा श्रेयांस हुआ जो भगवान वृषभदेवको आहारदान देकर दानपति कहलाया और निर्मल तप कर मोक्षके अपरिमित सुखको प्राप्त हुआ ।।५४७।। इस प्रकार कृत कारित अनुमोदनाकी जैसी हितकारक कथा मैंने सुनी वैसी कही । यदि विशेष सुननेकी इच्छा हैं तो महापुराणमें देखो ।५४८।।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव, बाह्यमें श्रावककी जैसी क्रिया कही है उसका पालन करता है उसके घर भावलिंगी मुनि, योग मिलने पर आहार लेंगे या नहीं ? यह बात समझाकर कहिये जिससे मनका संशय दूर हो जावे ।।५४९–५५०।। अथवा श्रावककी क्रियाका पालन करने वाला सम्यग्दृष्टि श्रावक द्रव्यलिंगी मुनिको आहार देगा या नहीं ? ।।५५१।। प्रश्नकर्ताके उक्त संशयको दूर करनेके लिये ग्रन्थकार कहते हैं कि इस प्रश्नका उत्तर जैसा जिनवाणीमें सुना है वैसा कहता हूँ ।५५२।।

श्रावककी क्रिया मिथ्यात्वके संपर्कसे रहित होती है इसलिये चर्याके समय जब मुनिराज

---

१ लेत आहार के नांहि क० २ क्रिया पात्र जो सार स० ३ कछु न० स० ४ मिथ्याती छोडि लगार स० ५ आये जो ले पडिगाहे स०

मुनि ग्यानवान जो थाय, निरदोष आहार गहाय ।
द्रव्य श्रावककौं जांनि, ताकौं नहि दूषन मांनि ।।५५४।।
मुनि असन नियम नहि एह, दृगव्रत धारीहिकै लेह ।
किरिया सुध जाकौं होई, तहँ लेई आहार सक खोई ।।५५५।।
दरसनजुत श्रावक होई, द्रव्य मुनि जो आवै कोई ।
जानैं विनु देय आहार, ताकौं नहि दोष लगार ।।५५६।।
श्रावक जांणै जो तेह, मिथ्यादृष्टी मुनि एह ।
[1]ताको न भूल पडिगाहीं, समकित गुण तामैं नाहीं ।।५५७।।
निज दरसनकौं भवि प्राणी, दूषण न लगावै जाणी ।
जिनकै निति इह व्यापार, चालै निज बुद्धि विचार ।।५५८।।
कोऊ बूझै फिरि ऐसें, विनु ग्यान सरावग कैसें ।
मुनि केम परीक्षा जानी, यम हिरदै या न समानी ।।५५९।।
उत्तर सुणि अब अति ठीक, यामैं कछु नाहि अलीक ।
प्रथमहि श्रावक गुण पालै, पातर लखि लै तत्कालै ।।५६०।।

आते हैं तब वे श्रावककी क्रियाका मिलान कर लेते हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवकी चालढाल मुनिराज अपने ज्ञानसे समझ लेते हैं । यदि श्रावककी प्रवृत्ति ठीक दीखती है तो उसके घर मुनिराज निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं । जो बाह्यमें श्रावककी क्रियाका पालन करता है उसके यहाँ आहार लेनेमें दूषण नहीं है । मुनिके आहार विषयक ऐसा कोई नियम नहीं है कि वे सम्यग्दृष्टि और व्रतधारीके घर ही आहार लेवें । जिसकी क्रिया शुद्ध होती है उसके यहाँ निःशङ्क होकर आहार लेते हैं ।।५५३–५५५।।

इसी प्रकार कोई सम्यग्दृष्टि श्रावक है उसके यहाँ यदि कोई द्रव्यलिंगी मुनि आते हैं तो जाने बिना वह उन्हें आहार दे सकता है इसमें कोई दोष नहीं लगता है। यदि श्रावकको यह विदित है कि अमुक मुनि मिथ्यादृष्टि है तो उसे प्रारम्भमें ही न पडिगाहे क्योंकि उसमें सम्यक्त्वरूपी गुण नहीं है। भव्य प्राणीको चाहिये कि वह जान कर अपने सम्यग्दर्शनको दूषण नहीं लगावे । जिन श्रावकोंके यहाँ आहारदानका कार्य निरन्तर चलता है वे अपनी बुद्धिसे विचार कर चलते हैं ।।५५६–५५८।। यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करता है कि जो श्रावक ज्ञानहीन हैं वे मुनिकी परीक्षा किस प्रकार करें ? कैसे जानें कि इनके हृदयमें संयम है या नहीं ? ग्रन्थकार कहते हैं कि इसका यथार्थ उत्तर सुनो, इसमें कुछ मिथ्या नहीं है । प्रथम तो अपने गुणोंका पालन करने वाला श्रावक, पात्रको देख कर तत्काल समझ लेता है कि

---

१ ताकौ भूल न पडिगाही स०

अथवा ग्यानी मुनि पास, सुनिहै तिनिको परकास ।
श्रावक श्रावक निजमांही, लखि पात्र कुपात्र बतांहीं ॥५६१॥

छप्पय

अणगार उतकृष्ट पात्रकी जो विधि सारी,
[1]कही यथारथ ताहि धारि चितमें अति प्यारी;
सुणी भवि अवधारी करहु अनुमोदन जाकौ,
निश्चय तसु सरधान किये, सुरपद ह्वै ताकौ;
अब मध्यम जघन्य दुहु पात्रको, कहो दान अर फल यथा ।
जिन आगम मध्य कह्यौ जिसो तिसो सुणो भवि इह कथा ॥५६२॥

चौपाई

मध्यम पात्र सरावग जांणि, ब्योरा पूरव कह्यो वखाणि ।
इनमें भेद कहे हैं तीन, उत्तम मध्य जघन परवीन ॥५६३॥
श्रावक मध्यम पात्र मझारि, भेद एकादश सुणहु विचार ।
जाहि यथाविधि जोग अहार, त्यौं श्रावक देहै सुखकार ॥५६४॥
इनकौ दान तणो फल जाणि, मध्यम भोगभूमि सु वखाणि ।
जन्मत मात पिता मरि जाय, जुगल्या छींक जंभाही पाय ॥५६५॥

यह मुनि योग्य है । अथवा स्वयं निर्णय न कर सके तो दूसरे ज्ञानी मुनियोंके पास उन मुनिके विषयमें सुनकर निर्णय कर ले अथवा श्रावक श्रावक, अपने बीच चर्चा कर पात्र–अपात्रका भेद बता देते हैं ॥५५९–५६१॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि उत्कृष्ट पात्र–मुनियोंके आहारदानकी जो यथार्थ विधि कही गई है उस अतिशय प्रिय विधिको सुन कर हे भव्यजीवो ! हृदयमें धारण करो, उसकी अनुमोदना करो, क्योंकि निश्चयपूर्वक उसका श्रद्धान करनेसे देव पद प्राप्त होता है । अब आगे मध्यम और जघन्य पात्रके दानका फल जैसा जिनागममें कहा गया है वैसा हे भव्यजनों ! सुनो ॥५६२॥

मध्यम पात्र श्रावकको जानना चाहिये । इसका वर्णन पहले किया जा चुका है । मध्यम पात्रके तीन भेद है–१ मध्यमोत्तम, २ मध्यम मध्यम और ३ मध्यम जघन्य । सामान्य रूपसे मध्यम पात्र श्रावकके प्रतिमाओंकी अपेक्षा ग्यारह भेद है । जिस प्रतिमामें जो आहार जिस विधिसे देनेके योग्य होता है, उसी विधिसे श्रावक उसे आहार देते हैं ॥५६३–५६४॥ मध्यम पात्रको दान देनेका फल मध्यम भोगभूमिकी प्राप्ति है । मध्यम भोगभूमिमें युगलिया संतान जन्म लेती है और उसके जन्म लेते ही माता पिता मर जाते हैं । मरते समय माताको छींक और पिताको जम्हाई आती है । युगलिये अपने शरीर सम्बन्धी अंगूठेमें निहित अमृतको चूसते

---

१ दान अहार विशेष अवर फल कह्यो विचारी स०

तनु निज अमृत अंगूठा [1]थकी, तीस पांच दिन पूरण [2]वकी ।
उचत कोस दुय दुय दिन जाय, करै अहार निहार न थाय ।।५६६।।

कल्पवृक्ष दश विधि के जास, नाना विधि दे भोगविलास ।
दुय पल्य आयु भुँजि सुर होय, मध्य पात्र फल जाणो लोय ।।५६७।।

अरु यह कथन महा सुखकार, ग्यारा प्रतिमामें निरधार ।
आगैं कहिहौं [3]प्रथम सुजाण, पुनरुक्तीको दोष वखाण ।।५६८।।

दोहा

मध्य पात्र आहार फल, कह्यौ [4]यथावत सार ।
अब जघन्य पातर त्रिविधि, सुणहु दान फल कार ।।५६९।।

क्षायिक क्षय उपशम तृतिय, उपशम तीन प्रकार ।
इनहि गृही आहार दे, यथायोग्य सुखकार ।।५७०।।

चौपाई

जघन्य पात्रके दाता जान, जघन्य युगलिया होत प्रमाण ।
छींक जंभाईतें पितु माय, मरैं आप पूरण तनु पाय ।।५७१।।

दिन गुणचासै कोष प्रमाण, आयु पल्य इक भुगते जाणि ।
एक दिवस बीतैं आहार, लेई बहेडा सम न निहार ।।५७२।।

हुए पैंतीस दिनमें पूर्ण युवा हो जाते हैं। उनका शरीर दो कोश ऊँचा होता है। दो दिन बीत जाने पर वे आँवलाके बराबर आहार करते हैं। उनके निहार नहीं होता। दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे उन्हें नाना प्रकारके भोग विलास प्राप्त होते हैं। दो पल्यकी आयु भोग कर वे देव होते हैं। इस प्रकार यह मध्यम पात्रके दानका फल जानना चाहिये। महासुखको करनेवाला यह कथन आगे चल कर ग्यारह प्रतिमाओंके वर्णनमें करेंगे। यहाँ करनेसे आगेका कथन पुनरुक्त हो जाता है और यह पुनरुक्ति दोष कहा गया है ।।५६५–५६८।।

इस प्रकार मध्यम पात्रको आहार देनेका यथार्थ फल कहा। अब जघन्य पात्रके दानकी विधि और फलको सुनो ।।५६९।। जघन्य पात्र, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है। गृहस्थ इन्हें यथायोग्य सुखकारक आहार देता है ।।५७०।। जघन्य पात्रको दान देने वाला मनुष्य, जघन्य भोगभूमिमें युगलिया होता है। युगलियाके होते ही माता पिता छींक और जम्हाई लेकर मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। ऊंचास दिनमें उनका शरीर पूर्ण हो जाता है। शरीरकी ऊँचाई एक कोश प्रमाण और आयु एक पल्यकी होती है। एक दिन बीत जाने पर वे बहेड़ाके बराबर आहार लेते हैं। उनके निहार

---

१ तणी स० २ गणी स० ३ परम स० न० ४ यथा विस्ता रन०

कल्पवृक्ष दस विधि सुखकार, नानाविधि दे भोग अपार ।
पूरण आयु करवि सुर थाय, नाना सुख भुगतैं अधिकाय ।।५७३।।

दोहा

जघन्य सुपात्र आहार फल, कह्यौ जेम जिनवांनि ।
अबैं कुपात्र आहार फल, सुनि ल्यौं भवि निज कानि ।।५७४।।

चौपाई

द्रव्य मुनी श्रावक हू एह, विनु समकित किरिया उत जेह ।
बाहिर समकित कैसी रीत, दरसण विनु सरधा विपरीत ।।५७५।।
इन तीनहुं कुपात्रको दान, देही तस फल सुणहु सुजान ।
जाय कुभोगभूमिकै मांहि, उपजै मनुष्य हीण अधिकांहि ।।५७६।।
अवर सकल मानवकी देह, मुख तिरयंच समान है जेह ।
हाथी घोडा बैल वराह, कपि गर्दभ कूकर मग आह ।।५७७।।
लंबकरण अरु इक टंगिया, उपजै जुगल बराबर जिया ।
एक पल्य आयुबंल पूर, माटी [1]मीठा तृण अंकूर ।।५७८।।
तिनहि खांहि निज उदर भरेहि, [2]रहै नगन नहि मंदिर तेह ।
मरि विंतर भावन जोयसी, ह्वै भुगतैं सुख सुरविधि जिसी ।।५७९।।

नहीं होता। दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे नाना प्रकारके सुखदायक भोग प्राप्त होते हैं। आयु पूर्ण कर नियमसे वे देव होते हैं और वहाँ नाना प्रकारके सुखोंका अतिशय उपभोग करते हैं ।।५७१–५७३।। जिनागममें जघन्य पात्रको आहार देनेका जैसा फल कहा है वैसा हमने कहा है। हे भव्यजीवो ! अब अपने कानोंसे कुपात्रके आहार दानका फल सुनो ।।५७४।।

द्रव्यलिंगी मुनि, द्रव्यलिंगी श्रावक और बाह्यमें सम्यग्दृष्टि जैसी क्रियाको करनेवाला परन्तु अंतरंगमें सम्यग्दर्शनसे रहित विपरीत श्रद्धानी मनुष्यके भेदसे कुपात्रके तीन भेद हैं। इन तीनों प्रकारके कुपात्रोंको दान देनेका फल सुनो। कुपात्र दानके फलसे म ुष्य कुभोग-भूमिमें उत्पन्न होता हैं। वहाँ उत्पन्न होने वाले जीवोंका हीनधिकता लिये हुए अन्य शरीर तो मनुष्यके समान होता है परन्तु मुख तिर्यंचोंके समान होता है। हाथी, घोड़ा, बैल, सूकर, वानर, गर्दभ, श्वान और मृग आदिके समान उनका मुख होता है। कोई लम्बे कानवाले होते हैं और कोई एक टांगके होते हैं। बराबरकी आयु वाले युगल होते हैं। एक पल्य प्रमाण उनकी आयु होती हैं। मिट्टी और मधुर स्वाद वाले तृणांकुरोंको खाकर वे अपना पेट भरते हैं। शरीरसे नग्न रहते हैं। उनके मकान नहीं होते। मरकर वे व्यन्तर, भवनवासी अथवा ज्योतिषी देवोंमें उत्पन्न होकर वहाँके सुख भोगते हैं।।५७५–५७९।।

---

१ मधुर तणो अंकूर स० २ रहे नगन ही मंदिर केहि स०

दोहा

अब अपात्रके दानतैं, जैसो फल लहवाय ।
तैसो कछु वरनन करूं, सुनहु चतुर मन लाय ।।५८०।।

जो अपात्रको चिहन है, पूरब कह्यो बनाय ।
दोष लगहि पुनरुक्तकौं, यातैं अब न कहाय ।।५८१।।

सोरठा

जो अपात्रको दान, मूढ भक्ति कर देत है ।
सो अतीव अघ [1]थान, भव भ्रमिहै संसारमें ।।५८२।।

छन्द चाल

जैसें ऊषरमें नाज, [2]वाहै बहु निपजन काज ।
मिहनति सब जावै योंही, कण नाज न उपजै क्योंही ।।५८३।।

तिम भूमि अपातर खोटी, पावै विपदादिक मोटी ।
दुरगति दुखकारण जाणी, तिनि दान न कबहूं ठांणी ।।५८४।।

धेनूनैं तृणहि चरावे, तापैं तो दूधहि पावे ।
अति मिष्ट पुष्टकर भारी, बहुतैं जियको सुखकारी ।।५८५।।

तिम पात्र हि दान जु दीजै, ताको फल मोटो लीजै ।
सुरगतिमें संसय नांही, अनुक्रम शिवथान लहांही ।।५८६।।

अब आगे अपात्र दानसे जैसा फल प्राप्त होता है उसका कुछ वर्णन करता हूँ। हे चतुरजनो ! मन लगा कर उसे सुनो। अपात्रके जो चिह्न हैं उनका पूर्वमें वर्णन किया जा चुका है इसलिये पुनरुक्ति दोषके भयसे इस समय वर्णन नहीं कर रहा हूँ ।।५८०–५८१।। जो अज्ञानी जन भक्तिपूर्वक अपात्रको दान देते हैं वे अत्यधिक पापके स्थान होते हैं और संसारमें परिभ्रमण करते हैं ।।५८२।। जैसे कोई मनुष्य अधिक अन्न उत्पन्न करनेकी इच्छासे ऊषर जमीनमें अन्न बोता है तो उसका सब परिश्रम व्यर्थ जाता है। अनाजका दाना भी उत्पन्न नहीं होता। वैसे ही अपात्र खोटी भूमिके समान हैं। इसे दान देनेवाला व्यक्ति बहुत भारी दुःखको प्राप्त होता है। अपात्रदान दुर्गतिके दुःखका कारण है ऐसा जान कर अपात्रको कभी दान नहीं देना चाहिये ।।५८३–५८४।। जिस प्रकार गायको घास चराते हैं तो उससे अत्यन्त मिष्ट, पुष्टिकारक और सुखदायक दूध प्राप्त होता है उसी प्रकार पात्रके लिये जो दान दिया जाता है, उसका बहुत भारी फल प्राप्त होता है। साक्षात् तो देव गतिको प्राप्त होता है और अनुक्रमसे मोक्षस्थानको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है। ।।५८५–५८६।। इसके

---

१ खान स० न० २ बैहे स० न०

सरप हि जो दूध पिलावै, तापै तो विषको पावै ।
सो हरै प्राण तत्काल, परगट जाणो इह चाल ॥५८७॥
जिम दान अपात्र हि देई, इह भवतैं नरक लहेई ।
फिर भवमें पंच प्रकार, परावर्तन करै अपार ॥५८८॥
लखि एक जाति गुण न्यारे, तांबो दुइ भांति करारे ।
इक तो गोलो बणवावै, दूजो पातर घडवावै ॥५८९॥
गोलो डाले जलमांही, ततकाल रसातल जाही ।
पातर जल तरहै पारै, औरनको पार उतारै ॥५९०॥
तिम भोजन तो इक सांही, निपजै गृहस्थ घरमांही ।
दीजै अपात्रकौ जेह, तातैं [1]नरकादि पडेह ॥५९१॥
वह उत्तम पात्रह दीजै, सरधा रुचि भक्ति करीजे ।
इह भवतैं ह्वै दिविवासी, अनुक्रमतैं शिवगति पासी ॥५९२॥
इक [2]वाय नीर चलवाई, नींव रु सांठा सिंचवाई ।
सो नींव कडुकता थाई, सांठा रस मधुर गहाई ॥५९३॥

विपरीत यदि कोई सापको दूध पिलाता है तो उससे विष ही प्राप्त होता है और ऐसा विष जो तत्काल प्राणोंका हरण करता है यह बात लोकमें प्रगट है। इसी प्रकार जो अपात्रको दान देता है वह इस भवसे नरकको प्राप्त होता है। पश्चात् संसारमें पाँच प्रकारके परिवर्तनोंको पूरा करता है जिनका अन्त नहीं आता ॥५८७–५८८॥ इस बातको दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं जैसे तांबा एक जातिकी धातु है उसके दो रूप बनाओ—एक गोला बनाओ और दूसरा पीटकर पत्र बनाओ। उनमें गोलेको यदि पानीमें डाला जावे तो वह तत्काल नीचे चला जाता है और पत्र यदि नावमें लगा दिया जाता है तो वह पानीके ऊपर स्वयं तैरता है तथा दूसरोंको भी पार उतार देता है। इसी प्रकार भोजन तो गृहस्थके घर एक समान ही बनता है परन्तु वह भोजन यदि अपात्रके लिये दिया जाता है तो उसका फल नरकादि गतिमें पड़ना होता है और उत्तम पात्रके लिये श्रद्धा, रुचि और भक्तिसे दिया जाता है तो उसके फल-स्वरूप दाता इस भवसे देव होता है और अनुक्रमसे मुक्त होता है ॥५८९–५९२॥

एक दृष्टान्त यह भी है कि जिस प्रकार कोई बगीचेमें पानी दिलवाता है और उससे नीम तथा गन्नेकी सिंचाई करवाता है। वह पानी यदि नीममें जाता है तो कडुवा हो जाता है और गन्नेमें जाता है तो मीठा हो जाता है ॥५९३॥ इसी प्रकार जो दान अपात्रके लिये दिया

---

१ नरकादिक देह स० २ वार स०

तिम दान अपात्र जु केरो, दुखदायी नरक बसेरो ।
भोजन उत्तम पातरकौ, दीपक सुर शिवगति घरकौं ।।५९४।।

इह पात्र अपात्र हि दान, भाष्यौ [1]दुहुवनको मान ।
सुखदायक ताहि गहीजै, बुधजन अब ढील न कीजै ।।५९५।।

दुखदायक जांणि अपार, तत खिण तजिए निरधार ।
फल पात्र अपात्र जु ठीक, इनमैं कछु नांहि अलीक ।।५९६।।

जो धन घरमें बहुतेरो, [2]खरचनकौ मन है तेरो ।
तो अंधकूपके मांही, [3]नांखै नहि दोष लहांही ।।५९७।।

दीयौं अपात्रकौं सोई, भव भव दुखदायक होई ।
सरपहि पकडै नर कोई, काटै वाको अहि वोई ।।५९८।।

इक वार तजै वहि प्राण, वाकौ दुख फेर न जाण ।
अरु भक्ति अपातर केरी, तातैं फिरि है भवफेरी ।।५९९।।

यातें अहि गहिवो नीको, खोटे गुरुतें दुख जीको ।
तातें खोटो परिहरिये, निति सुगुरु भक्ति उर धरिये ।।६००।।

जाता है उससे दुःखदायक नरकका निवास प्राप्त होता हैं; और उत्तम पात्रके लिये जो दिया जाता हैं वह देव गति और सिद्ध गति रूपी घरको प्रकाशित करनेके लिये दीपक होता है अर्थात् उससे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है ।।५९४।। ग्रन्थकार कहते हैं कि हमने यहाँ पात्रदान और अपात्रदान–दोनोंका फल बताया है उसमें जो सुखदायक हो, उसे ज्ञानीजन ग्रहण करें, विलम्ब न करें, और जो अपार दुःखदायक मालूम हो उसका निर्धार कर तत्काल त्याग करें । पात्रदान और अपात्रदानका जो फल कहा गया है वह यथार्थ है इसमें मिथ्या कुछ भी नहीं है ।।५९५–५९६।। हे भव्य ! यदि तेरे घरमें बहुत धन इकट्ठा हुआ है और खर्च करनेका तेरा भाव होता है तो तू उसे अंध कूपमें डाल दे इसमें दोष नहीं है। परन्तु यदि अपात्रको दिया जायगा तो वह भवभवमें दुःखदायक होगा । यदि कोई मनुष्य सापको पकड़ता है और साप उसे काटता हैं तो वह एक बार ही मृत्युको प्राप्त होता है, फिर उस दुःखको प्राप्त नहीं होता । परन्तु यदि अपात्रकी भक्ति की जाती है तो उससे बार बार भवभ्रमण होता रहता है । इसलिये सापको पकड़ लेना तो अच्छा है परन्तु खोटे गुरुका आश्रय लेना अच्छा नहीं है । वह जीवको दुःख देनेवाला है इसलिये कुगुरुको छोडो और सुगुरुकी भक्तिको हृदयमें धारण करो ।।५९७–६००।।

---

१ दुहूनको स० दुहुअनको न० २ डारनकौ स० न० ३ डारे स०

अडिल्ल छन्द—जो पात्रके तांई दान दे मानतैं,
अरु अपात्रकौं कबहु न दे निज जानतैं;
पात्र दान फल सुरग क्रमहि शिवपद लहै,
भोजन दिये अपात्र नरक दुख अति सहै ॥६०१॥
दया जानि मन आनि दुखित जन देखिकै,
रोगग्रस्त तन जानि सकति न विशेषि कै;
मनमें करुणा भाव विशेष अणाइकैं,
यथायोग जिहि चाहि सु देह वणाइकैं ॥६०२॥

चौपाई—लहै संपदा भूपति तणी, नाना भोग कहां लौं भणी ।
उत्तम जाति लहै कुल सार [1]इह फल पातर दान अहार ॥६०३॥
अति नीरोग होय तन जास, हरै औरकी व्याधि प्रकास ।
अति सरूपता औषध दान, दियौ पात्रकौ तसु फल जान ॥६०४॥
दीरघ आयु [2]लहै सो सदा, जगत मान तिहकी सुभगदा ।
सुरनर सुखकी कितियक वात, अभय थकी तदभव शिवपात ॥६०५॥
शास्त्रदान देवातें सही, भवि अनुक्रमतें केवल लही ।
समवसरण विभवो अविकार, पावै तीर्थङ्कर पद सार ॥६०६॥

जो सन्मान पूर्वक पात्रके लिये दान देता है और अपात्रके लिये जानते हुए कभी नहीं देता है वह पात्रदानके फलस्वरूप स्वर्ग तथा अनुक्रमसे मोक्षको प्राप्त होता है । अपात्रको आहार देनेसे नरकके बहुत भारी दुःख सहन करने पड़ते हैं ॥६०१॥ यदि कोई दुःखी जन दिखाई देता है, रोगी या अत्यन्त शक्तिहीन जान पड़ता है तो मनमें विशिष्ट करुणाभाव लाकर उसे यथायोग्य भोजन आदि देना चाहिये । यह दया या करुणादान कहलाता है ॥६०२॥ उत्तम पात्रको आहारदान देनेका फल यह है कि दाता राज्यसंपदाको प्राप्त होता है, नाना प्रकारके भोगोंको प्राप्त होता है अथवा अधिक कहाँ तक कहे ? वह उत्तम जाति और श्रेष्ठ कुलको प्राप्त होता है ॥६०३॥ उसका शरीर अत्यन्त नीरोगी होता है, वह दूसरोंकी पीडाको दूर करता है और सुन्दर रूपको प्राप्त होता है । यह सब सुपात्रको प्रदत्त औषधदानका फल हैं ॥६०४॥ ऐसा जीव दीर्घ आयुको प्राप्त होता है, संसारमें सन्मानको प्राप्त होता है, सुभगता–लोकप्रियताको प्राप्त होता है । देव तथा मनुष्य गतिके सुखोंकी तो बात ही क्या ? अभयदानसे यह जीव उसी भवमें मोक्षका पात्र होता है ॥६०५॥ शास्त्रदान देनेसे भव्यजीव अनुक्रमसे केवलज्ञानको प्राप्त होता है, समवसरणका निर्विकार वैभव प्राप्त करता है तथा

---

१ या फल पात्रदान आहार न० स० २ मिले स०

दयादानतैं कीरति लहै, सगरे भले भले यों कहै ।
निज भावा माफिक गति थाय, दान दियो अहलो नहि जाय ॥६०७॥

दोहा

पात्र कुपात्र अपात्रकौ, पूरो भयो विशेष ।
अबै अन्य मत दान दस, कहौ कथन अब शेष ॥६०८॥

सवैया

गऊ हेम गज गेह वाजि भूमि तिल जेह,
त्रिया दासी रथ इह दस दान थाय है;
इनकूं कौ कथन करै या सठ जानि लेह,
दानको दिवाय नरकादिक लहाय है;
हिंसादिक कारणै अनेक पापरूप जाणि,
अवर लिवैया दुरगतिकौ सिधाय है;
अति ही कलंक निंद्यधाम पुन्यको न लेस,
मतिमान लैनदैन दुहूंकौ तजाय है ॥६०९॥

दोहा

दसौ दान अनमति तणां, जैनी जन जो देइ ।
अघ हिंसादि बढायकै, कुगति तणा फल लेइ ॥६१०॥

(इति चतुर्थ शिक्षाव्रत अतिथि संविभाग कथन सम्पूर्ण)

तीर्थंकरका सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करता है ॥६०६॥ दया दानसे इस भवमें उत्तम कीर्तिको प्राप्त होता है, सब लोग भला भला कहते हैं और परभवमें अपने भावोंके अनुसार गतिको प्राप्त होता हैं । तात्पर्य्र यह है कि दिया हुआ दान कभी निष्फल नहीं जाता ॥६०७॥ इस प्रकार पात्र, कुपात्र और अपात्र दानका विशेष वर्णन पूर्ण हुआ । अब अन्य मतमें जो दस दान कहे हैं उनका वर्णन करते हैं ॥६०८॥

गोदान, सुवर्णदान, गजदान, गृहदान, अश्वदान, भूमिदान, तिलदान, कन्यादान, दासीदान और रथदान ये दश दान लोकमें प्रसिद्ध हैं । इनका कथन कौन करे ? इन्हें तो अज्ञानी भी जानते हैं । इतना अवश्य कहा जाता है कि इन दानोंको देने और दिलानेवाला नरकादिक दुर्गतिको प्राप्त होता है । हिंसादिका कारण होनेसे इन दानोंको पापरूप जानना चाहिये । इन दानोंको लेनेवाला भी दुर्गतिको प्राप्त होता है। ये दान अत्यन्त कलंक और निन्दाके स्थान है इनमें पुण्यका लेश भी नहीं है । यही कारण है कि बुद्धिमान मनुष्य, इन दानोंका लेना और देना–दोनोंका त्याग करते हैं ॥६०९॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि ये दश प्रकारके दान अन्यमतके दान हैं। जो जैनी जन इन्हें देते हैं वे हिंसादिकको बढा कर कुगतिका फल प्राप्त करते हैं ॥६१०॥

अतिथिसंविभाग व्रतके अतिचार

छन्द चाल—निपज्यो गृह मध्य आहार, तिंह लेय सचितपरिहार ।
अथवा सचित्त मिलि जाई, इह अतीचार कहवाई ॥६११॥
फासू धरियो जो दर्व, ढांकै सचित्तसौं सर्व ।
दूजौ गनियै अतिचार, याहूकूं बुध जन टारै ॥६१२॥
आपण नहि देय आहार, औरन कौं कहै विचार ।
ये ही आहार द्यो भाई, तीजौ दूषण इह थाई ॥६१३॥
मुनिकौ कोइ देइ आहार, चितमें ईर्षा इह धार ।
हम ऊपर ह्वै क्यौं देई, चौथो इह दोष गनेई ॥६१४॥
द्वारापेखणकै कालै, गृहकाज करत [1]तहां हालै ।
लंघि गए गेहमैं आवै, पंचम अतिचार कहावै ॥६१५॥

दोहा—इह अतिथि संविभागकै, अतीचार भनि पांच ।
इनहि टालि भविजन सदा, जिन वच भाषे सांच ॥६१६॥
व्रत द्वादश पूरण भए, पांच अणुव्रत सार ।
तीन गुणव्रत चार फुनि, शिक्षाव्रत निरधार ॥६१७॥

इस प्रकार चतुर्थ शिक्षाव्रत--अतिथि संविभाग व्रतका कथन पूर्ण कर अब उसके अतिचारोंका विचार करते हैं--

घरमें जो आहार बना है उसे सचित्तका त्याग कर लेना चाहिये अथवा जिस आहारका सचित्त वस्तुओंसे सम्बन्ध हो गया है उसका भी त्याग करना चाहिये। ऐसी वस्तुओंके देने पर सचित्त निक्षेप नामका पहला अतिचार होता है ॥६११॥ प्रासुक अचित आहार, कमलपत्र आदि सचित्त पदार्थोंसे ढक कर रखना, यह सचित्तपिधान नामका दूसरा अतिचार हैं । ज्ञानी जनोंको इसका परिहार करना चाहिये ॥६१२॥ स्वयं तो आहार नहीं देना किन्तु दूसरोंसे दिलाना यह परव्यपदेश नामका तीसरा अतिचार है ॥६१३॥ कोई श्रावक मुनिको आहार दे रहा हो उसे देख मनमें इस प्रकारकी ईर्षा करना कि यह हमसे ऊपर होकर आहार क्यों दे रहा है? यह मात्सर्य नामका चौथा अतिचार है ॥६१४॥ द्वाराप्रेक्षणके समय किसी गृहकार्यके आने पर उसमें लग जाना तथा समय निकल जाने पर पीछे घर आना, यह कालातिक्रम नामका पाँचवाँ अतिचार है ॥६१५॥ अतिथिसंविभाग व्रतके ये पाँच अतिचार कहे हैं । भव्यजीव सदा इसका परिहार करें। ये अतिचार जिनागमके अनुसार यथार्थ कहे गये हैं ॥६१६॥ पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये श्रावकके पूर्ण बारह व्रत कहलाते हैं ॥६१७॥ ग्रन्थकर्ता

---

१ दर न०

जैसी मति अब का समुझ, कियो ग्रंथ अनुसार ।
किसनसिंघ कहि अब सुणो, कथन विधी परकार ॥६१८॥

सत्रह नियमका वर्णन

दोहा

जे श्रावक आचार जुत, निति प्रति पालैं नेम ।
मरयादा दस सात तसु, मन वच क्रम धरि प्रेम ॥६१९॥

श्लोक

भोजने षड्रसे पाने कुंकुमादि विलेपने ।
पुष्पताम्बूलगीतेषु नृत्यादौ ब्रह्मचर्यके ॥६२०॥
स्नानभूषणवस्त्रादौ वाहने शयनासने ।
सचित्तवस्तुसंख्यादौ प्रमाणं भज प्रत्यहम् ॥६२१॥

चौपाई

भोजनकी मरयादा गहै, राखै जेती बारह लहै ।
परके घरको जीमण जोई, प्रात समै में राख्यो होई ॥६२२॥
अन्न अवर मीठादिक वस्तु, भोजन माहे जाणि समस्तु ।
असन चवीणी अर पकवान, गिणती माफिक खाय सुजाण ॥६२३॥

श्री किशनसिंह कहते हैं कि हमने अपनी वर्तमान बुद्धि तथा जिनागमके अनुसार इनका कथन किया है । अब श्रावकको क्या कैसा करना चाहिये ? इस विधिका वर्णन करते हैं सो सुनो ॥६१८॥

श्रावकके सत्रह नियमोंका वर्णन

जो मनुष्य, नित्यप्रति नियमपूर्वक श्रावकाचारसे सहित हैं वे प्रेमपूर्वक मन वचन कायसे सत्रह नियमोंको धारण करते हैं ॥६१९॥ जैसा कि कहा गया है :—भोजन, छह रस, पानी, कुंकुमादिका विलेपन, पुष्प, पान, गीत, नृत्यादिक, ब्रह्मचर्य, स्नान, आभूषण, वस्त्रादि, वाहन, शय्या, आसन, सचित्त पदार्थ तथा भोगोपभोगकी अन्य वस्तुओंकी संख्या आदिका प्रतिदिन प्रमाण करना चाहिये ॥६२०–६२१॥ 'आज मैं इतनी बार भोजन करूंगा,' इस प्रकार भोजनकी मर्यादा करनी चाहिये । जितनी बार भोजन करनेका नियम लिया है उतनी बार ही भोजन करें । यदि दूसरेके घर जीमनेके लिये जाना है तो प्रातःकालके समय जानेका नियम करना चाहिये । दाल भात आदि अन्न तथा मोदक आदि समस्त पदार्थ भोजनकी वस्तुएँ हैं । इसलिये भोजन, चबैनी, तथा पक्वान्न आदिकी गिनती रख कर उसीके अनुसार खाना चाहिये । यह भोजन विषयक नियम है ॥६२२–६२३॥ घी, दूध, दही, मीठा, तेल और नमक ये भोजनके छह रस हैं। इनमें जितने रसोंके ग्रहण और परित्यागका नियम लिया है उसीके अनुसार ग्रहण करना,

षडरसमें जो राखै तजै, तिहि अनुसार सुनिति प्रति सजै ।
पाणी सरबत दूध रु मही, दरव जिते पीवेकै सही ॥६२४॥

ता मधि बुध राखै जे द्रव्य, ता विनु सकल त्यागिये भव्य ।
चोवा चंदन कुंकुम तेल, मुख धोवो रु अरगजा मेल ॥६२५॥

औषध आदि लेप हैं जेह, संख्या राखि भोगिये तेह ।
पुष्प गंध सूंघिये [1]तेह, जाप समै जे राखे [2]जेह ॥६२६॥

करि भुकती जो फूल हि तणी, सचित्त मध्य तेऊ राखणी ।
सचित्तमांहि राखी नहि जाय, [3]जिस दिन भूल न करहिं गहाय ॥६२७॥

पान सुपारी डांडा गही, लौंगादिक मुख सोध जु कही ।
दालचिनी जावित्री जान, जातीफल तंबोल वखान ॥६२८॥

पान आदि सचित्त जु थाय, सचित्त मांहि राखैं तो खाय ।
सचित्तमांहि राखत वीसरै, तो वह दिन खांनी न हि परै ॥६२९॥

गीत नाद कोतूहल जहां, जैवो राख्यौ जै है तहां ।
मरयादा न उलंघै कदा, जो उपसर्ग आय ह्वै जदा ॥६३०॥

एक भेद यामें है और, आप आपणी बैठै ठौर ।
गावत गीति तिया नींकली, सुणि कर हरख्यौ चित्तधर रली ॥६३१॥

यह षड्रस विषयक नियम है । पानी, सरवत, दूध और तक्र आदि पान कहलाते हैं । इनमें जितनेका नियम लिया है उतने ही लेना, अन्य सबका त्याग करना यह पान विषयक नियम है। चोवा (सुगंधित पदार्थ), चन्दन, कुंकुम, तेल, दन्तमंजन, अरगजा तथा औषध आदिके जितने लेप हैं उनकी संख्या रख कर भोग करना चाहिये । यह कुंकुमादि विलेपन विषयक नियम है ॥६२४–६२६॥ सचित्त फलोंमें बीच जितने फलोंका नियम लिया है उतनेका ही उपभोग करे । जिस दिन भूलवश सचित्तका नियम नहीं लिया है उस दिन उनका सेवन सर्वथा नहीं करे ॥६२७॥ पान, सुपारी, डोंड़ा, लोंग, दालचिनी, जायपत्री, जायफल तथा ताम्बूल आदि जो मुखशुद्धिके पदार्थ हैं इनका भी नियम कर लेना चाहिये । पान आदिक सचित्त हैं, यदि सचित्त खानेका नियम है तो खावे, अन्यथा नहीं । यदि किसी दिन सचित्त वस्तुका नियम लेना भूल जावे तो उस दिन नहीं खावे ॥६२८–६२९॥ जहाँ गीत, नृत्य, कौतूहल आदि हो रहा है यदि वहाँ जानेका नियम रक्खा हैं तो जावे । यदि वहाँ किसी प्रकारका उपसर्ग आवे तो मर्यादाका उल्लघन कभी नहीं करे ॥६३०॥ इस विषयमें एक भेद और है, वह यह कि आप अपने स्थान पर बैठा हो, वहाँसे स्त्रियाँ गीत गाती हुई निकलें उनके गीतको सुन कर चित्तमें यदि हर्षभाव उत्पन्न

---

१ सोय न० २ होय न० ३ जिहि दिन न० तिहि दिन स०

तामैं दोष लगै अधिकाय, मध्यस्थ भाव रहै तिहि ठाय ।
पातरि नृत्य अखारे मांहि, नटवा नटि जिहिं नृत्य करांहि ॥६३२॥
वादीगर विद्या जे वीर, मुकती राखै जावै धीर ।
परवनिताको तो परिहार, निज तियमें जिम कर निरधार ॥६३३॥
पांचौं परवीमें तो सोंह, अवर दिवस जैसी चित गोह ।
तजै सरवथा तो परिहरै, राखै अंगीकार सु करै ॥६३४॥
सेवत विषै जीवकी घात, उपजै पाप महा उतपात ।
जिह जागै राखै मरजाद, सो निरवाहै तजि परमाद ॥६३५॥
स्नान करण राखै तो करै, सोंह थकी कबहुं नहि टरै ।
आभूषण पहिरै हैं जिते, घरमें और धरे हैं तिते ॥६३६॥
पहरणकी इच्छा जे होई, सो पहरै सिवाय नहिं कोई ।
भूषण अन्यतणै की रीति, राखै मांगि पहरि करि प्रीति ॥६३७॥
कपडे अगले पहरै होय, वे ही मुखतैं राखै सोय ।
अथवा नये ऊजरे होइ, राखै सो पहरै मन दोइ ॥६३८॥

होता है तो उससे अधिक दोष लगता है इसलिये इस प्रसंग पर मध्यस्थ भाव रखना चाहिये। नृत्यके अखाडेमें जहाँ नट और नटिनी नृत्य करती है तथा वादीगर लोग अपनी विद्याका कौशल दिखाते हैं वहाँ जानेकी यदि छूट रक्खी है तो जावे। कामसेवनके विषयमें यह ध्यान रखना चाहिये कि परस्त्रीका तो त्याग है ही, अतः निज स्त्रीके विषयमें विचार करना चाहिये। पाँचों पर्वोंके दिन तो कामसेवनका सर्वथा त्याग करना चाहिये, अन्य दिनोंमें जैसा मन हो वैसा करे। यदि सर्वथा त्याग किया है तो त्याग रक्खे और सेवनका विचार रक्खा है तो स्वीकार करे ॥६३१-६३४॥ स्त्रीसेवनमें जीवोंका घात होता है जिससे महादुःखकारी पापका बंध होता है। जिस स्थान पर स्त्रीसेवनकी मर्यादा ली है उसका प्रमाद छोडकर निर्वाह करना चाहिये ॥६३५॥

स्नान करनेका यदि नियम रक्खा है तो उस नियमसे कभी हटना नहीं चाहिये। जो आभूषण शरीर पर पहिने है अथवा घरमें रक्खे है उनमें जितनेका नियम लिया है उतने ही पहिने, अधिक नहीं। दूसरोंके आभूषणोंके विषयमें प्रीतिके अनुसार जैसा व्यवहार चलता हो तदनुसार पहिनना चाहिये ॥६३६-६३७॥ कपडोंके विषयमें ऐसा विचार है कि जो पहिने हुए है उन्हींका नियम रक्खें अथवा उजले नये वस्त्र पहिननेका मन हो तो वैसा नियम रख ले ॥६३८॥ श्वसुर आदिक सम्बन्धीजन, मित्रजन तथा राजा आदिके द्वारा भेंटमें दिये हुए वस्त्रोंके

सुसुरादिक मित्रनके दिये, नृप आदिक जे बकसीस किये ।
मुखतैं राखै ह्वै सो गहै, निज मरयादाको निरवहै ॥६३९॥
पहरण पांवतणी पांहणी, तेऊ वस्त्रन मांहे गणी ।
नई पुराणी निज पर तणी, राखै सो पहरै [1]इम भणी ॥६४०॥
अश्वादिक वाहण जे होई, जो असवारी मुकती जोई ।
काम पडै चढिहै तिह परी, और न काम नेम जो धरी ॥६४१॥
सोवेको पालिक जो जाणि, सोडि तुलाई तकियो मांनि ।
जेतो सयन करणको साज, व्रत धरि संख्या धरि सिरताज ॥६४२॥
खाट पराई इक दुय चार, काम पडे बैठे सुविचार ।
बिनु राखै बैठे सो मही, यह जिन आगम सांची कही ॥६४३॥
गादी गाऊ तकियो जाण, चौका चौकी पाटा [2]आणि ।
सिंहासण आदिक हैं जिते, आसन मांहि कहावै तिते ॥६४४॥
गिलभ दुलीचा सतरंजणी, जाजम सादी रूई तणी ।
इनहि आदि बिछोणा होई, आसनमें गनि लीजै सोय ॥६४५॥
निज घरके अथवा पर ठाम, मुकते राखे जे जे धाम ।
तिन पर बैठे बाकी त्याग, जाकौ व्रत ऊपरि अनुराग ॥६४६॥

विषयमें भी मुखसे जैसा नियम ले रक्खा हो उसका निर्वाह करे ॥६३९॥ पाँवकी पाँवडी आदिके विषयमें नई पुरानी अपनी तथा दूसरे आदिकी जैसा नियम लिया हो उस नियमकी रक्षा करते हुए पहिनना चाहिये ॥६४०॥

घोड़ा आदिक वाहनके विषयमें ऐसा नियम रक्खे कि काम पडेगा तो सवारी पर चढेंगे ॥६४१॥ पलंग, सोड, पल्ली तथा तकिया आदि जो कुछ शयनकी सामग्री है उनकी व्रती मनुष्यको संख्या निश्चित कर लेना चाहिये । दूसरे घर खाट आदि पर बैठनेका अवसर आवे तो ऐसा नियम रक्खे कि एक, दो, चार आदि स्थानों पर ही खाट पर बैठूंगा। यदि बैठनेका नियम नहीं रक्खा है तो जमीन पर बैठे ऐसा जिनागममें यथार्थ कहा है ॥६४२–६४३॥ गद्दी, तकिया, चौका, चौकी, पाटा, सिंहासन आदि जितने आसन हैं तथा गिलाफ, गलीचा, दरी, जाजम सादी अथवा रूई भरी आदि जो बिछौना हैं वे सब आसनमें शामिल है इनका प्रमाण करना चाहिये। अपने घर अथवा बाहर बैठनेके जो जो आसन हैं, व्रती मनुष्य नियमानुसार उन पर बैठे, बाकीका त्याग करे ॥६४४–६४६॥

---

१ पग मणी २ वखाण स०

सचित वस्तुकी संख्या जाण, धान बीज फल फूल वखाण ।
पाणी पत्र आदि लखि जेह, मिरच सुपारी डोंडा एह ॥६४७॥
सारे फल सगरे हैं जिते, सचित मांहि [1]भाषैं हैं तिते ।
मरजादा मुकती जे मांहि, बाकी सबकौं भीटै नांहि ॥६४८॥
संख्या वसत तणी जे धरै, सकल दरवकी गिणती करै ।
खिचडी लाडू खाटो खीर, औषध रस चूरण गणि धीर ॥६४९॥
बहुत दरव मिलि जो निपजेह, गिणतीमांहि एक गणि लेह ।
राखै दरव जिते उनमान, सांझ लगै गिणिलै बुधिमान ॥६५०॥
सांझ करै सामायिक जबै, सत्रह नेम संभारे तबै ।
अतीचार लागै जो कोय, सवित प्रमाण दण्ड ले सोय ॥६५१॥
बहुरि आखडी जे निसि जोग, धारि निवाह करै भवि लोय ।
इह विध नित्यनियम मरयाद, पालै धरि भवि चित अहलाद ॥६५२॥
महापुन्यको कारन सही, इह भवतें सुभ सुरगति लही ।
अनुक्रमतैं ह्वै है निरवाण, बुधजन मन संसै नहि आण ॥६५३॥

व्रती मनुष्यको सचित्त वस्तुओंकी भी संख्या निश्चित करनी चाहिये अर्थात् ऐसा नियम लेना चाहिये कि मैं इतनी सचित्त वस्तुएँ लूंगा । अनाज, बीज, फल, फूल, पानी, पान, मिर्च, सुपारी, डोंड़ा आदि जितने फल हैं वे सब योनिभूत होनेसे सचित्त पदार्थोंमें कहे गये हैं । जितनेकी मर्यादा रक्खी है उतनेका सेवन करें, बाकी सबका त्याग करे ॥६४७–६४८॥ उपयोगमें आनेवाली सभी वस्तुओंकी संख्या निश्चित करनी चाहिये । सचित्तकी ही नहीं, खिचडी, लाडू, खटाई, खीर, औषध, रस, चूर्ण आदि वस्तुओंमें मैं इतनी वस्तुएँ लूंगा, अधिक नहीं । अनेक वस्तुओंको मिला कर जो औषध या चूर्ण आदि बनते हैं उन्हें गिनतीमें एक ही समझना चाहिये । जितनी वस्तुओंका प्रमाण किया है उन्हें सायंकाल तक गिन लेना चाहिये अर्थात् मैंने जितनी वस्तुओंकी संख्या निर्धारित की थी उनमें कितनी ली, कितनी नहीं ली । संध्याकालमें जब सामायिक करे तब उपर्युक्त सत्रह नियमोंकी संभाल कर ले । यदि किसी नियममें दोष लगा हो तो शक्ति प्रमाण उसका दण्ड ग्रहण करे । पश्चात् रात्रिके योग्य नियम लेकर उसका निर्वाह करना चाहिये । ग्रन्थकार कहते हैं कि जो भव्यजीव हृदयमें आह्लाद धारण कर नित्य ही नियम–मर्यादाओंका पालन करता है उसे महान पुण्यका बन्ध होता है । वह इस भवसे देवगतिको प्राप्त होता है और अनुक्रमसे निर्वाणको प्राप्त होता है । ज्ञानी जनोंको मनमें संशय नहीं करना चाहिये ॥६४९–६५३॥

१ गणि लीजे तिते स०

दोहा—नित्य नेम सत्रह तणो, कथन कियो सुखदाय ।
अंतराय श्रावक तणा, अब भवि सुणी मन लाय ॥६५४॥

श्रावकके सात अन्तरायोंका कथन

चौपाई—जिनमत अंतराय जे सात, श्रावकके भाष्ये विख्यात ।
रुधिर देखियो नाम सुनेइ, तब बुधजन आहार तजि देइ ॥६५५॥
मांस नजर देखै सुनि नाम, भोजन तजे विवेकी राम ।
नैननि देखै आलो चर्म, असन तजै उपजै बहु धर्म ॥६५६॥
हाड राधि अरु मूवो जीव, नजर निहारि श्रवण सुनि लीव ।
ततक्षण अन्न छांडि सो देइ, अंतराय पालक [1]जन जेइ ॥६५७॥

दोहा—सोंह करै जिह वस्तुकौ, प्रथमहि सौं फिरि कोइ ।
[2]सो लै थालीमें धरै, अंतराय जो होइ ॥६५८॥
श्लोक एकमें सात ए, कह्यौ सबनको भेद ।
तिह सिवाय भाषे अवर, सो ब्योरो सुनि लेव ॥६५९॥
चंडालादिक नर जिते, हीन करम करतार ।
तिनहि लखत वचनहि सुणत, अंतराय निरधार ॥६६०॥

इस तरह नित्य ही लेने योग्य सुखदायक सत्रह नियमोंका कथन किया । अब आगे श्रावकके अन्तरायका कथन करता हूँ सो हे भव्य जनों ! उसे मन लगा कर सुनो ॥६५४॥

जिनमतमें श्रावकके सात अन्तराय प्रसिद्ध है । (१) भोजन करते समय यदि रुधिर देखनेमें आये या उसका नाम सुननेमें आये तो भोजन छोड़ देना चाहिये । (२) यदि मांस देखनेमें आये या उसका नाम सुननेमें आये तो विवेकीजनोंको भोजन छोड़ देना चाहिये । (३) आंखोंसे यदि गीला चर्म देखनेमें आये तो भोजन छोड देनेसे बहुत धर्म होता है । (४), (५), (६) हड्डी, पीब, और मृत जीव देखनेमें आये या कानोंसे उनका नाम सुननेमें आये तो अन्तरायका पालन करने वाले पुरुषोंको तत्काल भोजन छोड देना चाहिये । (७) जिस वस्तुका पहले त्याग किया हो उस वस्तुको यदि कोई भोजनकी थालीमें रख दे तो अन्तराय होता है । ग्रन्थकार कहते हैं कि एक श्लोकमें ये सात अन्तराय कहे हैं सो उनका वर्णन किया । अब इनके सिवाय जो और भी अन्तराय हैं उनका वर्णन सुनो ॥६५५–६५९॥

नीच कार्यके करनेवाले चाण्डालादिक जितने मनुष्य हैं उन्हें देखनेसे या उनके वचन सुननेसे अन्तराय होता है ॥६६०॥ मलको देखते ही या उसका नाम सुनते ही तत्काल भोजन छोड़

---

१ नर तेइ न० स० २ जेवत भाजनमें धरे

मल देखत फुनि नाम सुनि, असन तुरत तजि देह ।
सो व्रतधर श्रावक सही, अन्य दुष्टता गेह ॥६६१॥
जिन प्रतिमा अरु गुरुनिकौं, कष्ट उपद्रव थाय ।
सुनि श्रावक जन असन तजि, उपवासादि कराय ॥६६२॥
पुस्तादिक जल अगनिकौ, उपसर्ग हुवो जांनि ।
भोजन तजि फुनि करय भवि, उपवासादि वखानि ॥६६३॥
नितप्रति श्रावककौं कहे, अंतराय तहकीक ।
पालैं वे सुभगति लहै, यह जिनमारग ठीक ॥६६४॥

सात प्रकारके मौनका वर्णन

दोहा

मौन जिनागममें कही, सात प्रकार वखानि ।
तिनकौ वरनन भविक जन, सुनि मन वच क्रम ठानि ॥६६५॥

चौपाई

प्रथम मौन जल स्नान करंत, दूजी पूजा श्री अरहंत ।
भोजन करतां बोलै नहीं, चौथी सतवन पढतैं कही ॥६६६॥
सेवत [1]काम मौनकौं गहे, एह वचन जिन आगम कहै ।
मल मूत्रहि खेपै जिहि वार, ए लखि सात मौन निरधार ॥६६७॥

देना चाहिये । जो अन्तराय पालता है वही व्रतधारी सही श्रावक है और शेष जन दुष्टताके घर हैं ॥६६१॥ जिनप्रतिमा और गुरुओं पर कष्ट या उपद्रवकी बात सुन कर श्रावकको भोजन छोड़ देना चाहिये । यदि भोजन शुरू नहीं किया हो तो उपवासादि करना चाहिये ॥६६२॥ शास्त्र आदि पर पानी या अग्निका उपसर्ग हुआ जान कर भोजन छोड़ देना चाहिये और उपवासादि करना चाहिये ॥६६३॥ श्रावकके ये नित्य प्रति टालने योग्य अन्तराय कहे हैं । जो इनका पालन करते हैं वे शुभ गतिको प्राप्त होते हैं । यह यथार्थ जिनमार्ग है--चरणानुयोगकी पद्धति है ॥६६४॥

जिनागममें सात प्रकारके मौन कहे गये हैं । हे भव्यजनों ! मन, वचन, कायसे उनका वर्णन सुनो ॥६६५॥ पहला मौन स्नान करते समय रखना चाहिये । दूसरा मौन अरिहंत-देवकी पूजा करते समय, तीसरा मौन भोजन करते समय, चौथा मौन स्तुति पढ़ते हुए, पाँचवाँ मौन कामसेवन करते समय, छठवाँ मौन शौचबाधासे निवृत्त होते समय और सातवाँ मौन लघुशंका करते समय रखना चाहिये । इस प्रकार ये मौनके सात स्थान कहे गये हैं

---

१ विषय स०

अडिल्ल

द्वादशांगमय अंक सकल जाणो सदा,
असन स्नान मल मूत्र अवर तियसंग सदा ।
वरण उचार करणन भाष्यो जैनमैं,
यातैं गहिये मौन सपत बिरियां समैं ॥६६८॥

चौपाई

मौन वरतके धारक जीव, चेष्टा इतनि न करी सदीव ।
भौंह चढाई नेत्र टिमकारि, करै जु सैन्या काम विचारि ॥६६९॥
सीस हलाय करै हूंकार, खांसै खंखारै अधिकार ।
कर अंगुलतैं सैंन बताय, अथवा अंकोंमें लखिवाय ॥६७०॥
इतनी किरिया करिहै सोय, मौन वरत तसु मैलो होय ।
अर जो सैंन समस्या करी, मतलब समजै नहि तिहि घरी ॥६७१॥
मनमें अकुलायर ह्वै क्रोध, क्रोध थकी नासै सुभ बोध ।
यातैं जे भविजन मतिमान, मौन धरो आगम परवान ॥६७२॥
अरु तिह समय करै शुभ भाव, तातै कहिहै पुन्य बढाव ।
पुन्य थकी लहिहै सुर थांन, यामै कछु संसै नहि आंन ॥६७३॥

॥६६६–६६७॥ मौन रखनेका कारण यह है कि जितने वर्ण हैं वे सब द्वादशांगके अंक हैं इसलिये भोजन, स्नान, मल, मूत्र तथा स्त्रीप्रसंग करते समय उनके उच्चारणका निषेध जिनागममें कहा गया है इसलिये उपर्युक्त सात कार्य करते समय मौन ग्रहण करना चाहिये। भावार्थ :– जिनपूजा और स्तुति करते समय जो मौन कहा गया है उसका प्रयोजन पूजा और स्तुतिके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी बात करनेके त्यागसे हैं । पूजाके छन्द तथा स्तुति या स्तोत्र पढ़नेका निषेध नहीं है ॥६६८॥

मौनव्रतके धारी जीवोंको इतनी चेष्टाएँ कभी नहीं करनी चाहिये :– किसी वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे भ्रकुटी चढ़ाना, और नेत्रोंकी टिमकारसे संकेत करना, सिर हिलाना, हुंकार करना, खांसना, खकारना, अंगुलिसे इशारा करना अथवा अक्षर लिख कर अभिप्राय प्रकट करना ॥६६९–६७०॥ जो इतनी क्रियाओंको करता है उसका मौन व्रत मलिन हो जाता है। संकेत करने पर यदि कोई अभिप्राय नहीं समझ पाता है तो मनमें आकुलता होती है तथा क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे शुभ ज्ञान नष्ट हो जाता है । इसलिये बुद्धिमान भव्यजनोंको आगमके अनुसार मौन रखना चाहिये । मौनके समय शुभभाव करना चाहिये । शुभ भावसे पुण्यकी वृद्धि होती हैं और पुण्यके प्रभावसे देवगति प्राप्त होती है इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिये ॥६७१–६७३॥

संन्यासमरणकी विधि

सवैया

दृगधारी श्रावक व्रत पालै पीछे ही संन्यास
सहित अंतकाल तजै निज प्राण ही,
संन्यास प्रकार दोइ एक है कषाय नाश
दुतिय आहार त्याग प्रगट बखानही;
आराधना च्यारि भावै दरसण प्रथम दूजी
ग्यांन तीजी चरण विशेष तप जानही;
जैसी विधि कषाय संन्यासको विचार जैसे
कहूं भव्य सुणि मनमांहि ठीक आन ही ॥६७४॥

दोहा

सकल स्वजन परजननितैं, मन वच काय त्रिशुद्ध ।
सल्य त्यागि खिमहै खिमा, करि परिणाम विशुद्ध ॥६७५॥

अति नजीक निज मरन लखि, अनुक्रम तजि आहार ।
पाछैं अनसन लेयकै, नियम असन बहुकार ॥६७६॥

चार आराधनाकौं तबै, आराधै भवि सार ।
दरसन ग्यांन चरित्र फुनि, तप द्वादश विधि सार ॥६७७॥

आगे संन्यासमरणकी विधि कहते हैं :—

सम्यग्दृष्टिको श्रावकके व्रत पालना चाहिये । पश्चात् जब अन्त समय आवे तब संन्यासपूर्वक प्राणत्याग करना चाहिये । संन्यास दो प्रकारका है, एक कषायका नाश करना और दूसरा आहारका त्याग करना । संन्यासके समय दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओंकी भावना करनी चाहिये । कषाय संन्यासकी विधि क्या है ? इसका कथन करता हूँ सो हे भव्यजनों ! उसे सुन कर मनमें अच्छी तरह धारण करो ॥६७४॥ मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक समस्त कुटुम्बीजन तथा सेवक आदि परिजनोंसे निःशल्य होकर क्षमा माँगे और उन्हें विशुद्ध भावोंसे क्षमा करें ॥६७५॥ जब मरणका समय अत्यन्त निकट जान पडे तब क्रम क्रमसे आहारका त्याग करे अर्थात् पहले दालभात आदिका त्याग कर पेय पदार्थ रक्खे, फिर उनका भी त्याग कर गर्म पानी रक्खे, पश्चात् उसका भी त्याग कर अनशनका नियम धारण करे ॥६७६॥ भव्यजीव, संन्यासके समय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और बारह प्रकारका तप, इन चार आराधनाओंकी भावना करे ॥६७७॥ सच्चे देव शास्त्र गुरुकी श्रद्धा करना,

देव शास्त्र गुरु ठीकता, तत्त्वारथ सरधान ।
[1]निसंकादि गुण जो सहित, लखि दरसण मतिमान ॥६७८॥

सवैया

धरममैं संका नांहि निसंकित नाम ताहि,
वांछातैं रहित निकांक्षत गुण जानियै;
ग्लान त्याग निरविचिकित्स देव गुरु श्रुत,
मूढता तजैया सो अमौढयवान मानियै;
परदोष ढांकै उपगूहन धरैया सोई,
भ्रष्टकौं सुथापै स्थितिकरण बखानियै;
मुनि गृही धर्मको जु कष्ट टारै वात्सल्य है,
मारग प्रभावना प्रभावत प्रवांनिये ॥६७९॥

अष्ट प्रकार ज्ञानकी आराधना

दोहा

आठ प्रकार सुग्यांनकौं, आराधै मतिमान ।
तसु वरनन संखेपतैं, कहै ग्रंथ परमान ॥६८०॥
प्रगट वरण लघु दीरघ जुति, करि विशुद्ध उच्चार ।
पाठ करै सिद्धांतको, व्यंजन ऊर्जित सार ॥६८१॥

तत्त्वार्थका श्रद्धान करना और निःशङ्कितत्व आदि गुण सहित प्रवर्तना, इसे सम्यग्दर्शन आराधना जानना चाहिये ॥६७८॥

धर्ममें शङ्का नहीं होना सो निःशङ्कित अंग है, भोगोपभोगकी इच्छासे रहित होना निःकांक्षित अंग है, ग्लानि छोडना सो निर्विचिकित्सा गुण है, देव और गुरुके विषयमें मूढताका त्याग करना अमूढदृष्टि अंग है, दूसरेके दोष ढाँकना उपगूहन गुण है, भ्रष्ट होते हुएको स्थिर करना स्थितिकरण अंग है, मुनि अथवा श्रावकके ऊपर आये हुए धर्म संबंधी कष्टको दूर करना वात्सल्य अंग है और मार्गकी प्रभावना करना सो प्रभावना अंग है। इन आठ अंगरूप प्रवर्तना सो सम्यग्दर्शन आराधना है ॥६७९॥

आठ प्रकार सम्यग्ज्ञानकी आराधना

ग्रन्थकार कहते हैं कि हे बुद्धिमान जनों! सम्यग्ज्ञानकी आराधना आठ प्रकारकी होती है उसका जिनागमके अनुसार संक्षेपसे वर्णन करते हैं ॥६८०॥ ह्रस्व अथवा दीर्घ अक्षरोंका शुद्ध उच्चारण करते हुए सिद्धान्त ग्रन्थोंका पढ़ना यह व्यंजनशुद्धि नामका प्रथम अंग है ॥६८१॥

---

१ निःसंकादिक गुण सहित न०

आगम अरथ सुजांणिकै, सुध उच्चार करेहि ।
अरथ समस्त संदेह विनु, जो सिद्धांत पढेहि ॥६८२॥
अर्थ समय सु नाम तसु, जानि लेहु निरधार ।
सबदारथोभय पूरणको, आगे सुणो विचार ॥६८३॥
व्याकरणादी अरथकौं, लखिवि नाम अभिधान ।
अंगपूर्व श्रुत सकलकौ, करै पाठ जे जान ॥६८४॥
पूर्वान्हिक मध्यान्ह फुनि, अपरान्हिक तिहुं काल ।
विनु आगम पढिये नहीं, कालाध्ययन विसाल ॥६८५॥
सरस गरिष्ठ आहारकौं, तजि करि आगम पाठ ।
गुण उपधान समृद्धि इह, महा पुन्यको ठाठ ॥६८६॥
प्रथम पूज्य श्रुत भक्ति युत, पढिहै आगम सार ।
सुखकर जानो नाम तसु, प्रगट विनय आचार ॥६८७॥
गुरु पाठक श्रुत भक्तियुत, पठत विना संदेह ।
गुर्वाद्यनपन्हव प्रगट, सप्तम नाम सु एह ॥६८८॥
पूजा आसन मान बहु, चित धरि भक्ति प्रसिद्ध ।
श्रुत अभ्यास सु कीजिये, सो बहुमान समृद्ध ॥६८९॥

आगमका अर्थ जानकर उसका शुद्ध उच्चारण करना, तथा उसमें संदेह न रखते हुए स्वाध्याय करना सो अर्थशुद्धि नामक दूसरा अंग है। शब्द और अर्थ दोनोंकी शुद्धिको उभयशुद्धि कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि व्याकरणादिके अनुसार शब्द अर्थका विचार करते हुए अंग पूर्व रूप समस्त शास्त्रोंको पढ़ना यह उभयशुद्धि है ॥६८२–६८४॥ पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण, ये स्वाध्यायके काल हैं इन्हें छोड़कर अन्य कालमें आगमको नहीं पढ़ना यह कालाध्ययन अंग है ॥६८५॥ सरस एवं गरिष्ठ आहारका त्याग कर सात्विक आहार लेना और आलस्य रहित होकर सावधानीसे आगमका स्वाध्याय करना, यह उपधान नामका अंग है। यह अंग महान पुण्यका कारण है ॥६८६॥ श्रुतभक्ति पूर्वक पूज्य आगम ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना, यह सुखकारक विनयाचार नामका अंग है ॥६८७॥ गुरु, पाठक और शास्त्रका नाम न छिपाते हुए संदेह रहित होकर स्वाध्याय करना, यह गुरुआदिक अनपह्नव नामका सातवाँ अंग है ॥६८८॥ श्रुत-पूजा कर तथा अच्छे आसनसे बैठ कर हृदयमें बहुत सन्मान रखते हुए भक्तिपूर्वक शास्त्रका अभ्यास करना यह बहुमान नामका आठवाँ अंग है ॥६८९॥

आगे तेरह प्रकारके चारित्रका वर्णन करते हैं :–

तेरह प्रकारके चारित्रका वर्णन

अडिल्ल छन्द

वरत अहिंसा अनृत अचौरज तीसरो,
ब्रह्मचरिज व्रत पंचम आकिंचन खरो;
मन वच तन तिहुं गुपति पंच समिति जु सही,
ए चारित आराधन तेरा विधि कही ॥६९०॥

अनसन आमोदर्य वस्तु संख्या गनी,
रस परित्याग रु विवकत सय्यासन भनी;
काय क्लेश मिलि छह तप बाहिजके भये,
षट् प्रकार अभ्यंतर आगम वरणये ॥६९१॥

प्रायश्चित अरु विनय वैयावृत जानिये,
स्वाध्याय रु व्युत्सर्ग ध्यान परमांनिये;
मिलि बाहिज अभ्यंतर बारा विधि लिखी,
तप आराधन एह जिनागममें अखी ॥६९२॥

दोहा

दरसण ग्यान चरित्र तप, आराधन विवहार ।
अंत समै भावै व्रती, सुरसुख शिव दातार ॥६९३॥

निश्चय आराधनाका वर्णन

दोहा

अब निश्चै आराधना, वरणों चार प्रकार ।
आराधक शिवपद लहै, यामें फेर न सार ॥६९४॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत, ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और प्रतिष्ठापना ये पाँच समितियाँ, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ये तीन गुप्तियाँ, सब मिलाकर तेरह प्रकारका चारित्र कहलाता है ॥६९०॥ अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन, और कायक्लेश ये छह बाह्य तप हैं तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह अभ्यन्तर तप हैं। दोनों मिला कर बारह प्रकारके तप होते हैं इन्हें धारण करना जिनागममें तप आराधना कहा गया है ॥६९१–६९२॥ व्रती मनुष्यको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप इन चार प्रकारकी व्यवहार आराधनाओंकी अन्त समय अच्छी तरह भावना करनी चाहिये । ये भावनाएँ स्वर्ग और मोक्षका सुख देनेवाली हैं ॥६९३॥ आगे चार प्रकारकी निश्चय आराधनाओंका वर्णन करते हैं जिनकी आराधना करनेवाला मोक्षपदको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥६९४॥

सवैया

आतमके ग्यान करि अष्ट महा गुणधर,
दरसन ग्यान सुख वीरज अनंत है ।
निहचै नयेन आठ करमनिसौं विमुक्त,
ऐसो आतमाको जानि कहिये महंत है ।
ताहि सुधी चेतन उपरि श्रद्धा रुचि परि-
तीति चित अचल करत जे वे संत हैं ।
निश्चय आराधना कही है दरसन याहि,
भावै अंत समय सु केवल लहंत है ॥६९५॥

पुनः ;

निज भेदग्यान करि सुधातम तत्त्वनिकौं,
चेतन अचेतन स्वकीय परमानी है ।
सप्त तत्त्व नव पदारथ षट द्रव्य पंचा-
सतीकाय उत्तर प्रकृती मूल जानी है ।
इनको विचार वारंवार चित्त अवधार,
ज्ञानवान सुध चेतनाको उर आनी है ।
संन्यास समय अंत काल ऐसे भाइए तो,
निश्चय आराधना सुबोध यों बखानी है ॥६९६॥

पुनः ,

प्रथमहि अठाईस मूल गुणधार पंच,
परकार निरग्रंथ गुण हिय धारिये ।

जो आठ महान गुणोंका धारी हैं, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत बलसे सहित है, तथा निश्चय नयकी अपेक्षा आठ कर्मोसे रहित है ऐसी आत्माकी जो ज्ञानी जन श्रद्धा, रुचि या प्रतीति करते हैं वे महान सत्पुरुष निश्चय सम्यग्दर्शन आराधनाके धारक हैं। जो अन्त समयमें इस आराधनाकी भावना करते हैं वे केवलज्ञानको प्राप्त होते हैं ॥६९५॥ जो स्वकीय भेदविज्ञानके द्वारा शुद्ध आत्मतत्त्वको पहिचान कर चेतन अचेतन तत्त्वोंके भेदको समझते हैं, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, छह द्रव्य और पंचास्तिकायका स्वरूप जान कर मूल प्रकृतियों तथा उत्तर प्रकृतियोंको जानते हैं, चित्तमें इनका बार बार विचार करते हैं वे ज्ञानी ही शुद्धज्ञान चेतनाको हृदयमें धारण करते हुए अन्त समयमें संन्यास धारण करते हैं। वे निश्चय सम्यग्ज्ञान आराधक हैं। अब आगे सविकल्प सम्यक् चारित्र आराधनाका वर्णन करते हैं ॥६९६॥

जो सर्वप्रथम अट्ठाईस मूल गुणोंको धारण कर पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रन्थ और स्नातक इन पाँच निर्ग्रन्थ मुनियोंके गुणोंको हृदयमें धारण करते हैं अर्थात् उनका चिन्तन करते हैं;

सत्ताईस पंच इंद्रीनिके विषयाकों त्याग,
बाहिज अभ्यंतर परिग्रहकों टारिये ।
संकलप विकलप मनतें सकल तजि,
आतमीक ध्यानतें सुधातमा यों धारिये ।
परकरमादि सेती जुदो यासों कर्म जुदो,
निश्चय चारित्र यों आराधना विचारिये ॥६९७॥

अडिल्ल छन्द—जो कोऊ नर मनमें इच्छा धरतु है,
फिरि परिणाम संकोच निरोधहि करतु है ।
सो आराधन निश्चय तप परमानिये,
तप इच्छादि निरोध यही मन आनिये ॥६९८॥

दोहा—निश्चै चहुं आराधना, ग्रन्थ प्रमाण बखान ।
किसनसिंह धरिहै सुधी, सो शिव लहै निदान ॥६९९॥
ए चहुं विधि आराधना, धरै कौन प्रस्ताव ।
सो भविजन सुनि लीजिये, मन वच बुध करि भाव ॥७००॥

अडिल्ल—जो कोऊ उपसर्ग मरण सम आय है,
कै दुरभिक्ष पडै कछु कारण पाय है ।
जरा अधिक बल जरजर सक्ति न सहै तबै,
कै तन रोग अपार मृत्युसम दुख जबै ॥७०१॥

जो पाँच इन्द्रियोंके सत्ताईस (८+५+२+५+७=२७) विषयोंका त्याग कर बाह्याभ्यन्तर परिग्रहको छोड़ते है, जो समस्त संकल्प विकल्पोंको मनसे दूर कर शुद्ध आत्मध्यानको धारण करते हैं, जो समस्त परिकर्मसे जुदे रहते हैं तथा परिकर्म जिनसे जुदा रहता है वे निश्चय सम्यक्-चारित्र आराधनाके धारक हैं, ऐसा विचार करना चाहिये ॥६९७॥ जो कोई मनुष्य प्रारम्भमें मनमें इच्छाएँ धारण करता है पश्चात् परिणामोंको संकुचित कर उन इच्छाओंका निरोध करता है, यही निश्चयनयसे निश्चय तप आराधना है, ऐसा मनमें विचार करना चाहिये ॥६९८॥ कविराज किशनसिंह कहते हैं कि हमने आगमप्रमाणसे चार निश्चय आराधनाओंका वर्णन किया है । जो ज्ञानीपुरुष इन्हें धारण करता है वह अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है ॥६९९॥ इन चारों प्रकारकी आराधनाओंको कौन पुरुष धारण करता है ? यह हे भव्यजनों ! मन, वचन तथा भावपूर्वक सुन लीजिये ॥७००॥

यदि मरणके समान भयंकर उपसर्ग आ जावे, कुछ कारणवश दुर्भिक्ष पड़ जावे, अत्यधिक वृद्धावस्था आनेसे शरीर जर्जरित हो जावे, शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जावे, अथवा

इतने जोग मिलाय उपाय न कछु वहै,
मरण निकट निज जानि विचारै मन तहै ।
ध्याय आराधन धर्म निमित तनको तजै,
सो नर परम सुजान स्वर्गशिवसुख भजै ॥७०२॥

आराधनाके अतिचार

छन्द चाल

संलेखणकी जो वार, जीवनकी आसा धार ।
लोगनिके मुख अधिकाई, निज महिमा लखि हरषाई ॥७०३॥

निजको लखि दुख अर लोक, करिहै न प्रतिष्ठा थोक ।
महिमा कछु सुणय न कांनि, मरवो जब ही मनि आंनि ॥७०४॥

मित्रनिसों करि अति नेह, पूरव क्रीडा की जेह ।
करि यादि मित्र जुत रागै, अतीचार तृतीय सु लागै ॥७०५॥

भुगत्या सुख इह भवमांही, निज मन ही याद करांही ।
चौथो अतिचार सुजानी, पंचम सुणिये भवि प्राणी ॥७०६॥

शरीरमें ऐसा असहनीय रोग हो जावे, जो मृत्युके समान दुःखका कारण हो; इतने योग मिलने पर जब कुछ उपाय चलता नहीं दीखे तब अपना मरण निकट जान कर मनमें आराधनाओंका विचार करना चाहिये । जो ज्ञानी पुरुष आराधनाओंका ध्यान कर धर्मके निमित्त शरीरका त्याग करता है वह स्वर्ग और मोक्षके सुख प्राप्त करता है* ॥७०१–७०२॥

आराधनाके अतिचार

सल्लेखनाके समय लोगोंके मुखसे अपनी अधिक महिमा सुन कर हर्षित होना तथा अधिक काल तक जीवित रहनेकी इच्छा करना जीविताशंसा नामका पहला अतिचार हैं ॥७०३॥ अपने आपको अधिक दुःख हो रहा हो, लोग प्रशंसा न करते हो तथा अपनी महिमा सुननेमें न आती हो, इस स्थितिमें जल्दी मरनेकी इच्छा करना मरणाशंसा नामका दूसरा अतिचार है ॥७०४॥ जिन मित्रोंके साथ पहले क्रीड़ा की थी उनसे अधिक स्नेह रखना तथा उनका स्मरण करना मित्रानुराग नामका तीसरा अतिचार है ॥७०५॥ इस भवमें जो सुख भोगा था उसका मनमें स्मरण करना, यह सुखानुबन्ध नामका चौथा अतिचार है । हे भव्यजनों ! अब पाँचवे अतिचारका वर्णन सुनो ॥७०६॥ सल्लेखना धारण कर जो मनमें ऐसा निदान करता

---

* उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनमार्याः ॥ —समन्तभद्र

संलेखण धारि हि जांन, मनमें इन करय निदान ।
हुं इन्द्रतणो पद पाऊं, मस्तक किन ही न विनाऊं ॥७०७॥
चक्रवर्ती संपदा जेती, त्रिय सुत जुत है मुझ सेती ।
ऐसो जो करय निदान, तप सुरतरु देहौं दान ॥७०८॥
संलेखण पण अतिचार, भाष्यौ इनको निरधार ।
ए टालि संलेखण कीजै, ताको फल सुर सिव लीजै ॥७०९॥

बारह तपोंका वर्णन

सवैया

अनसन तप नाम उपवास कीजे जाको,
आमोदर्य तप लघु भोजन लहीजिये ।
वस्तु परिसंख्या जे ते द्रव्यनकी संख्या कीजै,
रस परित्यागनितें रस छांडि दीजिये ।
विवकत सय्यासन व्रत धारि भवि मुनि,
कायक्लेश उग्र तप मनकों गहीजिये ।
एई षट तप कहे बाहिजके आगममें,
सुर शिव सुखदाई भवि वेग कीजिये ॥७१०॥

हैं कि मैं सल्लेखनाके प्रभावसे इन्द्र हो जाऊँ जिससे मुझे किसीके सामने मस्तक नभ्रीभूत न करना पडे; मुझें चक्रवर्ती जैसी संपदा प्राप्त हो जावे, तथा मुझे स्त्री पुत्र आदिका संयोग प्राप्त हो, तपरूपी कल्पवृक्ष मुझे ये सब देता रहे। ऐसा विचार करना यह निदान नामका पाँचवाँ अतिचार है । सल्लेखनाके ये पाँच अतिचार कहे गये हैं सो इनका निर्धार कर इन्हें टालना चाहिये तथा निरतिचार सल्लेखनाके फलस्वरूप स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त करना चाहिये ॥७०७–७०९॥

बारह तपोंका वर्णन

चतुर्विध आहारका त्याग कर उपवास करना अनशन नामका तप है। लघु भोजन करना अर्थात् भूखसे कम भोजन करना अवमौदर्य तप है । खाने योग्य वस्तुओंकी संख्या निश्चित करना वस्तु परिसंख्यान अथवा वृत्तिपरिसंख्यान तप है। घी, दूध, दही, मीठा, नमक और तेल इन छह रसोंका अथवा यथाशक्ति एक दो रसोंका त्याग करना रसपरित्याग तप है । व्रत धारण कर एकान्त स्थानमें शयन–आसन करना विविक्त शय्यासन तप हैं। और आतापन योग आदि कठिन तप करना कायक्लेश तप है। आगममें ये छह बाह्य तप कहे गये हैं । यतश्च ये तप स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले हैं, इसलिये हे भव्यजीवो ! इन्हें शीघ्र ही धारण करो ॥७१०॥

प्रायश्चित्त वहै दोष गुरु पैं खमाय तब,
विनै तप गुणवृद्धिकी जो विनो कीजिये ।
वैयावृत्त तप गुणधारी वैयावृत्त कीजै,
स्वाध्याय जिनागम त्रिकालमें पढीजिये ।
व्युतसर्ग खडा होय ध्यान धरिवे कौं नाम,
ध्यान निज आतमीक गुण निरखीजिये ।
बाह्जि अभ्यंतरके तप भेद जानि पालि,
अनुक्रमि यातैं गुणथानक चढीजिये ॥७११॥

दोहा

द्वादश तप वरनन कियो, जिनवर भाष्यो जेम ।
कछु विशेष समभावको, [1]कहूँ यथामति तेम ॥७१२॥

समभाव वर्णन

सवैया

अनंतानुबंधी क्रोध पाषाणकी रेखा सम,
मान थंभ पाहन समान दुखदाय है ।
वंस विडावत माया लोभ लाख रंग जानि,
इनके उदैतैं जीव नरक लहाय है ।
जब लग अनंतानुबंधी चौकडीको धरै,
जनम प्रयंत जाको संग न तजाय है ।

गुरुके पास जा कर दोषोंको क्षमा कराना प्रायश्चित्त तप है। गुणोंसे वृद्ध मुनियोंकी विनय करना विनय तप है । गुणीजनोंकी सेवा करना वैयावृत्य तप है । जिनागमका त्रिकाल– प्रातः, मध्याह्न और अपराह्नमें पढ़ना स्वाध्याय तप है। खडे होकर ध्यान करना व्युतसर्ग तप है तथा आत्माके गुणोंका चिन्तन करना ध्यान तप है । ये छह अभ्यन्तर तप है। इस प्रकार बाह्य और अभ्यन्तर तपके भेदोंको जान कर तथा उनका पालन कर क्रमसे उपरितन गुणस्थानों पर चढ़ना चाहिये ॥७११॥

कविवर किशनसिंह कहते हैं कि हमने जिनेन्द्र भगवानके कहे अनुसार बारह तपोंका वर्णन किया । अब यथाबुद्धि समभावका कुछ विशेष वर्णन करते हैं ॥७१२॥

अनन्तानुबन्धी क्रोध पाषाणकी रेखाके समान है, मान पाषाणके खम्भके समान है, माया बाँसके भिडेके समान है और लोभ, लाखके रंगके समान है । इन चारोंके उदयसे जीव नरक- गतिको प्राप्त होता है। जब तक जीव अनन्तानुबन्धीकी चौकडीको धारण करता है तब तक

---

१ कहूं यथाप्रति प्रेम न०

याके जोर सेती जीव दरसन सुधताको,
लहै नांही ऐसैं जिनराजजी बताय हैं ॥७१३॥

क्रोध जो अप्रत्याख्यान हल रेखावत जानि,
मान अस्थि थंभ मांनि दुष्टता गहाय है।
माया अजा शृंग जानि लोभ है मजीठ रंग,
इनके उदैतैं जीव तिरयंच थाय है।
जब ही अप्रत्याख्यान चौकडीको उदै होय,
जाकै एक वरष लौं थिरता [1]रहाय है।
जो लौं याको बल तो लौं श्रावकके व्रतनिको,
धर सकै नाहि जिनराजजी बताय हैं ॥७१४॥

प्रत्याख्यान क्रोध धूलिरेखा परमान कह्यो,
मान काठ थंभ माया गोमूत्र समान है।
लाभ कसुंभाको रंग एई चारों प्रत्याख्यान,
इनके उदैतैं पावे नरपद थान है।
प्रत्याख्यान कषाय प्रगट उदै होत संतैं,
च्यारि मास परजंत रहे जानो जान है।
याहीको विपाकसो न सकति प्रकट होत,
मुनिराज व्रत धरि सकै न प्रमान है ॥७१५॥

वह जन्मपर्यन्त वैरभावको नहीं छोड़ता है। इसके प्रभावसे जीव सम्यग्दर्शनकी शुद्धताको प्राप्त नहीं होता, ऐसा जिनेन्द्र देवने कहा है ॥७१३॥

अप्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी क्रोध हलकी रेखाके समान है, मान हड्डीके खम्भके समान है, माया बकरीके सींगके समान है और लोभ मजीठके रंगके समान है। इनके उदयसे जीव तिर्यंचगतिको प्राप्त होता है। जब तक अप्रत्याख्यानावरणकी चौकडीका उदय रहता है तब तक कषायका संस्कार एक वर्ष तक स्थिर रहता है। जब तक इसका बल रहता है तब तक यह जीव श्रावकके व्रत ग्रहण नहीं कर सकता, ऐसा जिनराजने बतलाया है ॥७१४॥

प्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी क्रोध धूलिरेखाके समान है, मान काठके खम्भके समान है, माया गोमूत्रके समान हैं और लोभ कुसुम्भके रंगके समान है। इस प्रत्याख्यानावरणकी चौकडीके उदयसे जीव मनुष्य गतिको प्राप्त होता है। प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय रहने पर चार माह तक वैरभाव चलता है। इसके उदयसे जीव मुनिराजके व्रत धारण नहीं कर सकता ॥७१५॥

---

१ ल्हाय है स० कहाय है न०

संज्वलन क्रोध जलरेखा वत कह्यो जिन,
मान वेतलताकी सी नवनि प्रधान है।
माया है चमर जैसी लोभ हरदीको रंग,
इनके उदैतैं पावे सुरग विमान है।
चौथी हु कषाय चौकडीको उदै पाय ताकै,
च्यार पक्ष तांऊ जाकै प्रबल महान है।
यथाख्यात चारित्रको धरि सकै नाहि मुनि,
तीर्थङ्कर गोत्रहू जो बांधै यों वखान है ॥७१६॥

चौपाई

सोलह कषाय चौकरी च्यार, नोकषाय नव नाम विचार।
हासि अरति रति सोक वखान, भय [1]जुगुप्सा ए षट जान ॥७१७॥

वनिता पुरुष नपुंसक वेद, ए नव मिलैं पचीस जु भेद।
इनको उपसम करिहै जबै, समकित हियैं सुभ किरिया तबै ॥७१८॥

संज्वलन क्रोध, जलरेखाके समान जिनेन्द्र भगवानने कहा है। मान वेत्रलताकी नम्रताके समान बताया है। माया, चमरके समान और लोभ हल्दीके रंगके समान कहा हैं। इनके उदयसे जीव स्वर्गके विमान प्राप्त करता है। संज्वलन चौकडीके उदयमें कषायका संस्कार चार पक्ष अर्थात् दो माह तक चलता है। इसके प्रभावसे मुनि यथाख्यात चारित्र धारण नहीं कर सकते परन्तु तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कर सकते हैं ऐसा जिनागममें कथन है ॥७१६॥

विशेषार्थ :– *गोम्मटसार कर्मकाण्डमें संज्वलनका वासना काल एक अन्तर्मुहूर्त, प्रत्याख्यानावरणका एक पक्ष, अप्रत्याख्यानावरणका छह माह और अनन्तानुबंधीका संख्यात असंख्यात तथा अनंत भव तक बतलाया है। यहाँ ग्रन्थकारने अनन्तानुबंधी आदिका जो जन्म पर्यन्त, एक वर्ष, चार माह तथा दो माह तक संस्कारकाल कहा है उसका आधार विदित नहीं होता ॥७१२–७१६॥

अनन्तानुबंधी आदि चार चौकडियोंके सोलह कषाय तथा नौ नोकषाय, सब मिल कर पच्चीस कषाय होते हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद ये तीन वेद, सब मिल कर नौ नोकषाय कहलाते हैं। इन पच्चीस कषायोंका जब उपशम होता है तभी साम्यभाव होता है और तभी सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है ॥७१७–७१८॥ आगे ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन करते है :–

---

१ दुरगंछा स० न०

* अंतोमुहुत्त पक्खं छम्मासं संखऽसंखणंत भवं।
संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण ॥४६॥

एकादश प्रतिमा वर्णन

चौपाई

अब एकादश प्रतिमा सार, जुदो जुदो तिनकों निरधार ।
सो भाष्यौं आगम परवान, सुणि चित धारो परम सुजान ।।७१९।।
दर्शन व्रत सामायिक कही, पोसह सचित्त त्याग विधि गही ।
रयनि असन त्यागी ब्रह्मचार, अष्टम आरंभको परिहार ।।७२०।।
नवमी परिग्रहको परिमान, दशमी अघ उपदेश न दान ।
एकादशमी दोय प्रकार, क्षुल्लक दुतिय एलक व्रत धार ।।७२१।।
श्रेणिक पूछै गौतम तणी, दरसन प्रतिमाकी विधि भणी ।
गौतम भाष्यौ श्रेणिक भूप, दरसन प्रतिमा आदि सरूप ।।७२२।।
एकादशकी जो विधि सार, जुदी जुदी कहिहौं निरधार ।
याहैं सुनि करि धरिहैं जेय, श्रावकव्रतधारी हैं सोय ।।७२३।।
प्रथमहि दरसन प्रतिमा सुनो, त्यों निज आतम सहजै मुनो ।
दरसन मोक्षबीज है सही, इह विधि जिन आगममें कही ।।७२४।।
दरसन सहित मूल गुण धरे, सात विसन मन वच तन हरे ।
दरसन प्रतिमाको सुविचार, कछु इक कहौ सुनौ [1]सुखकार ।।७२५।।

अब ग्यारह प्रतिमाओंका जो सार है उसका पृथक् पृथक् निर्धार कर आगमके अनुसार कथन करता हूँ सो हे उत्कृष्ट ज्ञानी जनों ! उसे सुनकर हृदयमें धारण करो ।।७१९।। दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त त्याग, रात्रिभोजन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, पापोपदेश त्याग (अनुमति त्याग) और उद्दिष्ट त्याग ये ग्यारह प्रतिमाएँ हैं । इनमें ग्यारहवीं प्रतिमा दो प्रकारकी है :—एक क्षुल्लक व्रतधारी और दूसरी एलक व्रतधारी ।।७२०–७२१।।

राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे प्रभो ! दर्शन प्रतिमाकी विधि कहिये । उत्तरमें गौतम स्वामीने कहा कि हे श्रेणिक राजन् ! मैं दर्शन प्रतिमाको आदि लेकर ग्यारह प्रतिमाओंकी जो विधि है उसका पृथक् पृथक् निर्धार कर कथन करता हूँ इसे सुन कर जो धारण करता है वह श्रावक व्रतधारी होता है ।।७२२–७२३।।

सबसे पहले तुम दर्शन प्रतिमाको सुनो और अपनी आत्मामें सहज ही उसका मनन करो । दर्शन—सम्यग्दर्शन मोक्षका बीज है ऐसा जिनागममें कहा गया है ।।७२४।। जो सम्यग्दर्शनके साथ आठ मूलगुण धारण करता है तथा मन वचन कायसे सात व्यसनोंका त्याग करता है वह दर्शन प्रतिमाका धारक है । यहाँ दर्शन प्रतिमा सम्बन्धी कुछ विचार कहता हूँ सो हे

---

१ निरधार स०

देव न मानै विनु अरहंत, दस विधि धर्म दयाजुत संत ।
तपधर मानै [1]गुरु निग्रंथ, प्रथम सुद्ध यह दरसन पंथ ।।७२६।।

संवेगादिक गुणजुत सोय, ताकी महिमा कहिहै कोय ।
धरम धरमके फलको लखै, सो संवेग जिनागम अखै ।।७२७।।

जो वैराग भाव निरवेद, गरहा निन्दाको दुइ भेद ।
निज चित निंदै निंदा सोय, गरहा गुरु ढिग जा आलोय ।।७२८।।

उपसम जे समता परिणाम, भक्ति पंच गुरु करियै नाम ।
धरम रु धरमीसों अति नेह, सो [2]वाछल्ल महा गुणगेह ।।७२९।।

अनुकंपा निति ही चित रहै, एव सुगुण जो समकित गहै ।
दरसन दोष लगै पणवीस, सुनियो जो कथिता गण ईश ।।७३०।।

तीन मूढता मद वसु जान, अरु अनायतन षट विधि ठान ।
आठ दोष शंकादिक कही, दोष इते तजि दरसन गही ।।७३१।।

भो श्रेणिक सुन इस संसार, जीव अनंत अनंती वार ।
सीस मुडाय कुतप बहु कियो, केस लोंच अरु मुनिपद लियौ ।।७३२।।

भव्यजनों ! उस सुखकारी विचारको सुनो ।।७२५।। जो अरहंतके सिवाय अन्यको देव न माने, दयाधर्मसे सहित दश प्रकारके धर्मको माने और तपस्वी निर्ग्रन्थ गुरुको स्वीकृत करे, वही दर्शन प्रतिमाका धारी है। सम्यग्दर्शनको शुद्ध रखनेका यही एक मार्ग है ।।७२६।। सम्यग्दर्शनके इस लक्षणको धारण कर जो संवेगादिक गुणोंसे युक्त होता है उसकी महिमा कौन कह सकता है ? धर्म और धर्मके फलकी ओर लक्ष्य रखना, इसे शाश्वत जिनागममें संवेग नामका गुण कहा है ।।७२७।। जो वैराग्यभावको धारण करना है उसे निर्वेद कहते हैं । अपराध होने पर गर्हा और निन्दा की जाती है। अपने मनमें पश्चात्ताप करना निन्दा है और गुरुके समीप आलोचना करना गर्हा है ।।७२८।। समताभाव रखनेको उपशम कहते है । पंच परमेष्ठियोंके प्रति नम्रताका भाव रखना—उनकी श्रद्धा रखना सो आस्तिक्य गुण है । धर्म और धर्मीके प्रति स्नेह होना वात्सल्य नामका महान गुण हैं ।।७२९।। चित्तमें निरन्तर दयाका भाव रहना अनुकम्पा नामका गुण है । जो सम्यग्दर्शनको ग्रहण करता है उसमें उपर्युक्त गुण प्रकट होते हैं । सम्यग्दर्शनमें पच्चीस दोष लगते हैं उनका कथन गणधर देवने जैसा किया है उसे सुनो ।।७३०।। तीन मूढ़ता, आठ मद, छह अनायतन, और शंकादिक आठ दोष, ये सम्यग्दर्शनके पच्चीस दोष हैं ।।७३१।।

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सुनो, इस जीवने अनंती बार शिर मुड़ा कर बहुत कुतप किया, केश लोंच कर मुनिपद धारण किया और अनन्तकाल तक बहुत कष्ट सहन किया

---

१ मुनि स० न० २ वात्सल्य स० न०

किये अनन्तकाल बहु खेद, आतम तत्व न जानउ भेद ।
जबलौं दरसन प्रतिमा तणी, प्रापति भई न जिनवर भणी ।।७३३।।
तातैं फिर्यो चतुर्गति मांहि, फुनि भवदधि भ्रमिहै सक नांहि ।
प्रावर्तन कीये बहु वार, फिर करिहै [1]जिसके नहि पार ।।७३४।।
आठ मूलगुण प्रथमहि सार, वरनन कियो विविध परकार ।
तातैं कथन कियो अब नांहि, कहै दोष पुनरुक्त लगांहि ।।७३५।।
कुविसन सात कह्यौ विसतार, जुवा मांस भखिवो अविचार ।
सुरापान चोरी आखेट, अरु वेश्यासों करिये भेंट ।।७३६।।
इनमें मगन होइ करि पाप, फल भुगतैं लहि अति संताप ।
तिनके नाम सुणो मतिमान, कहिहौं यथाग्रन्थ परिमाण ।।७३७।।
पाण्डुपुत्र जे खेलै जुवा, पांचों राज्यभ्रष्ट ते हुवा ।
बारह वरष फिरै वनमांहि, असन वसन दुख भुगते तांहि ।।७३८।।
मांसलुबध राजा बक भयो, राजभ्रष्ट ह्वै नरकहि गयो ।
तहां लहै दुख पंच प्रकार, कवि तिन कहि न सकै विसतार ।।७३९।।

परंतु आत्मतत्त्वके भेदको नहीं जाना। यतश्च इस जीवको जिनेन्द्र भगवानके कहे अनुसार दर्शनप्रतिमाकी प्राप्ति नहीं हुई इसलिये यह चतुर्गतिमें भ्रमण कर रहा है और आगे भी संसार सागरमें गोते लगाता रहेगा, इसमें संशय नहीं है ।।७३२–७३३।। सम्यग्दर्शनके बिना इसने बहुत बार परिवर्तन किये हैं और आगे भी करता रहेगा। परिवर्तनोंका कुछ अन्त नहीं है ।।७३४।।

आठ मूल गुणोंका पहले वर्णन किया जा चुका है इसलिये पुनरुक्ति दोषकी आशंकासे यहाँ कथन नहीं किया है ।।७३५।। अब सात कुव्यसनोंका विस्तार कहता हूँ––*जुवा खेलना, भक्ष्याभक्ष्यके विचारसे रहित होकर मांस खाना, मदिरापान करना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्यासेवन करना और परस्त्री समागम करना ये सात कुव्यसन हैं ।।७३६।। इन व्यसनोंमें निमग्न होकर जिन्होंने पाप किया है और अत्यधिक संताप प्राप्त कर पापका फल भोगा है, हे बुद्धिमान जनों ! उनके नाम सुनो, मैं आगमके अनुसार कहता हूँ ।।७३७।।

पाण्डवोंने जुवा खेला, उसके फलस्वरूप पाँचों पाण्डव राज्यसे भ्रष्ट हुए, बारह वर्ष तक वनमें फिरते रहे और भोजन तथा वस्त्रका दुःख भोगते रहे ।।७३८।। राजा बक मांसका लोभी हुआ उसके फलस्वरूप वह राज्यभ्रष्ट हो कर नरकमें गया। वहाँ वह जिन पाँच प्रकारके

---

१ जाको नहि पार न० स०

* जूवा खेलन मांस मद, वेश्या व्यसन शिकार ।
चोरी पररमणी रमण, सातों व्यसन निवार ।। —पार्श्वपुराण

प्रगट दोष मदिरातैं जान, नास भयो यदुवंस वखान ।
तपधर अरु हरि बल नीकले, बाकी अगनि द्वारिका जले ॥७४०॥
वेश्या लगन करी हिय लाय, चारुदत्त श्रेष्ठी अधिकाय ।
कोडी बत्तीस खोइ दिनार, द्रव्यहीन, दुख सहै अपार ॥७४१॥
षटखंडी सुभूम मतिहीन, विसन अहेडामें अति लीन ।
पाप उपाय नरक सो गयो, दुख नानाविध सहतो भयो ॥७४२॥
परवनिताकी चोरी करी, रावण प्रतिहरि निज मति हरी ।
[1]राम रु हरि सौं करि संग्राम, मरि करि लह्यौ नरक दुखधाम ॥७४३॥
परयुवतीकौ दोष महंत, द्रुपदसुतास्युं हास्य करंत ।
कीचक फल पायो ततकाल, [2]रावणहूं गनिये इह चाल ॥७४४॥
आठ मूल गुण पालै तेह, विसन सातकौं त्यागी जेह ।
अरु सम्यक्त्व जु दृढता धरै, पहिली प्रतिमा तासौं परै ॥७४५॥

दोहा

प्रथम प्रतिग्या इह कही, श्रावककै मुख जान ।
अब दूजी प्रतिमा कथन, कछु इक कहूं वखान ॥७४६॥

दुःखोंको भोग रहा है उसका विस्तार कहनेके लिये कवि समर्थ नहीं है ॥७३९॥ मदिरापानका दोष प्रकट है। इसके कारण यदुवंश नष्ट हो गया। जिन्होंने दीक्षा लेकर तप धारण किया वे तथा कृष्ण और बलराम ये दो ही बच कर निकल सके, शेष जीव द्वारिकाकी अग्निमें जल गये ॥७४०॥ वेश्यासक्तिमें पड़ कर चारुदत्त सेठने बत्तीस करोड़ दीनारें खो दी और निर्धनताका अपार दुःख सहा ॥७४१॥ छह खण्डका स्वामी, बुद्धिहीन सुभौम चक्रवर्ती शिकारमें आसक्त हो पापोपार्जन कर नरकमें गया, वहाँ उसे नाना प्रकारके दुःख सहन करने पड़े ॥७४२॥ प्रतिनारायण रावणने बुद्धिभ्रष्ट होकर परस्त्रीकी चोरी की, राम और लक्ष्मणसे युद्ध किया तथा मर कर दुःखोंके स्थानस्वरूप नरकको प्राप्त किया ॥७४३॥ परस्त्री व्यसनका महान दोष है। द्रौपदीके साथ हास्य करनेसे कीचकने तत्काल फल प्राप्त किया। इसी प्रकार रावणने भी इस कुचालके फलस्वरूप कुगतिको प्राप्त किया ॥७४४॥ जो आठ मूल गुणोंका पालन करता है, सात व्यसनोंका त्यागी होता है और दृढताके साथ सम्यक्त्वको धारण करता है उसीसे पहिली दर्शन प्रतिमाका पालन होता हैं ॥७४५॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि इस प्रकार यहाँ श्रावककी मुख्य पहिली दर्शन प्रतिमाका कथन किया, अब दूसरी व्रत प्रतिमाका कुछ व्याख्यान करता हूँ ॥७४६॥

---

१ राम लछनसों स० २ नरक द्रव्य देखे बेहाल स०

छन्द चाल—तहँ पांच अणुव्रत जाणो, गुणव्रत फुनि तीन वखाणो ।
सिख्याव्रत मिलिकैं च्यारी, दूजी प्रतिमाकौं धारी ॥७४७॥
बारा व्रत वरनन आगै, कीनौं चित धरि अनुरागैं ।
पुनरुक्त दोष तैं जानी, दूजा नहि कथन [1]कथानी ॥७४८॥
तीजी प्रतिमा सामायक, भविजनकौं सुर शिव दायक ।
आगैं बारा व्रत मांही, वरनन कीनों सक नांही ॥७४९॥
चौथी प्रतिमा तिहिं जानौ, प्रोषध तसु नाम वखानौ ।
वरनन सुणिवेको चाव, द्वादश व्रत मधि दरसाव ॥७५०॥
पंचम प्रतिमा बड भाग, [2]सुणि सचित करो परित्याग ।
काचो जल कोरो नाज, फल हरित सकल नहि काज ॥७५१॥
सब पत्र शाक तरु पान, [3]नागर वेलि अघ थांन ।
सहु कंदमूल हैं जेते, सूके फल सारे तेते ॥७५२॥
अरु बीज [4]जानिये सारे, माटी अरु लूण विचारे ।
करि त्याग सचित व्रत धारी, पंचम प्रतिमा तिहिं पारी ॥७५३॥
दिन चढै घडी दोय सार, पछिलो दिन बाकी धार ।
इतने मधि भोजन करिहै, छट्ठी प्रतिमा सो धरिहै ॥७५४॥

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इन बारह व्रतोंको जो धारण करता है वह दूसरी व्रत प्रतिमाका धारी है ॥७४७॥ बारह व्रतोंका वर्णन पहले हृदयमें अनुराग धारण कर किया जा चुका हैं इसलिये पुनरुक्ति दोषके कारण द्वितीय बार उनका कथन नहीं किया है ॥७४८॥ तीसरी सामायिक प्रतिमा है, जो भव्यजीवोंको स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली है । पहले बारह व्रतोंमें सामायिकका वर्णन निःसंदेह किया जा चुका है ॥७४९॥ चौथी प्रोषध प्रतिमा है। इसका वर्णन सुननेका उत्साह यदि है तो उसे बारह व्रतोंके वर्णनमें देखें ॥७५०॥ पाँचवीं प्रतिमा सचित्तत्याग है। हे भाग्यवान जनों! उसका वर्णन सुन कर सचित्त वस्तुओंका त्याग करो। कच्चा जल, कोरा (बिना भुना, बिना पकाया) अनाज, सब प्रकारके हरे फल, सब प्रकारकी पत्तों वाली शाक, वृक्षोंके पत्ते, नागरवेलका पत्र (ताम्बूल), ताजे और सुखाये हुए कंदमूल, सब प्रकारके बीज, मिट्टी और कच्चा नमक, इत्यादि सचित्त वस्तुओंका जो त्याग करता है उसीके पंचम प्रतिमा पलती है ॥७५१–७५३॥ प्रारम्भमें दो घडी दिन चढ़ने पर और अन्तमें दो घडी दिन बाकी रहने पर बीचमें जो

---

१ कहानी स० २ सुणि सब सचित्त परित्याग न० स० ३ नागरवल्ली न० ४ जातिके सारे स०

मरयादा धरि वि आहार, चार्यौं को करि परिहार ।
तियको सेवे दिन नांही, छट्ठी प्रतिमा सो धरांही ॥७५५॥

प्रतिमा छहलौं जो जीव, समकित जुत धरै सदीव ।
तिह श्रावक जघन्य सुजाणी, भाषै इम जिनवर वाणी ॥७५६॥

श्रेणिक नृप प्रसन करांही, श्री गौतम गणधर पांही ।
ब्रह्मचर्यनाम प्रतिमाकौ, कहिये प्रभु कथन सु ताकौ ॥७५७॥

सुणियै अब श्रेणिक भूप, सप्तम प्रतिमा जु सरूप ।
मन वच क्रम धारि त्रिशुद्ध, नव विधि जो शील विशुद्ध ॥७५८॥

निज पर वनिता सब जानी, आजनम पर्यंत तजानी ।
अब नवविधि शील सुणीजै, नित ही तसु हृदय गणीजै ॥७५९॥

मानुषणी सुरतिय जाणी, तिरयंचणी त्रितय वखांणी ।
ए तीनों चेतन वाम, मन वच क्रम तजि दुखधाम ॥७६०॥

पाषाण काठ चित्राम, तजियै मन वच परिणाम ।
नव विधि ब्रह्मचर्य धरीजै, सप्तम प्रतिमा आचरीजै ॥७६१॥

भोजन करता है वह रात्रिभोजनत्याग नामक छठवीं प्रतिमाका धारी है ॥७५४॥ प्रतिज्ञापूर्वक जो रात्रिमें चारों प्रकारके (अन्न, पान, खाद्य, लेह्य) आहारका त्याग करता है तथा दिनमें स्त्रीका सेवन नहीं करता वह रात्रिभोजनत्याग अथवा दिवामैथुनत्याग नामक छठवीं प्रतिमाका धारी है ॥७५५॥ जो जीव निरन्तर सम्यग्दर्शनसे युक्त होकर पहलीसे लेकर छठवीं प्रतिमा तकका पालन करते हैं उन्हें जघन्य श्रावक जानो, ऐसा जिनागममें कहा हैं ॥७५६॥

श्रेणिक राजाने श्री गौतम गणधरसे पुनः निवेदन किया कि हे प्रभो ! ब्रह्मचर्य प्रतिमाका स्वरूप कहिये ॥७५७॥ गौतम गणधर कहने लगे कि हे श्रेणिक राजन् ! सप्तम प्रतिमाका स्वरूप सुनो । मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक नौ प्रकारके शीलका पालन करना तथा निज और पर, दोनों प्रकारकी स्त्रियोंका जन्म पर्यन्तके लिये त्याग करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। अब नौ प्रकारके शीलका वर्णन सुनो तथा निरन्तर हृदयमें उसका ध्यान रक्खो ॥७५८–७५९॥ मानुषी, देवी और तिरश्ची इन तीन प्रकारकी चेतन और पाषाण, काठ तथा चित्रामकी अचेतन, इन चारों प्रकारकी स्त्रियोंका मन वचन काय तथा कृत कारित अनुमोदना इन नौ कोटियोंसे त्याग करना नौ प्रकारका शील हैं । इस नव प्रकारके ब्रह्मचर्यको जो धारण करता है वही सप्तम प्रतिमाका आचरण करता है ॥७६०–७६१॥

जो अपने घरके आरम्भका त्याग कर देता है और दूसरोंके लिये भी आरंभका उपदेश नहीं देता; जो भोजन, अपने या दूसरेके घर करता है परन्तु उपदिष्ट भोजनको कभी नहीं

निज घर आरंभ तजेई, परकों उपदेश न देई ।
भोजन निज पर घरमांही, उपदेश्यो कबहुं न खांही ॥७६२॥
व्यापार सकल तजि देई, सो [1]सुरगादिक सुख लेई ।
प्रतिमा इह अष्टम नाम, आरंभ त्याग अभिराम ॥७६३॥
नवमी प्रतिमा सुनि [2]जान, नाम जु परिगह परिमान ।
निज तनतैं वसन धरांही, पढनैकौ पुस्तक ठांही ॥७६४॥
इनि बिनु सब परिग्रह त्याग, मध्यम श्रावक बडभाग ।
दिव लांतव अरु कापिष्ठ, तहँलौं सुख लहै गरिष्ठ ॥७६५॥
प्रतिमा अनुमत तसु नाम, दशमी दायक सुखधाम ।
निज घरि अथवा परगेह, ले जाय असनकौं जेह ॥७६६॥
तिनकैं सो भोजन लेहै, उपदेश्यो कबहु न खैहै ।
निज परियण पर जन सारे, उपदेश न पाप उचारै ॥७६७॥
ताको परिग्रह सुनि लेई, पीछी कमण्डलु जु धरेई ।
कोपीन कणगती जाकै, छह हाथ वसन पुनि ताकै ॥७६८॥

करता अर्थात् किसीसे यों नहीं कहता कि अमुक वस्तु बनाओ; और जो सब प्रकारके व्यापारका त्याग कर देता है वह स्वर्गादिकके सुख प्राप्त करता है । इस अष्टम प्रतिमाका मनोहर नाम आरंभत्याग प्रतिमा है ॥७६२–७६३॥

आगे परिग्रह परिमाण नामक नौवीं प्रतिमाका स्वरूप सुनो ! अपने शरीर पर धारण करने योग्य (तथा ओढ़ने बिछाने योग्य) वस्त्र और स्वाध्यायके लिये पुस्तक, इनके सिवाय अन्य सब परिग्रहका जो त्याग कर देता है वह बडभागी मध्यम श्रावक है । इस प्रतिमाका धारी श्रावक लान्तव और कापिष्ठ स्वर्ग तकके श्रेष्ठ सुखोंको प्राप्त होता है ॥७६४–७६५॥

सुखदायक दसवीं प्रतिमाका नाम अनुमति त्याग है । भोजनके समय निज गृह या परगृहके जो लोग भोजनके लिये बुलाकर ले जाते हैं उनके घर भोजन कर आता है परन्तु उपदिष्ट भोजन कभी नहीं करता अर्थात् किसीसे यह नहीं कहता कि अमुक वस्तु बनाओ । अपने घरके तथा पर घरके लोगोंको कभी व्यापार और गृहनिर्माण आदि पापके कार्योंका उपदेश नहीं देता। यह मार्जनके लिये पीछी (वस्त्रखण्ड) और कमण्डलुका परिग्रह रखता है । वस्त्रोंमें लंगोटी और छह हाथका वस्त्र रखता है। इसके परिग्रहकी यह मर्यादा है । प्रमाद वश इससे अधिक परिग्रह नहीं रखता ।

---

१ सुरग तणो स० २ कान स०

एतो परिग्रह मरजाद, गहिहैं न अवर परमाद ।
एकादश प्रतिमा धारै, भाखै जिन दुय परकारै ॥७६९॥
प्रथमहि क्षुल्लक ब्रह्मचार, उतकिष्ट अयल [1]निरधार ।
क्षुल्लक संख्या परमाण, कपडो षट हाथ सु जाण ॥७७०॥
इक पटो न सीयो जाकै, कोपीन कणगती ताकै ।
कोमल पीछी कर धारै, प्रतिलेखि रु भूमि निहारै ॥७७१॥
शौचादि निमित्तके काजै, कमंडलु ताकै ढिग [2]राजै ।
आहार निमित्त तसु जानी, मुकते घर पंच वखानी ॥७७२॥
उतक्रिष्ट अयल व्रतधारी, जिनकी विधि भाष्यों सारी ।
मठ मंडप वनके मांही, निसदिन थिरता ठहरांही ॥७७३॥
कोपीन कणगती जाकै, पीछी कमंडलु है ताकै ।
परिग्रह एतो ही राखै, इम कथन जिनागम भाखै ॥७७४॥
भोजन सो करय उदंड, घर पंच तणी थिति मंड ।
चित धरमध्यानमें राखै, आतम चितवन रस चाखै ॥७७५॥

ग्यारहवीं प्रतिमाके जिनेन्द्र भगवानने दो भेद कहे हैं :— प्रथम क्षुल्लक ब्रह्मचारी और द्वितीय उत्कृष्ट एलक। क्षुल्लकके परिग्रहकी संख्या इस प्रकार है :— वे छह हाथका वस्त्र रखते हैं, यह वस्त्र इकपटा अर्थात् जोड़से रहित और बिना सिला होता है । एक लंगोटी होती है, मार्जनके लिये कोमल मयूरपिच्छसे निर्मित पीछी हाथमें रखते हैं, उससे मार्जन कर जमीन पर बैठते हैं । शौचादिके निमित्त उनके पास कमण्डलु रहता है । आहारके निमित्त पाँच घरकी छूट रखते हैं । तात्पर्य यह हैं कि क्षुल्लक एकभिक्ष और अनेकभिक्ष होते हैं । एकभिक्ष क्षुल्लक पडगाहे जाने पर एक ही घरमें आहार करते हैं और अनेकभिक्ष क्षुल्लक पाँच-सात घर जा कर आहार योग्य पदार्थ ग्रहण करते हैं । पर्याप्त आहार मिल जाने पर किसी श्रावकके घर प्रासुक जल लेकर भोजन करते हैं और अपना पात्र साफकर वापिस आ जाते हैं ॥७६६–७७१॥ द्वितीय उत्कृष्ट एलक है । इनकी सब विधि कहता हूँ । ये निरन्तर मठ, मंडप या वनमें रहते हैं। कौपीन पीछी और कमण्डलु इतना ही परिग्रह रखते हैं ऐसा जिनागममें कहा गया है । उदंडाहार करते हैं अर्थात् चर्याके लिये निकलते हैं और पाँच घरों तक जाते हैं। अपना चित्त धर्मध्यानमें रखते हैं तथा आत्मचिन्तवनका रसास्वाद करते हैं अर्थात् आत्माके ज्ञाता द्रष्टा स्वभावका चिन्तवन कर सहज आनन्दकी अनुभूति करते हैं ॥७७३–७७५॥

---

१ गुरु धार न० २ छाजे न०

सुणिये श्रेणिक भूपाल, दरसण प्रतिमान विशाल ।
तिह बिनु दस प्रतिमा जाणी, निरफल भाषी जिनवाणी ।।७७६।।
वासनकी वोलि करीजै, उपरा उपरी जु धरीजै ।
नीचे हुई जरजर वासन, उपले भाजनकी आसन ।।७७७।।
सब फूटि जाय छिनमांही, समरथ बिन [1]कवन रखांही ।
प्रथमहि दरशन दिढ कीजै, पीछैं व्रत और धरीजै ।।७७८।।
एकादश प्रतिमा सारी, ताकी गति सुनि सुखकारी ।
जावै षोडशमें स्वर्ग, भव दुइ तिहुं लहि अपवर्ग ।।७७९।।
दशमी प्रतिमाको धारी, क्षुल्लक अरु अयल विचारी ।
उतकिष्ट सरावक एह, भाषै जिनमारग तेह ।।७८०।।

दोहा—प्रतिमा ग्याराको कथन, जिन आगम परमाण ।
परिपूरण कीनौं सबै, किसनसिंघ हित जाण ।।७८१।।

दानाधिकार

दोहा—आहार औषध अभय फुनि, शास्त्रदान ए चार ।
श्रावकजन निति दीजिये, पात्र कुपात्र विचार ।।७८२।।

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक महाराज ! सुनो, इन प्रतिमाओंमें दर्शन प्रतिमा महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके बिना शेष दशों प्रतिमाएँ निष्फल हैं, ऐसा जिनागममें कहा है । यहाँ वासनों—बर्तनोंका दृष्टान्त लीजिये । एकके ऊपर एक बर्तन रखिये । यदि नीचेका बर्तन जर्जरित है और ऊपरका बर्तन भारी है तो सब बर्तन एक क्षणमें फूट जाते हैं क्योंकि सुदृढ़ बर्तनके बिना उन्हें कौन संभाल सकता है ? प्रकृतमें दार्ष्टान्त यह है कि पहले सम्यग्दर्शनको धारण करना चाहिये पश्चात् अन्य व्रत लेना चाहिये ।।७७६–७७८।।

ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक उत्कृष्ट श्रावक मर कर कहाँ जाता है ? इसकी सुखदायक गति सुनो । यह सोलहवें स्वर्गमें जाता है और मनुष्यके दो तीन भव धारणकर अपवर्ग अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता हैं । दसवीं प्रतिमाको धारण करनेवाले तथा क्षुल्लक और एलक उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं, ऐसा जिनमार्गमें कहा गया है ।।७७९–७८०।। ग्रन्थकर्ता श्री किशनसिंह कहते हैं कि इस प्रकार हमने हित जानकर ग्यारह प्रतिमाओंका कथन पूर्ण किया है ।।७८१।।

दानाधिकार

आहार, औषध, अभय और शास्त्रके भेदसे दान चार प्रकारका है । हे श्रावकजनों ! पात्र और कुपात्रका विचार कर नित्य प्रति दान दो ।।७८२।। पहले अतिथिसंविभाग व्रतके

---

१ कौन न०

आगैं अतिथि विभागमें, वरनन कीनो सार ।
इह विशेष कीनो नहीं, दूषण लगै दुवार ॥७८३॥
जो इच्छा चित सुननकी, पूरब कह्यो वृतंत ।
देखि लेहि अनुराग धरि, तातें मन हरषंत ॥७८४॥

जलगालन कथन

दोहा

अब जलगालण विधि प्रगट, कही जिनागम जेम ।
भाषौं भविजन सांभलौ, धारौ चित धरि प्रेम ॥७८५॥
दोय घडीके आंतरै, जो जल पीवे छांण ।
परम विवेकी जुत दया, उत्तम श्रावक जान ॥७८६॥

छंद चाल

नौतन वस्तरकै मांही, छाणो जल जतन करांही ।
गालन जल जन जिहिं वारै, इक बूंद मही नहि डारै ॥७८७॥
को हू मतिहीण पुराणै, वस्तर माहे जल छाणै ।
अर बूंद भूमि पर नाखै, उपजै अघ जिनवर भाखै ॥७८८॥
तिन मांही जीव अपार, मरिहै संसै नहि धार ।
जाकै करुणा न विचार, श्रावक नहिं, जाणि गंवार ॥७८९॥

वर्णनमें इसका सारभूत वर्णन किया जा चुका है इसलिये यहाँ विशेष वर्णन नहीं किया है क्योंकि उससे पुनरुक्तिका दोष लगता है । यदि उसे सुननेकी इच्छा है तो पहले कहे हुए प्रकारको प्रेमपूर्वक देख लीजिये; उससे मन हर्षित होगा ॥७८३–७८४॥

आगे जल छाननेकी विधि कहते हैं :

अब जिनागममें जैसी विधि कही है तदनुसार पानी छाननेकी विधि कहता हूँ । हे भव्य-जनों ! उसे सुनो और प्रेमपूर्वक हृदयमें धारण करो ॥७८५॥ जो दो घडीके अन्तरसे जल छान कर पीता है उसे परम विवेकी, दयावंत, उत्तम श्रावक जानो । भावार्थ :–– छाने हुए जलकी मर्यादा दो घडीकी है अतः दो घडीके बाद पुनः छान कर पीना चाहिये ॥७८६॥ नवीन वस्त्रसे यत्न पूर्वक जल छानना चाहिये । मनुष्य जब जल छाने तब एक बूंद भी पृथिवी पर न डाले । कितने ही अज्ञानी जन पुराने जीर्ण शीर्ण वस्त्रसे पानी छानते हैं और छानते समय पानीकी बूंदे पृथिवी पर डाल देते हैं इससे बहुत पाप लगता है ऐसा जिनेन्द्रभगवानने कहा है ॥७८७–७८८॥ पानीकी एक बूंदमें अपार जीव हैं, जो सावधानी न बरतनेसे मर जाते हैं इसमें संशय नहीं है। जिसे दयाका विचार नहीं है वह श्रावक नहीं है, उसे अज्ञानी जानना चाहिये ॥७८९॥

धीवर सम गणिये ताहि, जलको न जतन जिहि माहि ।
दुय दुय घाटकामें नीर, छाणौ मतिवंत गहीर ॥७९०॥
अथवा प्रासुक जल करिकै, राखै भाजनमें धरीकै ।
'गृहकाज रसोई माहे, प्रासुक जल ही वरताहै ॥७९१॥
अणछाण्यो वरते नीर, ताको सुणि पाप गहीर ।
इक वरस लगै जो पाप, धीवर करिहै सो आप ॥७९२॥
अरु भील महा अविवेक, दों अगनि देय दस एक ।
दौं वनिकौं अघ इक वार, कीए जा ह्वै विसतार ॥७९३॥
अणछाण्यो वरतै पाणी, इस सम जो पाप बखाणी ।
ऐसो डर धरि मन धीर, विनु गालै वरति न नीर ॥७९४॥

श्लोक

संवत्सराणमेकत्वं कैवर्तकस्य हिंसकः ।
एकादश दव दाहेन अपूतजलसंग्रही ॥७९५॥
लूतास्यतन्तुगलिते ये बिन्दौ सन्ति जन्तवः ।
सूक्ष्मा भ्रमरमानाश्चेन्नैव मान्ति त्रिविष्टपे ॥७९६॥

जिसे जलकी यत्ना नहीं है उसे धीवरके समान समझना चाहिये । इसलिये हे बुद्धिमान जनों! पानीको दो दो घडीमें छानना चाहिये अथवा पानीको प्रासुक कर एक बर्तनमें अलग रख लेना चाहिये । रसोई आदि गृहकार्योंमें उसी प्रासुक जलको काममें लाना चाहिये ॥७९०–७९१॥

जो मनुष्य बिना छाना पानी व्यवहारमें लाते हैं उनको बहुत भारी पाप लगता है उसका वर्णन सुनो । धीवरको एक वर्ष तक जो पाप लगता है वह बिना छना पानी बरतनेवालेको लगता है । अथवा कोई महा अज्ञानी भील ग्यारह बार दवाग्नि लगाता है, एक बार दवाग्नि लगानेमें जो पाप लगता है उसका ग्यारह बार लगाने पर बहुत विस्तार हो जाता हैं । बिना छाना पानी बरतने वाले मनुष्यको उस भीलके समान पाप बताया है इसलिये हे धीर वीर पुरुषों! मनमें ऐसा डर रख कर बिना छाना पानी मत बरतो, व्यवहारमें मत लाओ ॥७९२–७९४॥ कहा भी हैं :–

धीवरको एक वर्षमें जितना पाप लगता है अथवा भीलको ग्यारह बार दवाग्नि लगानेसे जिस पापका संचय होता है वह बिना छना पानी बरतने वाले पुरुषको लगता है । मकडीके मुखसे निकले तन्तुको पानीमें डुबा कर उससे जो एक बूंद टपकाई जाती है उसमें जो सूक्ष्म जीव है वे यदि भ्रमरके बराबर रूप रखकर विचरें तो तीन लोकमें न समावे ॥७९५–७९६॥

---

१ गृहकी जु रसोई मोहे न० स०

अडिल्ल छन्द

मकडीका मुख थकी तन्तु निकसै जिसो,
तिह समान जलबिन्दु तणौ सुणि एक सो;
तामै जीव असंख्य उडै ह्वै भ्रमर ही,
जंबूद्वीप न मांय जिनेश्वर इम कही ॥७९७॥

तथा चोक्तम् —

षट्त्रिंशदंगुलं वस्त्रं चतुर्विंशति विस्तृतम् ।
तद्वस्त्रं द्विगुणीकृत्य तोयं तेन तु गालयेत् ॥७९८॥
तस्मिन् मध्यस्थितान् जीवान् जलमध्ये तु स्थापयेत् ।
एवं कृत्वा पिबेत्तोयं स याति परमां गतिम् ॥७९९॥

अडिल्ल

वस्तर लंबो अंगुल छतीस सु लीजिये,
चौडाई चोईस प्रमाण गहीजिये;
गुडी विना अतिगाढौ दोवड कीजिये,
[1]इसै तांतणै छाणि सदा जल पीजिये ॥८००॥

इसी श्लोकका भाव कविवर किशनसिंहने अडिल्ल छन्द द्वारा स्पष्ट किया है :—मकडीके मुखसे निकले सूक्ष्म तन्तुके समान पानीकी एक बूंदमें इतने असंख्य जीव हैं कि यदि वे भ्रमर होकर उडें तो जम्बूद्वीपमें न समावें ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है। भावार्थ :—तीन लोक या जम्बूद्वीपकी बातसे कविने यह बतलाना चाहा है कि पानीकी एक बूंदमें अनन्त जीव होते हैं ॥७९७॥

जैसा कि कहा है :—छत्तीस अंगुल लम्बे और चौबीस अंगुल चौडे वस्त्रको दुहरा कर उससे पानी छानना चाहिये तथा उसके मध्य स्थित जीवोंको उसी जलाशयके जलमें स्थापित कर देना चाहिये। इस विधिसे पानी छान कर जो पीता है वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥७९८-७९९॥

इन्हीं श्लोकोंका भाव कविवर किशनसिंह दो अडिल्ल छन्दोंमें दरशाते हैं :—

छत्तीस अंगुल लम्बा और चौबीस अंगुल चौडा वस्त्र लीजिये। वस्त्र अत्यन्त गाढ़ा हो। ऐंसे वस्त्रको गुडीके बिना दोहरा कीजिये। इस प्रकारके नातना—छननासे सदा जल छान कर पीजिये। उसमें जो जीव हैं उन्हें बडे यत्नसे छने जलके द्वारा नीचे जलकी सतहमें डाल दीजिये। इस प्रकार हृदयमें दयाभाव धारण कर जो जल पीते हैं वे देवपदको निःसंदेह प्राप्त होते हैं

---

१ इस विधि छाणि क०

तामै हैं जे जीव जतन करिकै सही,
छाण्या जलतैं अधर नीरमें खेपही;
करुणाधर चित नीर एम पीवे जिके,
सुरपद संसय नाहिं लहै शिवगति तिके ॥ ८०१ ॥

चौपाई

ऐसी विधि जल छाण्या तणी, मरयादा घटिका दुइ भणी ।
प्रासुक कियो पहर दुय जाणि, अधिक उसन वसु जाम वखाणि ॥८०२॥

मिरच इलायची लोंग कपूर, दरब कषाय कसैलो चूर ।
इनतै प्रासुक जल करवाय, ताको भाजन जुदो रहाय ॥८०३॥

इतनो प्रासुक कीजे नीत, जाम दोय मध्य होय व्यतीत ।
मरयादा ऊपर जो रहाय, तामें सन्मूर्च्छन उपजाय ॥८०४॥

अरु वै फिरि छाण्यो नहि परै, वांके जीव कहां लौ धरै ।
प्रासुक जलके भाजन मांहि, जो कहु नीर अगालित आंहि ॥८०५॥

ताके जीव मरै सब सही, उनको पाप कोई न इच्छही ।
तातैं बहुत जतन मन आनि, प्रासुक कर वरतौ सुखदानि ॥८०६॥

और वहाँसे आकर मोक्षपद प्राप्त करते हैं। भावार्थ :— कितने ही लोग जीवानीको ऊपरसे डालते हैं जिससे जीव बीचमें ही दिवाल आदिसे टकरा कर नष्ट हो जाते हैं और जलकी सतह पर पहुँच कर स्वयं नष्ट हो जाते है तथा दूसरें जीवोंको भी नष्ट करते हैं इसलिये पानी छाननेके बाद उसे किसी भंवरकलीकी बालटीमें रख कर उसके द्वारा धीरे धीरे जलकी सतह तक पहुँचा देना चाहिये ॥८००–८०१॥

इस विधिसे छाने हुए जलकी मर्यादा दो घडीकी है। यदि उसे प्रासुक कर लिया जाय तो दो प्रहरकी मर्यादा हो जाती है और अत्यन्त गर्म कर लिया जाय तो आठ प्रहरकी होती है ॥८०२॥ मिर्च, इलायची, लोंग, कपूर तथा कषैले द्रव्यके कषैले चूर्णसे जलको यदि प्रासुक किया है तो उसका बर्तन अलग रख लेना चाहिये। इस प्रकारकी विधिसे उतने ही जलको प्रासुक करना चाहिये जितना दो प्रहरमें खर्च हो जाय। क्योंकि मर्यादाके बाद जो जल शेष बचता है उसमें सन्मूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसा जल फिर छाना नहीं जाता क्योंकि उसमें अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं उन्हें कहाँ रक्खा जावे ? प्रासुक जलके बर्तनमें यदि अनछना पानी डाला जाता है तो उसके सब जीव मर जाते हैं। इस पापकी कोई इच्छा नहीं करता इसलिये बहुत यत्नके साथ पानीको प्रासुक कर व्यवहारमें लाना चाहिये ॥८०३–८०६॥

छाण्यो जल घटिका दुय मांहि, सन्मूर्च्छन उपजै सक नांहि ।
आज उसनकी विधि सब ठौर, व्यापि रही अति अघकी दौर ॥८०७॥
ब्यालू निमित्त असन करि धरै, ता पीछे खीरा ऊबरै ।
तिनमें जल तातौ करवाहि, निसि सवारलौं सो निरवाहि ॥८०८॥
मरयादा माफिक नहि सोय, ताकौं बरतो मत भवि लोय ।
कीजै उसन इसी विधि नीर, जो जिन आग्या पालन वीर ॥८०९॥
भात बोरिये जिह जलमांहि, वैसो जल जो उसन करांहि ।
आठ पहर मरयादा तास, सन्मूर्च्छन पीछैं ह्वै जास ॥८१०॥
जो श्रावक व्रतको प्रतिपाल, तिहकौं निसि जलकी इह चाल ।
छाण्यो प्रासुक तातो नीर, मरयादामें बरतो वीर ॥८११॥

छंद चाल

वोछै कपडै जो नीर, छांणै श्रावक नहि कीर ।
मरयाद जिती कपडाकी, तासौं विधि जल छणिवाकी ॥८१२॥

छाने हुए जलमें दो घडीके भीतर संमूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं है । आज पानीको गरम करनेकी जो विधि सब जगह चल रही है वह पापका स्थान बन रही है। जैसे ब्यालूके निमित्त भोजन बनवा कर लोग उसके पश्चात् एक बर्तन रख देते हैं उसमें जलको कुछ गरम करवाते हैं तथा उस जलको रात्रिमें प्रात:काल तक प्रयोगमें लाते हैं परन्तु वह पानी मर्यादाके अनुसार गरम नहीं होता है इसलिये हे भव्यजीवों ! उसे प्रयोगमें, व्यवहारमें मत लाओ। जो जिन आज्ञाका पालन करनेमें निपुण हैं वे पानीको इसी विधिसे उष्ण–गर्म करें। जिसमें भात बनाया जाता है अर्थात् भात बनानेके लिये पानीको जितना गर्म किया जाता है उतना गर्म करना चाहिये । इस प्रकारके पानीकी मर्यादा आठ प्रहरकी है। पश्चात् उसमें संमूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं । जो श्रावकका व्रत पालते हैं उनके रात्रिमें बरतने योग्य जलकी यह विधि है। तात्पर्य यह है कि पानीको किंचित् गरम कर लेने मात्रसे वह रात्रिभर प्रयोगमें लानेके योग्य नहीं होता है । उसे विधिपूर्वक उतना गरम करना चाहिये जितना कि भात बनानेके लिये किया जाता है। ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि हे सामर्थ्यवंत पुरुषों ! छने हुए जलको, प्रासुक जलको और पक्के जलको मर्यादाके भीतर प्रयोगमें लाओ, मर्यादा बीत जाने पर नहीं ॥८०७–८११॥

जो श्रावक ओछे (छोटे) कपडेसे जल छानता है वह जीवोंकी रक्षा नहीं कर सकता अर्थात् जीव जलके भीतर चले जाते हैं । इसलिये जल छाननेके लिये कपडेकी जो मर्यादा कही है उसी मर्यादाके अनुसार जल छाननेकी विधि करना चाहिये ॥८१२॥ हे भव्य जीवों !

यातैं सुनिये भवि प्राणी, जलकी विधि मनमें आणी ।
बहु धरि विवेक जल गालै, मन वच तन करुणा पालै ॥८१३॥
पंचनमैं सो अति लाजै, अर जिन आग्या सो त्याजै ।
सो पाप उपावै भारी, जाणौं तसु हीणाचारी ॥८१४॥*
यातै ल्यो वसन सुपेद, छाणो जल किरिया वेद ।
औरन उपदेश जु दीजै, विणु छाणे कबहु न पीजै ॥८१५॥
श्रावक वनिता घरमांही, किरिया जुत सदा रहां ही ।
वह जतन थकी जल छाणौ, ताको जस [1]सकल वखाणौ ॥८१६॥
लघु त्रिया प्रमाद प्रवीण, जलकी किरियामें हीण ।
तापै न छणावै पाणी, वनिता स्यों जाण्यो स्यांणी ॥८१७॥
तजि आलस अरु परमाद, गालै जल धरि अहलाद ।
औरनि स्यौं नहि बतरावै, [2]जल कण नहि पडिवा पावै ॥८१८॥
जलबून्द [3]जतनमें परि है, अपनी निंदा बहु करि है ।
ले दंड सकति परमाण, पालै हिरदे जिन आण ॥८१९॥

जल छाननेकी इस विधिको सुनकर मनमें धारण करो, बहुत विवेक रख कर जल छानो तथा मन वचन कायसे करुणाका पालन करो ॥८१३॥

जो जिन आज्ञाका त्याग करता है वह पंचोमें अत्यन्त लज्जित होता है, और बहुत भारी पापका उपार्जन करता है । ऐसे मनुष्यको हीनाचारी जानना चाहिये ॥८१४॥ इसलिये सफेद वस्त्र लेकर क्रिपापूर्वक जलको छानो तथा दूसरोके लिये भी उपदेश दो कि वे बिना छना पानी कभी न पिये ॥८१५॥ श्रावकके घर जो स्त्रियाँ रहती हैं वे सदा क्रिया सहित रहती हैं । वे यत्नपूर्वक जल छानती है जिससे सब लोग उनके यशका वर्णन करते हैं--सब उनकी प्रशंसा करते हैं ॥८१६॥ जो छोटी स्त्री प्रमादी हैं, जल छाननेकी क्रियासे रहित है, उससे पानी नहीं छनवाना चाहिये । जिस स्त्रीको सयानी—जानकार जानो, उसीसे पानी छनवाओ । आलस्य और प्रमादको छोड़कर तथा हृदयमें हर्ष धारण कर जल छानो । छानते समय दूसरोंसे बात नहीं करो । इतनी सावधानीसे छानो कि जलका एक कण भी नीचे नहीं पड़ने पावे । यत्न करते हुए भी जलकी बूंद यदि नीचे पड़ जावे तो अपनी बहुत निन्दा करो और शक्ति प्रमाण प्रायश्चित्त लो, हृदयमें जिन आज्ञाका पालन करो ॥८१७–८१९॥ जिस जलाशयसे पानी भर कर घरमें लाया

---

* ८१४वें छन्दके आगे न० और स० प्रतिमें निम्नलिखित छन्द अधिक है–

प्रथमहि श्रावक आचारा, जलजालन विधि निरधारा ।
बहु रंगित कपरामांही, गृहपति जो नीर छनाई ॥

१ जगत स० २ जलरक्षा पर चित लावे न० स० ३ जु भूपर परिहै स०

दोहा

जिह निवाणको नीर भरि, घरमें आवै तांहि ।
छांणि जिवाणी भेजियो, वाहि निवाण जु मांहि ॥८२०॥

इह जलगालण विधि कही, जिन आगम अनुसार ।
कहिहौं कथा अणथमी, सुणियो भवि चित धार ॥८२१॥

अणथमी कथन

दोहा

घडी दोय दिन चढय जब, पछिलो घटिका दोय ।
इतने मध्य भोजन करै, निश्चै श्रावक सोय ॥८२२॥

सोरठा

सुणिये श्रेणिक भूप, निसि भोजन त्यागी पुरुष ।
सुर सुख भुगति अनूप, अनुक्रमि सिव पावै सही ॥८२३॥

दिवस अस्त जब होय, ता पीछें भोजन करै ।
वे नर ऐसे होय, कहूं सुणो श्रेणिक नृपति ॥८२४॥

नाराच छन्द

उलूक काक औ बिलाव गृध्र पक्षि जानिये,
बघेरु [1]डोडु सर्प सूर सांवरो वखांनिये;
हवंति गोहिरो अतीव, पापरूप थाइ है,
निसी अहार दोषतै कुजोनिको लहाइये ॥८२५॥

गया हैं उसी जलाशयमें जीवानी भेजना चाहिये । कविवर किशनसिंह कहते हैं कि हमने यहाँ जिनागमके अनुसार जल छाननेकी विधि कही। अब अणथमी (अन्थऊ) की कथा कहते हैं सो हे भव्यजीवों ! सुन कर हृदयमें धारण करो ॥८२०–८२१॥

अणथमी (अन्थऊ) कथन

जब दो घडी दिन चढ़ आवे और पिछले समय दो घडी दिन बाकी रह जाय, इसके बीच जो भोजन करता है वही वास्तविक श्रावक है ॥८२२॥ गौतम स्वामी कहते हैं—हे श्रेणिक राजन ! सुनो, जो मनुष्य रात्रिभोजनका त्यागी होता है वह स्वर्गके अनुपम सुख भोग कर क्रमसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥८२३॥ दिन अस्त हो जानेके पश्चात् जो मनुष्य भोजन करते हैं वे क्या होते हैं यह सुनो ॥८२४॥ उलूक, काक, बिलाव, गृध्र पक्षी, बघेरु, डोडु सर्प, सूकर, सांवर, गोह आदि अत्यन्त पापरूप अवस्थाको प्राप्त होते हैं । तात्पर्य यह

---

१ मोर न० स०

दोहा

निसि वासरको भेद बिन, खात नृपति नहि होय ।
सींग पूंछतै रहित ही, पसू जानिये सोय ॥८२६॥
दिन तजि निसि भोजन करै, महापाप मतिमूढ ।
बहु मौल्या माणिक तजै, काच गहै धर रूढ ॥८२७॥

छंद चाल

निसि मांहे असन करांही, सो इतने दोष लहांही ।
भोजनमें कीडी खाय, तसु बुद्धि नास हो जाय ॥८२८॥
जू उदरमांहि जो जाय, [1]तहँ रोग जलोदर थाय ।
माखी भोजनमें खैहै, तत खिण सो वमन करै हैं ॥८२९॥
मकडी आवै भोजनमें, तो कुष्ठ रोग ह्वै तनमें ।
कंटक रु काठको खंड, फसिहै जो गलै प्रचंड ॥८३०॥
तसु कंठ विथा विस्तारे, ह्वै है नहि ढील लगार ।
भोजनमें खैहै बाल, सुरभंग होय ततकाल ॥८३१॥
अरु असन करत निसिमांही, [2]व्यन्तरादिकतैं उपजांही ।
इति आदि असन निसिदोष, सबही कौं ह्वै अघकोष ॥८३२॥

है कि रात्रिभोजनके दोषसे मनुष्य खोटी योनिको प्राप्त होता है ॥८२५॥ रात दिनके भेद बिना जो भोजन करता है वह मनुष्य नहीं है किन्तु सींग और पूछसे रहित पशु है, ऐसा जानना चाहिये ॥८२६॥ जो दिन छोड़ कर रात्रिमें भोजन करता है वह दुर्बुद्धि महापापी है। वह बहुमूल्य मणियोंको छोड़ कर घरमें काच रखता है ॥८२७॥ जो रात्रिमें भोजन करता है वह इतने दोष प्राप्त करता हैं :– भोजनमें यदि कीडी (चिऊंटी) खा जावे तो बुद्धि नष्ट हो जाती हैं; पेटमें जुवां चला जावे तो जलोदर रोग हो जाता है; यदि मक्खी खा लेता है तो तत्काल वमन हो जाता हैं; मकडी यदि भोजनमें आ जाती है तो शरीरमें कुष्ठ रोग हो जाता हैं; यदि कंटक या काष्ठका खण्ड कण्ठमें आ जाय तो बहुत भारी पीड़ा होती है; भोजनमें यदि बाल खा जाता है तो स्वर भंग हो जाता है। इसके सिवाय यदि रात्रिमें भोजन करता है तो व्यन्तर आदिका भय उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि रात्रिमें भोजन करनेसे इस प्रकारके दोष उत्पन्न होते हैं और ये सब दोष पापके भण्डार है अर्थात् अत्यधिक पापके स्थान है ॥८२८–८३२॥ रात्रिभोजन करनेसे मनुष्य अत्यन्त विरूप शरीरवाला, विकलांग,

---

१ तब न० २ व्यंतरके भय उपजाही क०

सोरठा

निसि भोजनतै जीव, अति विरूप मूरति सही ।
ह्वै तन विकल अतीव, अलप आयु अर रोगयुत ॥८३३॥

दोहा

भाग्यहीण आदर रहित, नीच कुलहि उपजांहि ।
दुख अनेक लहिहै सही, जो निसिभोजन खांहि ॥८३४॥

छंद चाल

एक हस्तनागपुर [1]ठाम, तस जसोभद्र नृप नाम ।
राणी जसभद्रा जाणो, श्रेष्ठी श्रीचंद वखाणो ॥८३५॥

तिय लखमीमति तसु एह, नृप प्रोहित नाम सुनेह ।
द्विज रुद्रदत्त तसु तीया, रुद्रदत्ता नाम जु दीया ॥८३६॥

हरदत्त पुत्र द्विज नाम, तिन चरित सुणो दुखधाम ।
बीतो भादवको मास, आसोज प्रथम तिथि जास ॥८३७॥

निज पितृ[2] श्राद्ध दिन पाय, द्विज पुरका सकल बुलाय ।
ब्राह्मण जीमणकौं आए, बहु असन थकी जु अघाए ॥८३८॥

द्विज पिता नृपतिकै तांई, पोषै बहु बिनो धरांई ।
पीछै नृप मंदिर आयो, राजा बहु काम करायो ॥८३९॥

अल्पायु और रोगी होते हैं ॥८३३॥ जो मनुष्य रात्रिमें भोजन करते हैं वे भाग्यहीन तथा आदर रहित होते हुए नीच कुलमें उत्पन्न होकर अनेक दुःखोंको प्राप्त होते हैं ॥८३४॥

रात्रिभोजनकी कथा इस प्रकार है :–– एक हस्तिनागपुर नामका नगर था । उसके राजाका नाम यशोभद्र और रानीका नाम यशोभद्रा था । शेठका नाम श्रीचन्द्र और सेठानीका नाम लक्ष्मीमती था । राजपुरोहितका नाम रुद्रदत्त और पुरोहितानीका नाम रुद्रदत्ता था । पुरोहितके पुत्रका नाम हरदत्त ब्राह्मण था । दुखोंसे भरा हुआ इनका चरित्र सुनो । भाद्रपदका महिना व्यतीत होकर जब आसोजकी प्रथम तिथि––प्रतिपदा आयी तब अपने प्रपिताका श्राद्ध-दिवस जान कर हरदत्तने नगरके सब ब्राह्मणोंको बुलाया । ब्राह्मण जीमनेके लिये आये और बहुत प्रकारके भोजन कर संतुष्ट हुए ॥८३५–८३८॥ हरदत्त ब्राह्मणका पिता रुद्रदत्त पुरोहित राजाको बुलानेके लिये विनयपूर्वक उनके घर गया । पुरोहित जब राजभवन गया तो राजाने उससे बहुत काम कराया ॥८३९॥ राजकार्यमें व्यस्त होनेसे उसे भोजनकी सुध न रही । उसने

---

१ गामा स० २ पितर न०

तसु राजकाजके मांही, भोजनकी सुध [1]न रहांही ।
बहु क्षुधाथकी दुख पायो, निसि अर्ध गया घरि आयो ॥८४०॥

निसि पहर गई जब एक, तसु वनिता धरि अविवेक ।
रोटी जीमणकूं कीनी, बैंगण करणै मन दीनी ॥८४१॥

हांडी चूल्हे जु चढाई, पाडोसी हींगको जाई ।
इतनेमें हांडीमांही, मींढक पडियो उछलाहि ॥८४२॥

तिय बैंगण छौंके आय, मींढक मूवो दुख पाय ।
तब हांडी [2]लेइ उतारी, रोटी ढकणी परि धारी ॥८४३॥

चिंटी रोटीमें आई, घृत सनमधिते अधिकाई ।
निसि बीत गई दो जाम, जीमण बैठो द्विज ताम ॥८४४॥

दोहा

निसि अँधियारी दीप विनु, पीडित भूख अपार ।
जे निसि भोजी पुरुष हैं, तिनके नहीं विचार ॥८४५॥

रोटी मुखमें देत ही, चिंटी लगी अनेक ।
विप्र होंठ चटको लियो, बडो दोष अविवेक ॥८४६॥

भूखका बहुत दुःख पाया । जब रात्रिका आधा प्रहर बीत गया तब वह घर आया । धीरे धीरे जब रात्रिका एक प्रहर निकल गया तब उसकी विवेकहीन स्त्रीने ब्राह्मणके जीमनेके लिये रोटी बनाई । शाकके लिये बैंगन बनानेका विचार किया ॥८४०–८४१॥ चूल्हे पर हण्डी चढाकर हींग मांगनेके लिये पडौसिनके घर गई । इतनेमें एक मेण्डक उछल कर हण्डीमें जा पहुँचा । ब्राह्मणीने आकर उसी हण्डीमें बैंगन छौंक दिये । मेण्डक छटपटा कर मर गया । चूल्हेसे हण्डी नीचे उतारी । रोटी निकाल कर बर्तन पर रक्खी । घीके सम्बन्धसे रोटीमें चींटियां हो गई जो देखनेमें नहीं आई । अब तक दो प्रहर रात बीत गई । ब्राह्मण जीमने बैठा ॥८४२–८४४॥

रात अंधेरी थी, दीपक था नहीं और ब्राह्मण भूखसे पीडित था इसलिये उसने उसी अंधेरेमें जीमना शुरू कर दिया । सो ठीक ही है क्योंकि जो रात्रिभोजी पुरुष हैं उनके कोई विचार नहीं रहता । ज्योंही ब्राह्मणने मुखमें रोटी दी त्योंही अनेक चींटियोंने उसका ओंठ काट लिया । वास्तवमें अविवेक एक बडा दोष है ॥८४५–८४६॥ बैंगनोमें जो मेण्डक था वह

---

१ विसराही स० २ धरी स०

*बैंगणको लखि मींढको, विस्मय आण्यो जोर ।
तातैं अघ उपज्यो अधिक, महा मिथ्यात अघोर ।।८४७।।

अडिल्ल छंद

कालान्तर तजि प्राण भयो घूघू जबै,
तहां मरण लहि सोई नरक गयो तबै;
पंच प्रकार अपार लहै दुख ते सही,
निकलि काक परजाय ठई दुखकी मही ।।८४८।।

तिह वायस चउपद अनेक संताइया,
विष्टादिकके जीव चोंचतें खाइया;
प्रचुर आयुतें पाप उपाय मुवो जदा,
नरकि जाय बहु आयु समुद भुगतै तदा ।।८४९।।

तिहतै निकसि बिलाव भयौ पापी घनौ,
मूसा मींढक आदि भखै कहलों गनौ;
नरक जाय दुख भुंजि गृध्र पक्षी भयो,
प्राणी भखे अनेक नरक फिर सो गयो ।।८५०।।

दांतोंसे चबा नहीं, इसलिये उसे अलग रख दिया। प्रातःकाल जब उसे देखा तो अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गया। इस रात्रिभोजनसे उसे घोर पापका बन्ध हुआ। सो ठीक ही है, क्योंकि मिथ्यात्व महा भयंकर होता ही है ।।८४७।।

समय बीतने पर वह ब्राह्मण मर कर उलूक हुआ। वहाँसे मर कर नरक गया। नरकमें क्षेत्रादिजन्य पाँच प्रकारके दुःख भोगता रहा। वहाँसे निकल कर कौएकी दुःखदायक पर्यायको प्राप्त हुआ। कौएकी पर्यायमें चोंचसे चींथ चींथ कर उसने अनेक चौपाये पशुओंको दुःख दिया और विष्टादिकमें रहने वाले जीवोंको हर्षित होकर खाया। कौएकी लम्बी आयु थी इसलिये वह बहुत पापोंका उपार्जन कर मरा और मर कर फिर नरक गया। वहाँ सागरों पर्यन्त दुःख भोगता रहा। वहाँसे निकल कर तीव्र वाणी बिलाव हुआ। बिलावकी पर्यायमें वह चूहे तथा मेण्डक आदिको खाता रहा। बिलावके बाद फिर नरक गया। वहाँके दुःख भोग कर गीध पक्षी हुआ। इस पर्यायमें भी अनेक जीवोंको खा कर नरक गया ।।८४८–८५०।। नरकसे

---

* अन्य प्रतियोंमें ऐसा पाठ हैं –

बैंगनमें जो मेडको, मुखमें दीनो तेहि ।
दंत लगे चबयो नही, जुदो राखि धर जेहि ।।
प्रात समय लखि चित्तमें विस्मय आनो जोर ।
यही अघ उपज्यो अधिक, महा मिथ्यात अघोर ।।

निकसि नरकतैं पाप उदै सांवर भयो,
तिहँ भखि जीव अपार नरक पंचम गयौ,
निकसि सूर ह्वै जीव भखै तिनको गिनै,
अघ उपाय मरि नरक जाय सहि दुख घनै ॥८५१॥

अजगर लहि परजाय मनुष तिरयग ग्रसे,
नरक जाय दुख लहैं कहे वाणी इसे;
निकसि बघेरो थाय जीव बहु खाइया,
पाप उपाय लहाय नरक दुख पाइया ॥८५२॥

गोधा तिरयग जाति निकसि तहँतै भयो,
बहुत जन्तुकौं भखि नरक पुनि सो गयो;
मच्छ तणी परजाय लई दुखकी मही,
लघु मच्छादिक खाय उपाये अघ सही ॥८५३॥

सो पापी मरि नरक गयो अति घोर में,
स्वासति निमिष न लहै कहूँ निशि भोर में;
तहँ भुगते दुख जीव याद जो आवही,
निशि न नींद दिन नीर अशन नहि भावही ॥८५४॥

चौपाई

निशि-भोजन-लंपट द्विज भयो महापापको भाजन थयो ।
दस भव तिरयग गति दुख लह्यो, तिम दस भव दुख नरक निसह्यो ॥८५५॥

निकल कर पापोदयके कारण सामर जातिका जंगली जानवर हुआ। वहाँ भी अनेक जीवोंको खा कर पाँचवीं नरक गया। वहाँसे निकल कर सूकर हुआ। वहाँ भी अनेकों जीवोंको खा कर पुनः नरक गया। वहाँसे निकल कर अजगर हुआ और बहुत मनुष्य तथा तिर्यंचोंको खाकर नरक गया। वहाँके दुःख भोग कर पृथिवी पर गोह जातिका तिर्यंच हुआ। वहाँ अनेक जीवोंका भक्षण कर पुनः नरक गया। नरकसे निकल कर मच्छकी पर्यायको प्राप्त हुआ। वहाँ छोटे छोटे निर्बल मच्छोंको खा कर पापोपार्जन करता रहा। वहाँसे मर कर पुनः नरक गया। वहाँ पलभरके लिये भी सुख प्राप्त नहीं कर सका। वहाँ उसने जो दुःख भोगे उनका स्मरण कर रात्रिमें नींद नहीं आती और दिनमें खान पान नहीं सुहाता ॥८५१–८५४॥

रात्रिभोजनका लंपटी ब्राह्मण महा पापका भाजन हुआ। वह दश भव तिर्यंचके और दश भव नरकके दुःख भोगता रहा। नरकसे निकल कर कहाँ उत्पन्न हुआ, यह सुनो। क

नरक थकी नीकलिकैं सोई, देस नाम करहाट सुजोई ।
कौसल्या नगरी नरपाल, है संग्रामशूर गुणमाल ॥८५६॥

तसु पटतिया वल्लभा नाम, राजसेठ श्रीधर है ताम ।
श्रीदत्ता भार्या तिह तणी, राजपुरोहित लोमस भणी ॥८५७॥

प्रोहित–भार्या लोभा नाम, महीदत्त सुत उपज्यो ताम ।
सात विसन लंपट अधिकानी, रुद्रदत्त द्विजको वर जानी ॥८५८॥

महीदत्त कुविसनतैं जास, पिता लक्ष्मि सब कियौ विनास ।
जूवा वेश्या रमि अधिकाय, राजदण्ड दे निरधन थाय ॥८५९॥

घरमें इतो रह्यो नहि कोय, भोजन मिलियो हूँ नहि जोय ।
तब द्विज काढि दियो घर थकी, गयो सोपि मामा घर तकी ॥८६०॥

मामैं तसु आदर नहि दियो, बहु अपमान तासकौ कियो ।
भाग्यहीन नर जहँ जहँ जाय, तहँ तहँ मानहीनता पाय ॥८६१॥

सवैया तेईसा—जा नरके सिर टाट सदा रवि-ताप थकी दुख जोरि लहै है,
पादप बेल तणी तकि छांह गये सिर बेलकी चोट सहै है;
ता फलतैं तसु फाटि है सीस वेदनि पाप उदै जु गहै है,
भाग्य बिना नर जाय जहाँ, तहँ आपद थानक भूरि रहै है ॥८६२॥

करहाट नामका देश है। उसमें कौशल्या नगरी है, वहाँ संग्रामशूर नामका गुणवान राजा था। उसकी पट्टरानीका नाम वल्लभा था। राजश्रेष्ठीका नाम श्रीधर था, सेठानीका नाम श्रीदत्ता था। राजपुरोहितका नाम लोमश था और पुरोहितानीका नाम लोमा था। ब्राह्मणका जीव नरकसे निकल उसी पुरोहितके महीदत्त नामका पुत्र हुआ। रुद्रदत्त ब्राह्मणकी संगति पा कर महीदत्त सात व्यसनोंमें आसक्त हो गया। वह जुवा खेलता और वेश्यासेवन करता। अत्यधिक राजदण्ड देते देते वह निर्धन हो गया। इधर जब घरमें कुछ नहीं रहा तब उसे भोजन मिलना भी दुर्भर हो गया। पिताने उसे घरसे निकाल दिया। घरसे निकल कर वह मामाके यहाँ गया परन्तु वहाँ उसे कोई आदर नहीं मिला अपितु बहुत अपमान सहन करना पड़ा। सो ठीक ही है— भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जहाँ जाता है वहाँ उसे मानहीनता ही प्राप्त होती है ॥८५५–८६१॥

यही बात एक दृष्टान्त द्वारा प्रकट करते हैं :—[1]किसी मनुष्यका शिर गंजा था, वह जब

---

१ खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके,
वांछन्देशमनातपं विधिवशात् बिल्वस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितः तत्रैव यान्त्यापदः ॥९१॥ (भर्तृहरि–नीतिशतक)

[1]मातुल तास महीदत्त सीस नवाय दियो अब ही ।
पूरव पाप किये मैं कौन सुभाषिये नाथ वहै सब ही ॥८६३॥

दोहा

कौन पापतैं दुख लह्यो, सो कहिये मुनिनाह ।
सुख पाऊँ कैसे अबै, उहै बतावो राह ॥८६४॥

सवैया तेईसा

सो मुनिराज कह्यो सुन भो वछ, पूरव पाप कहौं तुझ याहीं,
प्रोहित नाम भयो रुद्रदत्त—महीपतिके हथनापुर माहीं;
सो निशिभोजन लंपट जोर पिपीलक कीट भखै अधिकाहीं,
भोजन रात समय इक मींढक बैंगण साथ दियो मुखमाहीं ॥८६५॥

अडिल्ल छन्द

तास पापके उदय मरिवि घूघू भयो,
नरक जाय पुनि काग होय नरकहि गयो;
ह्वै बिलाव लहि नरक निकस सांवर भयो,
नरक जाय ह्वै गृध्र पक्षि नरकहि लह्यो ॥८६६॥

सूर्यके घामसे संतप्त हो गया तब शान्तिके लिये बिल्ब—बेल वृक्षकी छायामें गया। वहाँ बेलके गिरनेसे उसका शिर फट गया। अशातावेदनीयके उदयसे उसे बहुत दुःख सहना पड़ा। सो ठीक ही है क्योंकि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ आपत्तिका भार ही उठाता है ॥८६२॥

मामाने महीदत्तको घरसे निकाल दिया। अकेला महीदत्त बनारस जा रहा था कि वनमें उसे मुनिराज मिल गये। वे मुनिराज तीन ज्ञानके धारी थे। महीदत्तने उन मुनिराजको शिर झुकाकर नमस्कार किया तथा पूछा कि हमने पूर्वभवमें कौनसा पाप किया है सो कहिये। किस पापके कारण मैंने यह दुःख पाया है और अब सुख किस प्रकार प्राप्त कर सकता हूँ? हे मुनिनाथ! यह सब कहिये ॥८६४॥ मुनिराजने कहा कि हे वत्स! तूने पूर्वजन्ममें जो पाप किया है वह कहता हूँ। हस्तिनापुरके राजाका जब तू रुद्रदत्त नामका पुरोहित था तब तूने रात्रिभोजनमें आसक्त होकर अधिक संख्यामें चींटियाँ खाई थी और बैंगनके साथ मेण्डक मुखमें रख दिया था ॥८६५॥ उस पापके उदयसे मरकर तू घूघू (उलूक) हुआ, फिर नरक गया, पश्चात् काक हुआ, फिर नरक गया, वहाँसे आकर बिलाव हुआ, पश्चात् नरक गया, तदनंतर सामर

---

१ न० प्रतिमें यह सवैया निम्न प्रकारसे उपलब्ध है—

मातुल तास महीदत्तकों घरतैं जु निकास दियो तब ही,
मारग जात बनारसके वनमांहि मुनीस मिले जब ही;
त्रय ज्ञान धरे रिषि ताहि महीदत्त सीस नवाय दियो तब ही,
पूरव पाप किये हम कौन सु भाषिये नाथ वहै अब ही ॥८६३॥

निकलि सूकरो होय नरक पद पाइयो,
ह्वै अजगर लहि नरक बघेरो थाइयो;
श्वभ्र जाय फिर गोधा तिरयग गति पई,
नरक जाय ह्वै मच्छ नरक पृथिवी लई ॥८६७॥

नरक महीतें निकल महीदत्त थाइयो,
उलुकादि दस तिरयग भव दुख पाइयो;
नरक बार दस जाय महा दुख तें सह्यो,
निसि भोजनके भखै श्वभ्र दुख अति लह्यो ॥८६८॥

दोहा

महीदत्त फिर पूछवे, निसिभोजनतैं देव ।
नर भवमें दुख किम लहै, सो कहिये मुझमेव ॥८६९॥

मुनि भाषै द्विज–पुत्र सुण, निसिमें भोजन खात ।
जीव उदरि जैहैं तबै, बहुविधि ह्वै उत्पात ॥८७०॥

सवैया इकतीसा

माखीतें वमन होय, चींटी बुद्धिनाश करे,
जूवातें जलोदर ह्वै, कोडी लूत करि है;
काठ फांस कंटकतें, गलेमें वधावै विथा,
बाल सुरभंग करै कंठ हीन परि है;

नामक जंगली जानवर हुआ, फिर नरक गया, वहाँसे आकर गीध पक्षी हुआ, पुन: नरक गया, पश्चात् सूकर हुआ, पुन: नरक गया, फिर अजगर हुआ, तदनन्तर नरक गया, वहाँसे आकर बघेरा हुआ, पश्चात् नरक गया, वहाँसे निकलकर गोह हुआ, पश्चात् नरक गया, तदनन्तर मच्छ हुआ, फिर नरक गया, वहाँसे निकलकर अब तू महीदत्त हुआ है। तूने दश बार उलूकादि तिर्यंच होकर तथा दश बार नरकमें उत्पन्न होकर घोर दुःख सहन किये हैं ॥८६६–८६८॥

महीदत्तने फिर पूछा कि हे देव ! रात्रिभोजनसे मनुष्य भवमें किस प्रकार दुःख होता है ? यह भेद मुझे बताइये ॥८६९॥ मुनिराजने कहा कि हे द्विज पुत्र ! सुन, जो पुरुष रातमें भोजन करते हैं उनके उदरमें जीव चले जाते हैं और वे अनेक प्रकारके उत्पात–रोग उत्पन्न करते हैं ॥८७०॥ जैसे, उदरमें यदि मक्खी चली जावे तो वमन होता है, चींटीसे बुद्धिका नाश होता है, जुवांसे जलोदर होता है, मकडी कोढ उत्पन्न करती है, काष्ठकी फांस या कंटक गलेमें फंस जाने पर पीड़ा होती है अर्थात् खाना पीना कठिन हो जाता है, बालसे स्वरभंग हो जाता है, गला बैठ जाता है, भ्रमरीसे शून्यता आती है, कसारी(?)से कम्पवायु उत्पन्न होती है,

भ्रमरीतैं सूना होय, कसारीतैं कम्पवाय,
विन्तर अनेक भांति छल डर धरि है;
इन आदि कथन कहाँ लौं कीजे वत्स सुन,
नरक तिर्यंच थाय कहे जो उपरि है ॥८७१॥

दोहा

जो कदाचि मर मनुष्य ह्वै, विकल अङ्ग बिन रूप ।
अलप आयु दुर्भग अकुल, विविध रोग दुखकूप ॥८७२॥

इत्यादिक निशि अशनतैं, लहिहै दोष अपार ।
सुनवि महीदत्त मुनि प्रते, कहै देहु व्रत सार ॥८७३॥

मुनि भाषै मिथ्यात्व तजि, भज सम्यक्त्व रसाल ।
पूरव श्रावक व्रत कहे, द्वादश धरि गुणमाल ॥८७४॥

दरसन व्रत विधि भाषिये, करुणा करि मुनिराज ।
मुझ अनन्त भव उदधितैं, तारणहार जहाज ॥८७५॥

सोरठा

दोष पच्चीस न जास, संवेगादिक गुण सहित ।
सप्त तत्त्व अभ्यास, कहै मुनीश्वर विप्र सुन ॥८७६॥

व्यन्तर देव अनेक प्रकारके छल करते हैं। इत्यादि उपद्रवोंका वर्णन कहाँ तक किया जाय? नरक और तिर्यंचोंके दुःख ऊपर कह ही चुके हैं ॥८७१॥ यदि कदाचित् मर कर मनुष्य होता है तो विकलांग, रूपहीन, अल्पायुषी, दुर्भग, नाना रोगोंसे युक्त तथा दुःखका कूप होता है ॥८७२॥ रात्रिभोजन करनेसे उपर्युक्त अपार दोष होते हैं। यह सुन कर महीदत्तने मुनिराजसे कहा कि हे नाथ! मुझे कोई श्रेष्ठ व्रत दीजिये ॥८७३॥ मुनिराजने कहा कि मिथ्यात्व छोडो और अनेक गुणोंसे सहित सम्यग्दर्शनको धारण करो। यह कह कर उन्होंने पूर्वोक्त बारह व्रतोंका वर्णन किया ॥८७४॥ महीदत्तने कहा कि हे मुनिराज! आप मुझे कृपा कर दर्शन व्रत (सम्यग्दर्शनरूपी व्रत) की विधि कहिये। आप मुझे इस अनन्त संसार सागरसे पार करनेके लिये जहाजस्वरूप हैं ॥८७५॥

मुनिराजने कहा कि जो तीन मूढता, छह अनायतन, आठ मद और शंकादिक आठ दोष, इन पच्चीस दोषोंसे रहित है, जो संवेगादिक गुणोंसे सहित है और सात तत्त्वोंके श्रद्धानसे सहित है वह सम्यग्दर्शन है। हे विप्र! तू इसका श्रद्धान कर। यह निश्चय और व्यवहारकी अपेक्षा दो प्रकारका है। यह कह कर उन्होंने इस सम्यग्दर्शनका पहले जो विशेष वर्णन किया है

दोहा

इस दरसन सरधान करि, निश्चै अरु व्यवहार ।
पूरव कथन विशेषतैं, कह्यौ ग्रन्थ अनुसार ॥८७७॥
सात व्यसन निशि–अशन तजि, पालो वसु गुण मूल ।
चरम वस्तु जल बिन छण्या, त्यागो व्रत अनुकूल ॥८७८॥

चौपाई

इत्यादिक मुनि वचन सुनेई, उपदेश्या व्रत विधिवत लेई ।
हरषित आयो निजघरमांहि, तासु क्रिया लखि सब विसमांहि ॥८७९॥
अहो सात विसनी इह जोर, अरु मिथ्याती महा अघोर ।
ताको चलन देखिये ईसो, श्री जिन आगम भाष्यो तिसो ॥८८०॥
मात–पिता तसु नेह करेई, भूपति ताको आदर देई ।
नगरमांहि मानै सब लोग, विविध तणे बहु भुंजै भोग ॥८८१॥
पुण्य थकी सब ही सुख लहै, पाप उदै नाना दुख सहै ।
ऐसो जान पुण्य भवि करो, अघतैं डरपि सबै परिहरो ॥८८२॥
महीदत्त बहु धन पाइयो, तत छिन पुण्य उदै आइयो ।
पूजा करै जपै अरिहंत, मुनि श्रावकको दान करंत ॥८८३॥

वह सब महीदत्तसे कहा। साथ ही यह भी कहा कि सात व्यसन और रात्रिभोजनका त्याग करो, आठ मूल गुणोंका पालन करो, चमडेमें रक्खी हुई वस्तुओंका त्याग करो और बिना छना हुआ जल छोडो। ऐसा करनेसे ही तुम्हारा सम्यग्दर्शनरूप व्रत अथवा दर्शन प्रतिमा नामक पहली प्रतिमाका पालन हो सकेगा ॥८७६–८७८॥

मुनिराजके इत्यादिक वचन सुन कर तथा बताये हुए दर्शन व्रतको विधि पूर्वक ग्रहण कर हर्षित होता हुआ महीदत्त अपने घर आया। उसकी क्रिया देख कर सब लोग आश्चर्य करने लगे। कहने लगे कि अरे! जो घोर सात व्यसनोंमें आसक्त था तथा महा मिथ्यादृष्टि था उसका आचरण ऐसा दिख रहा है जैसा जिनागममें कहा गया है ॥८७९–८८०॥ माता पिता उससे स्नेह करने लगे, राजा भी आदर देने लगा, नगरमें सब लोग उसे सन्मानकी दृष्टिसे देखने लगे और इस तरह वह विविध भोग भोगने लगा ॥८८१॥ पुण्यसे जीव सब सुख प्राप्त करता है और पापके उदयसे नाना प्रकारके दुःख भोगता है, ऐसा जान कर हे भव्यजीवों! पुण्य करो और पापसे डर कर उसका परित्याग करो ॥८८२॥

महीदत्तको उसी समय ऐसा पुण्योदय हुआ कि उसे बहुत धन प्राप्त हो गया। अब वह अरहन्त देवकी पूजा करता, जाप करता, मुनियों और श्रावकोंको दान देता। उसने जिनमन्दिर

जिनमंदिर जिनबिम्ब कराय, करी प्रतिष्ठा पुण्य उपाय ।
सिद्धक्षेत्र वंदे बहु भाय, जिन आगम सिद्धांत लिखाय ॥८८४॥
आप पढ़ै औरनिकों देय, सप्त क्षेत्र धन खरच करेय ।
निशि–दिन चालै व्रत अनुसार, पुण्य उपायो अति सुखकार ॥८८५॥
कितेक काल गया इह भांति, अन्त समय धारी उपशांति ।
दरसन ज्ञान चरण तप चार, आराधन मनमांहि विचार ॥८८६॥
भाई निश्चै अरु व्यवहार, धरि संन्यास अंतकी बार ।
शुभ भावनितें छांडे प्रान, पायो षोडश स्वर्ग विमान ॥८८७॥
सिद्धि आठ अणिमादिक लही, आयु वीस द्वय सागर भई ।
पांचों इंद्रीके सुख जिते, उदै प्रमाण भोगिये तिते ॥८८८॥
समकित धरमध्यान जुत होय, पूरण आयु करइ सुर लोय ।
देश अवन्ती मालव जाण, उज्जैनी नगरी सुखखाण ॥८८९॥
पृथ्वीबल तसु राज करेह, प्रेमकारिणी तिय गुणगेह ।
समकितदृष्टि दंपती सही, जिन आज्ञा हिरदय तिन गही ॥८९०॥
स्वर्ग सोलमे तैं सुर चयो, प्रेमकारिणीके सुत भयो ।
नाम सुधारस ताका दियो, मात पिता अति आनंद कियो ॥८९१॥

बनवा कर जिन प्रतिमा बनवाई और उसकी प्रतिष्ठा कर पुण्योपार्जन किया। सिद्ध क्षेत्रोंकी वन्दना की, जिनागमके शास्त्र लिखवाये, उन्हें स्वयं पढ़ा तथा दूसरोंको पढ़वाया, सात क्षेत्रोंमें धन खर्च किया, रात दिन व्रतके अनुसार आचरण किया तथा सुखदायक पुण्यका उपार्जन किया । इस प्रकार उसका कितना ही काल बीत गया । अन्त समयमें शान्ति धारण कर मनमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप आराधनाका विचार किया । जब आयुका अंतिम समय आया तब संन्यास धारण कर निश्चय और व्यवहार आराधनाओंकी भावना की । तथा शुभभावोंसे प्राण छोड़कर सोलहवें स्वर्गमें विमान प्राप्त किया ॥८८३–८८७॥ वहाँ उसे अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्राप्त हुई, बाईस सागरकी आयु मिली, पाँचों इन्द्रियोंके सुख प्राप्त हुए और उदयके अनुसार उसने उन सुखोंका उपभोग किया ॥८८८॥ अन्त समयमें सम्यग्दर्शन और धर्मध्यानसे युक्त होकर उसने देवायुको पूर्ण किया । अब वह कहाँ उत्पन्न हुआ उसका वर्णन सुनो ।

अवन्ती देशके मालव प्रदेशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है। पृथ्वीबल राजा वहाँ राज्य करता था । उसकी स्त्रीका नाम प्रेमकारिणी था । प्रेमकारिणी अनेक गुणोंका स्थान थी । दोनों ही दम्पती सम्यग्दृष्टि थे तथा जिन-आज्ञाको हृदयमें धारण करते थे ॥८८९–८९०॥ मही-

दियो दान जाचक जन जितौं, मोपै कथन होय नहि तितौ ।
विधिसौं पूजै जिनवर देव, श्रुत गुरु वंदन करि बहु सेव ॥८९२॥

अधिक महोछव कीनो सार, जैसो श्रावकको आचार ।
वस्त्रादिक आभरण अपार, सब परिजन संतोषे सार ॥८९३॥

अनुक्रम बरस सातको भयो, पंडित पास पठनको दियो ।
शास्त्रकलामें भयो प्रवीन, श्रावकव्रत जुत समकित लीन ॥८९४॥

जोबनवंत भयो सुकुमार, ब्याह न कीनो धरम विचार ।
एक दिवस वनक्रीडा गयो, बड तरु बिजरीतें क्षय भया ॥८९५॥

देख कुमर उपजो वैराग, अनुप्रेक्षा भाई बडभाग ।
चन्द्रकीर्ति मुनिके ढिग जाय, दीक्षा लीनी तब सुखदाय ॥८९६॥

बाहिर अभ्यन्तर चौबीस, तजे ग्रन्थ मुनि नाये सीस ।
पंच महाव्रत गुपति जु तीन, पंच समिति धारी परवीन ॥८९७॥

इम तेरा विध चारित सजे, निश्चय रत्नत्रय सु भजे ।
सुकल ध्यानबल मोह विनास, केवलज्ञान ऊपज्यो तास ॥८९८॥

दत्तका जीव–देव सोलहवें स्वर्गसे चय कर प्रेमकारिणी रानीके पुत्र हुआ। उसका सुधारस नाम रक्खा गया। माता पिता अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुआ ॥८९१॥ याचकोंको जितना दान दिया गया उसका वर्णन नहीं हो सकता। विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा की गई और देव शास्त्र गुरुकी वन्दना कर उनकी बहुत सेवा की गई ॥८९२॥ माता पिताने श्रावकाचारके अनुसार पुत्र जन्मका महोत्सव किया, सब परिजनों—कुटुम्बके लोगोंको अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण देकर संतुष्ट किया ॥८९३॥

जब बालक सात वर्षका हुआ तब उसे पढ़नेके लिये पण्डितको सौंपा। वह शीघ्र ही शास्त्र कलामें निपुण हो गया तथा सम्यग्दर्शन सहित श्रावक व्रत उसने धारण कर लिये ॥८९४॥

जब वह सुधारस कुमार युवान हुआ तब उसने धर्मका विचार कर विवाह नहीं किया। एक दिन वह वनक्रीडाके लिये गया था। वहाँ उसने देखा कि बिजली गिरनेसे एक वटवृक्षका नाश हो गया हैं। उसे देख वह बड़भागी संसारसे विरक्त हो अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन करने लगा। उसने चन्द्रकीर्ति मुनिराजके पास जाकर सुखदायक दीक्षा धारण कर ली। बाह्याभ्यन्तरके भेदसे चौबीस प्रकारके परिग्रहोंका त्याग कर उसने मुनिराजको नमस्कार किया। पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तिके भेदसे तेरह प्रकारका चारित्र धारण किया। साथ ही निश्चयरत्नत्रयकी

भवि उपदेशे बहुविधि जहाँ, आयु करम पूरण भयो तहाँ ।
शेष अघातियको करि नास, पायो मोक्षपुरी सुखवास ॥८९९॥

सवैया एकतीसा

मोहकर्म नास भये प्रसमत्त गुण थये,
ज्ञानावर्ण नास भये ज्ञान गुण लयो है;
दरसन आवरण नास भयो दंसण सु,
अंतराय नासतें अनन्तवीर्य थयो है;
नामकर्म नासतें प्रगटचा सुहुमत्त गुण,
आयु नास भये अवगाहण जु पायो है;
गोत्रकर्म नास किये भयो है अगुरुलघु,
वेदनीके नासे अव्याबाध परिणयो है ॥९००॥

दोहा

विवहारे वसु गुण कहे, निश्चै सुगुण अनन्त ।
काल अनन्तानन्त बिते, निवसै सिद्ध महन्त ॥९०१॥

चौपाई

इह विधि भवि दर्शन जुत सार, पालै श्रावक व्रत आचार ।
अर मुनिवरके व्रत जो धरै, सुर नर सुख लहि शिव-तिय वरै ॥९०२॥
निशि भोजनतें जे दुख लहे, अरु त्यागे सुख ते अनुभये ।
तिनके फलको वरनन भरी, कथा अणथमी पूरण करी ॥९०३॥

आराधना कर शुक्लध्यानके वलसे मोहनीय कर्मका क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया, भव्यजीवोंको बहुत प्रकारका उपदेश दिया । जब आयुकर्म पूर्ण होनेका अवसर आया तब शेष अघातिया कर्मोंका क्षय कर सुखके निवासभूत मोक्षपदको प्राप्त किया ॥८९५–८९९॥

मोहनीय कर्मका नाश होनेसे उन्हें सम्यक्त्व गुण प्रकट हुआ, ज्ञानावरणीयके नाशसे अनन्तज्ञान गुण, दर्शनावरणीयके नाशसे अनन्तदर्शन गुण, अन्तरायके नाशसे अनन्तवीर्य गुण, नाम कर्मके नाशसे सूक्ष्मत्वगुण, आयुकर्मके नाशसे अवगाहना, गोत्रकर्मके क्षयसे अगुरुलघुगुण और वेदनीयके अभावसे अव्याबाध सुख प्राप्त हुआ ॥९००॥ व्यवहारनयकी अपेक्षा सिद्ध भगवानके ये आठ गुण कहे गये हैं परन्तु निश्चयनयसे तो अनन्त गुण होते हैं। वे सिद्ध महात्मा अनन्तानन्त काल तक वहीं निवास करते हैं ॥९०१॥ कविवर किशनसिंह कहते हैं कि इस प्रकार जो भव्यजीव सम्यक्दर्शनके साथ श्रावकके व्रत पालकर मुनिव्रत धारण करते हैं वे मनुष्य और देवगतिके सुख भोग कर मुक्तिरमाको प्राप्त होते हैं ॥९०२॥ रात्रिभोजनसे जो दुःख प्राप्त हुए और उसके त्यागसे जो सुख उपलब्ध हुए उनका यहाँ वर्णन किया, इस तरह अणथमी व्रतकी कथा पूर्ण हुई ॥९०३॥

छप्पय

दिवस उदय द्वय घडी चढत पीछें ते लेकर,
अस्त होत द्वय घडी रहै पीछलौ एते पर;
भोजन जे भवि कर तजै निशि चार अहार ही,
खादिम स्वादिम लेह्य पान मन वच कर वार ही;
सो निसि भोजन तजन वरत, नित प्रति जो जिनराज बखानियो ।
इह विधि नित प्रति चित्त धरि श्रावक मन जिहिं मानियो ॥९०४॥

चित्रकूट गिरि निकट ग्राम मातंग वसै जहै,
नाम जागरी जान कुरंगचंडार तिया तहै;
तिहि निसिभोजन तजन वरत सेठणिपै लियो,
मन वच क्रम व्रत पालि मरण शुभ भावनि कियो;
वह सेठ तिया उरि ऊपनि सुता नागश्रिय जानिये ।
जिन कथित धर्मविधिजुत गहिवि सुरगतणा सुख तिन लिये ॥९०५॥

तिरयग एक सियाल सुणिवि मुनिकथित धरम पर,
रिषि निसिभोजन तजन वरत दीयो लखि भविवर;
त्रिविध शुद्ध व्रत पालि सेठसुत ह्वै प्रीतिंकर,
विविध भोग भोगए नृपति-पुत्री परणवि वर;
मुनिराज पास दीक्षा लई, उग्र घोर तप ध्यान सजि ।
वसु कर्म क्षेपि पहुंचे मुकति, सुख अनन्त लहि जगतमहि ॥९०६॥

दो घडी दिन चढ़नेके बादसे लेकर दो घडी सूर्यास्त होनेके पूर्व तक भोजन करे, पश्चात् रात्रिमें अन्न, पान, खाद्य और स्वाद्यके भेदसे चारों प्रकारके आहारका त्याग करना रात्रिभोजन त्याग व्रत कहलाता है । इस व्रतको श्रावक नित्य प्रति हृदयसे धारण करते हैं ऐसा जिनदेवने कहा है ॥९०४॥ चित्रकूट पर्वतके निकट मातंगग्राममें एक जागरी नामका भील रहता था, उसकी स्त्रीका नाम कुरंगचंडार था। उसने सेठानीसे रात्रिभोजन त्याग व्रत लिया और मन वचन कायसे उसका पालन किया। अन्तमें शुभ भावोंसे मर कर वह उसी सेठानीके उदरसे नागश्री नामकी कन्या हुई। नागश्रीने विधिपूर्वक जिनधर्मको धारण कर स्वर्गका सुख प्राप्त किया ॥९०५॥ एक शृंगाल तिर्यंचने मुनि महाराजके द्वारा कथित धर्मका उपदेश सुन कर रात्रिभोजनत्याग व्रतको धारण किया और मन वचन कायासे उसका पालन कर वह प्रीतिंकर नामका श्रेष्ठीपुत्र हुआ, उसने राजपुत्रीके साथ विवाह कर विविध भोग भोगे । पश्चात् मुनिराजके पास दीक्षा लेकर उसने घोर तप किया और ध्यानके द्वारा आठों कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष प्राप्त

याही व्रतको धारी पूर्व ही बहुत पुरुष तिय,
तद्भव सुरपद लहै त्रिविध पालिउ, हरषित हिय;
अनुक्रमि मोक्षहि गये धरि सुदीक्षा जिनि भारी,
सुख अनन्त [1]नहिं ओर, सिद्धपदके जे धारी;
नर नारी अजहुं व्रत पालि है मन वच काय त्रिशुद्धि कर ।
लहि शर्म देवगतिका अधिक, क्रमतै पहुंचै मुकति घर ॥९०७॥*

दर्शन-ज्ञान-चारित्र कथन

दोहा—त्रेपन किरियाके विषै, दरसण ज्ञान प्रमाण ।
अवर त्रितय चारित तणों, कछु इक कहों वखाण ॥९०८॥
निज आतम अवलोकिये, इह दर्शन परधान ।
तस गुण जाणपनों विविध, वहै ज्ञान परवान ॥९०९॥
तामें थिरता रूप है, रहै सुचारित होय ।
रत्नत्रय निश्चय यहै, मुकति—बीज है सोय ॥९१०॥

कर अनन्त सुख प्राप्त किया ॥९०६॥ इस व्रतको धारण कर पूर्वकालमें अनेक स्त्री-पुरुषोंने मन वचन कायासे हर्षित चित्त होकर इसका पालन किया और उसी भवसे देवपद प्राप्त किया । पश्चात् अनुक्रमसे अनन्त सुखके धारक सिद्धपदको प्राप्त किया । इस समय भी जो नर नारी मन वचन कायाकी विशुद्धता पूर्वक इस व्रतका पालन करते हैं वे देवगतिको प्राप्त कर क्रमसे मुक्तिमन्दिरको प्राप्त करते हैं अर्थात् मोक्ष जाते हैं ॥९०७॥

दर्शन ज्ञान चारित्र कथन

त्रेपन क्रियाओंमें दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये तीनों प्रधान हैं इसलिये इनका कुछ व्याख्यान करते हैं ॥९०८॥ अपने आत्माका अवलोकन करना सो दर्शन है, उसके विविध गुणोंको जानना सो ज्ञान है और उसमें जो स्थिरता है वह सम्यक्चारित्र है। निश्चयसे यही रत्नत्रय है और यही मोक्षका बीज अर्थात् कारण है। भावार्थ : —परद्रव्योंसे भिन्न ज्ञाता द्रष्टा स्वभाववाले आत्माका श्रद्धान होना निश्चय सम्यग्दर्शन है, उसके विविध गुणोंका ज्ञान होना निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उसी आत्मामें उपयोगकी स्थिरता होना निश्चय सम्यक्चारित्र है । यह निश्चय रत्नत्रय मोक्षका साक्षात् मार्ग है ॥९०९-९१०॥ आगे व्यवहार रत्नत्रयका वर्णन करते हैं—सात तत्त्वोंकी

---

१ तिहि ठौर न०

* ९०७ वें छन्द के आगे न० और स० प्रतिमें निम्नलिखित छन्द अधिक है—

भोजन जे भवि करहि तजै निशि चार अहार ही,
सो निशि भोजन तजन वरत नित प्रति जो पार ही ।
तसु वरस एकके नियमको मन वच क्रम यह जानियो,
उपवास मास छहको जिसों फल जिनराज वखानियो ॥

अब विवहार वखाणिये, सप्त तत्त्व परधान ।
निःशंकादिक आठ गुण, जुत दर्शन सुख थान ॥९११॥
ज्ञान अष्ट विध भाषियो, व्यंजन उर्जिति आदि ।
जिन आगमको पाठ बहु, करै त्रिविध अहलादि ॥९१२॥
पंच महाव्रत गुप्ति त्रय, समिति पंच मिलि सोय ।
विध तेरा चारित्र है, जाणों भविजन लोय ॥९१३॥
इनको वर्णन पूर्व ही, निश्चय अरु व्यवहार ।
मति-प्रमाण संक्षेपते, कियो ग्रंथ अनुसार ॥९१४॥

चौपाई

त्रैपन किरियाकी विधि सार, पालो भवि मन वच तन धार ।
सो सुर-नर-सुख लहि शिव लहै, इम गणधर गौतमजी कहै ॥९१५॥

गोंदकी उत्पत्तिका वर्णन

दोहा

[1]गूंद हलद अरु आंवला, निपजन विधि जे थाहि ।
क्रियावान पुरुषनि प्रतै, कहूं सकल समझाहि ॥९१६॥

चौपाई

गूंद खैरके लागो होय, भील उतार लेतु हैं सोय ।
अरु अंगुलीके लार लगाय, इह विधि गूंद उतारत जाय ॥९१७॥

प्रधानता पूर्वक जो श्रद्धान है वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है । यह सुखदायक सम्यग्दर्शन निःशंकित आदि आठ गुणोंसे सहित होता है ॥९११॥ व्यंजनशुद्धि—शब्दशुद्धि आदि आठ प्रकारका व्यवहार सम्यग्ज्ञान है । इसका धारक प्राणी हर्षपूर्वक मन, वचन, कायासे जिनागमका पाठ करता है ॥९१२॥ पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति ये मिल कर तेरह प्रकारका व्यवहार चारित्र है ॥९१३॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि इस निश्चय और व्यवहार रत्नत्रयका वर्णन हमने अपनी बुद्धि प्रमाण जिनागमके अनुसार पहले ही किया है ॥९१४॥ हे भव्यजीवों ! इन त्रेपन क्रियाओंकी विधिका मन वचन कायासे पालन करो । जो इनका पालन करता है वह देव और मनुष्य गतिके सुख प्राप्तकर मोक्षको प्राप्त होता है, ऐसा गौतम गणधरने कहा है ॥९१५॥

गोंदकी उत्पत्तिका वर्णन

गोंद, हलदी और आँवलाके उत्पन्न होनेकी जो विधि है उसे क्रियावंत पुरुषोंके प्रति सब समझाकर कहता हूँ ॥९१६॥ खैरके वृक्षमें जो गोंद लगती है उसे भील लोग उतारते हैं । उतारते समय वे अपनी अंगुली मुखकी लारमें लगाते जाते हैं क्योंकि उसकी आर्द्रतासे गोंद जल्दी उतर

---

१ गोंद हरद आंवल प्रमुख स०

कीडी माछर [1]आदि अतीव, लागा रहै गूंदमें जीव ।
भील विवेकहीन अति दुष्ट, करुणा रहित उतारै भ्रष्ट ।।९१८।।
दूनामें धरते सो जाय, जीव कलेवर तामें आय ।
इह विधि जाण लेहु जन दक्ष, नरन्नारी सब खात प्रतक्ष ।।९१९।।
भील-झूंठ यह जाणो सही, क्रियावान नर खावै नहीं ।
जो खैहै सो क्रिया नसाय, अवर वरतको दोष लगाय ।।९२०।।

अफीमकी उत्पत्ति

चौपाई— अरु उत्पत्ति अफीमजु तणी, झूंठी दोष गूंदहि जिम भणी ।
इह अफीममें दोष अपार, खाये प्राण तजै निरधार ।।९२१।।

हल्दीकी उत्पत्ति

चौपाई— हलद भील निज भाजन मांहि, अपने जलतें ते औटांहि ।
ता पीछें सो देय सुखाय, हलद बिकै ते सब ही खाय ।।९२२।।
[2]कन्दमूलतें उपज्यो सोय, भाजन भील नीरमें जोय ।
यामें हैं इतनौ लाख दोष, धरमभ्रष्ट शुभ क्रिया न पोष ।।९२३।।

जाती है । गोंद चेंपदार रहती है इसलिये उसमें कीडी तथा मच्छर आदि जीव अधिक मात्रामें लगे रहते हैं । अत्यन्त दुष्ट, करुणारहित और विवेकशून्य भ्रष्ट भील उस गोंदको वृक्षसे उतार कर दोनेमें रखते जाते हैं । उसमें अनेक जीवोंके कलेवर मिल जाते हैं । इस विधिसे गोंदकी उत्पत्ति होती हैं, पर सब चतुर नर नारी उसे खाते हुए देखनेमें आते हैं । गोंद, भीलोंकी जूंठन है इसलिये क्रियावंत मनुष्य उसे खाते नहीं हैं। जो खाते हैं उनकी क्रिया नष्ट हो जाती है और उनके व्रतमें दोष लगता है ।।९१७–९२०।।

अफीमकी उत्पत्तिका वर्णन

अफीमकी उत्पत्तिमें भी गोंदके समान ही जूंठनका दोष लगता है। अफीममें सबसे बडा दोष यह है कि उसे खानेसें खानेवालेकी मृत्यु हो जाती हैं ।।९२१।।

हलदीकी उत्पत्तिका वर्णन

हलदीको भील लोग अपने बर्तनमें अपने जलसे पहले पकाते हैं फिर सुखाकर बेचते हैं । बाजारमें बिकने वाली हलदीको सब लोग खाते हैं। परन्तु यह कंदमूलसे उत्पन्न होती हैं और भीलके बर्तनमें उसके पानीसे पकाई जाती है इसमें इतना दोष लगता है । इसें खानेसे मनुष्य धर्मभ्रष्ट होता है और अपनी शुभक्रियाको सुरक्षित नहीं रख पाता। भावार्थ :— यदि कच्ची हलदी लेकर उसका छिलका उतार कर छोटे छोटे टुकडे कर सुखा लिया जाय तो व्रती मनुष्यको उसे लेनेमें दोष नहीं है ।।९२२–९२३।।

---

१ आदिक जीव स० २ माहि मूलतें निपजे सोय स०

आँवलाकी उत्पत्ति

चौपाई— वरडि मांझ आंवला अपार, हीण क्रिया तामें अधिकार ।
हर्यो आंवला भील लहाय, अपने भाजन मांहि डराय ॥९२४॥
निज पाणीमें ले ओंटाय, जमी मांहि फिर डारै जाय ।
पहरि पाहनी तिन पर फिरै, फूटत तिन गुठली नीसरै ॥९२५॥
अरु भीलनके बालक ताम, तिनकी गुठली बीनत जाय ।
लूण साथी ले खाते जाहीं, झूंठ होत तामें सक नांहि ॥९२६॥
जल भाजनको दोष लहन्त, पांय पाहनीसे खूदन्त ।
ऐसी उत्पत्ति बुध जन जान, धर्म पलै सोई मन आन ॥९२७॥

पानकी उत्पत्ति

चौपाई— काथ खात हैं पानहि मांहि, तिसके दोष कहै ना जाहि ।
प्रथम पान साधारण जान, राखै मास वरसलों आन ॥९२८॥
सरद रहै तिनमें अति सदा, त्रस उपजै जिनवर यों वदा ।
हिन्दू तुरक तंबोली जान, नीर निरन्तर जिन छटकान ॥९२९॥

आँवलाकी उत्पत्तिका कथन

आँवलेमें अधिक जीव रहते हैं इसलिये उसके सेवनसे क्रिया नष्ट होती है । हरे आँवलेको तोड़ कर भील लोग अपने बर्तनमें रखते जाते हैं, पश्चात् पानीमें ओंटा कर भूमि पर सुखाते हैं फिर जूता पहिन कर उन पर चलते हैं जिससे फूटकर उनकी गुठलियां निकल जाती हैं । भीलोंके बालक उनकी गुठलियाँ बीनते जाते हैं और नमकके साथ आँवलोंको खाते रहते हैं इसलिये वे जूंठे हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं है । भीलोंका जल, उनके बर्तन और पैरके जूतोंसे खूंदा जाना यह सब दोष आँवलेमें हैं । इस प्रकार उनकी उत्पत्ति जान कर जिस विधिसे धर्मकी रक्षा हो वैसा करना चाहिये । भावार्थ :—यह सब दोष बाजारमें बिकने वाले सूखे आँवलेमें है । क्रियावन्त पुरुष हरे आँवले लेकर उन्हें जलसे धोते हैं पश्चात् उनकी कली या छूना बनाकर सुखाते हैं उसके उपयोगमें दोष नहीं हैं ॥९२४–९२७॥

पानकी उत्पत्तिका वर्णन

लोग पानमें जो कत्था खाते हैं उसके इतने अधिक दोष हैं कि वे कहे नहीं जा सकते । प्रथम तो पान ही साधारण वनस्पति है, उसे महिनों, क्या बरसों तक रक्खा जा सकता है । उसमें सदा आर्द्रता रहती है जिससे त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा हैं । पान बेचनेवाले तंबोली, हिन्दु या तुर्की (मुसलमान) रहते हैं वे उस पर निरन्तर पानीका छिड़काव करते रहते हैं ॥९२८–९२९॥ उनके जलका बर्तन अत्यन्त अशुद्ध रहता है । जहाँ सब

जल भाजन अशुद्ध अति जाण, सारमेय मूतें तिह थान ।
पूंगी लौंग रु गिरी बिदाम, डोंडादिक पुनि लावै ताम ।।९३०।।
चूनौ काथ इत्यादि मिलाहिं, सबै मसालो पाननि माहिं ।
धरकै बीडा बांधे सोय, सब जन खात खुशी मन होय ।।९३१।।
धरम पाप नहि भेद लहन्त, ते ऐसे बीडा जु गहन्त ।
अरु उत्पत्ति काथकी सुनो, अघदायक अति है तिम गुणो ।।९३२।।

काथ (कत्था)की उत्पत्ति

चौपाई

बिन्ध्याचल तहँ भील रहन्त, खैर रूखकी छाल गहन्त ।
औंटावे निज पानी डार, अरुण होय तब लेय उतार ।।९३३।।
तामें चून जु मंडवा तणो, तन्दुल ज्वार सिंघाडा भणो ।
नाख खैर जलमांही जोय, रांध राबडी गाढी सोय ।।९३४।।
ताहि सुखावै कुंडा मांहि, उत्पत्ति काथ यहै सक नाहि ।
कहँ कहा लौं वारंवार, होय पाप लख कर निरधार ।।९३५।।
सुखदायक सिख गहिये वीर, दुखद पापको छांड्यो धीर ।
छांडे मन वच सुख सो लहै, बिनु छांडे दुर्गतिको गहै ।।९३६।।

लोग पेशाब करते हैं वहाँ पर भी पडी सुपारी, लोंग, नारियलकी गिरी, बादामकी बिजी तथा डोंडा आदिकको वे लोग उठा लाते हैं । चूना, कत्था तथा अन्य सब मसाले पानमें रख बीड़ा बाँध कर देते हैं और सब लोग प्रसन्नचित्त होकर उन्हें खाते हैं । जिन्हें पुण्य और पापका भेद नहीं है वे ही उन बीडोंको ग्रहण करते हैं । अब कत्थेकी उत्पत्ति सुनो और उसे अत्यन्त पापदायक समझो ।।९३०–९३२।।

काथ (कत्था) की उत्पत्तिका वर्णन

विन्ध्याचलमें जो भील रहते हैं वे खदिर वृक्षकी छाल निकालते हैं । फिर उसे अपने पानीमें डाल कर औंटाते हैं । जब वह लाल लाल हो जाता है तब उसमें मंडवा (?) का आटा, चावल, ज्वार अथवा सिंघाडेका चून मिला कर औंटाते हैं । जब वह रबडीके समान गाढ़ा हो जाता है तब उसे कुण्डोंके भीतर रख कर सुखा लेते हैं । इस तरह कत्थेकी उत्पत्ति इतनी पापपूर्ण है कि उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता । बार बार कहाँ तक कहूँ ? उसके पापको देखकर निर्णय करो ।।९३३–९३५।। कविवर किशनसिंह कहते हैं कि हे भाई ! इस सुखदायक शिक्षाको ग्रहण करो और दुःखदायक पापको छोडो । जो मनवचनकायासे इसका त्याग करते हैं वे सुखको प्राप्त होते हैं और जो त्याग नहीं करते हैं वे दुर्गतिको प्राप्त होते हैं । इसी उद्देश्यसे

तातैं सब वरणन इह कियो, सुनहु भविकजन दे निज हियो ।
जिह्वा लंपटता दुखकार, संवरतें सुखपद है सार ॥९३७॥

दोहा

व्रतधारी जे पुरुष हैं, अवर क्रियाधर जेह ।
तजहु वस्तु जो हीण है, त्यों सुख लहो अछेह ॥९३८॥

वरनोडी खीचला कूरेडी फली हरी वर्णन

चौपाई

क्रियावान श्रावक है जेह, वस्तु इती नहि खैहैं तेह ।
रांधै चून बाजरा तणो, और ज्वारि चावलकों भणो ॥९३९॥

वरनोडी रु खींचला करै, कूरेडी फूलै हरि धरै ।
भाटै शूद्र सुखावै खाट, सीला वट वार्यों मुनिराट ॥९४०॥

इह विधि वस्तु नीपजै सोई, ताहि तजो व्रत धरि अब लोई ।
अरु ले जाइ रसोईमांहि, सेकै तलै क्रिया तसु जाहि ॥९४१॥

यह सब वर्णन किया है । हे भव्यजीवों ! इसे सुन कर हृदयमें धारण करो । जिह्वाकी लंपटता दु:ख उत्पन्न करनेवाली है और उसका संवर (रोकना) सुखका श्रेष्ठ स्थान है । भावार्थ :— यदि कत्था खानेका राग है तो खदिर वृक्षकी छाल या उसकी लकडीको लेकर उसके छोटे छोटे टुकडे कर घर पर छने पानीमें औंटावे । जब उनका रंग पानीमें आ जावे तब छाल या टुकडोंको छान कर अलग कर दें और उस लाल पानीको आग पर चढ़ा कर औंटते रहो । जब अत्यधिक गाढा हो जावे तब उसकी छोटी छोटी टिकिया बना कर सुखा लो । यह कत्था शुद्ध है अर्थात् व्रती जनोंके ग्रहण करने योग्य है ॥६३६–६३७॥ जो व्रतधारी अथवा अन्य शुभक्रियाओंके धारक पुरुष हैं उन्हें इन हीन––अयोग्य वस्तुओंका त्याग करना चाहिये क्योंकि उनके त्यागसे ही स्थायी सुखकी प्राप्ति होती है ॥६३८॥

वरनोडी खींचला कूरेडी फली हरी वर्णन

जो क्रियावन्त श्रावक हैं वे इतनी वस्तुएँ नहीं खाते हैं जैसे बाजरा, ज्वार अथवा चावलके चूनको खारके पानीके साथ रांध कर उसके खींचला बनाते हैं और फूली हुई हरी कूरेडी(?)को सुखा कर रखते हैं । इसे मजदूरी पर लगे हुए शूद्र लोग खाट पर सुखाते है ।... ....इस प्रकारकी विधिसे जो वस्तुएँ बनती है, उनका व्रती मनुष्यको त्याग करना चाहिये । जो मनुष्य हीन वस्तुओंको रसोईमें ले जा कर आग पर सेंकते अथवा घृतादिकमें तलते हैं उनकी सब क्रियाएँ नष्ट हो जाती है ॥६३६–६४१॥

भडभूंज्याके चबैणे सिकानेका कथन

चौपाई— भडभूज्यो सेकै जो धान, तास क्रिया सुनिये मतिमान ।
राधा चावल देय सुखाय, तस चिवडा मुरमुरा बनाय ॥९४२॥
गेहूँ बाजराकी घूंघरी, रांध मुरमुरा सेकै धरी ।
मका जवार उकालै जाण, फूला कर बेचै मन आण ॥९४३॥
करे भूगडा सैकै चणा, मूंग मोंठ चौलादिक घणा ।
इत्यादिक नाजहि सिकवाय, बिकै चबैणो सब जन खाय ॥९४४॥
शूद्र तुरक भडभूंजा हालि, तिनके भाजनमें जल घालि ।
करै चबैणा ताजा जानि, सबै खाय मन भ्रांति न आनि ॥९४५॥
जो मन होय चबैणो परी, तो खइये इतनी विधि करी ।
निज घरतें लीजे जल नाज, तिनहि सिकावै [1]व्रत धरि साज ॥९४६॥
पीतल लोह चालणी मांहि, छांनि लेय बालू कढवाहि ।
इह किरिया नीकी लखि रीति, खाहु चबैणो मन धर प्रीति ॥९४७॥

चौलाकी फली, कैर, करेली, सांगली आदिका कथन

चौपाई— चौल हरी चौलाकी फली, आवै [2]गाँव गाँव तें चली ।
तिनको शूद्र सिजाय सुखाय, बैचे सो सगरे जन खाय ॥९४८॥

अब भड़भूंजा जिस धान्यको सेंकते हैं उसकी विधिको हे बुद्धिमान जनों! सुनो। भड़भूंजा लोग रांधे हुए चावलोंको सुखा कर उनका चेवड़ा बनाते हैं। इस प्रकार गेंहूं और बाजराकी घूंघरियोंको रांध कर उनसे मुरमुरा तैयार करते हैं । मका और ज्वारको उकाल कर तथा उसके फूले बना कर बेचते हैं। पानीमें भिगो कर चना, मूंग, मोठ और चौला आदि अनाजोंको सेंकते हैं तथा उनका चबैणा बना कर बेचते हैं । सब लोग इन चबैणोंको खाते हैं । शूद्र और तुर्की लोग जो भड़भूंजाका काम करते हैं वे अपने बर्तनोंका जल डाल कर चबैणा तैयार करते हैं उसे सब लोग ताजा जान कर खाते हैं और मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि नहीं करते; परन्तु इस विधिसे तैयार हुआ चबैणा खाने योग्य नहीं है। किसी व्रती मनुष्यको यदि चबैणा खानेका राग है तो वह अपने घरसे पानी और अनाज ले जा कर सिकवा ले तथा पीतल या लोहकी चलनीसे छनवा कर बालूको अलग कर दे। यह क्रिया उत्तम है अतः इसी रीतिसे तैयार करा कर चबैणा खा कर मनको प्रसन्न करें ॥९४२–९४७॥

चौलेकी फली, कैर, करेली तथा सांगरीका कथन

चौलेकी हरी फली गाँव गाँवसे आती है उसे लेकर शूद्र लोग पहले पानीमें सिझाते हैं फिर सुखा कर बेचते हैं और सब लोग खाते हैं ॥९४८॥ इसके खानेमें शूद्रके जल तथा

---

१ विधि धरि न० स० २ मारवारतें चली न० स०

जल-भाजन शूद्रनको दोष, वासी वटवोयो अघकोष ।
बहु दिन राखै जिय उपजाय, तिनहि विवेकी कबहुँ न खाय ॥९४९॥
कैर करेली अरु सांगरी, शूद्र उकालै ते निज घरी ।
पडै कुंथवा वरषा काल, यह खैबो मति-हीनी चाल ॥९५०॥
अंबहलि कैरीकी जो करै, जतन थकी राखै निज घरै ।
[1]जल बरसै अरु नाहीं मेह, तब लौं जोग खायबो तेह ॥९५१॥
वरषा काल मांहि निरधार, उपजै लट कुंथवा अपार ।
इन परि चौमासो जब जात, ताहि विवेकी कबहु न खात ॥९५२॥
नई तिली तिल निपजै जबै, फागुण लौं खइये जन सबै ।
सो मरजाद तेल परमाण, होली पीछे तजहु सुजाण ॥९५३॥
यातैं होली पहिलो गही, ले राखै श्रावक घर मही ।
होली पछिलौ ह्वै जो तेल, तिनमें जीव कलेवर मेल ॥९५४॥
सो वरते कातिक लौं तेल, तिन भवि सुनके लखिवो मेल ।
[2]चरम तणी जो ह्वै ताखडी, बुध जन घर राखै नहि घडी ॥९५५॥

वर्तनका दोष है, साथ ही वासी खानेसे बहुत भारी पाप होता है। इन फलियोंको यदि बहुत दिन तक रक्खा जावे तो उनमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये विवेकी मनुष्य इन्हें नहीं खाते हैं । कैर, करेली और सांगरीको भी शूद्र लोग अपने घर पर तैयार करते हैं। वर्षाकाल आने पर उनमें सूक्ष्म जीव पड़ जाते हैं अतः इन्हें खाना निर्बुद्धि मनुष्योंका काम है । कच्चे आमोंकी जो कैरी की जाती है उसे अपने घर बडे यत्नसे रखना चाहिये । जब तक मेघवृष्टि न हो तभी तक उन्हें खाना योग्य है क्योंकि वर्षाकालमें इनमें बहुत सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं । इन वस्तुओं पर यदि बरसातका चौमासा निकल गया है तो विवेकी जन उन्हें नहीं खाते हैं ॥९४९–९५२॥

नवीन तिलीका तेल जब बनता है तो उसे फागुन तक खाना चाहिये। यही तेलकी मर्यादा है। होलीके बाद उसका त्याग कर देना चाहिये । यही कारण है कि श्रावकके घर होलीके पहले तेल ले लिया जाता है । होलीके बाद जो तेल तैयार होता है उसमें जीवोंका कलेवर मिला रहता है । होलीके पहले तैयार हुआ तेल कार्तिक तक उपयोगमें लाना चाहिये। भावार्थ :—तिलीमें जीवराशि जल्दी उत्पन्न हो जाती है इसलिये उसका तेल विधिपूर्वक होलीके पहले निकलवा लेना चाहिये, होलीके बाद नहीं। होलीके पहले निकलवाया तेल कार्तिक तक काममें लिया जा सकता है। कार्तिकके बाद नवीन तिली आने लगती हैं।

---

१ जब लगु नांही वरसै मेह, तब लगु जोग खायवे तेह । स० न० २ चरम चालणी जो ताखडी स०

[1]तामें तोलै चून रु नाज, चरम वस्तु है दोष समाज ।
[2]कागद काठ वांस अर धात, राखै किरियावंत विख्यात ॥९५६॥
सिंघाडा अति कोमल आंहि, होली गये जीव उपजांहि ।
ताकी होय मिठाई जिती, खैवो जोग न भाखी तिती ॥९५७॥
केऊ करिवि घूघरी खाय, केउक सीरो पुडी बनाय ।
होली पहिली तो सब भली, खैवो जोग कही मन रली ॥९५८॥
पीछै उपजै जीव अपार, क्रिया दयापालक नर सार ।
[3]तब इनकौं तो भीटै नांहि, कही धर्म साधै तिन खांहि ॥९५९॥
दूध गिदौडी कै गूजरी, दोहै पीछै जाय बहु धरी ।
निज वासणमें घर ले जांहि, करै गिदौडी मावो तांहि ॥९६०॥
दोष अधिक काचा पय तणो, ताकौं कथन कहाँलों भणो ।
अविवेकी समझै नहि तांहि, [4]समझाये हम तिन ही आहि ॥९६१॥

चमडेकी जो तराजू है उसे ज्ञानी जन घडीभरके लिये भी अपने घर नहीं रक्खे, क्योंकि चमडेकी तराजू पर तोले गये चून और अनाजमें चर्मस्पर्शका दोष आता है। क्रियावन्त श्रावक कागज, काष्ठ, बांस अथवा धातुसे बनी हुई तराजू रखते हैं यह प्रसिद्ध है ॥९५३–९५६॥

सिंघाडा अत्यन्त कोमल पदार्थ है। होलीके बाद उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये होलीके बाद सिंघाडेसे बनी जितनी मिठाइयाँ हैं उनको खाना योग्य नहीं है ॥९५७॥ कितने ही लोग सिंघाडेकी घूंघरी बनाकर खाते हैं और कितने ही सीरा पुडी बनानेमें उसका उपयोग करते हैं परन्तु यह सब होलीके पहले खाना योग्य है। होलीके बाद उसमें अपार जीव उत्पन्न हो जाते हैं अतः दयासहित क्रियाका पालन करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्य, होलीके बाद इसका उपयोग नहीं करते। जिससे धर्मकी रक्षा हो वही वस्तु खाने योग्य है ॥९५८–९५९॥

गिंदोडी (मावा) बनानेके लिये गूजरी दूध दुह कर अपने बर्तनमें घर ले जाती है। जब बहुत दूध इकट्ठा हो जाता हैं तब उसकी गिंदोडी बनाती है। गिंदोडी बनानेमें अधिक दोष तो कच्चे दूधका है। कच्चे दूधमें कितना दोष है इसका कथन कहाँ तक किया जाय ? इसे अज्ञानी लोग समझते नहीं है अतः उन्हें समझानेके लिये हम प्रयत्न करते हैं। भावार्थ :—दूध दुहनेके बाद दो घडीके भीतर यदि उसे आग पर गर्म नहीं किया जाता है तो उसमें उसी जातिके असंख्य संमूर्च्छन जीव पैदा हो जाते हैं। गिंदोडा (मावा) बनानेवाले लोग इसका ध्यान नहीं रखते। गाय भैंसको दुह दुह कर दूध इकट्ठा करते जाते हैं, पश्चात् जब बहुतसा दूध इकट्ठा

---

१ चालें तोलें स० २ वांस धात काटकी होय, राखें क्रियावंत जु सोय स० ३ तातें इनको भेंटे नांहि स० ४ समझाये हू मन नहि आही न० समझाये नहि समझे आहि स०

इतनी तो नजर्या लखि लेहु, मावो करतां पयमें तेहु ।
पडै जीव उसमें लघु जात, अरु फिर रात तणी का बात ॥९६२॥

ताहूमें पुनि वरषा काल, पडै जीव तिहि निसि दर हाल ।
मांछर डांस पतंगा आदि, मावो इसो खात शुभवादि ॥९६३॥

सदा पापदायक है सही, [1]पाप थकी दुरगति दुख लही ।
लंपटता छूटै नहि जदा, निसिको कियो न खइये कदा ॥९६४॥

जो खैवो विनु रह्यो न जाय, तो पय जतन थकी घर ल्याय ।
मरयादा बीते नहि जास, क्रिया सहित मावो करि तास ॥९६५॥

जिह्वा लंपटता वशि थाय, तो ऐसी विधि करिकै खाय ।
कोऊ छल पकरैगो एम, उपदेश्यो आरंभ बहु केम ॥९६६॥

[2]वामें काचा पयको दोष, अरु त्रस जीव कलेवर कोष ।
यातें जतन थकी जो करै, जतन साधि भाष्यो है सिरै ॥९६७॥

जतन थकी किरिया हूं पलै, जतन थको अदया हूं टलै ।
जतन थकी सधिहै विधि धर्म, जतन मुख्य लखि श्रावककर्म ॥९६८॥

हो जाता है तब आग पर ओंटा कर गिंदोड़ा बनाते हैं इसमें असंख्य जीवोंकी हिंसा होती है ॥९६०-९६१॥ इतनी बात तो हम अपनी आँखोंके सामने देखते हैं कि मावा बनाते समय दूधमें छोटे छोटे अनेक जीव आकर पड़ जाते हैं । फिर रातका समय हो और वह भी सामान्य रात नहीं, परन्तु वर्षा कालकी रात हो, तो तो उसमें डांस, मच्छर, पतंगा आदि अनेक जीव पड़ कर मर जाते हैं। ऐसे मावेको खाना अकल्याणकारी है, सदा पापको देने वाला है, और उस पापके फलस्वरूप दुर्गतिके दुःख भोगने पड़ते हैं । जिह्वालंपट मनुष्य यदि इसे खाना नहीं छोड़ सकते हो तो रातका बना हुआ तो कभी नहीं खावें ॥९६२-९६४॥ यदि खाये बिना रहा नहीं जाता है तो यत्नाचारपूर्वक दूधको दुहा कर घर लाना चाहिये और दो घडीकी मर्यादा बीतनेके पहले ही क्रियापूर्वक उसका मावा बना लेना चाहिये। कविवर किशनसिंह कहते हैं कि यदि कोई जिह्वालंपटताके वशीभूत है तो उसे इस विधिसे मावा बना कर खाना चाहिये। यहाँ कोई यह कह सकता है कि इतने आरंभका उपदेश किसलिये दिया ? इसका उत्तर यह है कि ऐसे मावेमें कच्चे दूधका दोष है तथा बनाते समय त्रस जीवोंके पड़नेसे उनके कलेवरका दोष है इसलिये यत्नाचारपूर्वक बनानेकी बात कही है। यत्नाचारपूर्वक कार्य करनेसे क्रियाका पालन होता है, अदयाका दोष दूर होता है, और सारी धर्म विधि बन जाती है। परमार्थसे यत्नाचार ही श्रावकका मुख्य कर्तव्य है ॥९६५-९६८॥

---

१ महा पापदायक है सही न० स० २ वामें पय काचेको दोष स०

शोधके घृतकी मर्यादा

दोहा

मरजादा सब शोधकी, कही मूलगुणमांहि ।
जिहि व्रतमें भोजन करै, घिरत शोधको खांहि ॥९६९॥

छंद चाल

घरमें तो निपजै नाहीं, बिकतो लखि मोल गहाहीं ।
तिह शोध बखाणै कूर, शुभ क्रिया न तिनके मूर ॥९७०॥

[1]वास्या लघु ग्रामावास, जल आदि क्रिया नहिं तास ।
तिनके घरको जो घीव, धर भाजन मलिन अतीव ॥९७१॥

ले आवै शहर मझार, बैचेउ लोभ विचार ।
डयोढा दुगुणा ले दाम, लखि लाभ खुशी ह्वै ताम ॥९७२॥

तौलत परिहै तहँ माखी, करतै काढै दे नाखी ।
जीवत मूई नहि जानै, तिहि जतन न कबहूँ ठानै ॥९७३॥

परगांव तणी इह रीति, सुन शहर तणी विपरीति ।
बैचे दधि छाछ विनाणी, तिनके घरकौ घृत आणी ॥९७४॥

शोधके घृतकी मर्यादा

शोधकी मर्यादा श्रावकके मूल गुणोंमें कही गई है अर्थात् भोजन पानकी वस्तुओंकी मर्यादाका पालन करना श्रावकका मुख्य कर्तव्य है । जो मनुष्य व्रती होकर भोजन करते हैं वे शोधका घृत खाते हैं । यहाँ शोधके घृतकी विधि कहता हूँ ॥९६९॥ घीकी उत्पत्ति घरमें नहीं होती और उसके खानेकी विकलता नष्ट नहीं हुई, ऐसी स्थितिमें मूल्य दे कर घृत लेते हैं । बेचने वाले यद्यपि कहते हैं कि हमारा घी शुद्ध है तथापि उनकी क्रिया मूलतः शुभ नहीं होती है। बेचने वालोंका निवास छोटे छोटे गाँवोंमें होता है उनके पास पानी आदिकी क्रिया नहीं होती । ऐसे लोगोंके घर जो घृत होता है उसे वे अत्यन्त मलिन बर्तनोंमें रख कर बेचनेके लिये शहरमें लाते हैं। लोभवश वे अधिक मूल्य लेकर बेचते हैं । डेवढा और दुगुणा दाम मिलनेसे उन्हें प्रसन्नता होती है। तौलते समय यदि कोई मक्खी पड़ जाती है तो उसे निकाल कर फेंक देते हैं । मक्खी जीवित है या मर गई इसका वे कुछ भी यत्न नहीं करते ॥९७०–९७३॥ यह गाँवोंमें रहने वाले लोगोंकी विधि है । अब जो शहरमें दूध दही घी बेचते हैं उनके घी को भी जो बुद्धिहीन मनुष्य खाते हैं उनकी व्रत सम्बन्धी सकल क्रिया नष्ट हो जाती है । जो

---

१ वान्या स० न०

खावत है जे मति-हीण, तसु सकल क्रिया व्रत क्षीण ।
निसि सो तिय दूध मँगावै, तुरतहि नहि अगनि चढावै ॥९७५॥

इह तें अघ उपजै भारी, पुनि तिहमहि घृत बहु डारी ।
दे जामण दही जमावै, दधि मथिकै घीव कढावै ॥९७६॥

लूणी बहु वेला राखै, उपजौ अघ वाणी भाखै ।
बेचे ले बहुत पईसा, पुनि पाप जिही नहि दीसा ॥९७७॥

जो घिरत शोधको माने, व्रतमें जो खैवो ठाने ।
दूषण ऐसो लखि ताम, जैसो घृत धरिये चाम ॥९७८॥

सुनिये अब अघकर बात, जानत जन सकल विख्यात ।
[1]निरमाय लखे है माली, भो जग सुनि लेहु विचारी ॥९७९॥

तिन पास मँगावे घीव, अरु शोध गिनै जे जीव ।
तिनकी छूई जो वस्त, दोषीक गिणो जु समस्त ॥९८०॥

आचार कहो शुभ भाय, तिनको जो वस्तु मिटाय ।
आचरिये कबहूँ नाहिं, जिनवर भाष्यो श्रुतमांहि ॥९८१॥

स्त्री रातमें दूध मँगाती है वह उसे शीघ्र ही अग्नि पर नहीं चढाती ॥९७४–९७५॥ इससे उसे बहुत भारी पापबन्ध होता है। उस दूधमें वह बहुत घी डालती है और जामन दे कर दही जमा देती है । दहीको मथ कर फिर घी निकालती है । लोणी (नैनू) को बहुत समय तक रखे रहती है जिससे जीव राशि उत्पन्न होनेसे पाप बन्ध होता है, ऐसा जिनवाणी कहती है । इस विधिसे तैयार हुए घृतको वह बहुत पैसा लेकर बेचती हैं परन्तु पाप कितना लगता है, यह दिखाई नहीं देता ॥९७६–९७७॥ इस प्रकारके घृतको जो शोधका घृत मानते हैं और व्रत लेकर उसे खाते हैं उसमें ऐसा दोष समझिये जैसा चमडेके अंदर रखे घीमें होता है ॥९७८॥ अब पाप उत्पन्न करने वाली एक बात और सुनो जिसे सब लोग जानते हैं और जो सर्वत्र प्रसिद्ध हैं । कुछ लोग शहरमें रहते हैं और गाँवोंमें उनके हीन जातिके कर्मचारी–नौकर आदि रहते हैं उनसे घी बनवा कर मँगाते हैं और उसे शोधका घी मानते हें परन्तु वह शोधका घी नहीं है । अन्य लोगोंके द्वारा छुई हुई जो वस्तुएँ हैं उन्हें दोषयुक्त मानना चाहिये। शुभभावोंसे किया गया आचार, आचार कहलाता हैं । उसे जो वस्तु नष्ट कर देती है उसका आचरण–सेवन कभी नहीं करना चाहिये, ऐसा जिनेन्द्र भगवानने जिनागममें

---

१ निरमाय लखै हैं जेहा, माली भोजक हैं तेहा स०
निरमायक लखिये जेहु, माली भोजग सुन लेहु न०

लघु ग्राम कोस दस वास, निज समधी तहाँ निवास ।
किंकर भेजे ता पाई, व्रत जोग घिरत मंगवाई ॥९८२॥

जाता आता बहु जीव, बिनसै मार्गमें अतीव ।
त्रस घात मंगावत होई, सो शोध कहो किम जोई ॥९८३॥

कोइ प्रश्न करै इह जागै, श्रावक होंते जे आगे ।
घृत खावै अक कछु नांहीं, हम मन इह शंका आंहीं ॥९८४॥

ताके समझावन लायक, भाखै अति ही सुखदायक ।
श्रावक जु हुते व्रतधारी, तिन घृत विधि सुनि यह सारी ॥९८५॥

चौपाई

जाके घर महिषी या गाय, पके ठाम तिनही बंधवाय ।
सरद रहै न हि ठाम मझार, बालू रेत तहाँ दे डार ॥९८६॥

किंकर एक रहै तिन परै, सो तिनकी इम रक्षा करै ।
देय बुहारी सांझ-सवार, उपजै नहीं जीव तिन ठार ॥९८७॥

दोय-तीन दिन बीतै जबै, प्रासुक जलहि न्हवावै तबै ।
परनाली राखै तिह ठांहि, बहै मूत्र तिनके ढिग नाहि ॥९८८॥

कहा है ॥९७९–९८१॥ कोई लोग दश बीस कोशकी दूरी पर छोटे छोटे गाँवोमें रहने वाले अपने सम्बन्धी जनोंके पास किंकर––नौकर भेज कर व्रतके योग्य घी मँगाते हैं परन्तु नौकरके आने जानेसे मार्गमें बहुत जीवोंका विघात होता है। जिसमें त्रस जीवोंका घात हो वह शोधका घी कैसे हो सकता है ? ॥९८२–९८३॥

यहाँ कोई यह प्रश्न करता है कि श्रावक होनेके बाद घृत खावे या नहीं ? हमारे मनमें यह शंका उठती है । उन्हें समझानेके लिये अत्यन्त सुखदायक बात कहते हैं । जो व्रतधारी श्रावक हुए हैं उनके घृतकी सब विधि कहते हैं ॥९८४–९८५॥

जिनके घर भैंस या गाय है वे उसे पक्की थान पर बंधवावें । थान पर शरद्–आर्द्रता नहीं रहे। बालू या रेत डाल कर उसे सुखा रक्खें । उस गाय भैंसकी व्यवस्थाके लिये एक नौकर रक्खे जो उनकी रक्षा करता रहे और थानको सुबह शाम झाड़ता रहे जिससे वहाँ जीव उत्पन्न न हो सके । दो तीन दिन बीतने पर गाय भैंसको प्रासुक जलसे नहलावे । थानके पास एक नाली रखना चाहिये जिससे मूत्र बह कर गाय भैंसके पास न जा सके ॥९८६–९८८॥ अथवा उनके पास बर्तन रख देवे जिससे मूत्र बर्तनमें पडे, बह कर गाय भैंसके पास न

वासन धर राखै तिह तले, तामें परै मूत्र जा टले ।
सूके ठाम नाखि है जाय, जहाँ शरद कबहूँ न रहाय ॥९८९॥

गोबर तिनको ह्वै नित सोय, आप गेह थापै नहि कोय ।
औरनिको मांग्यो न हि देय, त्रस सिताव तामें उपजेय ॥९९०॥

बालू रेत नाखि जा मांहि, करडो करि सो देय सुखांहि ।
चरवेको रोन न खिदाय, जल पीवे निवाण नहि जाय ॥९९१॥

घरि बांधे राखै तिन सही, ह्यों घास तिन नीरे नहीं ।
सूको घास करव खाखलो, पालो इत्यादिक जो भलो ॥९९२॥

ले राखै इतनो घर मांहि, दोष रहित नहि जिय उपजांहि ।
[1]नीरे झाडि उपरि जो वीर, अरु विधितैं जो छाण्यो नीर ॥९९३॥

[2]पीवै वासन धातु मझार, सरद न राखै, माजै मार ।
[3]ईंधन कुंडि बालतो जाय, रांधि कांकडा खलि जु मिलाय ॥९९४॥

[4]खीर चूरमूं बिरिया जेह, देव खवाय जतनतैं तेह ।
[5]स्यालैं तापर जूठ डराय, जतन करै जिम जीव न थाय ॥९९५॥

जावे । गाय भैंसके स्थानको सुखा रक्खा जावे जिससे उसमें आर्द्रता न आवे । उनका नित्य प्रति जो गोबर हो उसे अपने घर न रक्खे और न ही मांगने पर दूसरोंको दे क्योंकि उसमें शीघ्र ही जीव उत्पन्न हो जाते हैं । बालू या रेत मिला कर उसे कड़ा कर सुखा दे । चरनेके लिये उन्हें जंगल नहीं भेजे और पानी पिलानेके लिये जलाशय पर नहीं भेजे । उन्हें घर पर बाँध कर रक्खे, हरी घास उनके निकट नहीं डाले, सूखी घास, करबी (ज्वारका पौधा जिसकी कुट्टी काटकर चौपायोंको खिलाई जाती है), मूसा, पयाल आदिक जो उत्तम हो उसे खरीद कर उतनी मात्रामें अपने घर रक्खें जिसमें जीव उत्पन्न न हों। पानीके विषयमें ऐसा विचार रक्खे कि ऊपरसे पडता हुआ भदभदाका जो पानी है वह पिलावे अथवा विधिपूर्वक छान कर धातुके वर्तनमें पिलावे । पिलानेके बाद वर्तनको मांज कर सुखा दे, उसमें आर्द्रता नहीं रहने दे । किसी कुण्डीमें ईंधन जला कर उस पर काकड़ा (आटेका दलिया आदि) बना लें, उसमें खली तथा चुनी-भुसी आदि मिला कर खिला दे । बची हुई जूंठनको किसी ऐसे शुष्क स्थान पर डाले जहाँ जीव उत्पन्न न हों ॥९८९–९९५॥

---

१ नीर पिआवे विधिसों ताहि, अरु विधितैं छानै जल सोय । स० २ पीवै भाजन धात मझार, डारै भाज सरद सब टार । स० ३ इंधनि झार बालते जाय, रांधि काकडी खली मिलाय । स० ४ खीर बनाय जतनसों जेहि, देहि खवाय भली विधि तेहि । स० ५ राखे ता पर धूल डराय, जतन करै जिय जीव न थाय । स०

छन्द चाल

जब महिषी गाय दुहावै, जलतें कर थनहि धुवावै ।
कपडो चरई-मुख राखै, दोहत पय ता पर नाखै ।।९९६।।
ततकाल सु अगनि चढावै, लकडी बालि रु औंटावै ।
सखरौ जीमण जहँ होई, तहँ दूध धरै नहि सोई ।।९९७।।
पय करणेंको जो ठाम, सीलौ करिहै पय ताम ।
भाजन जु भरत का मांही, जामन दे वेग जमाही ।।९९८।।
जामनकी जे विधि सारी, भाखी गुण मूल मझारी ।
वैसे ही जामन दीजै, वहि टालि न और गहीजै ।।९९९।।
इह प्रात तणी विधि जाणूं, अब सांझ तणी सु बखानूं ।
*सब किरिया जानो वाही, इह विधि सुध दही जमाही ।।१०००।।
जावणीय धरणकी जागै, तहँ हाथ न सखरो लागै ।
सो भी विधि कहहूँ बखाणी, सुणिज्यो सब भविजन प्राणी ।।१००१।।
खिडकी इक जुदी रहाही, तिह धारि किवाड जडाही ।
ह्वै प्रात जबै दधि आनी, मथिहै सो मेलि मथानी ।।१००२।।

जब गाय-भैंसको दुहावे तब दुहने वालेके हाथ तथा गाय-भैंसके थन पानीसे धुला दे। बर्तनके मुख पर कपड़ा बाँध दे जिससे दूध उस पर पड़ कर छनता जावे ।।९९६।। पश्चात् उस दूधको तत्काल अग्नि पर चढ़ा दें तथा लकडी आदि जला कर खूब गर्म कर ले। जहाँ जीमन करनेसे सकरा हो अर्थात् कच्चे भोजनकी सामग्री फैल रही हो वहाँ दूध नहीं रखना चाहिये। दूध रखनेका जो स्थान है वहाँ रख कर उसे ठण्डा करे। पश्चात् जमानेके बर्तनमें दूध भर कर तथा जामन दे कर जमा दें। जामनकी जो विधि मूलगुणोंके वर्णनमें कही गई है उसी विधिका जामन देना चाहिये। उसे छोड़ कर दूसरा जामन नहीं लेना चाहिये ।।९९७–९९९।। यह प्रात:कालके दही जमानेकी बात कही, अब संध्याकाल सम्बन्धी दहीका व्याख्यान करता हूँ। दूध दुहने, गर्म करने तथा जामन देने आदिकी सब क्रिया पहलेके समान जानना चाहिये। जामन रखनेकी जो जगह हैं वहाँ सखरे हाथ नहीं लगाना चाहिये। जामन रखनेकी भी विधि कहता हूँ सो हे भव्यजीवों! उसे सुनो ।।१०००–१००१।। जामन रखनेके लिये एक खिड़की (अलमारी) अलगसे बनवा कर उसमें किवाड़ लगवा दो। जब प्रात:काल हो तब मथनेके लिये दही

* स० और न० प्रतिमें यह पाठ इस प्रकार है—

सब किरिया जाणो वाही, वासर दोय घडी रहाही ।
तिम पहली पय विधि सारी, कर चूकिये न ढील लगारी ।।

सो सगली किरिया भाखी, गोरस-विधि आगे आखी ।
लूण्यो निकलै ततकाल, औटावे सो दर हाल ॥१००३॥
वासनमें छानि धराही, ह्वै खरच जितों कडवाहीं ।
कहाँ वरत, कहाँ सुद्ध भाय, घृत गृही सोधि को खाय ॥१००४॥
ऐसो घृत खैवै वालो, अन्तराय सु नित प्रति पालो ।
यह कथन कियो सब सांच, यामें न अलीकी वांच ॥१००५॥
ऐसी विधि निपजै नाहीं, गांवनतें हूँ न मंगाही ।
मोलि न लेणो ठहराई, घृत खाय सु देव बताई ॥१००६॥
विधि वाही जिम पय ल्यावै, किरिया जुत ताहि जमावै ।
दधि छाछ घिरत पय लूनी, विधि कही करिय न वि ऊनी ॥१००७॥
निज घर जो घृत निपजाही, व्रत धरि श्रावक सो खाही ।
कर छुवै न माली व्यास, हिंसा त्रस ह्वै नहिं तास ॥१००८॥
प्रानी न परै जिह माहीं, सो तो घृत सोधि कहाही ।
घृत सो निज घर निपजइये, घृत धरि सो व्रतमें पइये ॥१००९॥

निकाले तथा मथानी डाल कर उसे मथे । मथनेकी जितनी क्रिया है उसका वर्णन गोरसके प्रकरणमें पहले कर आये हैं । मथनेके बाद जो लोणी (नैनू) निकले उसे तत्काल तपा लेना चाहिये ॥१००२–१००३॥ उस तपाये हुए घीको छान कर बर्तनमें रख लें और जितना खर्च हो उतना निकाल कर शेषको ढक्कनसे बंद कर दे । कविवर किशनदासजी कहते हैं कि कहाँ व्रत और कहाँ शुद्ध भाव है ? गृहस्थ व्रतीको इस प्रकारसे निर्मित शोधका घी खाना चाहिये ॥१००४॥ ऐसा घृत खानेवाले हे व्रती श्रावको ! तुम सुनीतिपूर्वक अन्तरायका भी पालन करो अर्थात् अन्तराय टाल कर भोजन करो । यह कथन हमने सत्य किया है इसमें कुछ भी मिथ्या बात नहीं है ॥१००५॥ जो इस विधिसे नहीं बनाया गया है वह घृत नहीं खाना चाहिये । इसके विपरीत जो गाँवोंसे नही मँगाया गया है और न लोणी (नैनू) मोल लेकर बनाया गया है वह घृत खाना चाहिये ऐसी रीति सुदेव–जिनेन्द्र भगवानने बतलाई है ॥१००६॥ यदि बाहरसे दूध लाना पडे तो उसी विधिसे लाकर क्रियापूर्वक जमावे । दही, छांछ, घृत, दूध और लोणी (नैनू) की जो विधि बतलाई हैं उसमें कमी नहीं करना चाहिये ॥१००७॥ जो घृत अपने घर बनाया जाता है वही व्रतधारी श्रावकको खाना चाहिये । जिस घृतको माली या व्यास (ब्राह्मण ?) हाथसे नहीं छुए, जिसमें त्रस हिंसा न हो, जिसमें मक्खी आदि जीव न पडें हों वही शोधका घी कहलाता है । इसी प्रकारका घी व्रतधारी श्रावकको लेना चाहिये ॥१००८–१००९॥ यदि अपने घर घी नहीं बनता है तो व्रतधारी पुरुषको सूखा

निज घर घृत विधि न मिलाही, व्रत धरि तब लूखौ खाही ।
अरु घिरत सोधिको खावै, व्रतमें बहु हरी मंगावै ॥१०१०॥
इस सोधि न कहिये भाई, जामें करुणा न पलाई ।
करुणा जुत कारज नीको, सुखदाई भवि सब ही को ॥१०११॥

दोहा—घिरत सोधिकाकी सुविधि, कही यथारथ सार ।
अच्छी जाणि गहीजिये, बुरी तजहु निरधार ॥१०१२॥

चौपाई—अब कछु क्रियाहीन अति जोर, प्रगटयो महा मिथ्यात अघोर ।
श्रावकसों कबहूँ नहि करै, आनमती हरषित विस्तरै ॥१०१३॥
जैन धर्म कुल केरे जीव, करे क्रिया जो हीण सदीव ।
[1]तिनके संचय अघकी जान, कहै तासकी चाल बखान ॥१०१४॥
तिहको तजै विवेकी जीव, करवेतें भव भ्रमे अतीव ।
अब सुनियो बुधिवंत विचार, क्रिया हीण वरणन विस्तार ॥१०१५॥

मिथ्यामत कथन

दोहा—मिथ्यामति विपरीत अति, ढूंढा प्रकटा जेम ।
तिनि वरनन संक्षेपतें, कहों सुनौं हो नेम ॥१०१६॥

भोजन करना चाहिये । कोई लोग घृत तो शोधका खाते हैं परन्तु व्रतमें बहुत हरी मंगाते है सो इसे शोध नहीं कहते हैं । जिसमें करुणा–दया दूर भागती है वह शोध नहीं है । हे भाई ! जो कार्य करुणासे युक्त होता है वही सबको सुखदायक होता है ॥१०१०–१०११॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि हमने इस प्रकार शोधके घृतकी यथार्थ विधि कही है इसे अच्छी जान कर ग्रहण करो ॥१०१२॥

अब अतिशय भयंकर महा मिथ्यात्वके जोरसे कुछ ऐसी हीन क्रियाएँ चल पडी है जिन्हें श्रावक कभी नहीं करते किन्तु अन्यमती हर्षित हो कर उनका विस्तार करते हैं। जैन कुलमें उत्पन्न हो कर जो सदा हीन क्रियाएँ करते हैं उनके पापका संचय होता है । उनकी चाल–रीतिका वर्णन करते हैं । विवेकी जीवोंको उनका त्याग करना योग्य है । उन हीन क्रियाओंको जो अविवेकी जीव करते हैं वे संसारमें अत्यन्त भ्रमण करते हैं । हे बुद्धिवंत जनों ! अब उन हीन क्रियाओंका विस्तार सहित वर्णन सुनो और उन पर विचार करो ॥१०१३–१०१५॥

मिथ्यामत कथन

अत्यन्त विपरीत ढूंढिया मत जिस प्रकार प्रकट हुआ है उसका संक्षेपसे कुछ वर्णन

---

१ तिनके संबोधनको जानि, कहे तास की चाल बखानी । न०

चौपाई

स्वामी भद्रबाहु मुनिराय, पंचम श्रुतकेवलि सुखदाय ।
मुनिवर अवर सहस चौबीस, चउ प्रकार संघ है [1]गण ईश ॥१०१७॥

उज्जयनीमें जिनदत्त साह, ताके भद्रबाहु मुनि नाह ।
चरियाकौ पहुँचे तहँ गणी, झूलत बालक वच इम भणी ॥१०१८॥

गच्छ गच्छ विधि नहीं आहार बारे वरष लगै निरधार ।
अन्तराय मुनिवर मनि आन, पहुँचे संघ जहाँ वन थान ॥१०१९॥

स्वामी निमित्त लख्यो ततकाल, पडिहै बारा वरष दुकाल ।
मुनिवर धर्म सधै नवि सही, अब इहाँ रहनो जुगतौ नहीं ॥१०२०॥

कितेक मुनि दक्षिणको गये, कितेक उज्जैनी थिर रहे ।
तहाँ काल पडियो अति घोर, मुनिवर क्रियाभ्रष्ट ह्वै जोर ॥१०२१॥

मत श्वेतांबर थापियो जान, गही रीत उलटी जिन वान ।
तिनको गच्छ वध्यो अधिकार, हुंडाकार दोष निरधार ॥१०२२॥

तिन अति हीण चलन जो गह्यो, चरित जु भद्रबाहुमें कह्यो ।
ता पीछे पनरासे साल, कितेक वरष गये इह चाल ॥१०२३॥

करते हैं ॥१०१६॥ मुनिराज भद्रबाहुस्वामी सुखदायक पंचम श्रुतकेवली थे। उनके साथ चौबीस हजार अन्य मुनियोंका संघ था। उस चतुर्विध संघके वे गणपति थे। एक बार उज्जयिनी नगरीमें भद्रबाहु मुनिराज जिनदत्त सेठके घर चर्याके लियें गये। वहाँ पालनेमें झूलते हुए एक बालकने इस प्रकार कहा कि 'गच्छ गच्छ' जाओ, जाओ, यहाँ आहारकी विधि नहीं है। इसमें बारह वर्ष लगेंगे। मुनिराज अन्तराय मान कर, वनमें जहाँ संघ विराजमान था वहाँ गये ॥१०१७–१०१९॥ भद्रबाहु स्वामीने निमित्त ज्ञानसे तत्काल जान लिया कि यहाँ बारह वर्षका दुष्काल पडेगा। यहाँ मुनिधर्मकी साधना नहीं हो सकेगी, इसलिये अब यहाँ रहना योग्य नहीं है। ऐसा विचार कर कितने ही मुनि दक्षिणमें चले गये और कितने ही उज्जयिनीमें स्थिर रह गये। वहाँ अत्यन्त भयंकर अकाल पड़ गया जिससे मुनि क्रियाभ्रष्ट हो गये। उसी समय श्वेताम्बर मतकी स्थापना हुई और जिनवाणीके विपरीत प्रवृत्ति स्वीकृत की गई। हुण्डावसर्पिणी कालके दोषसे उन श्वेताम्बरोंका गच्छ–समूह अधिक विस्तारको प्राप्त हुआ ॥१०२०–१०२२॥ जैसा कि भद्रबाहु चरितमें कहा गया है कि उन श्वेताम्बरोंने अत्यन्त विपरीत प्रवृत्तिको ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् कितना ही काल व्यतीत होने पर संवत्

---

१ गुण ईश न०

लुंकामत प्रगटयो अति घोर, पापरूप जाको नहि ओर ।
[1]तिन तें ढूंढामत थाप्यो, काल दोष गाढो ह्वै वाढयों ॥१०२४॥

छन्द चाल

पापी नहि प्रतिमा माने, ताकी अति निन्दा ठाने ।
जिनगेह करनकी बात, तिनको नहि मूल सुहात ॥१०२५॥

यात्रा करवो न बखानै, पूजा करिवो अवगानै ।
जिन-बिम्ब प्रतिष्ठा भारी, करिवो नहिं कहै लगारी ॥१०२६॥

जिन-भाष्यो तिम अनुसारी, रचिया मुनि ग्रंथ विचारी ।
तिनकौ निंदै अधिकाई, गौतम वच ए न कहाई ॥१०२७॥

ऐसे निरबुद्धी भाखै, कलपित झूंठे श्रुत आखै ।
सबको विपरीत गहावै, निज खोटे मारग लावै ॥१०२८॥

जिय उत्पति भेद न जाने, समकितहूँ को न पिछाने ।
गुरु देव शास्त्र नहि ठीक, किरिया अति चलै अलीक ॥१०२९॥

निजको मानै गुणथान, छट्ठो मुनिपद सरधान ।
जामैं मुनिगुण नहि एक, मिथ्या निज मतिका टेक ॥१०३०॥

पन्द्रह सौ के वर्षमें लुंका मत प्रकट हुआ जो अतिशय भयंकर और पापरूप था। उसी लूंका मतने ढूंढिया मतकी स्थापना की जो कालदोषसे वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥१०२३–१०२४॥

ये पापी प्रतिमाको नहीं मानते हैं, उनकी बहुत निन्दा करते हैं। जिनमन्दिरके निर्माणकी बात तो उन्हें मूलरूपसे ही अच्छी नहीं लगती। वे तीर्थयात्रा करनेका व्याख्यान नहीं करते, पूजा करनेकी निन्दा करते हैं, जिनबिम्बकी प्रतिष्ठा करना योग्य नहीं मानते, जिनेन्द्र देवके कथनानुसार मुनियोंने जिन ग्रन्थोंकी रचना की थी उनकी ये निन्दा करते हैं, ये वचन गौतम गणधरके नहीं है ऐसा कहते हैं। ये निर्बुद्धि पूर्वरचित ग्रन्थोंको कल्पित और झूंठा कहते हैं, सबको विपरीत कहते हैं और अपने खोटे मार्गमें लगाते हैं ॥१०२५–१०२८॥ ये ढूंढ़िया लोग जीवकी उत्पत्ति नहीं जानते, सम्यक्त्वकी पहिचान नहीं रखते, देव शास्त्र गुरुको ठीक नहीं मानते, मिथ्या क्रियासे चलते हैं, गुणोंके स्थान न होने पर भी अपने आपको छठवें प्रमत्त गुणस्थानकका धारक मानते हैं। उनमें मुनिका एक भी गुण नहीं है, मात्र अपने मतकी मिथ्या टेक अर्थात् पक्षपात है ॥१०२९–१०३०॥

---

१ तिनमें ढूंढया मत नीकलो, कालदोष गाढया ह्वे चलो । स०

मुनि नगनरूपको धारै, चारित तेरह विधि पारै ।
षटकाय दयाव्रत राखे, नित वचन सत्य-जुत भाखै ॥१०३१॥

आदान अदत्तहि टारे, सीलांग भेद विधि पारे ।
त्यागे परिग्रह चौबीस, गोपे तिहुँ गुपति मुनीस ॥१०३२॥

ईर्यापथ सोधत चालै, हित मित भाषा हि संभालै ।
श्रावक घरि असन जु [1]होई, विधि जोग जेम [2]निपजोई ॥१०३३॥

भोजनके दोष छियाली, निपजावे श्रावक टाली ।
चरियाको मुनिवर आही, श्रावक तिन ले पडिगाही ॥१०३४॥

मुनि अन्तराय चालीस, ऊपर छह टाल जु तीस ।
पावे तो लेहि अहार, इम एषणा समिति विचार ॥१०३५॥

आदान निक्षेपण धारे, पंचम समिति विधि पारे ।
इम चारित तेरह भाखै, जैसे जिनवाणी आखै ॥१०३६॥

गुण मूल अट्ठाइस धारी, उत्तर गुण लख असि चारी ।
गिरि शिखर कंदरा थान, निरजन वन धरिय सुध्यान ॥१०३७॥

यथार्थ मुनियोंका स्वरूप तो यह है कि वे शरीरसे नग्न रहते हैं, तेरह प्रकारके चारित्रका पालन करते हैं, षट्कायके जीवों पर दया व्रत रखते हैं, नित्य प्रति सत्य वचन बोलते हैं, अदत्त वस्तुको ग्रहण नहीं करते, शीलका विधिपूर्वक पालन करते हैं, चौबीस प्रकारके परिग्रहका त्याग करते हैं, मन वचन कायको वश कर तीन गुप्तियोंको धारण करते हैं, ईर्या पथका शोधन करते हुए चलते हैं, हित मित वचन बोलते हैं, श्रावकके घर जाकर विधिपूर्वक बने हुए आहारको ग्रहण करते हैं, श्रावकोंके द्वारा होने वाले छियालीस दोषोंको टालते हैं अर्थात् इन्हे दूर कर आहार करते हैं, चर्याके लिये जाने पर श्रावक उन्हें पडगाहते हैं, छियालीस अन्तराय टाल कर आहार लेते हैं इस प्रकार एषणा समितिका पालन करते हैं, पीछी कमण्डलु तथा पुस्तक आदि उपकरणोंको देखभाल कर रखने उठानेसे आदान-निक्षेपण समिति पालते हैं और निर्जन्तु स्थानमें मल मूत्र क्षेपण करनेसे पाँचवीं प्रतिष्ठापना समितिमें पारंगत है, इस तरह तेरह प्रकारके चारित्रका जिनागमके अनुसार पालन करते हैं, अट्ठाईस मूल गुणों और चौरासी लाख उत्तर गुणोंके धारी हैं, पर्वतके शिखर और गुफा आदि निर्जन स्थानोंमें ध्यान धारण करते हैं, ग्रीष्म ऋतुमें पर्वतके शिखर पर सूर्यका संताप सहन करते हुए संतप्त शिलाओं

---

१ थाई न० २ निपजाई न०

ग्रीषम गिरि सिर रवि-ताप, सिला ऊपरि ठाडे आप ।
वरषा रितु तरु-तल ठाडे, उपसर्ग सहे अति गाडे ॥१०३८॥

हिम नदी तलाव नजीक, मुनि सहहिं परिषह ठीक ।
निज आतमसों लव लागी, पर वस्तु सकल परित्यागी ॥१०३९॥

पूजक निंदक सम जाके, तृण कनक समान जु ताके ।
इत्यादिक मुनि गुणधार, कहतें लहिये नहिं पार ॥१०४०॥

इनतें उलटी जे रीत, धारै ढूँढिया विपरीत ।
आहार जु सीलो वासी, रोटी, रबडी य गरासी ॥१०४१॥

कांजी दुय तिय दिन केरी, बहु त्रस जीवनिकी वैरी ।
तरकारी हरित अनेक, लें पापी धरि अविवेक ॥१०४२॥

आदो कंदो अर सूरण, मूला त्रस थावर पूरण ।
ए लेय अहार मझारी, बहु केम दया तिन पारी ॥१०४३॥

थाणो त्रस जीवन धाम, फासू गिनि लेहैं ताम ।
फुनि काचो दूध गहाई, बहु वार लगै रखवाई ॥१०४४॥

दुय घडी गये तिह मांही, पंचेन्द्री जिय उपजाही ।
महिषी गौ तणौ जु खीर, तैसे है जीव गहीर ॥१०४५॥

पर खडे रहते हैं, वर्षा ऋतुमें वृक्षके नीचे खडे होकर उपसर्ग सहन करते हैं, शीत ऋतुमें नदी तालाब आदिके समीप ध्यानस्थ होकर परिषह विजय करते हैं, उनकी रुचि आत्मासे लगी हैं, वे समस्त परवस्तुओंके त्यागी हैं, उनके लिये पूजक और निन्दक तथा तृण और सुवर्ण समान है । इत्यादिक अनन्त गुणोंसे सहित होते हैं, उनके गुणोंका कथन करते हुए अन्त नहीं आता ॥१०३१–१०४०॥

यह यथार्थ मुनियोंका स्वरूप कहा परन्तु ढूंढ़िया इससे विपरीत प्रवृत्ति करते हैं । वे घर घर जा कर आहार लाते हैं जैसें ठंडी वासी रोटी, रबडी, साग, दो तीन दिनकी छांछ, जिसमें बहुत त्रस जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, नाना प्रकारकी हरी सब्जी, अदरक, जमीकन्द, सूरण तथा अनेक त्रस स्थावर जीवोंसे युक्त मूली आदिको लाते हैं। इनके दयाका पालन किस प्रकार होता है ? अर्थात् किसी प्रकार नहीं होता । जिसमें अनेक त्रस जीवोंका घर है ऐसे अथानेको प्रासुक मान कर लेते हैं । बहुत कालका दुहा हुआ कच्चा दूध ग्रहण करते हैं जिसमें दो घडीके पश्चात् पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न हो जाते हैं । गाय भैंसका वह दूध लेते हैं जिसमें अनेक जीव उत्पन्न होते हैं ॥१०४१–१०४५॥ वे अज्ञानी इस भेदको नहीं जानते हैं ।

इह भेद मूढ नहि जाने, अघ वाले अगन बखाने ।
पंचेन्द्री तामें थाई, सो तो फासू गणवाई ॥१०४६॥
जिय अन्न तणी दुय दाल, दधि छांछि मांहि दे डाल ।
सो भोजन विदल कहाही, खाये ते पाप बढाही ॥१०४७॥
अन्न दाल छाछि दधि जेह, मुख-लाल मिले तब तेह ।
उतरता गला मंझारी, पंचेन्द्री जिय निरधारी ॥१०४८॥
उपजै ता मांहे जानो, मनमें संशय नहिं आनो ।
सो खैहे ढूंढया पापी करुणा तिन निश्चै कांपी ॥१०४९॥
[1]कछु खादि अखादि विचारी, ढूंढया समझे न लगारी ।
अघ उपजे वस्तु जु माहीं, भाष्यो मुनि लेहु तहांही ॥१०५०॥
ऐसो पापी मुख देखै, ह्वै पाप महा सुविशेखै ।
ऐसे कर अघ आचार, तिन माने मूढ, गवार ॥१०५१॥
धोवण चावल हांडीको, तिन ले गिन फासू नीको ।
सीलै जल अन्न मिलाई, तामें बहु जिय उपजाई ॥१०५२॥

अग्निके जलानेमें पाप मानते हैं । जिसमें पंचेन्द्रिय जीव तक का निवास है उसे प्रासुक गिनते हैं । जिस अन्नकी दो दालें होती हैं ऐसे द्विदलान्नको दही और छांछमें डाल देनेसे द्विदलका दोष होता है । इसके खानेसे पापकी वृद्धि होती है । दही और छाछमें पडी अन्नकी दाल, मुखकी लारके साथ मिल कर जब गलेमें उतरती है तब उसमें पंचेन्द्रिय जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है । इस विषयमें मनमें संशय नहीं लाना चाहिये । इस प्रकारके द्विदलान्नको पापके विचारसे रहित ढूंढिया लोग खाते हैं । ऐसा लगता है मानो करुणा निश्चयतः उनसे कांपती है । तात्पर्य यह है कि उनकी परिणति जीवदयाका विचार नहीं करती । क्या भक्ष्य है ? और क्या अभक्ष्य है ? इसका विचार उनके मनमें नहीं उठता । जिन वस्तुओंके खानेमें पाप उत्पन्न होता है उन्हीं वस्तुओंको खानेका वे उपदेश देते हैं । इस प्रकारके पापी मनुष्योंका मुख देखनेमें भी महान पाप लगता है । इस तरहके पापवर्धक आचार वाले ढूंढिया लोगोंको जो मानते हैं--श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं, वे अज्ञानी हैं । चावलकी हंडीके धोवनको वे प्रासुक जल समझकर ग्रहण करते हैं । ठण्डे जलमें अन्न मिला कर रखते हैं जिससे उसमें बहुत जीवोंकी उत्पत्ति होती है ॥१०४६–१०५२॥ जब

---

१ छन्द १०५० न० और स० प्रतिमें इस प्रकार उपलब्ध हैं—

"कछु खाद्य अखाद्य विचार, ढूंढया समझै न गवार ।
अघ उपजे वस्तु जु मांही, फासू गणि ताहि गहाही ॥
जो विदल भेद निरधार, मुनिवेकी इच्छा सार ।
तो कथन मूल गुण मांही, भाष्यो मुणि लेहु तहांही ॥"

रवि उदय होत तिह वार, घरि घरि भटकै निरधार ।
जल ल्यावै फासू भावै, तिह सांझ लगे धरि राखै ॥१०५३॥

उपजै ता माहे जीव, घटिका दुइ मांहि अतीव ।
सो बरतै पीवे पानी, करुणा न तहाँ ठहरानी ॥१०५४॥

घृत जल धरि तेल सुचाम, सो बहु जीवनको धाम ।
तिनतें निपज्यो जु अहार, सो मांस-दोष निरधार ॥१०५५॥

ऐसो दोष न मन आने, तिनको ह्वै नरक पयाने ।
ढूंढा अघ केरी मूरत, इन माने पापी धूरत ॥१०५६॥

झूठीको साँच बखानै, उपदेश सु झूठो ठाणै ।
झूठो मारग जु गहावै, सो झूठ दोष को पावै ॥१०५७॥

शीलांग हजार अठारा, लागै तिन दोष अपारा ।
परिग्रहको ठीक न कोई, कपडा पात्रादिक होई ॥१०५८॥

ऐसो धरि भेष जु हीन, माने तिन मूरख दीन ।
ग्यारा प्रतिमा प्रतिपालक, कोपीन कमण्डल धारक ॥१०५९॥

सूर्योदय होता है तब घर घर जाकर प्रासुक जल लाते हैं और उसे संध्या तक अपने स्थान पर रखते हैं। उस जलमें दो घडीके भीतर अत्यधिक जीव उत्पन्न हो जाते हैं । ऐंसे जलको वे संध्या तक पीते है तथा व्यवहारमें लाते रहते हैं । उनके इस कार्यमें करुणा कहाँ है ? अर्थात् नहीं है ॥१०५३-१०५४॥

चमडेके बर्तनोंमें जो घी तेल तथा जल आदि रक्खा जाता है वह अनेक जीवोंका स्थान बन जाता है। ऐसे घी तेल तथा जल आदिसे जो आहार बनता है उसमें निश्चय ही मांसका दोष आता है । ऐसा दोष जिनके मनमें नहीं आता है अर्थात् इस दोषका जो मनमें विचार नहीं करते हैं उन्हें नरककी प्राप्ति होती है । ढूंढ़िया पापकी मूर्ति हैं इन्हें जो मानते हैं वे पापी हैं, धूर्त हैं। जो झूठको सत्य बतलाते हैं उनका उपदेश झूठा है । जो दूसरोंको झूठा मार्ग ग्रहण कराते हैं वे झूठका दोष प्राप्त करते हैं ॥१०५५-१०५७॥ शीलके अठारह हजार भेद हैं उनमें वे अपार दोष लगाते हैं। उनके परिग्रहका भी कोई ठिकाना नहीं है, वस्त्र तथा बर्तन आदिक उनके पास रहते ही है ॥१०५८॥ इस प्रकारके हीन वेषके धारक लोगोंको जो मानते हैं वे दीन अज्ञानी हैं। ग्यारहवीं प्रतिमाके धारक जो एलक-क्षुल्लक हैं, वे लंगोटी कमण्डलु और कोमल पीछीको रखते हैं उनके भी श्रावकके व्रत माने गये हैं । यदि कोई मुनि तिल-तुष

कोमल पीछे है जाके, श्रावक व्रत गिनिये ताके ।
परिग्रह तिल तुस सम होई, मुनिराज धरै जो कोई ॥१०६०॥
वह जाय निगोद मझारी, जिनवाणी एम उचारी ।
[1]सो कपडाकी कहाँ रीत, चौथो पात्र विपरीत ॥१०६१॥
ए भ्रमै जगतके मांही, दुखको नहि अन्त गहाही ।
तिन कहै महाव्रत धारी, ते पापी हीणाचारी ॥१०६२॥
इन माने ते संसार, भ्रमिहै न लहै कहुँ पार ।
मन-वच-तन गुपति न गोपै, पापी मुनि धरमहि लोपै ॥१०६३॥
पिरथी जिम प्रान लहाही, चालै तिम भागे जाहीं ।
ईर्या समिति जु किम पाली, प्राणी हिंसा किम टाली ॥१०६४॥
हितमित वच कबहूँ न भाखै, जिन मतमें उलटी आखै ।
समिति जु भाषा न पलै है, अदया कबहुँ न टले है ॥१०६५॥
किम एषण समिति सधै है, जिनके इम पाप बंधै है ।
जो दोषरहित आहार, [2]नवि जाने तसु विध सार ॥१०६६॥
मुनि अन्तराय जे होई, तिन नाम न समझे कोई ।
कुल ऊँच नीच नहि जाणे, शूद्रनके असन जु आणे ॥१०६७॥

बराबर भी परिग्रह रखते हैं तो वे निगोदमें जाते हैं, ऐसा जिनागममें कहा गया है। मुनियोंके कपड़ा तो होता ही नहीं है अतः पात्रोंका रखना भी विपरीत माना गया है। विपरीत आचरण करने वाले लोग संसारमें ही भटकते रहते हैं उनके दुःखोंका अन्त नहीं आता। ऐसे ढूंढिया लोगोंको जो महाव्रतधारी कहते हैं वे पापी हीनाचारी हैं ॥१०५८–१०६२॥ इन्हें जो पुरुष मानते हैं वे संसारमें ही भ्रमण करते हैं, कभी संसारका अन्त नहीं पाते। ये पापी मन वचन और काय इन तीन गुप्तियोंका पालन नहीं करते तथा मुनिधर्मका लोप करते हैं। भाग कर ऐसे चलते हैं मानों पृथिवीके प्राण ही ले रहे हो। इस प्रकार शीघ्रतासे चलने वाले लोगोंसे ईर्या समितिका पालन कैसे हो सकता है और प्राणीहिंसा कैसे टल सकती है? अर्थात् नहीं टलती ॥१०६३–१०६४॥ ये हित मित वचन कभी नहीं बोलते किन्तु जिन मतसे विपरीत बात कहते हैं। इनसें भाषासमितिका पालन नहीं होता और न ही अदया टलती है अर्थात् दूर होती है। जिनके इस प्रकार पापबन्ध होता रहता है उनसे एषणा समितिकी साधना किस प्रकार हो सकती है? जो दोषसहित आहार लेते हैं, आठ प्रकारकी शुद्धिका जिन्हें ज्ञान नहीं है, जो मुनिके अन्तरायोंके नाम भी नहीं जानते, ऊँच नीच कुलका भेद नहीं समझते, शूद्रके घरका

---

१ सो कपडाकी क्या प्रीत, मुनिको परिग्रह विपरीत। स० २ न वि जाने तसु आचार स०

तंबोली जाट कलाल, गूजर अहीर वनपाल ।
खतरी रजपूत रु नाई, परजापति असन गहाई ॥१०६८॥
तेली दरजी अर खाती, छीपादि जाति बहु भाँती ।
मदिरा हू को जो पीवे, आमिष हु भखे सदीव ॥१०६९॥
भोजन तिनि भाजन केरो, ल्यावें अति दोष घनेरो ।
तिन भेंटयो भोजन खैहै, ते मांसदोषके पैहै ॥१०७०॥
तो भोजनकी कहँ बात, जाने सब जगत विख्यात ।
जिह भाजन असन कराही, आमिष तिह मांज धराही ॥१०७१॥
जिन मारग एम कहाही, बासन जिह मांस धराही ।
सो शुद्ध न ह्वै [1]तिरकाल, गहि है सो भील चंडाल ॥१०७२॥
तिनके घरको आहार, पापी ल्यावें अविचार ।
अरु मुनिवर नाम धरावे, सो घोर पाप उपजावे ॥१०७३॥
ते नरक निगोद मझारी, [2]भ्रमिहै संसार अपारी ।
अपने श्रावक तिन भनि है, कुल ऊँच नीच नवि गिनि है ॥१०७४॥
तिनको कछु एक आचार, कहिये विपरीत विचार ।
निजकों मानै गुणथान, पंचम श्रावक परधान ॥१०७५॥

भी भोजनग्रहण करते हैं, तंबोली, जाट, कलार, गूजर, अहीर, वनरक्षक, खत्री, रजपूत, नाई, कुम्भकार, तेली, दरजी, खाती तथा छीपा आदि उन नाना जातिवालोंका भी भोजन ले लेते हैं, जो मदिरापान करते हैं तथा सदा मांस खाते हैं। ये लोग अपने बर्तनोंमें रक्खा हुआ थोड़ा सा भोजन इन ढूंढियोंको दे देते हैं और उसे लेकर वे अपने निवासस्थान पर आते हैं। इसमें बहुत दोष लगता है। उन लोगोंके बर्तनोंमें भोजन करनेसे जब मांसभक्षणका दोष लगता है तब भोजनकी तो बात ही क्या है? यह सारे जगतमें विख्यात है, सब लोग इसे जानते हैं। जिन बर्तनोंसे ये भोजन कराते हैं उनमें मांस रखते हैं। जिनमार्गमें ऐसा कहा गया है कि जिस बर्तनमें मांस रक्खा जाता है वह त्रिकालमें शुद्ध नहीं होता। ऐसे अशुद्ध बर्तनका जो भोजन लेता है वह भील तथा चाण्डालके समान हैं। जो विचारहीन पापाचारी ढूंढिया उनके घरका आहार लेते हैं और अपना मुनि नाम रखाते हैं वे घोर पापका उपार्जन करते हैं, अपार संसारमें नरक और निगोदके भीतर घूमते हैं। ये अपने आपको श्रावक कहते हैं परन्तु उच्च नीच कुलका भेद नहीं गिनते। उनके कुछ विपरीत आचारका वर्णन करते हैं। ये अपनेको पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक मानते हैं ॥१०६५–१०७५॥

---

१ चिरकाल ग० २ भ्रमिहैं सो वार न पारी स०

दोहा

खत्री, ब्राह्मण, वैश्य पुनि, अवर [1]पौण बहतीस ।
धरम गहै ढूंढानिको, अरु तिन नावै सीस ॥१०७६॥
ढूंढा तिन श्रावक गिने, आप साधु पद मान ।
छहों काय रक्षा सबनि, उपदेशे इह ठानि ॥१०७७॥
[2]दुहुन दया छह कायकी, पलै नहीं तहकीक ।
जीव [3]धान फासू गिने, वस्तु गहै तहकीक ॥१०७८॥
कथन कियो ऊपर सबै, लखहु विवेकी ताहि ।
दुहुन चलन ह्वै एक से, इहि मारग नहि आहि ॥१०७९॥
शूद्र करम करता जिके, निज निज कुल अनुसार ।
पेट भरन उद्यम सफल, करै दया किम धार ॥१०८०॥

चौपाई

गूजर, जाट, अहीर, किसान, खेती सींचे नीर निवान ।
हलवाहै त्रसको ह्वै घात, कहूं वह श्रावकपद किम पात ॥१०८१॥*

क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र वर्णके लोग ढूंढिया साधुओंका मत ग्रहण कर उन्हें शिर झुकाते हैं। ढूंढिया साधु उन्हें श्रावक गिनते हैं और अपने आपको मुनि मानते हैं, सभीको षट्कायके जीवोंकी रक्षाका उपदेश देते हैं, परन्तु यथार्थमें छह काय की दयाका पालन स्वयं भी नहीं करते। सचित्त धान्यको प्रासुक मान कर ग्रहण करते हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि हमने ऊपर जो कथन किया है उसे विवेकी जन देखें–उस पर विचार करें। श्रावक और मुनियोंका चलन एक समान हो, यह मार्ग नहीं हैं। जिनके कार्यकर्ता शूद्र हैं वे अपने अपने कुलके अनुसार कार्य करते हैं उनका पेट भरनेका उद्यम ही सफल हो पाता है वे दयाका पालन कैसे कर सकते हैं? भावार्थ :—हीन वर्णके लोग लौकिक स्वार्थके प्रलोभनोंसे ढूंढिया मत धारण कर लेते हैं परन्तु वे अपने कुलके अनुसार कार्य करते हैं उनसे दयाका यथार्थ पालन नहीं होता ॥१०७६–१०८०॥

जो गूजर, जाट, अहीर, और किसान निपान—कुएके जलसे खेती सींचते हैं तथा हल चला कर त्रसका घात करते हैं वे श्रावक पदके पात्र कैसे हो सकते हैं? ॥१०८१॥ प्रजापति–

१ वरण छत्तीस क० २ यह दोहा ख० और ग० प्रतिमें नही है। ३ घात स०

* छन्द १०८१के आगे न० और स० प्रतिमें निम्न छन्द अधिक है–

धोबी अणछाण्या जलमांहि कपडा धोवत पाप उपाहि ।
छीपा वसतर रंगिहैं जहाँ, तेली, धाणी पीले तहाँ ॥

पचे अहाव प्रजापति गेह, अगनि निरंतर बालत तेह ।
होत घात त्रस जीवनि तनी, तिनकों कैसे श्रावक भनी ॥१०८२॥
अवर हीन कुल [1]है अवतार, ढूंढ्या मत चाले निरधार ।
मदिरा पीवे आमिष भखै, धरम पलति तिनके किम अखै ॥१०८३॥
विण्या बिन बींधो जो नाज, घृत गुड लूण तेल बहु साज ।
होय घात त्रस जीव अपार, तिनकों श्रावक कहे गंवार ॥१०८४॥
हीन करम करि पेट जु भरे, तिनपे कहूँ करुणा किम परे ।
जैसी जाति हीन निज तणी, मानै आप साध पद भणी ॥१०८५॥
तैसे ही श्रावक तिन तणे, कुकरम पाप उपावे घणे ।
ऐसे मतको सांचो गिणे, ते पापी इम आगम भणे ॥१०८६॥

दोहा—सांचे झूठे मत तणी, करिवि परीक्षा सार ।
सांचो लखि हिरदय धरो, झूठो दीजे टार ॥१०८७॥

श्री प्रतिमाजीकी महिमा वर्णन

दोहा—श्री जिनवर प्रतिमा तणी, महिमा जो अति सार ।
सुन्यो जिनागममें कथन, मति वरण्यो निरधार ॥१०८८॥

कुम्हारके घर बर्तन पकानेके लिये अवा लगाया जाता है जिसमें निरन्तर अग्नि जलती रहती है तथा सब जीवोंका घात होता है ऐसे उन कुम्हारोंको श्रावक कैसे कहा जा सकता है? ॥१०८२॥ इसी तरह अन्य हीन कुलोंमें जन्म लेने वाले लोगोंसे ढूंढिया मत चल रहा है, वे मदिरा पीते हैं, मांस खाते हैं उनसे धर्मका पालन किस प्रकार हो सकता है? जो बिना शोधा हुआ घुना अनाज, घी, गुड, नमक, तेल आदिका सेवन करते हैं जिससे अपार त्रस जीवोंका घात होता है उन अज्ञानी जनोंको श्रावक कौन कहेगा? ॥१०८३–१०८४॥ जो हीन कार्य करके पेट भरते हैं उनसे करुणाका पालन कैसे हो सकता है? जिनकी जैसी हीन जाति है, साधु पदमें वे अपने आपको वैसा ही हीन मानते हैं इसी प्रकार उन साधुओंके श्रावक भी कुकर्म कर अत्यधिक पापका उपार्जन करते हैं। ऐसे मिथ्या मतको जो सत्य गिनते हैं वे पापी हैं ऐसा जिनागम कहता है ॥१०८५–१०८६॥ कविवर किशनसिंह कहते हैं कि हे भव्यजनों! सच्चे और झूठे मतकी अच्छी तरह परीक्षा करो। जो सच्चा है उसे देख कर हृदयमें धारण करो और जो झूठा है उसे दूर करो ॥१०८७॥

आगे जिनप्रतिमाकी महिमाका वर्णन करते हैं :—

---

१ के नर नारी

चौपाई

मिथ्यादृष्टी एक हजार, तिनकी महिमा जो निरधार ।
एक मिथ्याती जैनाभास, सब ही सरभर करै न तास ॥१०८९॥
जैनाभास सहस इक जोई, तिन सबही की प्रभुता होई ।
सम्यकदृष्टी एक प्रमाण, तिसही बराबर ते नहिं जान ॥१०९०॥
सम्यगदृष्टी गिनहु हजार, एक अणुव्रत धारी सार ।
महिमा गिनहु बराबर सही, इह जिनमारग मांहे कही ॥१०९१॥
देशव्रती इक सहस सुजान, मुनि प्रमत्त गुणथान प्रमाण ।
एक बराबर महिमा धार, आगे सुनहु कथन विस्तार ॥१०९२॥
मुनि प्रमत्तधर एक हजार, तिनको जो प्रभुत्व विस्तार ।
इक समान केवली सही, होय बराबर संशय नहीं ॥१०९३॥
है सामान्य केवली तेह, महिमा एक सहस्र की जेह ।
समवसरन धारी जिनदेव, तीर्थंङ्कर इक सम गिणि एव ॥१०९४॥
परतखि समवसरण जुत होय, तीर्थंङ्कर पद धारी सोय ।
एक हजार प्रमाण बखान, एक प्रतिमा समानता ठान ॥१०९५॥

श्री जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाकी जो श्रेष्ठ महिमा जिनागममें कही गई है उसका मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ कथन करता हूँ ॥१०८८॥ एक हजार मिथ्यादृष्टियोंकी जो महिमा है वह एक मिथ्यादृष्टि जैनाभासकी बराबरी नहीं कर सकता ॥१०८९॥ एक हजार मिथ्यादृष्टि जैनाभासोंकी जो प्रभुता है वह एक सम्यग्दृष्टिकी बराबरी नहीं कर सकती ॥१०९०॥ एक हजार अविरति सम्यग्दृष्टि और एक अणुव्रत धारीकी महिमा समान है ऐसा जिनमार्गमें कहा है ॥१०९१॥ एक हजार देशव्रती श्रावक और एक प्रमत्त विरत गुणस्थानवर्ती मुनि, इनकी महिमा एक समान कही गई है । आगे इसी कथनका विस्तार और भी सुनो ॥१०९२॥ प्रमत्त विरत गुणस्थानवर्ती एक हजार मुनियोंकी प्रभुताका जो विस्तार है वह एक केवलीकी प्रभुताके समान है, इसमें संशय नहीं है ॥१०९३॥ एक हजार सामान्य केवलियोंकी जो महिमा है वह समवसरणधारी एक तीर्थंकर केवलीके समान है ॥१०९४॥ प्रत्यक्ष समवसरणसे युक्त एक हजार तीर्थंकर केवलियोंकी जो महिमा है वह एक प्रतिमाकी महिमाके समान है* ॥१०९५॥ यदि यह जान कर कोई प्रश्न करे कि आपने हजार तीर्थंकर और एक प्रतिमाकी महिमा

---

* कविवर किशनसिंहका यह कथन किस ग्रंथके आधार पर है यह अन्वेषणीय है ।

कोई प्रश्न करै इह जाण, तीर्थङ्कर इक सहस प्रमाण ।
प्रतिमा एक बराबर कही, इह हम हिरदै ठहरत नहीं ॥१०९६॥
ताकै समझावनको बैन, कहिये है अति ही सुखदैन ।
त्यौं प्रतिमा पूजन सरधान, अति गाढो राखो [1]प्रतिमान ॥१०९७॥

छन्द चाल—जिन समवसरण जुत राजै, मूरत उत्कृष्ट सुछाजै ।
निरखत निपजै वैराग, ह्वै शान्त चित्त अनुराग ॥१०९८॥
परतक्ष तिष्ठ भगवान, समवादि सरन-जुत थान ।
पेखत [2]हुल्लास बढावै, भविजन हिरदय न समावै ॥१०९९॥
तिनकी वाणी सुनि जीव, तरिहै भव उदधि अतीव ।
जिनवर जब मोक्ष लहाई, तब जिन प्रतिमा ठहराई ॥११००॥
निरखत प्रतिमाको ध्यान, बुधजन हिय उपजै ज्ञान ।
तिनको निमित्त भवि जीव, जगमें लहिहै जू सदीव ॥११०१॥
प्रतिमा आकृति लखि धीर, उपजै वैराग गहीर ।
मन वीतरागता आनै, तप व्रत संयमको ठानै ॥११०२॥

बराबर कही, यह बात हमारे हृदयमें ठहरती नहीं है, तो उसे समझानेके लिये अतिशय सुखदायक वचन कहते हैं । हे बुद्धिमान जनों ! उन्हें सुन कर प्रतिमा पूजनमें गाढ श्रद्धान रक्खो ॥१०९६–१०९७॥

जब जिनेन्द्र भगवान समवसरण सहित साक्षात् बिराजमान रहते हैं तब उनकी उत्कृष्ट मुद्रा अत्यन्त शोभायमान होती है । उनके दर्शन करते ही वैराग्य उत्पन्न होता है तथा चित्त शान्त हो जाता है, उनके प्रति दर्शन करनेवालोंका अनुराग बढ़ता जाता है । समवसरणमें प्रत्यक्ष बिराजमान जिनेन्द्र भगवानके दर्शन करनेसे भव्यजीवोंके हृदयमें उल्लासकी इतनी वृद्धि होती है कि वह उनके हृदयोंमें नहीं समाता । साक्षात् जिनेन्द्रदेवकी वाणी सुनकर भव्यजीव संसार सागरसे पार होते हैं । साक्षात् जिनेन्द्रदेव जब मोक्ष चले जाते हैं तब उनकी प्रतिमा स्थापित की जाती है । प्रतिमाकी ध्याननिमग्न मुद्राको देखकर ज्ञानीजनोंके हृदयमें ज्ञान—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होती है और उसके निमित्तसे वे संसारमें सदा सुख प्राप्त करते रहते हैं । प्रतिमाकी शान्त मुद्रा देखनेसे मनमें अत्यधिक वैराग्यकी उत्पत्ति होती है, मनमें वीतरागता आ जाती है, तप, व्रत और संयम धारण करनेकी भावना होने लगती है ॥१०९८–११०२॥

---

१ मतिमान न० २ अहलाद स०

दरसन प्रतिमा निरधार, भविजनको नित उपगार ।
जिन मारग धरम बढावै, महिमा नहि पार न आवै ॥११०३॥

जो प्रतिमा दरसन करि है, पूरव संचित अघ हरि हैं ।
कहिये का अधिक बखान, दायक भविजन शिवथान ॥११०४॥

ऐसी प्रतिमा जुत होई, भविजन निश्चै चित सोई ।
मन-वच-क्रम धरिहै ध्यान, ज्यों ह्वै सब विधि कल्यान ।११०५॥

कोऊ पूछै फिर येह, कहु साखि ग्रन्थकी जेह ।
तिनको उत्तर ये जानी, सुनियो तुम कहूँ बखानी ॥११०६॥

साधर्मी द्विज सुखधाम, सहदेव नाम अभिराम ।
पूरव दिशि सेती आयो, सो सांगानेर कहायो ॥११०७॥

पढियो जो ग्रन्थ अनेक, जिनमत धरे चतुर विवेक ।
गाथाबंध सततरि हजार, महाधवल ग्रन्थ अति सार ॥११०८॥

तिहकी टीका सुखदाई, लख साढातीन कहाई ।
ते श्लोक संस्कृत सारै, तिन कंठ भली विधि धारै ॥११०९॥

निश्चित ही प्रतिमाका दर्शन भव्यजीवोंका बहुत भारी उपकार करता है। वह जिनमार्ग तथा जिनधर्मको बढ़ाता है । उसकी महिमाका कोई अन्त नहीं प्राप्त कर सकता ॥११०३॥ जो प्रतिमाके दर्शन करता हैं वह पूर्वसंचित पापोंको हरता हैं । अधिक व्याख्यान कहाँ तक करूँ ? प्रतिमाका दर्शन भव्यजीवोंके लिये मोक्षस्थानको देनेवाला है ॥११०४॥ प्रतिमाकी ऐसी ज्योति होती है कि वह निश्चय ही भव्यजनोंका चित्त अपने समान कर लेती है अर्थात् प्रतिमाकी वीतराग मुद्राको देखनेसे भव्यजीवका मन भी वीतरागी हो जाता है । जो मन वचन कायसे प्रतिमाका ध्यान करता है उसका सब प्रकारका कल्याण होता है ॥११०५॥ कोई मनुष्य फिर पूछता है कि आपने प्रतिमाका जो इतना माहात्म्य बताया है, इसमें किसी ग्रन्थकी साक्षी कहिये । बतलाइये, आपने किस ग्रन्थकी साक्षीसे यह सब कहा है ? कविवर कहते हैं कि इस प्रश्नका उत्तर हम कहते हैं सो सुनो ॥११०६॥

सुखका स्थान एक सहदेव नामका सुन्दर साधर्मी ब्राह्मण पूर्व दिशासे सांगानेर आया । वह अनेक ग्रन्थोंका पाठी था, जिनमतका धारक, चतुर और विवेकवंत था । उसने बताया कि एक गाथाबद्ध सत्तर हजार श्लोक प्रमाण महाधवल नामका अतिशय श्रेष्ठ ग्रन्थ है । उसकी टीका साढे तीन लाख श्लोक प्रमाण है । ये सब श्लोक संस्कृतके थे तथा उसे भलीभाँति कण्ठस्थ

तिह कथन कियो सब पाही, महाधवल थकी सु कहाही ।
ताकी लखि वा परतीत, पूछो जिनमत बहु रीत ॥१११०॥
[1]जिहनी सांकरी विधि सेती, आगम प्रमाण कहि तेती ।
जैनी पंडित जु बखानी, परतखि लखिये भवि प्रानी ॥११११॥
प्रतिमा दरसन सम लोक,-मधि अवर न दूजो थोक ।
प्रतिमा-पूजाके कारक, ते होइ करमतें फारक ॥१११२॥
प्रतिमाकी निन्दा करिहै, ते नरक निगोदहि परिहै ।
प्रावर्तन पंच प्रकार, पूरण करिहै नहि पार ॥१११३॥
श्रावक मत जैन दिगम्बर, कुलधर्म कह्यो जिम जिनवर ।
मन-वच-क्रम ताहि गहै है, सुर ह्वै अनुक्रम शिव पै है ॥१११४॥
पूजा जिनप्रतिमा कीजे, पात्रनि चहुँ दान जु दीजे ।
तप शील भाव-जुत पारै, अरु कुगुरु कुदेवहि टारै ॥१११५॥
बिनु जैन अवर मतवारे, वातुल सम गनिये सारे ।
गहलौ नर जिम तिम भाखै, कुमती जिम झूठी आखै ॥१११६॥

थे। उसने प्रतिमाकी महिमाका यह कथन किया और कहा कि यह सब [२]महाधवलमें कहा है । उसकी प्रतीति–श्रद्धा देख कर मैंने उससे जिनमतकी बहुत सी बातें पूछी । जितनी सूक्ष्म बातें थी उनका उसने आगम प्रमाण उपदेश दिया । जैनी विद्वान जो व्याख्यान करते हैं उसके साथ इस उपर्युक्त कथनकी भव्यजीव परीक्षा करें ॥११०७–११११॥

प्रतिमा दर्शनके समान लोकमें दूसरा श्रेष्ठ कार्य नहीं है। जो प्रतिमाकी पूजा करते हैं वे सब कर्मोंसे निवृत्त होते हैं ॥१११२॥ जो प्रतिमाकी निन्दा करते हैं वे नरक और निगोद में पड़ते हैं । पाँच प्रकारके परिवर्तन पूर्ण करते हैं, इनका अन्त नहीं है ॥१११३॥ श्रावकका मत दिगम्बर जैनका कुलधर्म है, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है । जो मन वचन कायसे उसे ग्रहण करते हैं वे देव होते हैं और अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥१११४॥ कविवर किशनसिंह कहते हैं कि हे भव्यजीवो ! तुम जिनप्रतिमाकी पूजा करो, पात्रोंको चार प्रकारका दान दो, तप और शीलका भावसहित पालन करो तथा कुगुरु एवं कुदेवोंको दूर करो ॥१११५॥ जैन मतके सिवाय अन्यमतवाले बातुल–वायुग्रस्तके समान हैं । जिस प्रकार ग्रहिल–भूताक्रान्त मनुष्य जैसा तैसा बोलता है उसी प्रकार अन्य मतावलम्बियोंका कथन जैसा–तैसा–अप्रामाणिक जानो ॥१११६॥

१ तिहनी स० न० २ कविवर किशनसिंहके समय महाधवल उपलब्ध नहीं था । इस समय उपलब्ध है परन्तु उसमें इस प्रकारका कोई प्रकरण नहीं हैं । सहदेव ब्राह्मणके कथन पर विश्वास करकेही उन्होने यह सब लिखा है ऐसा जान पडता है । फिर भी सार यह है कि प्रतिमा अत्यन्त पूज्य है ।

श्रावक कुल जिहि अवतार, जिन धर्महि तजहि गंवार ।
ढूंढ्या मतको जो लैहै, ते नरक निगोद परे है ॥१११७॥
सांचो झूंठो न पिछाणै, अविवेक हियेमें आणे ।
प्रतिमा-निन्दक जे जीव, तिनको उपदेश गहीव ॥१११८॥
ताके पोतै संसार, बाकी कछु वार न पार ।
चहुँ गति दुख विविध भरन्तो, रुलिहै बहु जोनि धरन्तो ॥१११९॥
यातें जे भविजन धीर, ढूंढामत पाप गहीर ।
छांडौ लखि अति दुखदाई, निहचै जिनराज दुहाई ॥११२०॥
जिनमत हिरदय अवधारो, जप तप संयम व्रत पारो ।
तातें सुख लहौ अपार, यामें कछु फेर न सार ॥११२१॥

चौपाई—अब कछु क्रियाहीन अति जोर, प्रगटचो महामिथ्यात अघोर ।
श्रावक तो कबहूँ नहि करै, आन मती हरषित विस्तरै ॥११२२॥
जैन धरम प्रतिपालक जीव, करहि क्रिया जे हीन सदीव ।
तिनके सम्बोधनको जान, कही क्रिया जे हीन बखान ॥११२३॥
तिनको तजै विवेकी जीव, करत न भववन भ्रमै अतीव ।
अब सुनियो बुधिवन्त विचार, [1]क्रिया हीन वरणन विस्तार ॥११२४॥

श्रावकके कुलमें जन्म लेकर जो अज्ञानी जिनधर्मका त्याग करते हैं तथा ढूंढिया मतको ग्रहण करते हैं वे नरक और निगोदमें पडते हैं ॥१११७॥ जो सत्य और झूठको नहीं पहचानते हैं, जिनके हृदयमें अविवेक छाया हुआ है, तथा जो प्रतिमाको निन्दा करते हैं ऐसे ढूंढिया लोगोंके उपदेशको जो ग्रहण करते हैं उनका संसार बहुत बाकी है, उसका कुछ अन्त नहीं है । वे चारों गतियोंके नाना दुःखोंको उठाते हुए अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हैं । इसलिये जिन भव्यजनोंने ढूंढिया मत ग्रहण कर रक्खा हैं वे उस दुःखदायक धर्मको छोडें और जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित धर्मको अंगीकार करें । हृदयमें जिनमतको धारण करें, जप तप संयम और व्रतका पालन करें; इसीसे अपार सुखकी प्राप्ति होगी, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥१११८–११२१॥

अब महा मिथ्यात्वके जोरसे कुछ अत्यन्त हीन क्रियाएँ प्रकट हुई हैं । श्रावक जन उन क्रियाओंको नहीं करते हैं परन्तु अन्यमती लोग हर्षित हो कर उनका विस्तार करते हैं । जैन धर्मका पालन करने वाले जो जीव उन हीन क्रियाओंको करने लगे हैं उन्हें संबोधित करनेके लिये उन हीन क्रियाओंका वर्णन करते हैं । जो विवेकीजीव उनका त्याग करते हैं वे संसारमें अधिक भ्रमण नहीं करते । ग्रन्थकार कहते हैं कि हे बुद्धिमान जनों ! अब उन हीन क्रियाओंका विस्तृत वर्णन करते हैं उसे सुन कर उन पर विचार करो ॥११२२–११२४॥

---

१ क्रियावन्त न०

मिथ्यामत निषेध

चौपाई

भादव गये लगै आसोज, पडिवा दिवस तणी सुनि मौज ।
लडकी बहु मिलि गोबर आनि, सांझी मांडै अति हित ठानि ।।११२५।।

पहर आठ लौ राखै जाहि, फिर दूजे दिन मांडै ताहि ।
मांडै दिन दिन नव नव रीति, तेरसका दिन लौं धरि प्रीति ।।११२६।।

चौदस मावस दुहु दिन मांही, सांझी बडी जु नाम धराही ।
मिलै पांच दस प्रौढा नारी, मांडै ताहि विचारि विचारी ।।११२७।।

हाथ पांव मुख करि आकार, गोवरका गहना तन धार ।
[1]उपर चिरमी जल पोस लगाय, कोडी फूल लगावै जाय ।।११२८।।

इम विपरीत करै अधिकाय, तास पापको कहै बनाय ।
खोडचो बांमण सांझी लेन, आयो [2]भावै वनिता वैन ।।११२९।।

राति जगावै गावै गीत, ऐसी महा रचै विपरीत ।
करि गुल धाणी दे लाहणा, आवै सो राखै परतणा ।।११३०।।

---

*मिथ्यामत निषेध

भाद्रपद मासके व्यतीत होने पर आसौज लगता है उसके पडवाके दिन बहुत सी लडकियाँ गोबर लाकर हित बुद्धिसे सांझीकी स्थापना करती हैं, आठ प्रहर तक उसे रखती हैं, दूसरे दिन दूसरी स्थापना करती हैं, इस प्रकार तेरस तक प्रीतिपूर्वक नई नई सांझीकी स्थापना करती रहती हैं । चौदश और अमावसके दिन जिस साँझीकी स्थापना करती हैं उसका बडी सांझी नाम रखती है । फिर दश पाँच प्रौढा स्त्रियाँ एकत्रित होकर उस सांझीको विचार विचार कर सजाती हैं, हाथ पाँव और मुखके आकार बना कर गोबरके गहने पहनाती हैं । उस पर चिरमी(?) का जल छींटती है, कौंडी और फूल चिपकाती है इस तरह विपरीत कार्य कर उसके पापको बना बना कर कहती हैं। स्त्रियाँ ऐसे वचन कहती हैं कि खोटा ब्राह्मण इस सांझीको लेनेके लिये आया था। रात्रि जागरण करती हैं तथा गीत गाती हैं इस तरह महा विपरीत बात करती हैं । आपसमें गुड़ आदिका आदान प्रदान करती हैं, अपना दूसरोंको देती है और दूसरोंका स्वयं लेती हैं ।।११२५-११३०।। आसौज सुदी पडिवाके दिन उस साँझीको उतार कर नदी या तालाबमें डाल देती हैं । देखों, लोगोंने उस सांझीकी इतनी प्रभुता मान ली कि देव मान कर

---

१ ऊपर चीर जर पोस मगाय स० २ भाखै न०

* इस प्रकरणमें ग्रंथकर्ताने राजस्थानमें प्रचलित अनेक रूढियोंका वर्णन किया है । प्रान्त भेद तथा रीति-रिवाजोंमें विशेषता होनेसे यदि किसी रूढिका स्पष्टीकरण अनुवादमें न हो सका हो तो उसे विज्ञजन संशोधित कर ले ।

सुदि पडिवाको ताहि उतारि, नदी ताल माहे दे डारि ।
ऐसी प्रभुता देखौ जास, देव मान पूजत है तास ॥११३१॥

अरु सांझी किसकी है धिया, को खोड्यो द्विज किणकी तिया ।
गोबरकी मांडै किम तिया, वरसा वरसी कहुँ समझिया ॥११३२॥

परगट लखि नजरां इह रीति, माने ताहि धरै बहु प्रीति ।
पापी भेद लहे तसु नाहि, गोबर सरद रहै जा मांहि ॥११३३॥

घटिका दोय बीतहै जबै, तामै त्रस उपजत हैं तबै ।
तिनके पाप तणौ नहि पार, भव भवमें दुखको दातार ॥११३४॥

महा मिथ्यात तणौ जे गेह, नरक तणौ दायक है जेह ।
छेदन भेदन तापन जहाँ, ताडन सूलारोहण तहाँ ॥११३५॥

दुख भुगतै तहँ पंच प्रकार, इस मिथ्यात थकी निरधार ।
जिनमतके धारी हैं जेह, सो मेरी विनती सुनि एह ॥११३६॥

इनहि मांडि मत पूजि लगार, इह संसार बढावन हार ।
आन मती पूजन मन लाय, तिनसौ कछु कहनो न बसाय ॥११३७॥

सोरठा—दिन पनरे के मांहि, मरण दिवस पित-मातको ।
श्रावक जे हरषांहि, ते जिनमारगतैं विमुख ॥११३८॥

उसकी पूजा करने लगे । इसका विचार नहीं करते कि सांझी किसकी पुत्री है, किसकी स्त्री है, और किसने उसे खोटा किया, गोबरकी स्त्री क्यों बनाती हैं, प्रत्येक वर्ष यह कार्य क्यों करती हैं? यही कहती है कि हमारे यहाँ यह परम्परा चली आती है। इस परम्पराका पालन कर बहुत प्रसन्न होती हैं। परन्तु अज्ञानी जीव इसका भेद नहीं जानते । गोबरमें आर्द्रता रहती है इससे उसमें दो घडी बीतने पर त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उनके घातसे ऐसा अपार पापबंध होता है जो भवभवमें दुःखका देनेवाला है। कविवर कहते हैं कि जिनके घर यह मिथ्यात्वका कार्य होता है उनके लिये वह नरकका देने वाला होता है । नरकमें छेदा जाना, भेदा जाना, तपाया जाना, ताड़ित किया जाना और शूली पर चढ़ाया जाना आदि पाँच प्रकारका जो दुःख भोगना पड़ता हैं उसका कारण मिथ्यात्व ही है। जो जिनमतके धारक प्राणी है वे मेरी इस विनतिको सुन लें कि साँझीकी न तो स्थापना करें और न ही उसकी पूजा करें, क्योंकि यह क्रिया संसारको बढ़ाने वाली है। अन्य मत वाले इसकी पूजामें मन लगाते हैं उनसे कुछ कहते नहीं बनता ॥११३१–११३७॥

आसौज कृष्ण पक्षके पन्द्रह दिनोंमें जो श्रावक मातापिताके मरण दिनके उपलक्ष्यमें

छन्द चाल

पित मात तृपतिके हेत, भोजन बहु जनको देत ।
कैसें तृपति ह्वै तेह, जिन आगम भाष्यो एह ॥११३९॥

मूए हुए वरष घनेरे, सुख दुख भुगतै भव केरे ।
तहां तै बहु किम वह आवै, जिनमतमें इह न समावै ॥११४०॥

सुत असन करै पितु देखै, तृपति न ह्वै परतख पेखै ।
तौ आन जनम कहा बात, जानो ए भाव मिथ्यात ॥११४१॥

दुय कोस थकी निज बाग, सींचै चित धरि अनुराग ।
रूख न बढवारी पावै, परभव किम तृपति लहावै ॥११४२॥

तातैं जिनमतमें सार, ऐसो कह्यो न आचार ।
इह घोर मिथ्यात सुजाणी, तजिये भवि उत्तम प्राणी ॥११४३॥

आठै आसौज उजारी, अरु पूजै चेत दिहारी ।
करिकै घूंघरी कसार, बांटै तसु घर घर वार ॥११४४॥

गुल घिरत सुपारी रोक, नालेर धरै दे ढोक ।
निज बहन भुवाकौ देहैं, धरि लोभ हिये वे लेहैं ॥११४५॥

भोजन करा कर हर्षित होते हैं वे जिनमार्गसे विमुख हैं ॥११३८॥ मातापिताकी तृप्तिके लिये बहुत जनोंको भोजन देते हैं इससे मातापिताको तृप्ति कैसे हो सकती है ऐसा जिनागममें कहा गया है ॥११३९॥ जिन्हें मरे हुए बहुत वर्ष हो चुके हैं और जो अन्यत्र संसार सम्बन्धी सुख दुःख भोग रहे हैं वे वहाँसे चल कर वापिस कैसे आ सकते हैं ? जिनमतमें उनका आना समाहित नहीं है ॥११४०॥ इस जन्ममें भी पुत्र भोजन कर रहा हो और पिता देख रहा हो तो देखने मात्रसे पिताको तृप्ति नहीं होती--उसकी भूख नहीं मिटती, तो अन्य जन्मकी क्या बात है ? इसे मिथ्याभाव ही जानना चाहिये ॥११४१॥ दो कोशकी दूरी पर अपना बाग है उसको प्रेमसें कोई अपने घर बैठकर ही पानी सींचता है तो उसके सींचनेसे बागके वृक्ष वृद्धिको प्राप्त नहीं होते, फिर परभवमें तृप्ति कैसे प्राप्त कर सकते है ? ॥११४२॥ इसीलिये जिनमतमें इसे सारभूत आचार नहीं कहा है । यह घोर मिथ्यात्व है ऐसा जान कर उत्तम भव्य प्राणियोंको इसका त्याग करना चाहिये ॥११४३॥

आसौज शुक्ल अष्टमीके दिन चैत दिहारी (?) की पूजा करते हैं । उस दिन घुंघरी तथा कसार बना कर घर घर बाँटते हैं ॥११४४॥ गुड़, घी, सुपारी, नकद रुपये तथा नारियल चढ़ा कर धोक देते हैं पश्चात् वह चढी हुई सामग्री बहिन और बुआ आदिको दे देते हैं । वे भी

लैने देनेको पाप, मिथ्यात बढै संताप ।
तातै जैनी ह्वै जेह, पूज्यो न चढयो कछु लेह ॥११४६॥

सतियनका राति जगावै, पित्रनहूं को जु मनावै ।
बीजासण सोकि आराधै, जागरण करैं हित साधै ॥११४७॥

संजोडा अवर कंवारा, गोरणीय जिमावै सारा ।
तिनके करि तिलक लिलाट, पायनि दे ढोक निराट ॥११४८॥

पैसादिक तिनकों देई, वे हरषि हरषि चित लेई ।
इह किरिया अति विपरीति, छांडौ बुध जाणि अनीति ॥११४९॥

अडिल्ल छन्द

बीजासणको करवि झालरो उरि धरे,
सो किउ घडत घडाल पातरी हिय परे;
मूढ मान तिन पूजै घर लछमी जवै,
उदै असाता भये बेचि खैहैं तवै ॥११५०॥

दोहा

सकलाई तिनमें इसी, अविवेकी न लखांहि ।
सुरभखमें बहु मानता, दुरभख सों बिक जांहि ॥११५१॥

हृदयमें लोभ रख कर उसे लेते हैं। इस प्रकार चढ़ाई हुई सामग्रीको लेने देनेमें पाप है, मिथ्यात्व है, इससे संतापकी वृद्धि होती है इसलिये जो जैनी हैं वे पूजामें चढ़ाई गई सामग्रीको बिलकुल नहीं लेते ॥११४५–११४६॥ कई लोग सतियोंका रात्रि जागरण करते हैं अर्थात् घरमें कोई स्त्री सती हुई होतो उसका स्मरण कर रात्रि–जागरण करते हैं––गीत गाते हुए रात्रिभर जागते रहते हैं। मृत पुरुषोंकी मनौती करते हैं, बीजासन––बीजके रक्षक देवकी आराधना करते हुएजागरण करते हैं। संजोड़ा–स्त्रीपुरुषोंके, जोडे कुंवारे–अविवाहित लडके और सौभाग्यवती स्त्रियाँ, इन्हे जिमाते है। उनके ललाट पर तिलक लगाकर चरणोमें धोक देते हैं, उन्हें पैसा आदिक देते हैं और वे उसे प्रसान्नचित्त होकर लेते हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि यह क्रिया अत्यन्त विपरीत है इसलिये हे ज्ञानी जनों! इसका त्याग करो ॥११४७–११४९॥ कितने ही लोग बीजासनकी स्थापना कर उसके वक्षःस्थल पर वस्त्र धारण करते हैं, तरह तरहके आभूषणादि बना कर उसे पहिनाते हैं। अज्ञानी लोग यह मान कर उसकी पूजा करते हैं कि इसकी पूजासे घरमें लक्ष्मी आती हैं। परन्तु उन्ही पूजा करने वालोंके अशाता कर्मके उदयसे जब दरिद्रता आ जाती है तो उसे बेंच कर खा लेते हैं ॥११५०॥ अज्ञानी जन इसकी यथार्थताको

खेतपालकी थापना, एम बनावे कूर ।
जिसा तिसा पाषाण पीर, डारे तेल सिंदूर ॥११५२॥

छन्द चाल—वैशाखमें घरके बारे, पूजे दे जात विचारे ।
तिल वाटि अरु बाकला तेल, ऐसे पूजाविधि मेल ॥११५३॥

दस बीस त्रिया धरि प्रीति, गावें जु गीत विपरीति ।
सेवे तिह मानें हेंव, सो जान मिथ्यात्वी एव ॥११५४॥

बहुते खेडा पुर गाम, इकसे न कही तसु नाम ।
तातें सकलाई मानें, सुखदाता एम बखाने ॥११५५॥

दीया सुत जो उपजांही, सुत बिन तिय कौन रहांही ।
इह झूठ थापणो जाणी, तजिये भवि उत्तम प्राणी ॥११५६॥

पाहण लघु धरै इक ठाहीं, पथवारी नाम कहाहीं ।
तिनको पूजत धरि नेह, कबहुं न सुखदाता तेह ॥११५७॥

मिथ्याततणो अधिकार, नरकादिक दुख दातार ।
जिनभाषित पर चित्त दीजे, खोटी लखि तुरत तजीजे ॥११५८॥

नहीं जानते हैं इसलिये सुभिक्षके समय उसकी मान्यता करते हैं और दुर्भिक्षके समय बेंच कर खा जाते हैं ॥११५१॥ दुष्ट अज्ञानी जन बीजासनके समान क्षेत्रपालकी भी स्थापना करते हैं । जिस-किसी पाषाण पर तेल और सिंदूर चढ़ा कर उसे क्षेत्रपाल मानने लगते हैं ॥११५२॥

वैशाखके महिनेमें घरके बाहर वटरुआ देवकी स्थापना करते हैं तथा उसकी पूजाके लिये तिलकी पिट्ठी वबाकलाका तेल इकट्ठा करते हैं और इस विधिसे उसकी पूजा करते हैं । दस बीस स्त्रियाँ इकट्ठी होकर प्रीतिपूर्वक विपरीत गाने गाती हैं । जो ऐसे वटरुआ देवको मानते हैं वे नियमसे मिथ्यादृष्टि हैं ॥११५३-११५४॥ कोई उसे खेडा देव, कोई पुर देव और कोई ग्राम देव कहते हैं । उसे एक नामसे न पुकार कर अनेक नामोंसे पुकारते हैं । ऐसी मान्यता रखते हैं कि इस देवकी कृपासे ही सुखशान्ति रहती है, यही सुखका देने वाला है ॥११५५॥ "ये ही पुत्र पुत्रियाँ देते हैं । पुत्रके बिना कौन स्त्री रह सकती है ?" ऐसा विश्वास कर उसकी मिथ्या स्थापना करते हैं । ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि हे भव्यजनों ! इस विपरीत मान्यताको छोडो ॥११५६॥

कितनी ही लोग छोटे छोटे पत्थरोंको एक स्थान पर एकत्रित कर 'पथवारी' नाम रख लेते हैं तथा स्नेहपूर्वक उसकी पूजा करते हैं परंतु यह निश्चित है कि वह पथवारी सुखको देनेवाली नहीं हैं ॥११५७॥ यह सब मिथ्यात्वका प्रभाव है तथा नरकादिकको देनेवाला है । इसलिये जिन वचनों पर चित्त लगा कर इन खोटी क्रियाओंको तत्काल छोड देना चाहिये ॥११५८॥

असौज है आठें स्वेत, घोटक पूजे धरि हेत ।
जिनराज एम बखानी, तिरयंच है पूजे प्रानी ॥११५९॥

सो पाप अधिक उपजावे, कहते कछु ओर न आवे ।
तातै जैनी जो होय, पसु पूजि न नरभव खोय ॥११६०॥

[1]दसराहाका दिन मांहीं, लाड्र पीहर ले जाहीं ।
इह रीति तजो भवि जीव, जिन वच धरि हृदय सदीव ॥११६१॥

जिन [2]चैत्यन वनके मांहीं, पून्यो दिन सरद कराहीं ।
आगममें कहुं न बखानि, विपरीत तजो तिह जानी ॥११६२॥

मंगल तेरसि दिन न्हावै, वसतर तन उजले ल्यावै ।
आवे जब दिवस दिवाली, दीवा भरे तेल हवाली ॥११६३॥

निज मंदिर ऊपर धरि है, अति ही सोभा सो करि है ।
तिनमें बहु त्रसको घात, अघ घोर महा उतपात ॥११६४॥

दीवा थालीमें धरिकैं, मिलहैं तसु घर घर फिरकै ।
तिनमें कछु नांहि बडाई, प्राणी मरिहै अधिकाई ॥११६५॥

कितने ही लोग आसौज सुदी अष्टमीके दिन आदरपूर्वक घोडेकी पूजा करते हैं परन्तु जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि घोड़ा तिर्यंचगतिका जीव है । इसके पूजनसे इतना अधिक पाप उपार्जित होता है कि कहने पर उसका अन्त नहीं आता । इसलिये जो जैनधर्मके धारक हैं वे पशुकी पूजा कर अपने मनुष्यभवको व्यर्थ न खोवें ॥११५९–११६०॥ कितने ही लोग धर्म समझकर दुसराहा–दशहराके दिन पीहरको लाडू ले जाते हैं सो हे भव्यजीवो ! इस रीतिको छोडो और जिनेन्द्रदेवके वचनोंको सदा हृदयमें धारण करो ॥११६१॥

कितने ही लोग जिनमन्दिरके बागमें शरद पूर्णिमाका उत्सव मनाते हैं परन्तु आगममें कहीं भी इसका वर्णन नहीं है इसलिये विपरीत जानकर इसका त्याग करो ॥११६२॥ कितने ही लोग दिवालीके पूर्व धनतेरसके दिन स्नान कर शरीर पर उज्ज्वल वस्त्र धारण करते हैं और दिवालीका दिन आने पर दीपकोंमें तेल भर कर उन्हें प्रज्वलित करते हैं तथा शोभाके लिये अपने मकानोंके ऊपर रखते हैं । उन दीपकोंमें बहुतसे त्रस जीवोंकी हिंसा होती है जिससे महा दुखदायी घोर पापका बन्ध होता है । कितने ही लोग थालीमें प्रज्वलित दीपक रख कर घर घर घूमते हैं परन्तु इस क्रियामें कुछ भी बड़ाई नहीं है, प्रत्युत इसमें अनेक जीवोंका मरण होता

---

१ दशराहदिवसके मांही स० २ चैत्यभवन स० न०

पापी कछु भेद न जानें, मनमें उच्छव अति ठानें ।
सो [1]पापी महादुख पावे, भव भामरि अन्त न आवे ॥११६६॥

भरि तेल काकडा वालें, बालक हींडहि कर वालें ।
घर घर लीये सो डोले, बालक हींडहि वच बोले ॥११६७॥

वे देय पईसा रोक, ढिग करे एकसा थोक ।
मरयाद घटै ता माहीं, ताकी तो कहा चलाहीं ॥११६८॥

बहु हींडमांहि त्रस जीव, जलि है नहि संख्या कीव ।
इह पाप न मनमें आवे, सुत लखि दम्पति सुख पावे ॥११६९॥

ते पापी जानो जोर, पडिहैं जो नरक अघोर ।
भविजन जो निज हितदाई, क्रिरिया [2]वह हीण तजाई ॥११७०॥

कातिक सुदि एकै [3]जानी, गोधनको गोबर [4]आसि ।
सांथ्यो निज बार करावे, गोर्धन तसु नाम धरावे ॥११७१॥

जब सांझ बैल घर आवे, पूजै तिन अति हरषावे ।
सांथ्यो निज पाय खुदावे, मिथ्यात महा उपजावे ॥११७२॥

है । पापी लोग इसका भेद नहीं जानते और मनमें बड़ा उत्सव मानते हैं। फलस्वरूप ऐसे पापी जीव महा दुःख पाते हैं और उनके भवभ्रमणका अन्त नहीं आता ॥११६३–११६६॥

कुछ बालक दीपावलीके समय एक बर्तनमें तेल भर उसमें बिनौला जलाते हैं, भद्दे भद्दे वचन बोलते हुए उसे घर घर ले जाकर घूमते हैं, घर वाले उन बालकोंको पैसा देते हैं और वे उन्हें इकट्ठा करते जाते हैं । पैसा मांगनेसे आन—मर्यादा घटती है इसकी तो बात ही क्या है ? बहुतसे त्रस जीव उसमें जल कर मरते हैं उनकी संख्या नहीं है । ऐसा काम करनेका भाव तो पापी मनुष्योंके ही मनमें आता है और अपने बालकोंको ऐसा करते देखकर उनके माता पिता सुखी होते हैं । ऐसे लोग पापी है तथा भयंकर नरकमें पड़ते हैं। इसलिये हे भव्यजनों ! वह काम करो जो अपने लिये हितकारक हो । इस हीन क्रियाको छोडो ॥११६७–११७०॥

कुछ लोग कार्तिक सुदी एकम के दिन गायोंका गोबर इकट्ठा कर घरके द्वार पर गोर्धनकी स्थापना करते हैं । एक साथिया बनाते हैं, संध्याके समय जब बैल घर आते हैं तब उनकी पूजा करते हैं तथा बैलोंके पाँवोंसे साथिया खुदवाते हैं, उनका यह कार्य महा मिथ्यात्वको उत्पन्न करनेवाला है ॥११७१–११७२॥ इन हीन क्रियाओंको करनेवाले मनुष्य नरकमें जाते हैं ।

---

१ घोर न० स० २ लखि स० ३ जानो न० स० ४ आनो न० स०

इन हीन क्रियाको धारी, जै हैं सो नरक मझारी ।
पकवान दिवाली केरो, करिहै धरि हरष घनेरो ॥११७३॥
दुय चार पुत्र जे थाई, तिनको दे जुदी बनाई ।
हांडीय भरे पकवान, पितु मात हरष चित आन ॥११७४॥
पुत्रन सिर तिलक करावैं, तिनपै तो हाट पुजावैं ।
सिर नाय [1]सर्व दे धोक, किरिया यह अघकी थोक ॥११७५॥
व्यापारी बहीं बणावै, फूठा चमडाका ल्यावै ।
तिनको पूजत हैं जेह, [2]लखि लोभ नहीं तसु एह ॥११७६॥
तिथि चौथि महा वदि मानी, व्रत चन्द उदयको ठानी ।
दिनमें नहि लेय अहार, निशि शशि ऊगे तिहि वार ॥११७७॥
ले मेवो दूध मिठाई, देखो विपरीत बढाई ।
[3]जे चौथ मास सुदि होई, करिहै जे विवेकहिं खोई ॥११७८॥
इम पाप थकी अधिकाई, दुरगतिमें बहु भटकाई ।
पंदरह तिथिमें इह जानी, तसु कहि संकटकी रानी ॥११७९॥
पद देव मान कर पूजै, सो अति मूरखता हूजै ।
जैनी जनको नहि काम, मिथ्यात महादुख धाम ॥११८०॥

दिवालीके दिन बहुत भारी पकवान बना कर अत्यन्त हर्षित होते हैं । घरमें जो दो चार पुत्र हों उन्हें वह पकवान दे यह जुदी बात है परन्तु उस पकवानको हंडियोंमें भरते हैं, मातापिता मनमें हर्षित होते हैं । पुत्रोंके शिर पर तिलक लगा कर उनसे दुकानकी पूजा कराते है । शिर झुका कर सबको धोक देते हैं । उनकी यह क्रिया बहुत पापको उत्पन्न करनेवाली है ॥११७३–११७५॥

दिवालीके समय व्यापारी नई बहियाँ बनवाते हैं, उनमें चमडेका पूठा लगवाते हैं, और उनकी पूजा करते हैं, क्या उनका यह लोभ नहीं है ? कितने ही लोग माघ वदी चतुर्थी का व्रत कर पापका उपार्जन करते हैं वे दिनमें भोजन नहीं करते किन्तु रात्रिमें जब चन्द्रोदय होता है तब मेवा, दूध और मिठाई लेते हैं । कवि कहते हैं कि देखो लोगोंकी बुद्धि । वे पाप करके भी प्रशंसा करते हैं । कोई माघ महिनेके शुक्ल पक्षकी चतुर्थीका व्रत रखते हैं, वे विवेक खोकर इस पापके फलस्वरूप दुर्गतियोंमें अत्यधिक भ्रमण करते हैं । कितने ही लोग पंद्रक्ष तिथिको संकटकी रानी मानते हैं तथा देव मान कर उसकी पूजा करते हैं यह उनकी महामूर्खता है । जैनी जनोंको यह काम करना योग्य नहीं है, यह महा दुःखदायक मिथ्यात्व है ॥११७६–११८०॥

---

१ तबहि न० स० २ लखि लाभ मिथ्यात सु एह न० ३ जे चौथ मास दस दोंई न० स०

सकरांति मकर जब आवे, तब दान देय हरषावे ।
तिल घाणीमांहि भराई, द्विजजनकों देय लुटाई ॥११८१॥

मूलाका पिंड मंगावे, [1]ब्राह्मणके घरहि खिनावे ।
खीचडी बांट हरसावै, गिनहैं हम पुन्य ब्रढावै ॥११८२॥

जहँ त्रस थावर ह्वै नाश, तहँ किम ह्वै शुभ परकाश ।
अति घोर महा मिथ्यात, जैनी न करैं ए बात ॥११८३॥

फागुण वदि चौदस दिनको, बारह मासनमें तिनको ।
शिवरात तणो उपवास, कीए मिथ्या परकास ॥११८४॥

होली जालै जिहि वारै, पूजै सब [2]भाग निवारै ।
जाको देखन नहि जइये, कर जाप मौन ले रहिये ॥११८५॥

पीछे बहु छार उडावे, जलतें खेले मन भावे ।
छाण्या अणछाण्या ठीक, लंपट न गिने तहकीक ॥११८६॥

करि चरम पोटली डोल, राखै मन करत किलोल ।
यदवा तदवा मुख भाखे, लघु वृद्ध न शंका राखे ॥११८७॥

जब मकर संक्रान्ति आती है तब लोग हर्षित होकर दान देते हैं। घानीमें तिल भरवा कर ब्राह्मणोंसे उसे लुटवाते हैं । मूलियोंका गट्ठा बुला कर ब्राह्मणोंके घर भिजवाते हैं । खिचडी बटवा कर हर्षित होते हैं और ऐसा मानते हैं कि हम पुण्यको बढ़ा रहे हैं । जहाँ त्रस स्थावर जीवोंका घात होता है वहाँ पुण्यका प्रकाश कैसे हो सकता है ? ये कार्य अत्यन्त घोर महा मिथ्यात्वके है, जैनी जन ऐसा काम नहीं करते ॥११८१–११८३॥

कितने ही लोग फागुन वदी चौदसको बारह मासोंमें श्रेष्ठ मान कर शिवरात्रिका उपवास करते हैं, उनका यह कार्य मिथ्यात्वको बढाने वाला है ॥११८४॥ जिस समय होली जलती है तब लोग एकत्रित होकर उसकी पूजा करते हैं । परमार्थसे जिसे देखनेके लिये नहीं जाना चाहिये, प्रत्युत जाप कर मौनसे रहना चाहिये, उस होलीकी लोग पूजा करते हैं । होली जलनेके पश्चात् उसकी राख उडाते हैं, जलसे फाग खेलते हैं, यह पानी छना है या अनछना, इसका विवेक नहीं रखते ॥११८५–११८६॥ पानी चमडेकी पोटली (बर्तन) में रखते हैं और मनमें हर्षित होते हुए घूमते हैं । मुखसे जैसे तैसे भद्दे वचन बोलते हैं, छोटे बडे लोगोंकी कोई शंका नहीं रखते, परस्पर एक दूसरे पर पानी उछालते हैं, स्त्री पुरुष लज्जा

---

१ वाडवके स० न० २ भाव गमार स० आचार न०

जल नाखै आपसमांही, नर तिय नहि लाज गहांही ।
न्हावणके दिन सब न्हावे, कपडा उजरे तन लावे ॥११८८॥

सनबंधी गेह जुहार, करिहै फिरिहै हित धार ।
विपरीत [1]लखण लखि एह, तामें कछु नहि संदेह ॥११८९॥

मिथ्यात तणी परिपाटी, क्रिया लागे जिन वाटी ।
सो [2]भवभवकी दुखदाई, मानो जिनराज दुहाई ॥११९०॥

दोहा

चैत्र-असित आठै दिवस, जाय सीतला थान ।
गीत विविध वादित्रजुत, पूजे मूढ अयान ॥११९१॥

भाष्यो रोग मसूरिया, जिन श्रुत वैद्यक मांहि ।
करवि कांकरा एकठा, धरो थापना आंहि ॥११९२॥

सोरठा

लखो बडाई एह, वाहन गदहो तासको ।
लहै हीन पद जेह, जो लघु नरहि चढाइये ॥११९३॥

दोहा

बालक याही रोगतै, मरे आव जिह छीन ।
जाकी दीरघ आयु है, [3]सो मारे न किसीन ॥११९४॥

छोड देते हैं, स्नानके दिन सब स्नान करते हैं, शरीर पर उज्ज्वल वस्त्र धारण करते हैं, सम्बन्धियोंके घर जाकर जुहारु करते हें और हित प्रकट करते हुए घूमते हैं । ग्रन्थकार कहते हैं कि यह सब विपरीत लक्षण है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । जिनमार्गमें तो यह मिथ्यात्वकी ही परिपाटी मानी जाती है। यह मिथ्या परिपाटी भवभवमें दुःख देने वाली है ऐसा जिनराजका कथन है ॥११८७–११९०॥

चैत्र सुदी अष्टमी के दिन शीतला माताके स्थान पर जाते हैं, और अज्ञानी मूर्खजन गीत तथा नाना प्रकारके बाजोंके साथ पूजा करते हैं । वैद्यक ग्रन्थोंमें जिनेन्द्र भगवानने जिसे मसूरिया रोग कहा है उसे अज्ञानी जन देवीका प्रकोप मानते हैं । बहुतसे कंकर एकत्रित कर उसमें शीतला देवीकी स्थापना करते हैं। उसका वाहन गदहा मानते हैं यह प्रशंसाका रूप देखो। लोकमें तो जो हीनाचारी होता है उसे ही गदहे पर चढाया जाता है ॥११९१–११९३॥ जिसकी आयु क्षीण हो गई है वही बालक इस रोगसे मरता है। इसके विपरीत जिसकी दीर्घ आयु है

---

१ चलन न० स० २ भवभवमें स० ३ मरे न ताकी सीन स०

सोरठा

प्रगट भई कलिकाल, इह मिथ्यातकी थापना ।
जे जैनी सुविशाल, याहि न मानै सर्वथा ॥११९५॥
मेले जे नर जांहि, निंद्य गीत सुनकै [1]सुखी ।
टका गांठिका खांहि, पाप उपावै अधिक वे ॥११९६॥

गीता छन्द

जे चैत वदि पडवा थकी, गणगौरिकी पूजा सजे,
परभाति लडकी होय मेली, गीत गावें मन रुचे;
माली तणी बाडी पहुँच रु फूल दो वहलें करो,
हरषाय मन उछाह करती आयहै ते निज घरो ॥११९७॥
पूजै तहाँ तिह दिवस सोलह फूल दूब चढायके,
पाछे बनावे हेत धरि गण-गौरि गारि अणायके;
ईश्वर महेश्वर करे मूरति आंखि कौडीकी करें,
[2]देखो बडाई नजर इम हो चित्रकी अयना धरें ॥११९८॥

नाराच छंद

बणाय तीजकों गुणो चढाई पूजिकें सही,
बडी तिया रु कन्यकाई कंतव्रत्तको गही;
करे मिठान्न भोजना अनेक हर्ष मानि है,
सुहाग भाग वर्तनाम जोषिता बखानि है ॥११९९॥

उसके कुछ नहीं होता। कलिकालमें ही यह मिथ्यात्वकी स्थापना चल पडी है। जो जैनधर्मके दृढ श्रद्धानी हैं वे इस मिथ्यात्वको सर्वथा नहीं मानते। जो मनुष्य शीतलाके मेलेमें जाते हैं वे वहाँके गीत सुन कर सुखी नहीं होते किन्तु गाँठका पैसा खा कर अधिक पापका उपार्जन करते हैं ॥११९४–११९६॥

कितनी ही स्त्रियाँ चैत्र सुदी पडवाके दिन गणगौरीकी पूजा करती हैं। प्रभात होते ही लड़कियाँ एकत्रित हो कर मनचाहे गीत गाती हैं, मालीके बगीचेमें जाकर फूल माँगती हैं, अपने मनमें आशा रख कर बडे हर्षसे उत्सव करती है, सोलह दिन तक फूल और दूब चढ़ा कर पूजा करती है। पश्चात् हितकी भावनासे गणगौरीकी मूर्ति गारेसे बनाती हैं, गीत गाती हैं, ईश्वर–महेश्वर–शंकरकी मूर्ति बनाती है और उसमें कौडीकी आँख लगातीं है, यह बडाईकी विडम्बना देखो ॥११९७–११९८॥ चैत्र सुदी तीजको पूजाकर गुणा—प्रेशनसे बना हुआ गोलाकार

---

१ खुशी ख० २ देखों महंताई नजर यहि भांति तसु पायन धरे स०

गीता छंद

गणगोरिकी पूजा किए जो, आयु पतिकी विस्तरे,
तो लखहु परतछि आयु छोटी पाय मानव क्यों मरे ?
कन्या कुंवारीपणा ही तें तास पूजा आचरें,
बारह वरषकी होय विधवा, क्यों न तसु रक्षा करे ? ॥१२००॥

साहिब तणी जा करै सेवा दिवसि निशि मन लायके,
धिक्कार तसु साहबपणो, कछु दिना सेव करायकै;
दायक सुहागनि बिरदको गहि, सकति तसु अतिहीनता,
सेवा करंती बाल विधवा होय लहि पद-हीनता ॥१२०१॥

त्रोटक छंद

सिगरे नर नारि इहैं दरसे, धरि मूरखता फिरि कै परसे ।
कछु सिद्धि लहै नहिं तास थकी, तिहतै तजिए तसु पूजनकी ॥१२०२॥

गीता छन्द

भूषन वसन पहिराय बहु विधि, अधिक तिय मिलिकै गही,
ले जाइ पुरसे निकसि बाहर पहुँचि है जल तीर ही;

पक्वान्न विशेष चढाती है। सयानी लड़कियाँ उत्तम पति प्राप्त करनेके लिये इस व्रतको लेती है, अनेक प्रकारका मिष्टान्न भोजन करती है तथा स्त्रियाँ अपना सौभाग्य स्थिर रखनेके उद्देश्यसे इसे ग्रहण करती है। लड़कियाँ इसे कान्तव्रत मान कर ग्रहण करती है और स्त्रियाँ इसे सौभाग्यव्रत मान कर धारण करती है ॥११९९॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि गणगौरीकी पूजा करनेसे यदि पतिकी आयु बढ़ती है तो प्रत्यक्ष देखो, छोटी आयुमें मनुष्य क्यों मरते हैं ? कन्याएँ कुँवारीपनसे ही गणगौरीकी पूजा करती हैं फिर बारह वर्षकी उम्रमें ही विधवाएँ क्यों हो जाती है ? गणगौरी उनकी रक्षा क्यों नहीं करती ? ॥१२००॥ स्त्रियाँ मन लगा कर जिस साहिबकी रातदिन सेवा करती हैं वह साहिब कुछ दिन सेवा कराकर तथा मैं सौभाग्यको देने वाला हूँ इस प्रकारके बिरुद—ख्यातिको धारण करके भी बाल–विधवाओंकी रक्षा नहीं करता उसके साहिबपनेको धिक्कार है, यह उसके पदकी हीनता है ॥१२०१॥ यद्यपि सब स्त्री–पुरुष यह स्वयं देखते है तो भी अज्ञान-वश वही काम बार बार करते जाते हैं। जिसकी पूजासे कुछ सिद्धि नहीं होती उसकी पूजा छोड़ देना चाहिये ॥१२०२॥ उस गणगौरीको नाना प्रकारके वस्त्राभूषण पहिनाकर बहुत–सी स्त्रियाँ

गावें विनोद अनेक [1]विनरी नीरमें तसु डारहीं;
अति हास्य करती हरष धरती आप गेह सिधार ही ॥१२०३॥

दोहा

इह प्रभुता सब देखि कै, गौरी ईश महेश ।
[2]वाकूं जलमें खेपतें, डर न कियो लवलेश ॥१२०४॥

रहित सकत तिहि देखिये, करिवि थापना मूढ ।
महा मिथ्याती जान तिन, धारे दोष अगूढ ॥१२०५॥

सोरठा

इन पूजै फल येह, कुगति अधिक फल भोगवै ।
यामें नहि सन्देह, जैनीको इह योग्य नहि ॥१२०६॥

दुर्लभ नरभव पाय, जैन धरम आचार जुत ।
ताको चित विसराय, पूज करै गण-गौरिकी ॥१२०७॥

सो मिथ्यातको मूल, त्रिविधि तजौ तिन सुखद लखि ।
होय धरम अनुकूल, तातै भव भव सुख लहै ॥१२०८॥

मिलकर नगरसे बाहर ले जाकर जलके निकट पहुँचती है, वहाँ अनेक प्रकारकी विनरी (गीत) गाती है तथा उस गणगौरीको पानीमें डाल देती हैं। पश्चात् हर्षित होती हुई अपने अपने घर वापिस आती हैं ॥१२०३॥ गौरी और महेशकी इतनी प्रभुता देखकर भी लोग उन्हें पानीमें डालते हुए थोड़ा भी भय नहीं करते यह आश्चर्यकी बात है। शक्ति रहते उनका दर्शन करते रहना चाहिये था। इससे सिद्ध है कि अज्ञानी जन ही उनकी स्थापना करते हैं। स्थापना करने वाले महा मिथ्यात्वी हैं वे प्रकट ही अनेक दोषोंको धारण करते हैं ॥१२०४–१२०५॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि गणगौरीकी पूजासे प्राप्त होने वाला इस लोक सम्बन्धी फल तो यही है कि कुगतिमें अधिक फल भोगना पडता है; इसमें कुछ भी संदेह नहीं है इसलिये जैनी जनोंको यह पूजा योग्य नहीं है। जैनधर्म सम्बन्धी आचार सहित दुर्लभ मनुष्यपर्याय प्राप्त करके भी लोग उसे भुला कर गणगौरीकी पूजा करते हैं यह मिथ्यात्वका मूल है इसका मन, वचन, कायासे त्याग करो। ऐसा करनेसे ही सुखदायक धर्म अनुकूल होगा और भवभवमें उससे सुखकी प्राप्ति होगी ॥१२०६–१२०८॥

---

१ जुवती न० स० २ वाय तलामें खेपते स०

सवैया इकतीसा

चौवडा बराही खेतपाल दुरगा भवानी,
पंथवार देव ईंट थापना बखानिये,
सत्तनामी नाभिगं ललितदास पंथी आदि,
नाना परकार भेष परगट जानिये;
झाला कलवानी डाल [1]भेव दीप वो मुषाकी,
मंत्रते उतारे भूत डाकिनी प्रमानिये;
एतो विपरीत घोर थापना मिथ्यात जोर,
अहो जैनी इन्हें कष्ट आए हू न मानिये ॥१२०९॥

सोरठा

पीपर तुरसी जान, एकेंद्री परजाय प्रति ।
तिनहि देवपद मान, पूजै मिथ्यादृष्टि जे ॥१२१०॥

सवैया एकतीसा

ख्वाजे मीर साह अजमेर जाकी जाति बोलै,
पुत्रके गलेमें बांधी घाले चाम पाटकी;
मेरे सुत जीवे नाहि यातें तुम पाय अहो,
सात वर्ष भये नीत पायनते वाटकी;
जलाल दीसा पंच पीर और बडी पीरनकी,
जाय करे [2]चूरिमो कुबुद्धि जिनराटकी;
[3]फात्या पढवावै जिंदा दरवेशको जिमावै,
इह कलिकाल रीति मिथ्यातके थाटकी ॥१२११॥

चामुण्डा, वराही, क्षेत्रपाल, दुर्गा, भवानी, पन्थवार देव आदि कुदेव कहलाते हैं । सत्तनामी, नाभिग, ललितदास, पंची आदि नाना प्रकारके मत संसारमें कुधर्मरूपसे प्रकट हैं, झाला कलवानी, डाल, भेव, दीप, मूषा आदिके मंत्रोसे डाकिनी पिशाची आदिको उतराना, झाड़कर दूर करना-कराना, ये सब मिथ्यात्वके प्रभावसे होते हैं इसलिये हे जैनी जनों ! हे वीतराग सर्वज्ञ देवके उपासक श्रावकजनों ! कष्ट आने पर भी इन कुदेव आदिककी उपासना नहीं करो ॥१२०६॥ पीपल और तुलसी एकेन्द्रिय वनस्पति कायिक जीव हैं । जो इन्हें देव मान कर पूजते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं ॥१२१०॥ अजमेरके ख्वाजा मीर साहबकी मान्यता कर कोई पुत्रके गलेमें चर्मका तावीज बाँधते हैं, मेरे पुत्र जीवित नहीं रहते इसलिये तुम्हारे पास आये

१ मेलि दीप चौमुखाकी २ पूजा जे कुबुद्धि जीतराव्की स० ३ फातिहा

दोहा

तुरक आनके देवको, मानत नाहि लगार ।
हिन्दू जैनी मूढमति, सेवै वारम्वार ॥१२१२॥

या समान मिथ्यात जग, और नहीं है कोय ।
दुखदायक लखि त्यागिहै, महाविवेकी सोय ॥१२१३॥

सवैया

भादों वदि नौमी दिन गारिको बनाय घोडो,
तापरि चढावै चहुं वाण गोगो नाम ही;
छाबडीमें मेलि कुम्भकारि तिय कर धर,
लोभतै पुजावत फिरै है धामधाम ही;
ताकों सुखदाई जानि मूढमति मानि ठानि,
देत दान पाय नमि सेवे गाम गाम ही;
मिथ्यातकी रीति एह करै निरबुद्धी जेह,
कुगति लहै है जेह वांका दुख पावही ॥१२१४॥

भादों वदि बारस दिवस पूजै वछ गाय,
रातिको भिजोवे नाज लाहणके काम ही;
निकसै अंकुरा तिनि मांहि जे निगोद रासि,
हरष अधिक धारि बांटै ठाम ठाम ही;

हैं, इत्यादि कह कर वहाँका विधिविधान करवाते हैं, फातिहा पढ़वाते हैं और जिंदा दरवेशको जिमाते हैं यह सब मिथ्यात्वके उदयसे प्रचलित कलिकालकी रीति है ॥१२११॥ ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि तुरक (मुसलमान) दूसरोंके देवताको नहीं मानते है परन्तु अज्ञानी हिन्दू और जैन दूसरोंके देवताकी बार बार सेवा करते हैं । संसारमें इसके समान अन्य मिथ्यात्व नहीं हैं। इसलिये जो महा विवेकी हैं वे इन देवी-देवताओंको दुःखदायक जान कर इनका त्याग करते हैं ॥१२१२-१२१३॥

भादों वदी नवमीको मिट्टी का घोड़ा बना कर उस पर गोगो नामक असवार को चढ़ाते हैं पश्चात् बावडीमें डाल देते हैं । कुम्हारकी स्त्री इस सवार सहित मिट्टीके घोडेको हाथमें लेकर लोभवश घर घर पुजाती फिरती है । अज्ञानी लोग उसे सुखदायी जान कर दान देते है, गाँव गाँवके लोग चरणोंमें नमस्कार कर उसकी सेवा करते हैं । जो निर्बुद्धि मनुष्य मिथ्यात्वकी इस रीतिको करते हैं वे दुर्गतिको प्राप्त कर तीव्र दुःख पाते है ॥१२१४॥ कितने ही लोग भादों वदी द्वादशीको गाय-बछडेकी पूजा करते है, वितरण करनेके लिये रातमें अनाजको

जीवनिको नाश होय मानत त्यौहार लोय,
कैसे सुख पावे सोय पशु पूजै नाम ही;
महा अविचारी मिथ्याबुद्धिचारी नरनारी,
ऐसी क्रिया करें श्वभ्र लहै दुखधाम ही ॥१२१५॥

दोहा

हलदमाहिं रंग सूतको, गाज लेत हैं तेह ।
सुणै कहानी खोलतै, रोट करत है तेह ॥१२१६॥
धोक देय पूजै तिसे, कहि सुखदाई एह ।
नाम ठाम नहि देवको, भवभवमें दुख देह ॥१२१७॥

छन्द चाल

नारी जो गर्भ धरे है, बालक परसूत करे है ।
जनमें बालक जिहि वार, तसु [1]योलिहि लेत उतार ॥१२१८॥
केउनके ऐसी रीति, गावै तिय मन धर प्रीति ।
गाडै चित अति हरषाई, ते ओलि घाट ले जाई ॥१२१९॥
[2]केऊ रोटीके मांही, [3]गाडे के देत नखाहीं ।
ता मांही जीव अपार, गाडे सो हीणाचार ॥१२२०॥

भिगो देते हैं। जब उनमें अंकुर निकल आते हैं तब जगह जगह उस अनाजको हर्षसे बाँटते है। वे अंकुर निगोद राशिके जीव है। जिस क्रियासे जीवोंका नाश होता है उसे लोग त्यौहार मानते है। कवि कहते है कि पशुकी पूजा करनेसे सुख कैसे प्राप्त हो सकता हैं? अत्यन्त अविचारी और मिथ्याबुद्धिवाले जो नरनारी इस प्रकारकी क्रियाओंको करते हैं वे दुःखके स्थान स्वरूप नरकको प्राप्त होते है ॥१२१५॥ कितने ही लोग हलदीमें सूतको रंग कर उसका पिण्ड बना लेते हैं, उसे धोक देकर पूजते है, कथा कराते है, बडा रोट बनवा कर उसे चढ़ाते है और कहते है कि यह इसी लोकमें सुखदायक है। ग्रंथकर्ता कहते हैं कि इस देवका न कोई नाम है और न ही कोई स्थान है। वह भवभवमें दुःख देने वाला है ॥१२१६–१२१७॥

स्त्रियाँ गर्भ धारण कर बालकको जन्म देती है सो जिस समय बालक जन्म लेता है उस समय उसकी नाभिनाल उतारती है। कहती हैं कि ऐसी कुल परम्परा हैं। स्त्रियाँ मिल कर बडी प्रसन्नतासे गीत गाती हैं, चित्तमें अत्यधिक हर्षित होती है, और उस नाभिनालको कोई घरमें गाड़ती है और कोई जलाशयके घाट पर पानीमें डाल देती है। गाड़नेमें अपार जीवोंकी हिंसा होती है इसलिये गाड़ना हीन आचार है। जो गाड़ते हैं वे अदयाके अधिकारी

---

१ णालि हि न० २ केऊ उकरडी न०, केउ जु रोटीके स० ३ गाडे के देय बहाई स० नखाही न०

ते अदयाके अधिकारी, पावैं दुरगति दुख भारी ।
जिनके करुना मनमांही, ताकों दे दूरि नखाहीं ॥१२२१॥
दस दिनको ह्वै जब बाल, सूरज पूजै तिह काल ।
लागै तसु दोष मिथ्यात, जिन मारग ए नहिं बात ॥१२२२॥
तीन्हे जब न्हवण करै है, जल थानिक पूजन जैहैं ।
जल जीवनको भंडार, एकेन्द्री त्रस अधिकार ॥१२२३॥
जैनी जिनके घर मांही, संका चितमांहि धराहीं ।
जलथानक जाय न दूजै, घरमांहि परहडी पूजै ॥१२२४॥
ताको है दोष महन्त, ततक्षिण तजिये गुणवन्त ।
दिन तीस तणो ह्वै बाल, जिनमारगमें इह चाल ॥१२२५॥
वसु दरव मनोहर लेई, चैत्याले गमन करेई ।
ले बालक अंक मझारी, तिन साथ चलै बहु नारी ॥१२२६॥
गावै जिनगुण हरषंती, इम मंदिर जिन दरसंती ।
भगवंत चरण सिर नाय, पुनि नृत्य रचै बहु भाय ॥१२२७॥
वाजित्र विविधके बाजै, जानौ घन अंबर गाजै ।
[1]जिन भाव हरखि धरि सेवै, तसु जनम सफलता लेवै ॥१२२८॥

हैं अर्थात् दया रहित हैं तथा दुर्गतिमें भारी दुःख प्राप्त करते हैं । जिनके मनमें करुणा भाव है वे उस नालको दूर फिकवा देते हैं । जब बालक दस दिनका हो जाता है तब सूर्यकी पूजा करती हैं, इससे उन्हें मिथ्यात्वका दोष लगता है । जैन मार्गमें ऐसी बात नहीं होती ॥ १२१८–१२२२॥ उन प्रसूता स्त्रियोंको जब स्नान कराती हैं तब जलस्थान, कूवा आदिकी पूजाके लिये जाती है । जल, जीवोंका भंडार है, वह एकेन्द्रिय तो स्वयं है ही, त्रस जीवोंकी भी उसमें अधिकता रहती है । जैनी लोग, जो अपने मनमें कुछ शंका रखते हैं वे किसी अन्य जलस्थान पर नहीं जाते परन्तु घरमें ही परहंडी (जल रखनेका स्थान) की पूजा कर लेते हैं परन्तु यह सब भी दोष है। गुणवान मनुष्योंको यह कार्य तत्काल छोड़ देना चाहिये । जिनमार्गमें तो यह रीति है कि जब बालक तीस दिनका हो जावे तब घरके लोग सुन्दर अष्टद्रव्य लेकर चैत्यालय जाते हैं, बालकको गोदमें लेते हैं तथा बहुत सी स्त्रियाँ साथ चलती हैं वे भगवान जिनेन्द्रके गुण गाती हैं, इस तरह मन्दिरको देखती हुई बहुत हर्षित होती है । भगवानके चरणोंमें शिर झुकाकर नमस्कार करती हैं, बहुत प्रकारके नृत्य करती है ॥१२२३–१२२७॥ नाना प्रकारके बाजे बजते हैं उससे ऐसा जान पडता है मानों आकाशमें मेघ गरज रहे हैं ।

१ जिनराज भाव धरि सेवे न० स०

श्रुत गुरु पूजै बहु भाई, जिनकी थुतिमें मन लाई ।
भाषै अति उत्तम बैन, सब जन मनको सुख दैन ॥१२२९॥

दोहा

जिन श्रुत गुरु पूजा पढै, आवे अपने गेह ।
यथा सकति अरथी जनहि, दान हरषतें देय ॥१२३०॥

सनमानै परिवारकों, यथायोग्य परवान ।
जैनी इह विधि पुत्रको, जनम महोच्छो ठाम ॥१२३१॥

आठ वरषलों पुत्र जो, करत पाप विस्तार ।
तास दोष पितु मातुको, ह्वै है फेर न सार ॥१२३२॥

यातें सुनि निज [१]कानमें, राखें जे मतिमान ।
शाल पढावे लाभ लखि, ह्वै तब विद्यावान ॥१२३३॥

छन्द चाल

जब ब्याह करनकी वार, किरिया जे ह्वै अविचार ।
प्रथमहि जब लगन लिखावै, सज्जन दस बीस बुलावै ॥१२३४॥

चावल दे जिन कर मांहीं, पूजा सब लगन कराही ।
करि तिलक विदा तिन कीजे, मिथ्यात महा सु गिनीजे ॥१२३५॥

जिनदेवकी हर्षभावसे उपासना करती है उसीसे अपने जन्मकी सफलता मानती है, शास्त्र और गुरुकी भी पूजा करती हैं, जिनेन्द्र देवकी स्तुतिमें मन लगाती हैं, सब मनुष्योंको सुख देंने वाले उत्तम वचन बोलती हैं । इस प्रकार देव, शास्त्र, गुरुकी पूजा पढ कर अपने घर आती हैं और इच्छुक जनोंको हर्षित होकर शक्तिके अनुसार दान देती है ॥१२२८–१२३०॥ अपने परिवारके लोगोंका यथायोग्य सन्मान करती हैं । जैनी, इस प्रकार अपने पुत्रजन्मका महोत्सव करते हैं । आठ वर्षकी अवस्था तक यदि पुत्र कोई पाप करता है तो उसका दोष मातापिता को लगता है इसमें अन्तर नहीं है, इसलिये बुद्धिमान मनुष्य पुत्रको अपने अधिकारमें रखते हैं और लाभ देखकर उसे पढाते है जिससे वह विद्यावान बनता है ॥१२३१–१२३३॥

जब विवाह करनेका समय आता है तब कितनी ही क्रियाएँ विचार रहित होती है । जैसे पहली क्रिया हैं जब लग्न लिखाते है तब वे दश बीस सज्जनोंको बुलाते हैं । जिनके हाथमें चावल होता है वे सब लग्नकी पूजा करते हैं, अतिथियोंको तिलक कर विदा करते हैं इसे महान मिथ्यात्व जानना चाहिये ॥१२३४–३५॥ पश्चात् दिवाल पर गणेशजीकी स्थापना करते हैं तथा

---

१ गोदमें स०, कारमें ग०

मांडै फिर भीत विनायक, कहि सिद्धि सकल सुखदायक ।
नर देह वदन तिरयंच, सो तो सिधि देय न रंच ॥१२३६॥

तातै जैनी जो होई, पूजै न विनायक सोई[1]।
साजी अवटावै जेह, पापड करणे को तेह ॥१२३७॥

जल तीन चार दिन तांई, राखै नहि संक धराही ।
वसु पहर गये तिस मांही, सनमूर्छन जे उपजाही ॥१२३८॥

मांग्यो घर घर पहुंचावे, बहुतो सो पाप बढावै ।
वसु जाम मांहि वर नीर, वरतै जे बुद्धि गहीर ॥१२३९॥

उपरांति दोष अति होई, मरयाद तजो मति कोई ।
अरु बडी करणके तांई, भिजवावै दाल अथाई ॥१२४०॥

सो दाल धोय तुष नाखे, बहु बिरियां लगन न राखै ।
घटिका दुयमें उसमांहीं, सन्मूर्च्छन त्रस उपजाहीं ॥१२४१॥

यातैं भविजन मन लावे, तसु तुरतहि ताहि सुकावे ।
धोवणको पानी जेह, नाखे बहु जतन करे य ॥१२४२॥

मानते हैं कि ये सिद्धिकारी तथा सकल सुखदायक है । परन्तु यह विचार नही करते कि गणेशजीका शरीर मनुष्यका है और मुख तिर्यंचका है, ये किस प्रकार सिद्धि दे सकते हैं ? इसलिये जो जैनधर्मके प्रतिपालक हैं वे जैन विनायक–गणधर देवकी उपासना करते हें । तदनन्तर पापड़ बनवानेके लिये साजी (खार) को ओंटाते हैं और उस साजीके पानीको तीन-चार दिन तक रक्खे रहते हैं, इसमें भय नहीं करते । आठ प्रहर बीत जाने पर उसमें संमूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हें । यदि कोई उस साजीके पानीको माँगता है तो उसे घर घर पहुँचाते हें और बहुत पापका उपार्जन करते हैं । जो बुद्धिमान मनुष्य हैं वे उस साजीके पानीका आठ प्रहर तक ही उपयोग करते हैं क्योंकि उसके बाद उसमें अत्यन्त दोष लगता है । तात्पर्य यह है कि किसीको मर्यादाका भंग नहीं करना चाहिये । बड़ियाँ बनवानेके लिये लोग बहुतसी दाल भिगोते हैं और उस दालको धोकर छिलके निकालते हैं परन्तु बहुत समय तक उसे नहीं रखना चाहिये क्योंकि उसमें दो घडीके बाद संमूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते है ॥१२३६–१२४१॥ इसलिये भव्यजनोंका मन यदि बडियाँ बनवानेका है तो दालको शीघ्र ही सुखा ले तथा दाल धोनेका पानी बहुत यत्नसे बिखेर दें । पानी बिखेरते समय इस बातका ध्यान रक्खा जावे

---

१ इसके आगे न० प्रतिमें यह पंक्ति अधिक है—पूजे तो महा उतपात, तातें है धर्म विघात ।

वसु सरद रहै नहि जातै, वीखरि वा नांखै यातैं ।
सांझै जो दालि पिसावै, वासन भरि राति रखावै ।।१२४३।।
[1]उपसावे अधिक खटावै, उपजै त्रस पार न पावै ।
फुनि लूण मसाला डारै, करतै मसले बहु वारै ।।१२४४।।
इम जीवनि नास करंती, मनमांही हरष धरंती ।
निज पर तिय बहुत बुलावै, तिनपैं ते बडी दिवावै ।।१२४५।।
सो पाप अनेक उपावै, कहते कछु ओर न पावै ।
करुणा जाके मनि आवे, सो इह विधि बडी निपावे ।।१२४६।।
उनहै जल दालि भिजोवै, प्रासुक जलतैं फिर धोवे ।
किरियाको दोष न लावै, सो दिनमें कलौ करावे ।।१२४७।।
ततकाल बडी तसु देह, उपजावे पुण्य न छेह ।
स्याणों जन अवर अयाणौ, दुहु ब्याह करे इह जाणौ ।।१२४८।।
किरियामें भेद अपार, इक सुख दे इक दुखकार ।
जाके करुणा मनमांहीं, अविवेक न क्रिया कराहीं ।।१२४९।।

कि वह जल्दी सूख जावे, उसकी शरद—आर्द्रता न रहे । कितनी ही स्त्रियाँ संध्याके समय दाल पिसवाती हैं और उसे बर्तनमें भर कर रात भर रखवे रहती हैं इससे उसमें खटास आ जाती है तथा अनन्त त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं । उस पिसी हुई दालमें नमक तथा मसाला मिला कर हाथसे उसे बार बार मसलती है । इस तरह जीवोंका घात करती हुई मनमें हर्षित होती हैं । अपने घर बहुतसी स्त्रियोंको बुलाती हैं और उनसें बड़ियाँ दिलवाती हैं । इस क्रियासे इतना अधिक पापका संचय करती हैं कि कहते हुए उसका अन्त नहीं आता । जिनके मनमें दयाका भाव जाग्रत है वे इस विधिसे बड़ियाँ बनवावें ।।१२४२–१२४६।।

उष्ण जल—प्रासुक जलमें दालको भिगोवें और प्रासुक जलसे ही धोवें । क्रियाका कोई दोष न लगे इस भावनासे दिनमें ही उसे पिसावे तथा तत्काल ही उसकी बड़ियाँ दिलावें । इस प्रकारकी क्रियासे पुण्यका नाश नहीं होता है । ज्ञानी और अज्ञानी—दोनों ही प्रकारके मनुष्य विवाह रचाते हैं परन्तु उनकी क्रियामें बहुत भेद—अन्तर रहता है । एककी क्रिया सुख देती है और दूसरेकी क्रिया दुःखदायक होती है । तात्पर्य यह है कि जिसके मनमें करुणा—दया रहती है वह अविवेकपूर्ण क्रिया नहीं कराता ।।१२४७–१२४९।। छाणा—गोबरके उपलों का गाड़ा यदि आता है तो अज्ञानी जन उसीकी पूजा करते हैं। बढ़ईसे लकडी खम्भ बनवाती

---

१ उपसावह न० उपजे बहु स०

छाणाको गाडौ आने, अविवेकी पूजा ठानै ।
लकडीको थंभ बनावे, ताकों तिय पूजण आवे ॥१२५०॥

गावंती गीत घनेरा, जो जो जिह थानक केरा ।
भेंटी पूजै करि टीको, कारण लखि सब अघ ही को ॥१२५१॥

संकडी राखी दिन ऐ है, तिय चाक पूजणे जेहैं ।
निसिको डोरे बंधवावै, परियण सज्जन मिलि आवै ॥१२५२॥

तह पूज विनायक करिके, रोली पूजैं चित धरिके ।
अरु बारंबार विनायक, पूजै जानै सुखदायक ॥१२५३॥

इन आदि क्रिया विपरीति, करि है मूरख धरि प्रीति ।
मिथ्यात भेद नहि जाने, अघको डर मन नहिं आने ॥१२५४॥

अघतै ह्वै नरक बसेरा, [1]ओर न आवे दुख केरा ।
यातें सुनि बुधजन एह, मिथ्यात क्रिया तजि देह ॥१२५५॥

ताते भव भव सुख पवै, आगम जिनराज बतावै ।
यातें सुख वांछक जीव, आज्ञा जिन पालि सदीव ॥१२५६॥

करि हैं जे क्रिया विवाह, सिव मत माफिक यह राह ।
मिथ्यात दोष इह जातें, जैनीको वरजी यातें ॥१२५७॥

हैं तो स्त्रियाँ मिल कर पूजाके लिये जाती हैं। जहाँ जैसा चलन है वहाँ वैसे गीत गाती हैं। टीका लगा लगा कर आपसमें भेंट करती हैं सो यह सब पापका ही कारण हैं। घर पर रक्खी हुई सकडी–छोटी गाडी यदि घर वापिस आती है तो स्त्रियाँ उसके चाकोंकी पूजा करती हैं और रातमें उसके बैलोंको रस्सीसे बँधवा देते हैं। कुटुम्ब परिवारके लोग मिल कर आते हैं, गणेशकी पूजा करते हैं, रोली लगाते हैं, इस प्रकार सुखदायक जान कर बार बार गणेशकी पूजा करते हैं इत्यादि बहुतसी विपरीत क्रियाएँ अज्ञानी जन प्रीति पूर्वक करते हैं। वे मिथ्यात्वके भेद नहीं जानते तथा मनमें पापका भय नही रखते। पापके कारण उस नरकमें निवास होता है जहाँ दुःखोंका अन्त नहीं है, इसलिये हे विद्वज्जनो ! सुनो, मिथ्यात्व की क्रियाओंको छोडो, इन मिथ्यात्वकी क्रियाओंको छोडनेसे भवभवमें सुख प्राप्त होता है ऐसा आगममें जिनदेवने बतलाया है। अतएव सुखके इच्छुक जीवोंको जिनाज्ञाका सदा पालन करना चाहिये ॥१२५०–१२५६॥

इनके सिवाय विवाहकी जो क्रिया करते हैं वह भी शिव मतके अनुसार ही करते हैं।

---

१ भुगते बहु दुख घनेरा

पूरव दिसि ज्योतिष जैन, कछुयक उद्योत सुख देन ।
[1]रहियो तिनि माफिक ब्याह, जैनी धरि करे उछाह ॥१२५८॥

तामें मिथ्या नहि दोषे, सिवमत विधि हूँ नहि पोषे ।
जैनी जो श्रावक पंडित, जिनमत आचार जु मंडित ॥१२५९॥

ते ब्याह करावें आई, मनमें शंका न धराई ।
तिनहूँ स्यों आपसमांही, सुत बेटी सगपन थांही ॥१२६०॥

प्रथमहि जे ब्याह सँचे है, जिनमंदिर पूज रचै हैं ।
वाजिंत्र अनेक बजावै, युवतीजन मंगल गावै ॥१२६१॥

कन्या वर को ले जाहीं, जिन चरणनि नमन कराहीं ।
जिन पूजि रु आवे गेहैं, पीछे विधि एम करे हैं ॥१२६२॥

सज्जन परिवार संतोषे, [2]दुखित भुखित जन पोषे ।
जिन मत विधि पाठ प्रमाणै, अपराजित मंत्र वखाणै ॥१२६३॥

[3]वर कन्या दोहुं कर जोड, फेरा कराय धरि कोड ।
समधीजन असन करावे, दुहुं तरफहि हरष बढावे ॥१२६४॥

इसमें मिथ्यात्वका दोष आता है इसीलिये जैनियोंके लिये इसका निषेध किया गया है। पूर्व दिशामें कुछ ज्योतिषका प्रकाश है अर्थात् ज्योतिष विद्याके जानकार विद्यमान हैं उन्हीके बतलाये अनुसार जैनी लोगोंको उत्साहपूर्वक विवाह करना चाहिये। इससे मिथ्यात्वका दोष नहीं लगेगा और शिवमतकी विधिका पोषण भी नहीं होगा। जो जिनमतके आचारसे सुशोभित जैन श्रावक पण्डित हैं वे विवाह विधि करानेके लिये आते हैं तो उसमें शङ्का नहीं करना चाहिये, उनसे ही बेटा-बेटीका सम्बन्ध कराना चाहिये ॥१२५७-१२६०॥ जो विवाह करते हैं वे सर्व प्रथम जिनमन्दिरमें पूजा रचाते हैं, अनेक प्रकारके वादित्र बजाते हैं, स्त्रियाँ मंगलगीत गाती है, कन्या और वरको मन्दिर ले जाती हैं, उनसे जिनेन्द्र भगवानके चरणोंमें नमस्कार कराती है, पूजा कराती हैं; पश्चात् घर आकर इस प्रकारकी विधि करती हैं, सज्जन तथा परिवारके लोगोंको संतुष्ट करती हैं, दुःखी तथा भूखे मनुष्योंका पोषण करती हैं, जिनमतमें जो पाठ बताये गये है उन्हें प्रमाण मान कर पढाती है, अपराजित मन्त्रका उच्चारण कराती है, वर कन्याका हाथ जुडवा कर उनसे फेरा कराती है, फेरेके बाद उन्हें गोदमें बैठाती हैं, समधी जनोंको भोजन कराती हैं, दोनों ओर हर्षकी वृद्धि होती है, अपनी शक्तिके अनुसार कन्या

---

१ रचिये २ बहु दुखित जननको पोषें स० ३ वरकन्या दोहु कर जोरैं, फिरि आवहि घर वह कोरे स०

देवो निज सकति प्रमाण, कन्या वर भूषण दान ।
इह विधि जे ब्याह कराहीं, मिथ्यात न दोष लगाहीं ॥१२६५॥

गुरु देव धरम परतीति, धारी जनकी इह रीति ।
तिनकों जस है जगमाहीं, दूषण मिथ्यात तजाहीं ॥१२६६॥

दोहा

श्री हणुवन्त कुमारकी, मूढनि धरि चित प्रीति ।
गाम गामकी थापना, महा घोर विपरीति ॥१२६७॥

चाल छंद

मूरति पाषाण घडावै, तसु ऐसे अङ्ग बनावै ।
मानुषकै-से कर पाय, बन्दरको-सौं मुख थाय ॥१२६८॥

लंबी पूँछ जु अधिकाई, मूरति इस भांति रचाई ।
कहुं इक छत्री जु चणावे, कहुं मठि रचिकै पधरावे ॥१२६९॥

कहु चौडे निकटहि गाम, कहु करिकै दूरहि धाम ।
तिन तेल लगावे पूर, चरचै ता परि सिन्दूर ॥१२७०॥

कहिहै तसु खेडा देव, [1]बहु जन तिहँ पूजे एव ।
पापी जन भेद न जानै, जिह आगे अदया ठानै ॥१२७१॥

और वरके लिये आभूषण प्रदान करती है । इस विधिसे जो विवाह कराते है उसमें मिथ्यात्वका दोष नहीं लगता है । देव, गुरु और धर्मकी प्रतीतिको धारण करने वाले लोगोंकी यही रीति है, जगतमें उनका यश फैलता है अतः हे भव्यजनो! मिथ्यात्वका दूषण छोडो ॥१२६१–१२६६॥

हणुमंत कुमारकी स्थापनाका निषेध

अज्ञानी जनोंने चित्तमें प्रीति धारण कर गाँव गाँवमें श्री हणुमंत कुमारकी स्थापना की है जो अत्यन्त विपरीत प्रथा हैं ॥१२६७॥ अज्ञानी जन पाषाणकी मूर्ति बनवाते है और उसके अंग इस प्रकारके बनवाते है । हाथ पैर तो मनुष्यके समान बनवाते है और मुख बन्दरके समान निर्मित कराते है। लम्बी पूंछ भी बनवाते है। इस प्रकारकी मूर्ति बनवा कर कहीं छतरीके नीचे उसे पधराते हैं और कहीं मठ बनवाकर उसमें पधराते है, कहीं खुले आकाशमें ही रखते है। कहीं गाँवके निकट चौडे मैदानमें रखते हैं और कहीं कुछ दूर स्थान पर पधराते है। मूर्ति पर तैल लगाते है तथा सिंदूरका लेप करते हैं। इस मूर्तिको लोग खेड़ादेव अर्थात् गाँवके देवता कहते हैं, अनेक जन उनकी पूजा करते हैं। कितने ही पापी जन इसका भेद नहीं जानते हैं और उसके आगे बलिदान आदि निर्दयताके कार्य भी करते हैं ॥१२६८–१२७१॥

---

१ बहु जन तसु करहै सेवा । स०

चौपाई

जात्री दूर दूर का घणा, आवै पायनिमें तिह तणा ।
जीव वद्ध करि तास चढाय, निहचै ते नर नरकहि जाय ॥१२७२॥
कामदेव हणुमंत कुमार, विद्याधर कुलमें अवतार ।
तीर्थंकर बिनु जग नर जिते, तिह सम रूपवान नहि तिते ॥१२७३॥
[1]बन्दरवंशी खगपति जान, धुजामांहि कपि चिह्न वखान ।
मात अंजना जाकी जानी, पवनंजय तसु पिता वखानी ॥१२७४॥
दादो खगपति नृप प्रहलाद, जैनधर्म धरि चित अहलाद ।
पालै देव गुरु श्रुत ठीक, महाशीलधारी तहकीक ॥१२७५॥
हणुकुमार दीक्षा धरि सार, मोक्ष गये सुख लहै अपार ।
ताको भाषै कपिको रूप, ते पापी पडिहै भवकूप ॥१२७६॥
आनमतीसों कछु न वसाय, जैनी जनसों कहुं समझाय ।
जिन मारगमें भाष्यों यथा, तिह अनुसार चलो सरवथा ॥१२७७॥
गंगा नदी महा सिरदार, जाको जल पवित्र [2]अधिकार ।
जिन पखाल पूजा तिह थकी, करिये जिन आगमयों वकी ॥१२७८॥

उनके चरणोंमें दूर दूरसे अनेक यात्री आते हैं और जीवोंका वध कर उन्हें चढ़ाते हैं। कविवर कहते हैं कि ऐसे हिंसक जीव नियमसे नरक जाते हैं ॥१२७२॥ परमार्थसे हणुमंत तो कामदेव पदके धारक थे। विद्याधरोंके वंशमें उनका जन्म हुआ था। संसारमें तीर्थंकर को छोड़ कर अन्य जितने मनुष्य हैं उनका रूप हनुमंतकुमारके समान नहीं होता ॥१२७३॥ वे वानरवंशी विद्याधरोंके राजा थे। उनकी ध्वजामें वानरका चिह्न था। अंजना उनकी माता थी, पवनंजय उनके पिता थे, विद्याधरोंके अधिपति प्रह्लाद उनके दादा थे। वे जैनधर्म धारण कर हृदयमें परम हर्षित रहते थे, देव शास्त्र गुरुका ठीक ठीक निर्णय कर उनकी श्रद्धा रखते थे, महा शीलधारी थे ॥१२७४–१२७५॥ जो हनुमंतकुमार दिगम्बर दीक्षाको धारण कर मोक्षको प्राप्त हुए तथा अपार सुखके स्थान हुए उन्हें जो वानररूपके धारी कहते हैं वे पापी संसाररूप कूपमें पडते हैं ॥१२७६॥ ग्रन्थकार किशनसिंहजी कहते हैं कि जो अन्यमतावलम्बी है उन पर तो हमारा कुछ वश नहीं चलता; परन्तु जो जैनधर्मके धारक हैं उन्हें समझाकर कहता हूँ कि हे भव्यजनों! जिनमार्गमें हनुमंतकुमारका जैसा रूप कहा गया है उसीके अनुसार मानो और उसी प्रकार चलो ॥१२७७॥

आगे गंगा नदीमें अस्थि विसर्जनका कथन करते हैं : गंगा नदी सब नदियोंमें श्रेष्ठ नदी

१ वानरवंशी स० २ अति सार स०

जैनी श्रावक नाम धराय, हाड रु लावें तिह पितु माय ।
धन्य जनम मानैं जग आप, गंगा घालै माय रु बाप ॥१२७९॥

आनमती परशंसा करें, तिन वच सुनि चित हरषहिं धरें ।
मूढ धरम अघ भेद न लहै, बातुल सम जिम तिम सरदहै ॥१२८०॥

पदम द्रह हिमवन ऊपरी, ता द्रहतै गंगा [1]नीकरी ।
विकलत्रय जलमें नहि होय, बहु दिन रहै न उपजै वोय ॥१२८१॥

यातें याकौ जे मतिमान, उत्तम पानी मानै छान ।
हाड रोम नाखै अघ थाय, अघतें नरकादिक दुख पाय ॥१२८२॥

जिस परजाय तजै ततकाल, और ठाम उपजै दर हाल ।
हाड रु लाए गंगा माहि, कैसे ताकी गति पलटाहिं ॥१२८३॥

जैनी जन तिन शिक्षा एह, जैन विरुद्ध न कीजै तेह ।
ते करिये नहिं परम सुजान, तिम उत्तम गति लहै पयाण ॥१२८४॥

है उसके जलसे जिनेन्द्र भगवानका प्रक्षाल करनेकी बात आगममें कही हैं। जो जैनी 'श्रावक' नाम धारण करके भी उस गंगामें अपने मातापिताकी अस्थियाँ विर्सजित करनेके लिये लाते हैं और अपने जन्मको धन्य मानते हैं उनकी यह अज्ञानकी चेष्टा है ॥१२७८–१२७९॥ अन्य मतावलम्बी अस्थिविसर्जनकी प्रशंसा करते हैं सो उनके वचन सुन कर कोई कोई अज्ञानी जैनी भी चित्तमें हर्षित होकर ऐसा करते हैं सो उनके विषयमें यही कहा जा सकता है कि अज्ञानी लोग धर्म और पापका भेद नहीं जानते, परंतु बातुल–वायुग्रस्त मनुष्यके समान जैसा तैसा श्रद्धान करने लगते हैं ॥१२८०॥ हिमवान पर्वतके ऊपर जो पद्म नामका ह्रद है उसीसे गंगा नदी निकली है। उस गंगाके जलको बहुत दिन तक रखने पर भी उसमें विकलत्रय–त्रस जीव उत्पन्न नहीं होते इसीलिये इसके जलको उत्तम जल माना जाता है ॥१२८१॥ बुद्धिमान मनुष्य छान कर इस जलका उपयोग करते हैं। इस पवित्र जलमें जो हाड़ तथा रोम आदि डालते हैं वे उस पापके फलस्वरूप नरकादिके दुःख प्राप्त करते हैं। अन्य मतावलम्बी मानते हैं कि गंगामें हाड डालनेसे, जिसके हाड हैं उसे सद्गति प्राप्त होती है ॥१२८२॥ इस विषयमें ग्रन्थकार कहते हैं कि जीव, जिस कालमें जिस पर्यायको छोडता है वह तत्काल ही नवीन पर्यायमें उत्पन्न हो जाता है। फिर गंगामें हाड़ डालनेसे उसकी गति कैसे परिवर्तित हो सकती है? जैनी जनोंको यह शिक्षा है कि जिनागमके विरुद्ध जो क्रियाएँ हैं उनका त्याग करे। ऐसा करनेसे ही उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है ॥१२८३–१२८४॥

---

१ नीसरी स०

जन्म मरणकी क्रियाका कथन

दोहा

मरण समय कीजै क्रिया, आगमतें विपरीत ।
पोषक मिथ्यादृष्टिकी, कहूं सुनहुं तिन रीत ।।१२८५।।

चौपाई

[1]पूरी आयु करिवि जे मरै, मेल्हि सनहती ए विधि करै ।
चून पिण्डका तीन कराय, सो ताके कर पास धराय ।।१२८६।।
भ्रात पुत्र पोताकी बहू, धरि नालेर धोक दें सहू ।
पान गुलाल कफन पर धरै, एम क्रिया करि ले नीसरै ।।१२८७।।
दग्ध क्रिया पाछें परिवार, पानी देय [2]सबै तिह वार ।
दिन तीजेमें ते इम करै, भात सराई मसाणहूं धरै ।।१२८८।।
चांदी सात तवा परि डारि, चन्दन टिपकी दे नर नारि ।
पानी दे पत्थर खटकाय, जिन दर्शन करिकै घर आय ।।१२८९।।
सब परिजन जीमत तिहि वार, वां वां करते ग्रास निकार ।
सांझ लगे तिहि ढांकरि खाय, गाय वछाकुं देय खुवाय ।।१२९०।।

जन्म मरणकी क्रियाका कथन

मरणके समय आगमके विरुद्ध तथा मिथ्यादर्शनको पुष्ट करने वाली जो क्रियाएँ की जाती है उनका कथन करते हैं उसे सुनो ।।१२८५।। अपनी आयु पूर्ण कर जब कोई मरता है तो उसके सम्बन्धी लोग इकट्ठे हो कर यह विधि करते हैं। चूनके तीन पिण्ड–पुतले बना कर मृतकके पास रखते हैं । भाई, पुत्र और पौत्रकी बहू नारियल चढ़ा कर मृतकको धोक देती हैं। कफनके ऊपर पान और गुलाल रखते हैं । इतनी क्रिया कर मृतकको लेकर घरसे बाहर निकलते हैं। दग्ध-क्रिया करनेके बाद मृतकको तीन बार पानी देते हैं। तीसरे दिन तीसरा कर उसके चेटका (चिता) पर स्मशानमें भात और पानीकी सुराही रखते हैं । चाँदी के सात तवों पर स्त्री और पुरुष चन्दनकी टिपकियाँ लगाते हैं, पानी देते हैं, चेटका पर कुछ पत्थर इकट्ठे करते हैं और पश्चात् जिनदर्शन कर घर आते हैं। परिवारके सब लोग मिलकर भोजन करते हैं और अपने भोजनमेंसे वां वां कहते हुए अर्थात् यह मृतकके लिये है यह कह कर ग्रास निकाल कर रखते हैं। सन्ध्या समय उन सब ग्रासोंको गाय और बछडेको खिला देते हैं ।।१२८६–१२९०।। जिस स्थान पर मृतककी मृत्यु हुई हो उस स्थानको लीप कर शुद्ध करते हैं तथा उसकी परिक्रमा करते हैं, यह बडा मिथ्यात्व है । ये सब क्रियाएँ जैन मतमें

---

१ पूरी आव करिवि जिय मरे, याहि सनेही इहि विधि करे । स० २ सबहि परिवार स०

[1]जिह थानक मूवो जन होय, लीपै ठाम करे सुधि सोय ।
फेरे ता ऊपरि के रडी, ए मिथ्यात क्रिया अति बडी ॥१२९१॥
ए सब क्रिया जैनमत मांहि, निंद सकल भाषै सक नाहि ।
अवर क्रिया जे खोटी होय, सकल त्यागिये बुधजन सोय ॥१२९२॥
जब जिय निज तजिकै परजाय, उपजै दूजी गतिमें जाय ।
इक दुय तीन समयके मांहि, लेइ अहार तहां सक नांहि ॥१२९३॥
[2]गति माफिक पर्यापति धरै, अन्तमुहूरत पूरो करै ।
जिस गति ही में मगन रहाय, पिछलो भव कुण याद कराय ॥१२९४॥
पिंड मेल्हि तिहि कारण लोय, धोक दिये जै लै नहि सोय ।
पाणी देवेकी को कहै, मूएको न कबहुं पहुंचि है ॥१२९५॥
भात सराई काकै हेत, वह तो आय आहार न लेत ।
जाकै निमित्त काढिये गास, पहुंचै वहै यहै मन आस ॥१२९६॥
सो जाणै मूरखकी वाणि, मूवो गास लेय नहि आणि ।
गउ के रडी गास ही खाहि, अरे मूढ किम पहुंचै ताहि ॥१२९७॥
मृत्यक भूमि फिरै के रडी, सो मिथ्यात भूल अति बडी ।
उल्टी किरियातैं ह्वै पाप, जो दुरगति दुख लहै संताप ॥१२९८॥

निन्दनीय कही गई है इसमें संदेह नहीं है। इनके सिवाय और भी जो खोटी क्रियाएँ हैं, उन सबका ज्ञानी जनोंको त्याग करना चाहिये ॥१२९१–१२९२॥

जब जीव अपनी पर्याय छोड़ कर दूसरी गतिमें चला जाता है और एक दो या तीन समयके भीतर नियमसे आहार ग्रहण कर लेता है तथा गतिके अनुसार अन्तर्मुहूर्तमें ही सब पर्याप्तियाँ पूरी कर लेता है एवं जिस गतिमें जाता है उसी गतिमें मग्न हो जाता है, तब पिछले भवमें, मैं कौन था, इसका स्मरण भी नहीं करता। इस प्रकार मृतकके लिये पिण्ड–भोजनके ग्रास एकत्रित कर देना, तथा उसे धोक देना यह सब मृतकको प्राप्त नहीं होता। जो मृतकके लिये पानी देनेकी बात कहते हैं उनका वह पानी मृतकके पास कभी नहीं पहुँचता। भात और सुराही किसके लिये रक्खी जाती है? क्योंकि मृतक आकर आहार नहीं लेता। "जिसके निमित्त ग्रास निकाला जाता है वह उसीके पास जाता है, मृतक मनमें उसकी आशा लगाये रहता है" ऐसा मूर्खोंका कहना है क्योंकि मृतक मनुष्य आकर ग्रास नहीं लेता। उस ग्रासको तो गाय एवं बछडे ही खाते है, वह मृतकके पास कैसे पहुँच सकेगा? ॥१२९३–१२९७॥ मृतककी भूमि पर जो परिक्रमा की जाती है वह मिथ्यात्व जनित बडी भारी भूल है। ग्रन्थकार कहते

---

१ जिह थानक जु मुवो नर होय स० २ गति माफिक पर्याय ते धरै स०

यातै जैन धरम प्रतिपाल, जे शुभ क्रिया अपूठी चाल ।
तिन हिं भूलि मति करियो कोय, जे आगम दृढ हिरदै होय ॥१२९९॥
पूरी आयु करिवि जिय मरै, ता पीछे जैनी इम करै ।
घडी दोयमें भूमि मसान, ले पहुंचे परिजन सब जान ॥१३००॥
पीछे तास कलेवर मांहि, त्रस अनेक उपजै सक नांहि ।
मही जीव बिन लखि जिह थान, सूकौ प्रासुक ईंधण आन ॥१३०१॥
दगध करिवि आवै निज गेह, उसनोदकतें स्नान करेह ।
वासर तीन बीति है जबै, कछु इक शोक मिटणको तबै ॥१३०२॥
स्नान करिवि आवै जिन गेह, दर्शन कर निज घर पहुंचेह ।
निज कुलके मानुष जे थाय, ताके घरते असन लहाय ॥१३०३॥
दिन द्वादश बीते हैं जबे, जिनमंदिर इम करिहै तबे ।
अष्ट द्रव्यतै पूज रचाय, गीत नृत्य वाजित्र बजाय ॥१३०४॥
शक्तिजोग उपकरण कराय, चंदोवादिक तासु चढाय ।
करिवि महोछव इह विधि सार, पात्रदान दे हरष अपार ॥१३०५॥

है कि विपरीत क्रियाओंके करनेसे पाप ही होता है जो दुर्गतिके दुःख और संतापका कारण होता है ॥१२९८॥ इसलिये जो जैनधर्मके पालने वाले हैं वे शुभ क्रियाएँ ही करे यही वास्तविक रीति है । जो आगमका दृढ श्रद्धानी है उसे भूल कर भी विपरीत क्रियाएँ नहीं करनी चाहिये ॥१२९९॥

जब यह जीव आयु पूर्ण कर मरता है तब उसके मरनेके बाद जैनधर्मके धारक इस प्रकारकी विधि करते है—दो घडीके भीतर परिवारके सब लोग एकत्रित होकर मृतकको स्मशानमें ले जाते हैं क्योंकि दो घडीके बाद उस कलेवरमें अनेक त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं । स्मशानमें जो भूमि जीव रहित हो वहाँ सूखा–प्रासुक ईंधन एकत्रित कर दाह क्रिया करते हैं और पश्चात् अपने घर आकर प्रासुक पानीसे स्नान करते हैं। जब तीन दिन बीत जाते हैं और शोक कुछ कम हो जाता है तब स्नान कर जिनमन्दिर जाते हैं और दर्शन कर अपने घर आते हैं । कुटुम्बके जो लोग हैं वे उसके घर भोजन करते हैं । जब बारह दिन बीत जाते है तब जिनमंदिरमें यह विधि करते हैं—अष्टद्रव्यसे पूजा रचाते हैं, बाजे बजाकर गीत नृत्य आदि करते हैं, शक्तिके अनुसार उपकरण तथा चंदोवा आदि चढ़ाते हैं । इस तरह महोत्सव पूर्वक पात्र दान देकर अत्यन्त हर्षित होते हैं ॥१३००–१३०५॥ कुटुम्ब तथा नगरके अन्य जनोंको निमंत्रित कर यथाशक्ति उन्हें जिमाते हैं । इस तरह शोकको कम करते हैं । कुटुम्ब–

परिजन पुरजन न्योति जिमाय, यथाशक्ति इम शोक मिटाय ।
अरु परिजन सूतककी बात, सूतक विधिमें कही विख्यात ॥१३०६॥
ता अनुसार करे भवि जीव, हीण क्रियाको तजो सदीव ।
इह विधि जैनी क्रिया करेय, अवर कुक्रिया सबहि तजेय ॥१३०७॥

सूतकविधि

(उक्तं च मूलाचार उपरि भाषा ?)

त्रोटक छंद—इम सूतक देव जिनिन्द कहै, उतपत्ति विनास दुभेद लहै ।
जनमें दस वासरको गनिये, मरिहै तब बारहको भनिये ॥१३०८॥
कुलमें दिन पंच लगी कहिये, [1]जिन पूजन द्रव्य चढे नहि ये ।
परसूत भई जिह गेह महीं, वह ठाम भलो दिन तीस नहीं ॥१३०९॥

चौपाई—छेरी महिषी घोडी गाय, ए घरमें परसूति जु थाय ।
इनको सूतक इक दिन होय, घर बारै सूतक नहि कोय ॥१३१०॥
[2]महिषी क्षीर पक्ष इक गये, गाय दूध दिन दस गत भये ।
छेली आठ दिवस परमाण, पाछैं पय सबको सुध जाण ॥१३११॥
जनम तणो सूतक इह होय, मरण तणो सुनिये अब लोय ।
दिन बारह इह सूतक ठानि, पीढी तीन लगे इक जानि ॥१३१२॥

परिवारको कितना क्या सूतक होता है ? यह सब सूतकविधिमें प्रसिद्ध है । भव्यजीवोंको उसीके अनुसार कार्य करना चाहिये तथा हीन क्रियाका सदा त्याग करना चाहिये । जैन धर्मके धारक पुरुष इस प्रकारकी क्रिया करें, अन्य समस्त खोटी क्रियाओंका त्याग करे ॥१३०६–१३०७॥

अब यहाँ सूतक विधि मूलाचारके अनुसार हिन्दी भाषामें कही गयी है—जिनेन्द्र भगवानने जन्म और मरणकी अपेक्षा सूतकके दो भेद कहे हैं । इनमें जन्मका सूतक दश दिनका और मरणका सूतक बारह दिनका कहा गया है । कुटुम्बके लोगोके लिये पाँच दिन का सूतक बताया है । सूतकके दिनोंमें द्रव्य चढ़ा कर जिन पूजन नहीं करना चाहिये । घरकी जिस भूमिमें प्रसूति होती है वह स्थान तीस दिन तक शुद्ध नहीं माना जाता ॥१३०८–१३०९॥ बकरी, भैंस, घोडी और गाय यदि घरमें प्रसूति करते हैं तो एक दिनका सूतक होता है, यदि घरके बाहर जंगलमें प्रसूति करते हैं तो सूतक नहीं होता ॥१३१०॥ भैंसका दूध प्रसूति के एक पक्ष बाद, गायका दूध दश दिन बाद और बकरीका दूध आठ दिन बाद शुद्ध कहा गया है ॥१३११॥ यह जन्म सम्बन्धी सूतककी बात कही । अब आगे मरण सम्बन्धी सूतकका कथन सुनो । मरण सम्बन्धी सूतक तीन पीढी तक बारह दिन, चौथी पीढीमें दश दिन, पाँचवीं

---

१ जिन पूजन द्रव्य नही गहिये न० २ महिषी खीर पाख इक गये स०

चौथी साखि दिवस दस आय, पंचम पीढी षट दिन जाय ।
षष्ठी साखि चार दिन कहै, साखि सातमी तिहु दिन रहे ॥१३१३॥

अष्टम साखि अहोनिशि सोग, नवमी जामहि दोय नियोग ।
दशमी स्नान मात्र ही जाणि, सूतक गोत्रनि गेह वखाणि ॥१३१४॥

करि संन्यास मरे जो कोय, अथवा रणमें जूझै सोय ।
देशांतरमें छोडे प्रान, बालक तीस दिवसलों जान ॥१३१५॥

एक दिवस इनको ह्वै सोग, आगे अवर सुनो भवि लोग ।
पौडो बालक दासी दास, अरु पुत्री सुतको इम भास ॥१३१६॥

दिवस तीन लौं कह्यो बखान, इनकी मरयादामें जान ।
वनिता गरभ–पतन जो होय, जितना मास तणी थिति सोय ॥१३१७॥

तितने दिनको सूतक सही, पीछे स्नान शुद्धता लही ।
पतिका मोह थकी तिय जरे, अथवा अपघातक जु करे ॥१३१८॥

अरु निज परि मरिहै जो कोय, इन तिनहूँ की हत्या होय ।
पख बारह सूतक ता तणों, आगे अवर विशेष जो भणों ॥१३१९॥

जाके घरको असन रु नीर, खाय न पीवै बुद्ध गहीर ।
अरु श्री जिन चैत्यालय महीं, द्रव्य न चढे रु आवे नहीं ॥१३२०॥

पीढीमें छह दिन, छठवीं पीढीमें चार दिन, सातवीं पीढीमें तीन दिन, आठवीं पीढीमें एक दिन रात, नौवीं पीढीमें दो प्रहर, और दशवीं पीढीमें स्नान मात्रका जानना चाहिये । यह कुटुम्बी जनोंके सूतककी विधि कही गई है । कोई संन्यास धारण कर मरे अथवा रणक्षेत्रमें युद्ध करते करते मरे, अथवा देशान्तरमें मृत्युको प्राप्त हो, अथवा तीस दिन तकका बालक मरे तो इनका शोक (सूतक) एक दिनका होता है । घरमें रहने वाले दासी दासके बालक उत्पन्न हो या मृत्युको प्राप्त हो तो उसका सूतक पुत्री सम्बन्धी सूतकके समान कहा गया है । इनके सूतक की मर्यादा तीन दिनकी कही गई है । यदि स्त्रीके गर्भपात हुआ हो तो जितने माहका गर्भ पतित हुआ हो उतने दिनका सूतक जानना चाहिये, पश्चात् स्नानसे शुद्धता प्राप्त होती है । यदि कोई स्त्री पतिके मोहसे जल मरे अथवा आपघात कर मरे, अथवा कोई अपने ऊपर दोष देकर मरे तो इनका सूतक बारह पक्ष अर्थात् छह माहका होता है । सूतकके सिवाय कुछ रऔ भी विशेषता कही जाती है ॥१३१२–१३१९॥ जिसके घर यह आपघात होता है उसके घर कोई बुद्धिमान मनुष्य भोजन पान ग्रहण नहीं करते । वह मन्दिर नहीं जाता और न ही उसका

बीति जाय जब ही छह मास, जिन पूजा उच्छव परकास ।
जावे पंच तासुके गेह, जाति मांहिं तब आवे जेह ॥१३२१॥

मरयादा ऐसी को छांड, और भांति करवा नहि मांड ।
जो जिन आगम भाखी रीत, सो कहिये भवि मन धर प्रीत ॥१३२२॥

अडिल्ल छंद

सूतक क्षत्री गेह पंच वासर कह्यो,
ब्राह्मण गेह मझारि दिवस दस ही लह्यो;
अहो रात्रि दस दोय वैश्य घर जाणिये,
सब शूद्रनिकें सूतक पाख बखानिये ॥१३२३॥

ऋतुवंती तिय प्रथम दिवस चंडालणी,
ब्रह्मघातिका दिवस दूसरामें भणी;
त्रितिय दिवसकें मांहि निंदि सम रजकणी,
वासर चौथे स्नान क्रियासौं सुध भणी ॥१३२४॥

जाकै घरमें नारि अधिक है दुष्टणी,
ताकै किरिया हीण सदा पूरब भणी,
व्यभिचारणि परपुरुषरमण मति है सदा,
ताके घरको सूतक निकसै नहि कदा ॥१३२५॥

द्रव्य मन्दिरमें चढ़ाया जाता है ॥१३२०॥ जब छह माह बीत जाते हैं तब वह जिनपूजाका उत्सव करता है। पंच लोग उसके घर जाते हैं तथा उसे जातिमें मिलाते हैं । ग्रन्थकार कहते हैं कि इस प्रकारकी जो मर्यादा चली आती है उसे छोड़ कर और भाँतिकी रीति नहीं चलाना चाहिये । जिनागममें जैसी रीति कही गई है वैसी ही मनमें प्रीति धारण कर करना चाहिये ॥१३२१-१३२२॥

क्षत्रियके घर सूतक पाँच दिनका, ब्राह्मणके घर दश दिनका, वैश्यके घर बारह दिनका और शूद्रके घर एक पक्षका अर्थात् पन्द्रह दिनका कहा गया है ॥१३२३॥ ऋतुमती—मासिक धर्मवाली स्त्री प्रथम दिन चाण्डालनी, दूसरे दिन ब्रह्मघातिका, तृतीय दिन रजकी, और चौथे दिन स्नान कर शुद्धता प्राप्त करने वाली कही गई है ॥१३२४॥ जिसके घरमें स्त्री अधिक दुष्ट प्रकृतिकी है उसके घर सब क्रियाएँ हीन होती है अर्थात् उनका परिपालन अच्छी तरह नहीं होता। जिसके घर स्त्री व्यभिचारिणी अर्थात् पर पुरुषके साथ रमण करने वाली है उसके घरका सूतक कभी दूर नहीं होता ॥१३२५॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि जिसके घर दिन प्रतिदिन

सोरठा

को कवि कहै बनाय, ताके अवगुणको कथन ।
प्रायश्चित न समाय, जिहि दिन दिन खोटी क्रिया ॥१३२६॥

अडिल्ल छंद

अरु जाके घर त्रिया दया व्रत पालिनी,
सत्य वचन मुख कहै अदत्तहिं टालिनी;
ब्रह्मचर्यको धरै सती सब जन कहै,
पतिवरता पतिभक्तिरूप नित ही रहै ॥१३२७॥

जिनवरकी सो पूज करे नित भावसों,
पात्रनिको दे दान महा उच्छाहसों;
सूतक पातक ताके घर नहिं पाइये,
प्रायश्चित तिय तिहिंको केम बताइये ॥१३२८॥

दोहा

इह सूतक वरनन कियो, मूलाचार प्रमान ।
तिह अनुसार जु चालिहै, ता सम और न जान ॥१३२९॥

सोरठा

भाषा कीनी सार, जो मन संशय ऊपजै ।
देखो मूलाचार, मन संशय भाजे सही ॥१३३०॥

खोटी क्रियाएँ होती हैं उसके अवगुणोंका कथन कौन कवि कर सकता है तथा उसे प्रायश्चित्त कौन दे सकता है ? ॥१३२६॥ इसके विपरीत जिसके घर स्त्री दयाव्रतका पालन करती है, मुखसे सत्य वचन बोलती है, अदत्त वस्तुको ग्रहण नहीं करती है, शीलव्रतको धारण करती है, सब लोग जिसे सती कहते हैं, जो पतिव्रता है, सदा पतिभक्ति करती है, जिनेन्द्र देवकी भावपूर्वक नित्य पूजा करती है, और बडे उत्साहसे पात्रोंके लिये दान देती है उसके घर सूतक पातक नहीं होता। उस स्त्रीके लिये प्रायश्चित्त कौन बतलावेगा ? हमने यह वर्णन *मूलाचारके अनुसार किया है। इसके अनुसार जो चलता है उसके समान और कोई दूसरा नहीं है। हमने यहाँ मूलाचारकी भाषा की है; यदि मनमें संशय उत्पन्न हो तो मूलाचार देखो जिससे मनका सब संशय दूर हो जावेगा ॥१३२७-१३३०॥

---

* वट्टकेराचार्य विरचित मूलाचारमें इस प्रकारका कोई वर्णन नहीं है। ऐसा जान पडता है कि ग्रंथकारने त्रिवर्णाचारको ही मूलाचार समझ लिया है, क्योंकि यह सब वर्णन उसीमें उपलब्ध है।

तमाखू भांग निषेध वर्णन

छंद चाल—सुनिये बुधजन कलिकाल, प्रगटी हीणी दोय चाल ।
इक प्रथम तमाखू जानो, दूजी विजिया हि बखानो ॥१३३१॥
सुनि लेहु तमाखू दोष, अदया कारण अघ कोष ।
निपजनकी विधि है जैसे, परगट भाषत हौं तैसें ॥१३३२॥
तसु हरित तोडिकै पात, सांजी जलतैं छिडकांत ।
गदहाको मूत्रजु नांखै, बांधि रु जूडा धरि राखै ॥१३३३॥
दिन बहुत सरदता जामें, त्रस जीव ऊपजै तामें ।
तिनकी अदया ह्वै भूरि, करुणा पलहै नहि मूरि ॥१३३४॥*
पिरथीमें आगि डराहीं, तिनितैं जिय नास लहांही ।
धूवां मुख सेती निकसै, तब वायु जीव बहु विनसै ॥१३३५॥
थावरकी कौन चलावै, त्रस जीव मरण बहु पावै ।
दुरगंध रहैं मुखमांही, कारै कर ह्वै अधिकांही ॥१३३६॥
उत्तम जन ढिग नहि आवै, निंदा सब ठाम लहावै ।
दुरगतिहिं दिखावे बाट, सुरगतिकौ जाणि कपाट ॥१३३७॥

तमाखू–भांग निषेध वर्णन

हे विद्वज्जनों ! सुनो, कलिकालमें दो हीन प्रवृत्तियाँ चल पड़ी है । एक तो तमाखू का सेवन और दूसरी विजया––भांगका पीना । प्रथम ही तमाखूके दोष सुनो । यह तमाखू अदयाका कारण तथा पापका भण्डार है । उसकी उत्पत्तिकी जैसी विधि प्रकट हैं वैसी कहता हूँ ॥१३३१–१३३२॥ तमाखूके हरे पत्ते तोड़ कर उन पर सज्जीका पानी छिडकते हैं पश्चात् अपवित्र वस्तु डाल कर उनका जूडा बाँध कर रखते हैं। उसमें आर्द्रता बहुत दिन तक रहती है अतः त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं उनके कारण बहुत अदया होती है। मूलतः उनकी करुणा नहीं की जाती। उस तमाखूको पृथिवी पर डालते हैं तो उसकी गन्धसे अनेक जीव नष्ट होते हैं । तमाखू पीने वालोंके मुखसे जब धुवां निकलता है तब वायुकायके बहुत जीव मर जाते हैं । स्थावरोंकी तो बात ही क्या है ? त्रस जीव भी बहुत मर जाते हैं । पीने वालोंके मुखमें दुर्गन्ध रहती है तथा उनके हाथ काले पड़ जाते हैं। उत्तम मनुष्य उसके पास नहीं जाते । वह सब जगह निन्दाका पात्र होता है । तमाखू दुर्गतिका मार्ग दिखानेवाली है

---

* न० और स० प्रतिमें छन्द १३३४ के आगे निम्न छंद अधिक है—
पापी पीवनके हेत, गुल घाल मसल सो लेत ।
पानी डारें हुक्कामें, उपजै निगोदिया तामें ॥

अति रोग बढावै श्वास, ऐसै नरकी का आस ।
दोषीक जानि कर तजिये, जिन आज्ञा हिरदय भजिये ॥१३३८॥

उपवास करै दे दान, किरिया पालै धरि मान ।
पीवे हैं तमाखू जेह, ताकै निरफल ह्वै तेह ॥१३३९॥

अघ तरु सिंचन जल धार, शुभ पादप हनन कुठार ।
बहु जनकी झूठि घनेरी, दायक गति नरकहि केरी ॥१३४०॥

इह काम न बुधजन लायक, ततक्षिण तजिये दुखदायक ।
केउ सूंघै केऊ खैहै, तेऊ दूषणकों लेहैं ॥१३४१॥

दोहा

भांग कसूंभो खात ही, तुरत होत बेरौस ।
काम बढावन अघ करन, श्री जिनवर पद सोस ॥१३४२॥

अतीचार मदिरा तणों, लागै फेर न सार ।
जगमें अपजस विस्तरै, नरक लहै निरधार ॥१३४३॥

लखहु विवेकी दोष इह, तजहु तुरत दुखधाम ।
षट मतमें निन्दित महा, हनै अरथ शुभ काम ॥१३४४॥

और देवगतिके कपाट लगाने वाली है। वह श्वास सम्बन्धी अनेक रोग बढ़ाती है । ऐसे रोगी मनुष्यकी क्या आशा है ? इसलिये इसे दोष युक्त जान कर छोड़ना चाहिये और हृदयमें जिनेन्द्र भगवानकी आज्ञाको धारण करना चाहिये ॥१३३३–१३३८॥

जो उपवास करते हैं, दान देते हैं, क्रियाका पालन कर अर्थात् शोधके भोजनादिका अभिमान करते हैं परन्तु तमाखू पीते हैं तो उनके वे सब कार्य निष्फल हैं । यह तमाखू पापरूपी वृक्षको सींचनेके लिये जलकी धारा है, पुण्यरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुल्हाडी है, अनेक जनोंकी जूंठन है, और नरक गतिको देने वाली है । यह कार्य ज्ञानी जनोंके योग्य नहीं है, महा दुःखदायक हैं इसलिये इसका तत्काल त्याग कीजिये। कितने ही मनुष्य तमाखू खाते हैं और कितने ही सूंघते हैं वे भी उपर्युक्त दोषोंको प्राप्त होते हैं ॥१३३९–१३४१॥

आगे विजया अर्थात् भांगके दोष कहते हैं—भांग खानेसे मनुष्यके तुरत रंगढंग बदल जाते है, पाँव लुढकने लगते हैं । यह भांग कामवासनाको बढानेवाली और पाप करानेवाली हैं तथा जिनेन्द्रदेवकी चरणसेवासे विमुख करानेवाली है ॥१३४२॥ भांगमें मदिरा पानका अतिचार लगता है इसमें कुछ भी शंका नहीं हैं । इससे जगतमें अपयश फैलता है और मृत्युके बाद अवश्य नरककी प्राप्ति होती है ॥१३४३॥ ग्रंथकार कहते हैं कि विवेकी जनोंको भांगके ऐसे दोष देखकर अनेक दुःखोंके घररूप इस भांगको तुरत छोडना चाहिये। यह भांग सभी मतोंमें

मरहठा छन्द

इह जगमांही अति विचराही क्रिया मिथ्यात जु केरी,
अदयाको कारण शुभगति वारण भव भटकावन फेरी;
करि है अविवेकी है अति टेकी तजिकै नेकी सार,
धरम न चित्त आनै, अघ ही जानै, कौन वखानै पार ॥१३४५॥

तामै रमि रहिया ग्रह ग्रह गहिया तिय वच सहिया तेह,
मनमें डर आनै कहै सु ठानै वचन वखानै जेह;
नरपद जिन पायो वृथा गमायो पाप उपायो भूरि,
[1]अशुभनमें रमिहै कुगुरुन नमिहै भव भव भ्रमिहै क्रूर ॥१३४६॥

किरिया लखि ऐसी भाषी तैसी तजिये वैसी वीर,
तातै सुख पावे, अघ नसि जावे जो आवे मन धीर;
जिनभाषित कीजै निजरस पीजै कुगति है दीजै नीर,
भवभ्रमणहि छांडो सकतिह मांडो उतरो भवदधि तीर ॥१३४७॥

निंदित है अर्थात् सभी धर्मोंमें इसका निषेध किया गया है और यह अर्थ अर्थात् धन एवं पुण्यका नाश करने वाली है ॥१३४४॥

यह विजया जगतमें बहुत प्रचलित है, यह मिथ्यात्वकी क्रिया है, अदयाका कारण है, शुभगतिका निवारण करनेवाली है, भवभ्रमण करानेवाली है, मनुष्यको अविवेकी बना देती है, कुटेवी है अर्थात् इसकी आदत पड़ जाने पर कठिनाईसे छूटती है, भलाईको छोडनेवाली है, जिसके मनमें यह आ जमती है उसका धर्ममें चित्त नहीं लगता और वह पाप ही करता रहता है । उसके पापका वर्णन कौन कर सकता है? ॥१३४५॥

जो इसमें आसक्त होता है, वह भूतग्रस्त जैसा हो जाता है, स्त्रीके खोटे वचन उसें सहन करने पड़ते हैं, मनमें भयभीत रहता है, जो भाये सो बकता है, मनुष्यपदको व्यर्थ गमाता है, अत्यधिक पापका उपार्जन करता है, पाप करके मनमें आनन्दित होता है, कुगुरुओंको नमन करता है, और भवभवमें भटकता फिरता है, प्रकृतिका क्रूर हो जाता है। ग्रन्थकार कहते हैं कि विजया पान करनेवालोंकी जैसी क्रिया देखी है वैसी मैंने कही है । हे वीर पुरुषों ! इस विजयाका त्याग करो, इससे सुख प्राप्त होगा, पाप नष्ट होंगे और मनमें दृढता आवेगी । जिनेन्द्र भगवानने जो कहा है सो करो, आत्मरसका पान करो, कुगतिको जलांजलि दो, भव भ्रमणको छोडो, आत्मशक्तिको बढ़ाओ, और संसार सागरसे पार होओ ॥१३४६–१३४७॥

---

१ अस मनमें रमि है ख०

ग्रहशांति ज्योतिष वर्णन

चौपाई

ज्योतिस चक्रतणी सुनि वात, जम्बूद्वीप मांहि विख्यात ।
दोय चंद सूरज दो कहै, जैनी जिन आगम सरदहै ॥१३४८॥

इक रवि भरत उदै जब होय, दूजो ऐरावतिमें जोय ।
दुहुनि विदेह मांहि निसि जाणि, जोतिसचक्र फिरे इह वाणि ॥१३४९॥

भरत रु ऐरावत निसि जबै, दुहुन विदेह [1]दुहूं रवि तबै ।
इक पूरव विदेह रवि जान, अपर विदेह दूसरो मान ॥१३५०॥

फिरते रवि शशिको इह भाय, आदि अन्त थिरता नहि थाय ।
एक चंद्रमाको परिवार, आगम भाष्यो पंच प्रकार ॥१३५१॥

शशि रवि ग्रह नक्षत्र जाणिये, पंचम सहु तारे ठाणिये ।
तिनकी गिनती इह विधि कही, एक चंद्रमा इक रवि सही ॥१३५२॥

ग्रह अठयासी अवर नक्षत्र, भाषे अट्ठाईस विचित्र ।
छासठ सहस रु नव सय सही, ऊपरि पचहत्तरिकों गही ॥१३५३॥

ग्रह शान्ति--ज्योतिष वर्णन

अब ज्योतिष चक्र सम्बन्धी बात सुनो। जम्बूद्वीपमें दो सूर्य और दो चन्द्रमा है इस प्रकार जिनागमके कहे अनुसार जैनी जन श्रद्धा करते हैं।।१३४८।। एक सूर्यका जब भरत क्षेत्रमें उदय होता है तब दूसरे सूर्यका ऐरावत क्षेत्रमें उदय होता है । पूर्व पश्चिमके भेदसे दोनों विदेह क्षेत्रोंमें उस समय रात्रि रहती है । यह ज्योतिष चक्र निरन्तर परिभ्रमण करता रहता है। जब भरत और ऐरावत क्षेत्रमें रात्रि रहती है तब दोनों विदेह क्षेत्रोंमें दो सूर्य रहते हैं--एक पूर्व विदेह क्षेत्रमें और दूसरा पश्चिम विदेह क्षेत्रमें ।।१३४९-१३५०।। सूर्य एवं चन्द्रमाका भ्रमण करते रहना स्वभाव है । इनके परिभ्रमणका आदि अन्त नहीं हैं। आगममें एक चन्द्रमाका परिवार इस प्रकार कहा गया है । चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ये ज्योतिषी देवों के पाँच भेद हैं। इनकी गिनती इस प्रकार कही गई है। चन्द्रमा और सूरज एक एक है, ग्रह अठासी और अन्य नक्षत्र अट्ठाईस है, छासठ हजार नौ सौ पचहत्तर (६६९७५) इन पाँच अंकोंके ऊपर चौदह शून्य देकर मिलाने पर सब उन्नीस अंक हो जाते हैं उनका प्रमाण छासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ाकोडी होता है । इतनी एक चन्द्रमा

---

१ भमें रवि तबै न०

अडिल्ल छन्द

पंच अंक इन ऊपर चौदह सुन हिये,
अंक भये उगणीस सकल मेले किये;
छासठ सहस रु नव सय पचहत्तर भणे,
कोडा कोडी इतने तारा गण गणे ॥१३५४॥

चौपाई

एक चंद्रमाको परिवार, तैसो दूजाको विस्तार ।
मेरु तणी परिदक्षणा देई, थिरता एक निमिष नहि लेई ॥१३५५॥
जिन [1]आगममें इह तहकीक, आनमती के सो नहि ठीक ।
जिनमत जोतिष विच्छिति भई, अट्ठासी ग्रह भेद न लई ॥१३५६॥

दोहा

प्रगट्यो शिवमत जोर जब, पंडित निज बुधि धार ।
ग्रन्थ कियो जोतिष तणो, तसु फेल्यो विस्तार ॥१३५७॥
आदित सोम रु भूमि सुत, बुध गुरु शुक्र सुजान ।
राहु केतु शनि ए सकल, नव ग्रह कहे वखान ॥१३५८॥*
चौथो अष्टम बारमों, अरु घातीक बताय ।
साडे साती शनि कहै, दान देहु सम थाय ॥१३५९॥

सम्बन्धी ताराओंकी संख्या है ॥१३५१–१३५४॥ एक चन्द्रमा सम्बन्धी जितना परिवार है उतना ही दूसरे चन्द्रमा सम्बन्धी परिवार है । ये सब ज्योतिषी देव मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देते रहते हैं, एक निमेषके लिये भी इनमें स्थिरता नहीं होती है । जिनागममें यह सब वर्णन किया गया है, अन्यमतियोंका वर्णन कुछ ठीक नहीं है । जिनमतके ज्योतिष की विच्छित्ति–प्रचार सम्बन्धी ह्रास हो गया है इसलिये लोग अठासी ग्रहोंका रहस्य नहीं समझ पाते ॥१३५५–१३५६॥

जब शिवमतका प्रभाव प्रकट हुआ तब उनके विद्वानोंने अपनी बुद्धिके अनुसार ज्योतिषके ग्रन्थ रचे और उनका ही विस्तार हुआ । उनमें सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, राहु, केतु और शनि ये नौ ग्रह कहे गये । चौथे, अष्टम, और बारहवें को घातिक बतलाया गया और साढे साती शनिका कथन कर दान देनेकी बात कही गई ॥१३५७–१३५९॥

---

१ मारगमें स० * स० और न० प्रतिमें छन्द १३५८ के आगे निम्न छन्द अधिक है—

तिनि माफिक तिथि पक्ष दिन, नव ग्रह बारह रास ।
ऊपर फिरते शुभ अशुभ, दीन हीन परकास ॥

छंद चाल

तंदुल रूपो सितवास, रवि शशिको दान प्रकास ।
रातो कपडो गोधूम, तांबो गुल द्यौ सुत भूम ॥१३६०॥

बुध केतु दूहुं इकसे ही, मूंगादि हर्यो इन देही ।
गुर जरद वसन दे हेम, अरु दालि चनन करि प्रेम ॥१३६१॥

जिम कहे शुक्रको दान, तिमही दे मूढ अयान ।
शनि राहु श्याम भणि लोह, तिल तेल उडद तसु देह ॥१३६२॥

हस्ती अरु घोटक श्याम, जुत श्याम बइल रथ नाम ।
इत्यादिक दान बखानै, ग्रह शांति निमित मन आनै ॥१३६३॥

नवग्रह सुरपदके धारी, तिनके नहि कवल अहारी ।
किह काज नाज गुल देहै, सुर केम तृपतिता लैहै ॥१३६४॥

हाथी घोडा असवारी, तिनि निमित देह डर धारी ।
उनके विमान अति सार, सुवरण नग जडित अपार ॥१३६५॥

भू परि कछु पाय न चालै, किह कारण दानहि झालै ।
तातें ए दान अनीति, शिवमत भाषै विपरीति ॥१३६६॥

चावल, चाँदी और सफेद वस्त्र यह सूर्य चन्द्रमाका दान कहा गया है। लाल वस्त्र, गेहूँ, तांबा और गुड यह मंगल ग्रहका दान बताया गया है। बुध और केतु दोनों ग्रह एक समान है इनके लिये मूंगादिकका दान कहा है। गुरुके लिये पीत वस्त्र, सुवर्ण और पीत वर्णकी दालका दान बतलाया हैं ॥१३६०–१३६१॥ शुक्रका जैसा दान कहते हैं, अज्ञानी मूढ जन वैसा ही दान करते हैं। शनि और राहु श्याम वर्णके है इसलिये उन्हें लोहा, काले तिल, तेल, उड़द, हाथी और काले घोडोसे युक्त काले रंगका रथ आदिका दान कहा है। इस प्रकार ग्रहोंकी शान्तिके लिये मनचाहे दानोंका वर्णन करते हैं। वे इस बातका विचार नहीं करते कि नव ग्रह तो देवपदके धारी हैं, उनके कवलाहार ही नहीं होना तो फिर अनाज और गुड़ आदि किसलिये दिया जाता है ? इनसे उन्हें तृप्ति कैसे होती होगी ? हाथी घोड़ा की सवारी उनके निमित्त लोग डरके मारे देते हैं सो देवोंके तो सुन्दर रत्नजड़ित सुवर्णमय विमान हैं, वे तो पृथिवी पर पैर ही नहीं रखते फिर किस कारण उन्हें इनका दान दिया जाता है ? इसलिये शिवमतमें जो ग्रहोंका दान बतलाया गया है वह अनीतिपूर्ण है, उनका कथन विपरीत है ॥१३६२–१३६६॥

बालक जनमे तिय कोई, मूला असलेखा होई ।
दिन सात बीस परमाणै, वनिता नहि स्नान जु ठानै ॥१३६७॥

पति पहिरै वसन मलीन, बालक नजरै नहि चीन ।
सिर दाढी केस न ल्यावै, स्नानहुँ करिवो नहि भावै ॥१३६८॥

दिन ह्वै सब जाय वितीत, किरिया बहु रचै अनीत ।
द्विजको निज गेह बुलावे, वह मूला शांति करावे ॥१३६९॥

तरु जाति बीस अरु सात, तिनके जु मंगावे पात ।
इतने ही कूवा जानी, तिनको जु मंगावे पानी ॥१३७०॥

इतने ही छानि जु केरा, सो फूस करै तस भेरा ।
अरु सताईस कर टूक, सीधा इतने ही अचूक ॥१३७१॥

दक्षिणा एती जु मंगावे, सामग्री होम अनावे ।
करि अगिनि बाल अगियारी, घृत आदिक वस्तु जुसारी ॥१३७२॥

होमे करि वेद उचारे, इह मूल शांति निरधारे ।
पाछे फिर एम कराई, वह फूस जो देय जलाई ॥१३७३॥

बालक पग तेल जु मांहीं, परियणको देहि बुलाई ।
सबहीने बालककै पाय, करि धोक धाह सिर नाय ॥१३७४॥

बालकका जन्म होनेके दिन यदि मूला या अश्लेषा नक्षत्र होता है तो सत्ताईस दिन तक स्त्री स्नान नहीं करती है, पति मलिन वस्त्र पहिनता है, बालकको देखता भी नहीं है, शिर और दाढीके केश रखाता है तथा अच्छी तरह स्नान भी नहीं करता ॥१३६७–१३६८॥ जब सत्ताईस दिन व्यतीत हो जाते हैं तब बहुत विपरीत क्रिया करता है :– ब्राह्मणको अपने घर बुलाता है और उससे मूला ग्रहकी शान्ति कराता हैं, सत्ताईस वृक्षोंके पत्ते इकट्ठे करता है, सत्ताईस ही कुओंका पानी मँगाता है, इतने ही मकानोंके छप्परसे फूस इकट्ठे करता है, सत्ताईस सीधे एकत्रित करता है । जब इतनी दक्षिणा मिल जाती है तब ब्राह्मण होम की सामग्री मँगाता है, अग्नि प्रज्वलित कर घी आदि समस्त वस्तुएँ उसमें होमता हैं । होमके समय वेदका पाठ करता है । इस प्रकार मूला ग्रहकी शान्ति कराता है । होम करनेके बाद वह इकट्ठा किया हुआ फूस जला देता है। जिस बालकके मूला ग्रहकी पूजा की जाती हैं उसके पैर तेलमें डुबाते हैं, कुटुम्ब परिवारके लोगोंको बुलाते हैं । सब लोग बालकके पैरों पर तेल ढोल कर उसे शिर झुकाते हैं । और मुखसे कहते हैं कि तू हमसे बडा कहावे अर्थात् हमसे

सब मुख वच एम कहावे, हमते तू बडो कहावे ।
ऐसी विधि शिवमत रीति, जैनी करिहै धरि प्रीति ॥१३७५॥

धरम न अघ भेद लहाही, किम कहिये तिन शठ पाहीं ।
ते अघ उपजावें भारी, तिनके शुभ नहीं लगारी ॥१३७६॥

गुरुदेव शास्त्र परतीति, धरिहै जे मन धरि प्रीति ।
ते ऐसी क्रिया न मंडै, अघ-कर लखि तुरतहि छंडै ॥१३७७॥

सतबीस नक्षत्र जु सारे, बालक ह्वै सकल मझारे ।
जाके शुभ पूरव सार, सो भुगतै विभव अपार ॥१३७८॥

जाके अघ ह्वै प्राचीन, सो होय दलिद्री हीन ।
ए दान महा दुखदाई, दुरगति केरे अधिकाई ॥१३७९॥

मिथ्यात महा उपजावे, दर्शन शिव-मूल नसावे ।
निज हित वांछक जे प्रानी, ए खोटे दान वखानी ॥१३८०॥

जिनमारग भाष्यौ एह, विधि उदै आय फल देह ।
तैसो भुगते इह जीव, अधिको ओछो न गहीव ॥१३८१॥

जाके निश्चय मनमांहीं, विकलप कबहूं न कराही ।
मनमांहि विचारै एह, अपनो लहनो विधि लेह ॥१३८२॥

अधिक आयु पावे । इस प्रकारकी विधि शिवमतकी रीति हैं, इसे जैनी भी प्रीतिपूर्वक करते हैं, यह उनका अज्ञान है । वे धर्म और अधर्मका कुछ भेद नहीं जानते, मात्र अज्ञानवश इसे करते है । ऐसे जीव बहुत ही पापका उपार्जन करते हैं उन्हें शुभ अर्थात् पुण्यका अंश भी प्राप्त नहीं होता ॥१३६९–१३७६॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि जो मनमें प्रीतिपूर्वक देव शास्त्र और गुरुकी प्रतीति–श्रद्धा करते हैं वे ऐसी क्रिया कभी नहीं करते, प्रत्युन पापकारी समझकर शीघ्र ही छोड देते हैं । कुल नक्षत्र सत्ताईस हैं इन्हींमें सब बालक जन्म लेते हैं । जिनके पूर्व भवका पुण्य साथ रहता है वे अपार वैभवका उपभोग करते हैं और जिनके पूर्व भवका पाप साथमें हैं वे हीन दरिद्री होते हैं । ये उपर्युक्त दान दुर्गतिके अत्यधिक दुःख देनेवाले हैं, महान मिथ्यात्वको उत्पन्न करने वाले हैं, मोक्षका मूल जो सम्यग्दर्शन है, उसे नष्ट करने वाले हैं । जो प्राणी आत्महितके इच्छुक हैं वे इन दानोंको खोटा दान कहते हैं । जिनमार्गमें तो ऐसा कहा गया है कि कर्म उदय आने पर जैसा फल देता है वैसा फल यह जीव भोगता है, अधिक हो या अल्प । जिनके मनमें यह निश्चय रहता है वे कभी विकल्प नहीं करते । वे मनमें यही विचार करते हैं कि

दोहा

निमित तास चित पूजसी, अधिका जे द्रव्य लाय ।
कोटि जनम करतो रहो, ज्यों को त्यों ही थाय ॥१३८३॥

ग्रहकी शांति निमित्त जो, विकलप छूटै नाहि ।
भद्रबाहु कृत श्लोकमें, कहो तेम करवाहि ॥१३८४॥

अडिल्ल

नमसकार करि तीन जगतगुरु पद लही,
सदगुरु मुखतैं कथन सुण्यो जो है सही;
लोक सकल सुख निमित कह्यो शुभ बैनको,
नवग्रह शांतिक वर्णन सुनिये चैनको ॥१३८५॥

नाराच छंद

जिनेन्द्र देव पाद सेव खेचरीय लाय है,
निमित्त तासु पूजि जैन अष्ट द्रव्य लाय है;
सुनीर गंध तंदुलै प्रसून चारु नेवजं,
सुदीप धूप औ फलं अनर्घ सिद्धदं भजं ॥१३८६॥

चाल छंद

सूरज करूर जब थाय, पदमप्रभ पूजै पाय ।
श्री चन्द्रप्रभ पूजा तै, शशि दोष न लागै तातै ॥१३८७॥

जीव अपने कर्मोंका ही फल प्राप्त करते हैं ॥१३७७–१३८२॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि निमित्त उसके मनोरथको पूर्ण करते हैं जिसके पुण्यरूपी द्रव्य अधिक होता हैं । इसके बिना कोटि जन्म तक निमित्त जुटाते रहो फिर भी द्रव्य उतना ही रहता है । ग्रहशान्तिके निमित्त यदि विकल्प न छूटे तो भद्रबाहु कृत श्लोकमें जैसी विधि कही गई हैं वैसी करा लीजिये ॥१३८३–१३८४॥ सद्गुरुको नमस्कार करके ही तीन जगतके जीव गुरुपदको प्राप्त होते हैं । सद्गुरुके मुखसे जो बात सुनते हैं वही सत्य होती हैं । उन्होंने समस्त लोगोंके सुखके लिये जो शुभ वचन कहे हैं उन्हींके अनुसार नवग्रह शान्तिका वर्णन सुनो जिससे सुखकी प्राप्ति होगी ॥१३८५॥

जिनेन्द्र देवके चरणोंकी सेवा विद्याधर लोग करते हैं, उनकी पूजाके निमित्त वे अष्टद्रव्य लाते हैं, उत्तम जल, चन्दन, तन्दुल, पुष्प, मनोहर नैवेद्य, दीप, धूप और फल इन अष्टद्रव्योंसे वे अनर्घ (सिद्ध) पदको देने वाले जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं ॥१३८६॥ जब सूर्य ग्रह क्रूर हो तब पद्मप्रभ भगवानकी पूजा करें । श्री चंद्रप्रभ भगवानकी पूजासे चन्द्र ग्रहका दोष दूर होता हैं । वासुपूज्य भगवानके चरणोंकी पूजासे मंगल ग्रह जन्य दुःख दूर भागता है । जब बुध ग्रहकी

जिन वासुपूज्य पद पूजत, भाजै मंगल दुख धूजत ।
बुध क्रूर पणै जब थाय, वसु जिन पूजै मन लाय ॥१३८८॥

अडिल्ल छंद

विमल अनन्त सुधर्म शांति जिन जानिये,
कुन्थु अरह नमि वर्धमान मन आनिये;
आठ जिनेसुर चरण सेव मन लाय है,
बुद्धतणो जो दोष तुरत नसि जाय है ॥१३८९॥

रिषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन वंदिये,
सुमति, सुपारस, शीतल मन आनंदिये;
श्री श्रेयांस जिनंद पाय पूजत सही;
सुगुरु दोष नसाय यही आगम कही ॥१३९०॥

सुविधिनाथ पद पूजित शुक्र नसाय है,
मुनिसुव्रतको नमत दोष शनि जाय है;
नेमिनाथ पद वंदत राहु रहै नहीं,
मल्लि रु पारस भजत केतु भजिहै सही ॥१३९१॥

जनम लगनके समै कूर ग्रह जो परै,
अथवा गोचरमांहि अशुभ जे अनुसरै;
तिनि तिनि ग्रहकै काजि पूजि जिनकी कही,
जाप करै जिन नाम लिये दुष ह्वै नहीं ॥१३९२॥

क्रूरता हो तब निम्न लिखित आठ तीर्थंकरोंकी पूजामें मन लगाना चाहिये—विमल, अनन्त, सुधर्म, शान्ति, कुन्थु, अरह, नमि और वर्धमान। इन आठ जिनेन्द्रोंके चरणोंकी सेवामें मन लगानेसे बुध ग्रहका दोष तत्काल नष्ट होता है ॥१३८७–१३८९॥ ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, सुपार्श्व, शीतल और श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रके चरणोंकी पूजासे बृहस्पति ग्रहका दोष नष्ट हो जाता है ऐसा आगममें कहा है ॥१३९०॥ सुविधिनाथ—पुष्पदन्त भगवानके चरणोंकी पूजासे शुक्र ग्रहका दोष नष्ट होता है। मुनिसुव्रतनाथको नमस्कार करनेसे शनि ग्रहका दोष दूर होता है। नेमिनाथकी चरण वन्दनासे राहु ग्रहका दोष नहीं रहता है। मल्लिनाथ और पार्श्वनाथकी आराधनासे केतु ग्रहका दोष दूर होता है ॥१३९१॥

जन्म–लग्नके समय जो दुष्ट (पीडाकारक) ग्रह (राहु, केतु, शनि, मंगल) पडे हों, अथवा केन्द्रमें अशुभ ग्रहका योग हो तब उन उन ग्रहोंकी शांतिके लिये जिन जिनेश्वर देवकी

नवग्रह सांतिह काज जिनेश्वर सामणी,
खडो होय सिर नाय करै सो थुति घणी;
बार एक सो आठ जाप तिनको जपै,
ग्रह नक्षत्रकी बात कर्म बहुविधि खपै ॥१३९३॥

भद्रबाहु इम कही तासु ऊपरि भणी,
जो पूरव विद्यानुवाद श्रुति ते मणी;
इह विधि नवग्रह शान्ति बखाणी जैनमैं,
करिवि श्लोक अनुसार किसनसिंघ पै नमै ॥१३९४॥

आन धरमके मांहि ग्रहन इम कहत हैं,
विपरीत बुद्धि उपाय न मारग लहत हैं;
चंडालनके दान दिया ह्वै शुद्धता,
कल्प्यो इम विपरीत ठाणि मति मुग्धता ॥१३९५॥

चंद दोय रवि दोय जिनागममें कहे,
मेरु सुदरसन गिरिद सदा फिरते रहैं;
शशि विमान तल राहु एक योजन वहै,
रविके नीचे केतु एम भ्रमतो रहै ॥१३९६॥

पूजाका विधान बताया है उनके नामस्मरण तथा पूजनसे शांतिकी प्राप्ति होती है और दुःख दूर रहते हैं ॥१३९२॥ नवग्रहकी शान्तिके लिये जिनेश्वरके सामने खडे होकर तथा शिर नवाकर अत्यधिक स्तुति करे। एकसौ आठ बार उनका जाप करे। ऐसा करनेसे ग्रह नक्षत्रकी तो बात ही क्या है, बहुत प्रकारके कर्म भी नष्ट हो जाते हैं ॥१३९३॥ कविवर किशनसिंह कहते हैं कि हमने जो ऊपर कहा है वह भद्रबाहुके कहे अनुसार कहा है। इसके पूर्व विद्यानुवाद शास्त्रमें भी ऐसा कहा गया है। जैनियोंमें नव ग्रहशान्तिकी यही विधि कही गई है इसलिये भद्रबाहुके श्लोकानुसार यही विधि करनी चाहिये ॥१३९४॥ अन्य धर्मोंमें ग्रहशान्तिका उपाय इस प्रकार कहते हैं सो विपरीत बुद्धि वाले यथार्थ मार्गको प्राप्त नहीं कर पाते हैं। उनके यहाँ लिखा है कि चाण्डालोंको दान देनेसे शुद्धता होती है सो विपरीत बुद्धिवालोंने अज्ञानवश विपरीत कल्पना कर रक्खी है ॥१३९५॥

जिनागममें कहा है कि दो सूर्य और दो चन्द्रमा सुदर्शन मेरुके चारों ओर निरन्तर परिभ्रमण करते रहते हैं। चन्द्रमाके विमानके नीचे एक योजन विस्तार वाला राहुका विमान घूमता है और सूर्यविमानके नीचे एक योजन विस्तृत केतु भ्रमण करता है ॥१३९६॥ कृष्णपक्षमें

पखि अंधियारे मांहि कला शशिकी सही,
एक दबावति जाय अमावसलों कही;
शुकल पक्ष इक कला उघरती जाय है,
पूरणमासी दिन शशि निरमल थाय है ॥१३९७॥

नित्य ग्रह इह होय न माने जन सबै,
पून्यूं दिन विपरीति राहु उलटै जबै;
[1]दावे शशि जब दान ग्रहण तब ठानही,
जिनमतमें सो दान कबहूँ न बखानही ॥१३९८॥

रवि शशि चार्यों तणौ ग्रहण चतुं जानियो,
ऐरावत अरु भरत मांहि परमानियो;
छठै महीने अंतर पडे आकाशमें,
फेरी चालकूँ लहैं दबावै तासमें ॥१३९९॥

तिह विमानकी छाया अवर न मानिये,
जिन मारगके सूत्रनि एम बखानिये;
भरतमाहि इक ऐरावतमें तीन ही,
इक ऐरावतमांहि भरत तिहुँ ही लही ॥१४००॥

राहुका विमान अमावस्या तक प्रतिदिन चंद्रमाकी एक-एक कलाको दबाता जाता है और शुक्लपक्षमें एक एक कला प्रगट होती जाती है, इस तरह पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा अत्यन्त निर्मल हो जाता है ॥१३९७॥ यहाँ नित्य तो ग्रहोंका मिलन होता नहीं है। परन्तु पूर्णिमाके दिन जब राहु ग्रह वापिस लौटकर चन्द्रमाको दबाता है अर्थात् आच्छादित करता है तब चन्द्र ग्रहण होता है उस दिन लोग विपरीत दान देते हैं। जिनमतमें ऐसे विपरीत दानका कथन नहीं है ॥१३९८॥ दो सूर्य दो चन्द्रमा इन चारों पर ग्रहण नहीं होता है। ऐरावत और भरत क्षेत्रमें ऐसा जानना चाहिये। छठवे महिनेके बाद आकाशमें अन्तर पडता है जब कि वे सूर्य चन्द्रमा अपनी चालको बदलते हैं। उस समय राहु केतुके विमानकी छाया चन्द्र सूर्य पर पडती हैं, वह छाया ही ग्रहण है, अन्य कुछ नहीं हैं। जिनमार्गके शास्त्रमें तो ऐसा माना गया है। दो सूर्य और दो चन्द्र—दोनोंके चार ग्रहण होते हैं। इन चारमेंसे भरतमें एक तथा ऐरावतमें तीन और ऐरावतमें एक तथा भरतमें तीन हो सकते हैं। भरतमें चारों हों और ऐरावतमें न हो तथा ऐरावतमें चारों हो और भरतमें न हो, यह नहीं हो सकता, परन्तु भरत और

१ दावे शशिकी कला ग्रहण तब मान ही।

भरतमांहि चहुँ ऐरावतमें ना कही,
ऐरावत है च्यारि भरतपै ए नहीं;
दोय दोय दुहुँ थान होय तो नहिं मनै,
इहै ग्रहणकी रीत अनादि थकी बनै ॥१४०१॥

उक्तं च गाथा त्रैलोक्यसारे नेमिचंद-सिद्धांति-कृते —

राहु अरिट्ठविमाणा किंचूणा किं पि जोयणं अधोगंता ।
छम्मासे पव्वन्ते चन्द रवी छादयंति कमे ॥१४०२॥

छंद चाल

शशि राहु केतु रवि जाण, आछादतु है जु विमान ।
विपरीत चाल षट् मास, पावत है जब आकास ॥१४०३॥
चार्यों सुरपदके धार, तिहके कछु नहि व्यापार ।
देणो लेहणो को करिहै, फिरि है जोजन अंतरिहै ॥१४०४॥
चहूँको मिलिवो नहि कबही, निज थानके साहिब सब ही ।
औरनिको दीयो दान, लहैणी नहि उतरै आन ॥१४०५॥
शशि राहु चाल इक सारी, शशि बढे घटै निरधारी ।
षट् मास बिना लहि दावे, रविको नहि केतु दबावे ॥१४०६॥

ऐरावत–दोनों स्थानोंमें दो दो की संख्यामें हों, यह कहा गया है । ग्रहणकी यह रीति अनादिसे चली आ रही हैं ॥१३९९–१४०१॥

जैसा कि नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत त्रिलोकसारकी ३३९ वीं गाथामें कहा गया है :—

राहु और अरिष्ट (केतु) के विमानोंका विस्तार कुछ कम एक योजन प्रमाण है। इन दोनोंके विमान चन्द्र सूर्यके विमानोंके नीचे गमन करते हैं और दोनों छह मास बाद पर्वके अन्तमें (पूर्णिमा और अमावसको) क्रमसे चन्द्र और सूर्यको आच्छादित करते हैं ॥१४०२॥

राहु चन्द्रमाके विमानको और केतु सूर्यके विमानको आच्छादित करता है। आकाशमें छह माहके बाद इनकी चाल परिवर्तित होती हैं। चन्द्र, राहु, सूर्य और केतु ये चारों ही देव-पदके धारक हैं । इनके ऊपर ग्रहण सम्बन्धी कोई व्यापार नहीं होता, फिर देना लेना कौन करता है ? एक योजनके अन्तरसे इनका भ्रमण होता है, इन चारोंका मिलना कभी नहीं होता है, सब अपने अपने स्थान पर ही विद्यमान रहते हैं । अन्य मनुष्योंको दिया दान इनको प्राप्त हो, यह समझमें नहीं आता । चन्द्रमा और राहुकी चाल एक साथ होती है उसीसे चन्द्रमा घटता–बढ़ता दिखाई देता है । छह माहके बिना न तो राहु चन्द्रमाको दाबता है और न ही केतु सूर्यको दाबता है ॥१४०३–१४०६॥

दोहा

एह कथन सुनि भविकजन, करि चितमें निरधार ।
कथित आन मत दान जे, तजहु न लावौ बार ॥१४०७॥

पाप बढावन दुखकरन, भव भटकावनहार ।
जास हृदय मत जैन दृढ, त्यागै जानि असार ॥१४०८॥

इति नवग्रह शांति विधि

निज तन संबंधी क्रियाका कथन

चौपाई

निज तन संबंधी जे क्रिया, करहु भव्य तामें दे हिया ।
शयन थकी जब उठै सवार, प्रथमहि पढै मंत्र नवकार ॥१४०९॥

प्रासुक जल भाजन कर मांहि, त्रस-भूषित जो भूमि तजाहि ।
वृद्धिनीतिका जैहै जबै, अवर वसन तन पहरै तबै ॥१४१०॥

नजरि निहारि निहारि करंत, जीवदया मनमांहि धरंत ।
होत निहार पछै जल लेइ, वामां करतै शौच करेइ ॥१४११॥

फिरि माटी वामा कर मांहि, वार तीन ले धोवै ताहि ।
अर तहतै आवै कर करी, वस्त्रादिक सपरस परिहरी ॥१४१२॥

कविवर किशनसिंह कहते हैं कि यह कथन सुन कर हे भव्यजनों ! मनमें निश्चय करो तथा अन्य मतमें कहे गये कुदानों को छोडो, इसमें विलम्ब मत करो। ये कुदान पापको बढ़ाने वाले हैं, दुःखको करने वाले हैं और संसारमें भ्रमण कराने वाले हैं। जिसका हृदय समीचीन जैनधर्ममें दृढ है वह इन सबको निःसार जान कर छोड़ देता है ॥१४०७–१४०८॥

इस प्रकार नवग्रह शांतिकी विधि कही । अब निज शरीर संबंधी क्रियाओंका कथन करता हूँ।

हे भव्यजनों! निज शरीर सम्बन्धी जो क्रियाएँ हैं उन्हें ध्यानपूर्वक करो। प्रातःकाल जब सोनेसे उटते हैं तब सबसे पहले नमस्कार मन्त्र पढना चाहिये । पश्चात् प्रासुक जलका पात्र हाथमें ले कर शौच क्रियाके लिये जावे । जो भूमि त्रस जीवोंसे युक्त हो उसे छोड़ देवे और शौचक्रियाके लिये जाते समय दूसरे वस्त्र धारण करे। निहार करते समय इस ओर दृष्टि रक्खे कि किसी जीवका विघात तो नहीं हो रहा है ? जीवदयाका भाव मनमें रखना चाहिये । निहार होनेके पश्चात् जल लेकर बाये हाथसे शुद्धि करना चाहिये । पश्चात् मिट्टीसे बाये हाथको तीन बार धोना चाहिये । पश्चात् वस्त्र–परिवर्तन करना चाहिये ॥१४०९–१४१२॥ हाथ धोनेके लिये ईंटका चूरा, पादमर्दित धूलि, बालू अथवा भस्मका उपयोग करे।

कर धावणको ईंटा खोह, लेद तथा पदमर्दित सोह ।
बालू अर भसमी करि धारि, हाथ धोई नागर नर-नारि ॥१४१३॥

वांमो हाथ फेरि तिहुं बार, धोवै जुदो [1]गारि करि धार ।
हाथ दाहिणो हूं तिहुं बार, धोवै जुदो वहै परकार ॥१४१४॥

माटी ले दुहुं हाथ मिलाय, धोवै तीन बार मन लाय ।
पच्छिम दिशि मुख करिकै सोइ, दातुण करिय विवेकी जोइ ॥१४१५॥

स्नान करन जल थोडो नाखि, कीजे इह जिन आगम साखि ।
करुणा कर मनमांहि विचारि, कारिज करिये करुणा धारि ॥१४१६॥

प्रथमहि मही देखिये नैन, जहँ त्रस जीव न लहै अचैन ।
रहै नहीं सरदी बहु वार, स्नान तहाँ करिहै बुध धार ॥१४१७॥

पूरव दिशि सन्मुख मुख करै, उजरै वसन उतर दिशि धरै ।
जीमत वार धोवती धारि, अवर सकल ही वसन उतारि ॥१४१८॥

सिर डाढी [2]सँवरावे जबै, स्नान करै किरिया जुत तबै ।
लोकाचार उठै किहि तणै, तबही स्नान करत ही बणै ॥१४१९॥

पहले बायाँ और दायाँ दोनों हाथोंको अलग अलग मिट्टीसे तीन बार धोवे और दोनों हाथ मिला कर तीन बार धोवे। अर्थात् मिट्टी लेकर दोनों हाथ मिला कर अच्छी तरह तीन बार धोवे। इसके पश्चात् पश्चिम दिशाकी ओर मुख कर विवेक पूर्वक दातौन करे। विवेकका तात्पर्य यह है कि दातौनके जलसे किसी जीवका विघात न हो, इस बातका ध्यान रक्खे ॥१४१३–१४१५॥ स्नान करनेके लिये जल थोड़ा खर्च करना चाहिये, यह जिनागमका उपदेश है। मनमें करुणाका विचार कर करुणापूर्वक—दयापूर्वक कार्य करना चाहिये। स्नान करनेके पहले भूमिको नेत्रोंसे अच्छी तरह देखे। जहाँ त्रस जीवोंको बाधा न हो, और जहाँ स्नान करनेकी सरदी–आर्द्रता बहुत समय तक न रहे वहाँ विचारपूर्वक स्नान करना चाहिये। स्नान करते समय पूर्व दिशाको मुख करे और उजले–स्वच्छ वस्त्र उत्तर दिशाकी ओर मुख कर पहिने। भोजन करते समय मात्र धोती धारण करना चाहिये, शेष सब वस्त्र उतार कर अलग रख देना चाहिये ॥१४१६–१४१८॥ शिर और दाढीके बाल जब संभलवावे अर्थात् जब क्षौरकर्म करावे तब क्रियापूर्वक स्नान करे। लोकाचारके प्रसंगमें जब किसीके यहाँ उठावनाके लिये जाना हो तब स्नान करना उचित ही है ॥१४१९॥ जो विवेकी जन हैं वे स्त्री सेवनके पश्चात्

---

१ माटि न० २ बनवावै स०

[1]तिय सेवै पीछै इह जाणि, परम विवेकी स्नानहि ठाणि ।
शयन जुदी सेज्या परि करै, इम निति ही किरिया अनुसरै ॥१४२०॥
राति सुपनमें मदन दबाय, शुक्र खिरे कोउ कारण पाय ।
कपडे दूरि डारि निरधार, जलतैं स्नान करै तिहि वार ॥१४२१॥
निसि सोवनको सेज्या-थान, पलँग करै दक्षिण सिरहान ।
अरु पश्चिम दिसहू सिर करै, उठत दुहुं दिसि निजर जु परै ॥१४२२॥
पूरव अरु उत्तर दुहुं जाणि, उत्तम उठिये हरषहि ठाणि ।
इह विधि क्रिया अहोनिसि करै, सो किरिया विधिको अनुसरै ॥१४२३॥

जाप्य पूजाकी विधिका कथन

चौपाई

जाप करण पूजाकी बार, जो भाषी किरिया निरधार ।
ताको वरणन भवि सुन लेह, [2]श्लोकनिमें वरणी है जेह ॥१४२४॥
पूरव दिसि मुख करि बुधिवान, जाप करै मन वच तन जानि ।
जो पूरव कदाचि टरि जाय, उत्तर सन्मुख करि चित लाय ॥१४२५॥
दक्षिण पश्चिम दुहु दिसि जथा, जाप करन वरजी सरवथा ।
तीन श्वास उसास मझारि, जाप करै नवकार विचारि ॥१४२६॥

स्नान करते हैं, और शयन पृथक् शय्या पर करते हैं । इस क्रियाका नित्य ही पालन करना चाहिये ॥१४२०॥ रात्रिमें सोते समय कामावेशसें यदि शुक्रका क्षरण हुआ हो तो उसी समय कपडे अलग कर जलसे स्नान करना चाहिये । रात्रिके समय शयनागारमें पलंगका शिरहाना दक्षिण अथवा पश्चिमकी ओर करना चाहिये जिससें उठते समय उत्तर और पूर्वकी ओर अपनी दृष्टि पडे । शयनसे उठते समय हर्षितचित्त होकर उठना चाहिये । ग्रन्थकार कहते हैं कि जो पुरुष रातदिनकी इस विधिको करता है वही क्रियाकी विधिका अनुसरण–पालन करता है ॥१४२१–२३॥

इस प्रकार शरीर सम्बन्धी क्रियाका वर्णन पूर्ण हुआ । अब जाप और पूजाकी विधि कहते हैं–

जाप और पूजा करते समय जो क्रिया बतलाई है, उसका हे भव्यजीवों ! वर्णन सुनो । श्लोकोंमें उसका जैसा वर्णन किया गया है वैसा कहता हूँ ॥१४२४॥ बुद्धिमान मनुष्य पूर्व दिशाकी ओर मुख कर मन, वचन, कायसे जाप करे । यदि कदाचित् पूर्व दिशा टलती हो तो उत्तर दिशाकी ओर मुख कर मनोयोग पूर्वक जाप करे । दक्षिण और पश्चिम दिशा जाप करनेके लिये सर्वथा वर्जित है । तीन श्वासोच्छ्वासमें एक बार णमोकार मन्त्रका उच्चारण होता है अतः इसी विधिसे विचारपूर्वक णमोकार मन्त्रका जाप करे ॥१४२५–१४२६॥ जापके

---

१ तिया सेय स० २ ग्रन्थनिमें स०

प्रथम जाप अक्षर पैंतीस, दूजो सोलह वरण गरीस ।
तृतिय अंक छह अरहंत सिद्ध, असिआउसा तुरिय प्रसिद्ध ।।१४२७।।
पंच वरण च्यारि अरहंत, षष्ठम दुय जपि सिद्ध महंत ।
वरण एक जो वो ऊँकार, जाप सात ये जपिये सार ।।१४२८।।
कही द्रव्यसंग्रहमें एह, सात जाप लखि तजि संदेह ।
और जाप गुरुमुख सुनि वाणि, तेऊ जपिये निज हित जाणि ।।१४२९।।
मेरु विना मणिया सौ आठ, जाप तणा जिनमत इह पाठ ।
स्फटिक मणि अरु मोती माल, सुवरण रूपो सुरंग प्रवाल ।।१४३०।।
जीवा पोता रेशम जाणि, कमल-गटा अरु सूत बखान ।
ए नौ भाँति जापके भेद, भावसहित जपि तजि मन खेद ।।१४३१।।

दोहा

दिसि विशेष तिनिको कह्यो, जिनमंदिर बिनु थान ।
चैत्यालयमें जाप करि, सन्मुख श्री भगवान ।।१४३२।।

मंत्रोंमें प्रथम जाप मन्त्र णमोकार मन्त्ररूप [1]पैंतीस अक्षरोंका है । द्वितीय मन्त्र [2]सोलह अक्षरोंका है । तृतीय मन्त्र 'अरहंत सिद्ध' इन छह अक्षरोंका है । चतुर्थ मन्त्र 'असिआउसा' इन पाँच अक्षरोंका है । पंचम मंत्र 'अरहंत' इन चार अक्षरोंका है । छठवाँ मन्त्र 'सिद्ध' इन दो अक्षरोंका है । सातवाँ मन्त्र 'ॐ' इस एक अक्षरका है । इन मन्त्रोंको भावपूर्वक जपना चाहिये । [3]द्रव्यसंग्रह ग्रन्थमें ये सात जाप मंत्र कहे गये हैं सो इनका संदेह छोडकर जाप करना चाहिये । इनके सिवाय गुरुमुखसे जो मन्त्र सुने जावें उनका भी निज हित जान कर जाप करना चाहिये ।।१४२७–१४२९।।

जापमें सुमेरुके सिवाय एक सौ आठ मणि होते हैं । इनके द्वारा मनमें जिनवरका पाठ करना चाहिये अर्थात् मनमें जाप मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये । स्फटिक मणि, मोती, सुवर्ण, चाँदी, मूंगा, रेशममें गुम्फित पोत, कमलगटा और सूत, ये जापके नौ भेद हैं सो मनका खेद छोड़कर भावपूर्वक इन जापोंसे अर्थात् मालाओंसे मन्त्रोंका जाप करना चाहिये ।।१४३०–१४३१।। ऊपर दिशाओंका जो वर्णन किया है वह मन्दिरके सिवाय अन्य स्थानोंके लिये कहा है । मन्दिरमें यदि जाप करे तो प्रतिमाके सन्मुख ही करे ।।१४३२।। पूजाके निमित्त जब

---

१ 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं' यह ३५ अक्षरोंका मंत्र है ।

२ 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' यह १६ अक्षरोंका मंत्र है ।

३ पणतीस सोल छप्पण, चदु दुग मेगं च जवह झाएह ।
परमेट्ठि वाचयाणं, अण्णं च गुरु वएसेण ।।४९।। द्रव्यसंग्रह

चौपाई

पूजा निमित्त स्नान आचरै, सो पूरव दिसिको मुख करै ।
धौत वस्त्र पहिरै तनि तबै, उत्तर दिसि मुख करिहैं जबै ॥१४३३॥

उक्तं च श्लोके

स्नानं पूर्वामुखी भूय, प्रतीच्यां दन्तधावनम् ।
उदीच्यां श्वेतवस्त्राणि, पूजा पूर्वोत्तरामुखी ॥१४३४॥

चौपाई

पूरव उत्तर दिसि सुखकार, पूजक पुरुष करै मुख सार ।
जिन प्रतिमा पूरव जो होइ, पूजक उत्तर दिसिको जोइ ॥१४३५॥

जो उत्तर प्रतिमा मुख ठाणि, तो पूरव मुख सेवक जाणि ।
श्री जिन चैत्यगेहमें एम, करै भविक पूजा धरि प्रेम ॥१४३६॥

जिनमंदिरमें प्रतिमा धाम, करै तास विधि सुनि अभिराम ।
घरमें पौलि प्रवेश करंत, वाम भाग दिसि रचिय महंत ॥१४३७॥

मंदिर उपले खणकी मही, ऊँचो हाथ ओडि कर सही ।
जिनप्रतिमा पधिरावन गेह, परम विचित्र करै धरि नेह ॥१४३८॥

प्रतिमा मुख पूरव दिसि करै, अथवा उत्तर दिसि मुख धरै ।
पूजक तिलक करै नव जान, सो सुनि बुधजन कहूँ बखान ॥१४३९॥

स्नान करे तब पूर्व दिशाकी ओर मुख कर करे और शरीर पर जब धुले वस्त्र धारण करे तब उत्तर दिशाकी ओर मुख करे ॥१४३३॥ जैसा कि श्लोकमें कहा है :–

स्नान पूर्वमुखी होकर करे, दातौन पश्चिममुखी होकर करे, स्वच्छ वस्त्र उत्तरमुखी होकर पहने और पूजा पूर्व अथवा उत्तरमुखी होकर करे ॥१४३४॥

पूजा करने वाला मनुष्य पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुख कर पूजा करता है तो वह सुखकारक है। जिनप्रतिमाका मुख यदि पूर्वकी ओर है तो पूजा करने वाले पुरुषका मुख उत्तर दिशाकी ओर हो। यदि प्रतिमा उत्तरमुखी विराजमान है तो पुजारीको पूर्वमुखी होकर पूजा करना चाहिये। भव्यजीव, जिनमन्दिरमें इस विधिसे प्रीतिपूर्वक पूजा करे ॥१४३५–१४३६॥

अब जिन मन्दिरमें प्रतिमाका स्थान (वेदिका) किस प्रकार करे, इसकी उत्तम विधि सुनो। जिन मन्दिरमें प्रवेश करनेका द्वार वाम भागकी ओर रक्खे अथवा कोई घरमें ही चैत्यालय रखना चाहे तो वाम भाग अपने आपके लिये रक्खे और दक्षिण भागमें चैत्यालय स्थापित करे। यदि ऊपरके खण्डमें प्रतिमा विराजमान करना है तो वेदिकाको एक हाथकी ऊँचाई देना चाहिये। प्रतिमा विराजमान करनेका जो घर है उसे प्रीतिपूर्वक अत्यन्त सुसज्जित करना चाहिये ॥१४३७–१४३८॥ प्रतिमाका मुख पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर करना चाहिये।

सीस सिखा ढिग करिये एह, दूजो तिलक ललाट करेह ।
कण्ठ तीसरो चौथो हिये, कान पांचमो ही जानिये ॥१४४०॥
छट्ठो भुजा कूखि सातवों, अष्टम हाथ नाभिमें नवों ।
एह तिलक नव ठाम बनाय, अरु गहनो तन विविध रचाय ॥१४४१॥
मुकुट सीस परि धारै सोय, कण्ठ जनेऊ पहिरै जोय ।
भुज बाजूबंध राजत करै, कुण्डल कानहि कंकण धरै ॥१४४२॥
कटिसूत्र रु कटिमेखल धरै, क्षुद्र घंटिका सबदहि करै ।
रतन जडित सुवरणमय जाणि, दस अंगुलनि मुद्रिका ठाणि ॥१४४३॥
पाय सांकलां घूघरु धरै, मधुर शब्द बाजै मन हरै ।
भूषण भूषित करिवि शरीर, पूजा आरम्भै वर वीर ॥१४४४॥

पद्धरी छंद

पूर्वाह्निक पूजा जो करेइ, वसु दरव मनोहर करि धरेइ ।
मध्याह्न पूज समए सु एह, मनु हरण कुसुम बहु खेपि देह ॥१४४५॥
अपराह्न भविक जन करिह एव, दीपहि चढाय बहु धूप खेव ।
इहि विधि पूजा करि तीनकाल, शुभकंठ उचारिय जयह माल ॥१४४६॥*

पूजा करने वालेको नौ तिलक कहाँ करने चाहिये उनका अब वर्णन करता हूँ सो हे विद्वज्जनों! उसें सुनो । पहला तिलक चोटीके पास शिरमें लगावे दूसरा तिलक ललाट पर, तीसरा तिलक कण्ठमें, चौथा तिलक हृदयमें, पाँचवाँ तिलक कानोंके पास, छठवाँ तिलक भुजाओमें, सातवाँ तिलक कूखमें, आठवाँ तिलक नाभिमें और नौवाँ तिलक हाथोंमें लगावे । इस प्रकार ये नौ तिलकोंके स्थान बताये । अब शरीर पर नाना प्रकारके आभूषण धारण करनेकी चर्चा करते हैं । सिर पर मुकुट धारण करे, गलेमें जनेऊ पहिने, भुजाओंमें बाजूबंद सुशोभित करे, कानोंमें कुण्डल, हाथोमें कंकण, कमरमें रुणझुण करनेवाली क्षुद्र घण्टिकाओंसे सुशोभित मेखला, दशों अंगुलियोंमें रत्नजड़ित सुवर्णमय मुद्रिकाएँ और पैरोंमें साँकल तथा मधुर शब्दोंसे मनको हरने-वाली घूंघरु धारण करे। इस प्रकार आभूषणोंसे अपने शरीरको विभूषित कर जिनेन्द्र देवकी पूजा प्रारम्भ करे ॥१४३९–१४४४॥

प्रातःकालके समय जो पूजा करे वह मनोहर अष्ट द्रव्योंसे करे, मध्याह्नके समय नाना प्रकारके सुन्दर पुष्पोंसे करे और अपराह्न कालमें दीपक चढा कर तथा धूप खे कर करे । इस प्रकार तीनों समय पूजा कर कण्ठसे जयमालाका उच्चारण करे ॥१४४५–१४४६॥ जिन

---

* छन्द १४४६ के आगे न० और ग० प्रतिमें निम्न छन्द अधिक है—

पूर्वाह्निक रवि उगत कराहि, मध्याह्निक वासर मध्यमांहि ।
दिन अस्त होत पहली प्रमाण, अपराह्निक पूजा करहि जाण ॥

जिन वाम अंगि धरि धूप दाह, खेवै सुगंध शुभ अगर ताह ।
अरहंत दक्षिणा दिसि जु एह, अति ही मनोज्ञ दीपक धरेह ॥१४४७॥
जप ध्यान धरै अतिमन लगाय, जिन दक्षिण भुज दिसि मौन लाइ ।
प्रतिमा वंदन मनवचनकाय, करि दक्षिण भुज दिसि सीस नाय ॥१४४८॥
इह भांति करिय पूजा प्रवीण, उपजै बहु पुन्य रु पाप क्षीण ।
पूजामांहे नहि जोगि दर्व, तिनि नाम बखानै सुनहु सर्व ॥१४४९॥

द्रुतविलम्बित छन्द

प्रथम ही पृथ्वी परि जो धर्यो, अरु कदा करतें खिसिके पर्यो ।
जुगल पायनि लागि गयो जदा, [1]दरव सों जिन-पूजन ना वदा ॥१४५०॥
करनि तै फिरियो सिर ऊपरै, वसन हीण मलीन मही धरै ।
कटि तलै परसै जब अंग ही, दरव सो जिनपूजन लौं नहीं ॥१४५१॥
[2]बहु जनां करतै कर संचर्यो, मनुज दुष्टनि भीटि करै धर्यो ।
[3]त्रसत दुःखित दर्व सबै तजौ, भगतितैं जिन पूज सदा सजौ ॥१४५२॥

प्रतिमाकी बाई ओर धूपदान रख कर अगुरुचन्दनका सुगन्धित धूप खेना चाहिये, दाहिनी ओर मनोहर दीपक रखना चाहिये, जिन प्रतिमाके दक्षिण भागमें मौनसे स्थित हो मन लगा कर जप वा ध्यान करना चाहिये तथा मन वचन कायासे शिर झुकाकर नमस्कार करना चाहिये। इस प्रकार उत्तम पुरुष पूजा करते हैं। पूजाके फलस्वरूप बहुत पुण्यका उपार्जन और पापका क्षय होता है। अब आगे पूजामें जो द्रव्य योग्य नहीं है उन सबका वर्णन करते है ॥१४४७–१४४९॥

जो द्रव्य पृथिवी पर रक्खा हो अथवा हाथसे छूट कर नीचे गिर गया हो, अथवा दोनों पैरोंसे जिसका स्पर्श हो गया हो, ऐसे द्रव्यसे भगवानकी पूजा कभी नहीं करना चाहिये। ॥१४५०॥ जो हाथ शिर पर फेरे जाते हैं उनसे पूजा नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि पूजा करते समय शिर पर हाथ नहीं फेरना चाहिये। फटे, ओछे, मलिन तथा भूमि पर पडे वस्त्र पहिन कर पूजा नहीं करना चाहिये। जिस द्रव्यका कमरसे नीचेके अंगोंका स्पर्श हो गया हो उस द्रव्यसे जिनपूजन नहीं करना चाहिये। जो द्रव्य बहुत जनोंके हाथोंमें संचार कर चुका है, दुष्ट मनुष्योंने हाथोंसे जिसका स्पर्श किया है, और जो दीन दुःखी जीवोंसे लिया गया है, उस द्रव्यका जिनपूजामें परित्याग करना चाहियें। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवानकी पूजा सदा भक्तिपूर्वक करना चाहिये। १४५१–१४५२॥ जिन वस्त्रोंको पहिन कर भोजन किया है उन्हीं

---

१ दरव सो जिनपूज नहीं कदा ग० २ बहुत जन करतें जो संचरे, मनुज दुष्ट भेंटि जु कर धरे। स०
३ वसन दूषण द्रव्य सबै तजे स०

दोहा

वसन पहरि भोजन करै, सो जिनपूजा मांहि ।
तनु धारे अघ ऊपजै, यामैं संशय नाहि ॥१४५३॥

कुण्डलिया

कबहु संधित वसनतैं, भगतिवंत नर जोय ।
मन वच तन निहचै इहै, पूजा करै नसोय ॥
पूजा करै न सोय, दगध फटियौ है जातै,
पहर्यो अवरनि तणो, कटिहि बंधियो पुनि तातै ।
करी वृद्ध लघुनीति, धारि सेई तिय जब ही,
करहि नाहि भवि सेव, वसन संधित तै कब ही ॥१४५४॥

चौपाई

जा भविजन जिनपूजा रचै, प्रतिमा परसि पखालहि सचै ।
मौन सहित मुख कपडो करै, विनय विवेक हरष चित धरै ॥१४५५॥
पूजाकी विधि ऊपर कही, करितैं पुण्य ऊपजै सही ।
नरको करवो पूजा [1]जथा, आगममें भाषी सर्वथा ॥१४५६॥
जिनपूजा वनिता जो करै, सो ऐसी विधिको [2]अनुसरै ।
प्रतिमा-भीटण नाहीं जोग, ऐसे कहे सयाणै लोग ॥१४५७॥

वस्त्रोंको यदि जिनपूजाके समय कोई शरीर पर धारण करता है तो उससे पाप उत्पन्न होता है, इसमें संशय नहीं है ।।१४५३।।

जो मनुष्य भक्तिवंत है तथा मन वचन कायसे जिनपूजा करनेका निश्चय रखते हैं वे भी संधित—अशुद्ध वस्त्रोंसे जिनपूजा नहीं करते हैं । जो वस्त्र जल गया हो, फट गया हो, दूसरोंका पहिना हुआ हो अथवा स्वयंने भी पहले जिसे कमरसे बाँध लिया हो, दीर्घशंका, लघुशंका और स्त्रीसेवन करने वाले मनुष्यने जिसे पहिन रक्खा हो वह संधित वस्त्र कहलाता है । ऐसे वस्त्रसे जिन पूजा कभी नहीं करना चाहिये ।।१४५४।।

जो भव्यजीव जिनपूजा करते हैं तथा प्रतिमाका स्पर्श कर प्रक्षाल करते हैं वे मौन सहित, मुख पर कपड़ा बाँधकर विनय विवेक और हर्षपूर्वक करते हैं । पूजाकी जो विधि ऊपर कही गई है तदनुसार पूजा करनेसे सही पुण्योपार्जन होता है । 'मनुष्य जिनपूजा करे' यह बात आगममें पूर्णरूपसे कही गई है । यदि कोई स्त्री जिनपूजा करती हैं तो वह भी इसी विधिसे करे । विशेष यह है कि उसे प्रतिमाका स्पर्श करना योग्य नहीं है ऐसा सयाने—

---

१ तथा ग० २ संचरे स०

स्नान क्रिया करिकै थिर होई, धौत वसन पहरै तनि सोई ।
बिना कंचुकी सा नहि रहै, पूजा करै जिनागम कहै ।।१४५८।।
बडी साखि मैना सुन्दरी, कुष्ट व्याधि पति-तनकी हरी ।
लै गंधोदक सींची देह, सुवरण वरण भयो गुण-गेह ।।१४५९।।
अनंतमती उर्विल्या जाणि, रेवतीय चेलना बखानि ।
मदनसुन्दरी आदिक घणी, तिन कीनी पूजा जिन तणी ।।१४६०।।
लिंग नपुंसक धारी जेह, जिनवर पूजा [1]करिहै तेह ।
प्रतिमा-परसणकौ निरधार, ग्रंथनिमैं सुणि लेहु विचार ।।१४६१।।
नर वनिता रु नपुंसक तीन, पूजा-करण कही विधि लीन ।
अब जिनिकौ पूजा सरवथा, करण जोगि भाषी नहि जथा ।।१४६२।।
औढेरो काणो भणि अंध, फूलो धूंधि जाति चखि बंध ।
प्रतिमा अवयव सूझै नहीं, जाकौ पूजा करन न कही ।।१४६३।।
नासा कान कटी आंगुरि, हुई अगनि दाझे वांकुरी ।
षट् अंगुलिया कर अरु पाय, पूजा करणी जोगि न थाय ।।१४६४।।

ज्ञानी जन कहते हैं ।।१४५५–१४५७।। जिसने स्नान कर स्थिर चित्त होकर धुले वस्त्र धारण किये हैं तथा वक्षःस्थल पर कंचुकी पहिन रक्खी है ऐसी स्त्री जिनपूजा करे, यह जिनागममें कहा गया है ।।१४५८।। जिनपूजा करनेवाली स्त्रियोंमें सबसे बडा उदाहरण मैनासुन्दरीका है जिसने गन्धोदक छिडक कर पतिके शरीरकी कुष्ठ बाधा दूर की थी और पति सुवर्णवर्ण तथा गुणोंका घर हुआ था । इसके सिवाय अनन्तमती, उर्विला, रेवती, चेलना और मदनसुन्दरी आदि अनेक स्त्रियाँ ऐसी हुई हैं जिन्होंने जिनपूजा की थी ।।१४५९–१४६०।। नपुंसक लिंग वाला भी भगवानकी पूजा कर सकता है परन्तु उसे प्रतिमा स्पर्श करनेका अधिकार है या नहीं, इसका निश्चय ग्रन्थोंको सुन कर तथा विचार कर करना चाहिये । आगममें पुरुष, स्त्री और नपुंसक, इन तीनोंकी पूजा करनेकी विधि कही गई है । आगे जिन्हें पूजा करना सर्वथा योग्य नहीं है उनका कथन करते हैं ।।१४६१–१४६२।।

जो उन्मत्त हो, काना हो, अंधा हो, जिसकी आंखोंमें फुली हो, धुंध लगती हो, काच-बिंद हो और जिसे प्रतिमाके अवयव नहीं दीखते हो उसे जिन पूजा करना नहीं कहा गया है ।।१४६३।। जिसकी नाक, कान और अंगुली कटी हो, जिसकी अंगुली अग्निसे जल कर टेडी हो गई हो तथा जिसके हाथ और पैर छह अंगुलियों वाले हो वह पूजा करने योग्य नहीं है ।।१४६४।। जो दोनों पैरोंसे पंगु हो, कुबड़ा हो, गूंगा हो, वचनोंका तोतला हो और जिसके

---

१ करहिं न तेह स०

खोडो दुऊ पायन पांगलौ, कुब्रजक गूंगौ वचन तोतलौं ।
जाकै मेद गांठि तनि घणी, ताकौं पूजा करत न बणी ॥१४६५॥
कच्छ दाद पुनि कोडी होइ, दाग सुपेद शरीरहि जोय ।
मंडल फोडा घाव अदीठ, अर जाकी वांकी ह्वै पीठ ॥१४६६॥
गोसो वधै आंत नीकलै, ताकौ पूजा विधि नहि पलै ।
होइ भगंदर कानि न सुणै, सून्य पिण्ड गहलो वच सुणै ॥१४६७॥
खांसी ऊर्ध्वश्वास ह्वै जास, खिरै नासिका श्लेषम तास ।
महा सुस्त चाल्यौं नहि जाय, पूजा तिनहि जोग नहि थाय ॥१४६८॥
द्यूत विसन जाकै अधिकार, अर आमिष-लंपट चंडार ।
सुरा-पानतै कबहु न हटै, सो पापी पूजा नहि घटै ॥१४६९॥
वेश्या रमहै लगनि लगाय, अवर अहेडी सौं न अघाय ।
चोरी करै रमै पर-नारि, [१]पूजा जोगि नहीं हिय धारि ॥१४७०॥

दोहा

*इत्यादिक पापी जिते, तिनकौ नरक नजीक ।
वह पूजा कैसे करै, पुरी कुगतिकी लीक ॥१४७१॥

शरीरमें चर्बीकी बडी गाँठ उभर आई हो, अर्थात् कंठमाल हो गयी हो उसे पूजा करना योग्य नहीं है ॥१४६५॥ जिसे खाज हो, दाद हो, कोढ़ हो, शरीर पर सफेद दाग हो, जो शरीरका अत्यधिक मोटा हो, जिसके शरीरमें ऐसा फोडा हो जिसका घाव दिखाई नहीं देता हो, जिसकी पीठ टेडी हो गई हो, जिसके गोसो (?) बढ़ गया हो और आंत निकली हो उससे पूजाकी विधि नहीं पलती, अर्थात् वह पूजाका अधिकारी नहीं है। जिसे भगंदर हो, जो कानोंसे नहीं सुनता हो, जिसके शरीरमें शून्य मांसपिण्ड (कण्ठमाल आदि) निकल आये हो, जो पिशाचग्रस्तके समान वचन सुनता हो, जिसे खांसीका रोग हो, जिसकी ऊर्ध्वश्वास चलती हो, जिसकी नाकसे पानी या नासामल निकलता हो और जो महासुस्त हो अर्थात् चलाने पर भी नहीं चलता हो, वह जिनपूजाके योग्य नहीं है ॥१४६६–१४६८॥ जो जुआ खेलता हो, मांस–सेवन करता हो, और मदिरापानसे कभी दूर नहीं हटता हो, वह पापी पूजाके योग्य नहीं है ॥१४६९॥ जो आसक्तिपूर्वक वेश्याका सेवन करता हो, शिकार खेलता हुआ कभी तृप्त नहीं होता हो, चोरी करता हो, और परस्त्रीसे रमण करता हो, वह जिनपूजाके योग्य नहीं है, ऐसा हृदयमें विचार रखना चाहिये ॥१४७०॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि इन्हें आदि लेकर जितने पापी जीव हैं उन सबके लिये नरक निकट है वे जिनपूजा कैसे कर सकते हैं? उनकी

१ परे कुगतिकी लीक विचार ग० * यह दाहा क० ख० और ग० प्रतियोंमें नहीं है ।

जो जिन पूजक पुरुष हैं, ते दुरगति नहि जाय ।
तिनकी मूरति सबनिको, लागै अति सुखदाय ॥१४७२॥

छन्द चाल

[1]जिन पूजातैं ह्वै इन्द्र, ताको सेवै सुर वृंद ।
अरु चक्री पदको पावै, षट खण्डहि आणि फिरावै ॥१४७३॥
धरणेन्द्र लहे पद नीको, स्वामी दस भुवनपतिको ।
हरि प्रतिहरि पदई थाय, बलभद्र मदन शुभकाय ॥१४७४॥
पूजा फल कौ नहि पार, अनुक्रम तीर्थंकर सार ।
पदवी पावै शिव जाइ, किसनेस नमैं सिर नाइ ॥१४७५॥

छप्पय छंद

दोष अठारह रहित तीस चउ अतिशय मंडित,
प्रातिहार्य युत आठ चतुष्टय च्यारि अखंडित;
समवसरण विभवादि रूढ, त्रिभुवनपति नायक,
भविजन कमल प्रकास करन, दिनकर सुखदायक;
देवाधिदेव अरहंत मुझ भगति तणौ भव-भय हरौ ।
जयवंत सदा तिहुं लोकमें सकल संघ मंगल करौ ॥१४७६॥

कुगतिका मार्ग पूर्ण हो रहा है ॥१४७१॥ जो पुरुष जिनेन्द्र भगवानके पूजक हैं वे दुर्गतिमें नहीं जाते, उनकी मूर्ति सबके लिये सुखदायक लगती है ॥१४७२॥

जिनपूजाके प्रभावसे जीव इन्द्र होता है, देवोंके समूह उसकी सेवा करते हैं, चक्रवर्ती पदको प्राप्त करता है जिससे छह खण्डोंमें अपनी आज्ञा चलाता है, धरणेन्द्रका पद भी प्राप्त होता है जो दश प्रकारके भवनवासी देवोंका स्वामी होता है, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र और सुन्दर शरीरका धारक कामदेव होता है । पूजाके फलका कोई पार नहीं है । क्रम क्रमसे तीर्थंकर पदको प्राप्त कर मोक्षको प्राप्त होता है । कविवर किशनसिंह कहते हैं कि मैं मोक्षपदको प्राप्त जीवोंको शिर झुका कर नमस्कार करता हूँ ॥१४७३–१४७५॥

जो अठारह दोषोंसे रहित हैं, चौतीस अतिशयोंसे सुशोभित हैं, आठ प्रातिहार्योंसे युक्त हैं, चार अनन्त चतुष्टयोंसे अखण्डित—परिपूर्ण हैं, समवसरणादिक वैभवको प्राप्त हैं, त्रिभुवनके स्वामियोंके अधिपति हैं और भव्यजीवरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिये सूर्य है, ऐसे सुखदायक देवाधिदेव अरहन्त भगवान भक्तिके फलस्वरूप मुझ किशनसिंहके भवभयको हरें अर्थात् मुझे जन्म मरणके द्वन्द्वसे दूर करें, तीन लोकमें सदा जयवंत रहे और सकल संघका मंगल करें ॥१४७६॥

---

१ पूजातें सुर ह्वै नायक, अपछर सेवे सुरपायक । क० ख० ग०

[1]तीर्थंकर मुख थकी दिव्य ध्वनि तै जिनवाणी,
स्यादवादमय खिरी सप्तभंगी सुखदानी;
ताकौ लहि परसाद गये शिवथानक मुनिवर,
अजुहौ याहि सहाय पाय तिरिहै भवि धरि उर;
तसु रचिय देव गणधरनि जो द्वादशांग विधि श्रुत धरी।
भारती जगत जयवंत निति, सकल संघ मंगल करी ॥१४७७॥

अठाईस गुण मूल लाख चौरासी उत्तर धरै,
करै तप अति घोर शुद्ध आतम अनुभो परै;
ग्रीषम पावस सीत सहै बाईस परीसह,
भवि लावहि शिवपंथ ज्ञान द्रग चरण गरीसह;
निज तिरहि आन तारहि सदा इहै बिरद तिनपै खरौ।
ऐसे मुनीश जयवंत जग सकल संघ मंगल करौ ॥१४७८॥

चैत्यालयमें लगनेवाली चौरासी आसातनाओंका वर्णन

दोहा

श्री जिन श्रुत गुरुको नमों, त्रिविधि शुद्धता ठानि।
चौरासी आसातना, कहूं प्रत्येक बखानि ॥१४७९॥

तीर्थंकरके मुखसे दिव्य ध्वनिके रूपमें जो जिनवाणी प्रगट हुई है वह स्याद्वादमय है तथा सुखदायक है उसके प्रसादसे ही अतीत कालमें मुनिवर शिव-स्थान—मोक्षको प्राप्त हुए है, वर्तमानमें प्राप्त हो रहे हैं और आगे भी उसकी सहायतासे ही संसारसागरको पार करेंगे। श्रुतधारी गणधर देवोंने उसी जिनवाणीसे द्वादशांगकी रचना की थी। वह भारती—जिनवाणी जगतमें जयवंत रहे और सकल संघको नित्य ही मंगलकारी हो ॥१४७७॥

जो अट्ठाईस मूल गुणों और चौरासी लाख उत्तर गुणोंको धारण करते हैं, अति घोर तप करते हैं, शुद्धात्माके अनुभवमें तत्पर रहते हैं, ग्रीष्म, वर्षा और शीतकालमें बाईस परिषह सहन करते हैं, जो भव्यजीवोंको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूपी मोक्ष मार्ग प्राप्त कराते हैं, स्वयं तिरते हैं, और अन्य जीवोंको तारते हैं, यही जिनका उत्तम बिरुद है ऐसे मुनिराज जगतमें जयवंत रहे तथा सकल संघका मंगल करें ॥१४७८॥

चैत्यालयमें लगने वाली चौरासी आसातनाओंका वर्णन

श्री जिनदेव, शास्त्र और गुरुको नमस्कार कर मन, वचन, काय की शुद्धतापूर्वक चौरासी आसातनाओंका पृथक् पृथक् वर्णन करता हूँ ॥१४७९॥ श्री चैत्यालयमें जिन हीन क्रियाओंके

---

१ घ० प्रतिमें गाथा १४७७–१४७८ में क्रम व्यत्यय हैं।

श्री जिन चैत्यालय विषै, क्रिया हीण हैं जेहि ।
कियै पाप अति ऊपजै, ते सुणि भवि तजि देहि ॥१४८०॥

छन्द चाल

मुखतै खंखार निकारै, हास्यादि केलि विसतारै ।
पुनि विविध कला जु बणावै, पात्रादिक नृत्य करावै ॥१४८१॥

अरु कलह करै रिस धारी, खैहै तंबोल सुपारी ।
जल पीवै कुरला डारै, पंखातै पवन हिंडारै ॥१४८२॥

गारी वच हीण उचरिहै, मल मूत्र वाव निस्सरिहै ।
कर पद धोवै अरु न्हावै, सिर डाढी कच उतरावै ॥१४८३॥

कर पगके नख ही लिवावै, कायातैं रुधिर कढावै ।
औषध बणवावै खांही, नांखे पसेव उतरांही ॥१४८४॥

तनु व्रणकी तुचा उतरावै, कर वमन कफादिक डारै ।
दांतन पुनि सिलक करांही, हालै दंतन उपराही ॥१४८५॥

बांधै चौपद तन धार, पुनि करिहै जहाँ आहार ।
आँखिनको गीडहि डारै, कर पग नख मैलि उतारै ॥१४८६॥

जहँ कंठ कान सिर जानी, नासाकौ मैल डरानी ।
जो वस्तु रसोईकी आनी, बाँटै जिनि थानक जाई ॥१४८७॥

करनेसे अत्यधिक पाप उत्पन्न होता है उन्हे सुनकर हे भव्यजनों ! उनका त्याग करो ॥१४८०॥

मुखसे खकार निकाले, हास्यादिक क्रीड़ाका विस्तार करे, नाना प्रकारकी कला बनाकर पात्रादिकसे नृत्य करावे, क्रुद्ध होकर कलह करे, पान सुपारी खावे, पानी पीवे, कुरला डारे, पंखेसे हवा करे, गाली आदि हीन वचनोंका उच्चारण करे, मल मूत्र करे, अधोवायुको छोडे, हाथ पैर धोवे, स्नान करे, शिर तथा दाढीके बाल उतरावे, हाथ-पैरके नाखून कटवावे, शरीरमेंसे रुधिर निकलावे, औषध बनवा कर खावे, पसीना आदि पुछवावे, शरीरके घावकी चमडी निकलावे, वमन कर कफादिकको डाले, दाँतो पर रजतपत्रक आदि चढ़वावे, दांत उखड़वा कर डाले, गाय, भैंस आदि चौपायोंको बाँधे, आहार करे, आँखोंका कीचड डाले, हाथ-पैरके नखोंका मैल निकलवावे, कण्ठ कान शिर और नाकका मल डाले, जिनमंदिरमें जाकर रसोई सम्बन्धी वस्तुओंको बाँटे ॥१४८१–१४८७॥ मित्रादिक तथा समधी आदि कोई

मित्रादिक समधी कोऊ, मिलि जाहि जिनालय दोऊ ।
ठांडे मिलि भेंट हि देई, पुनि हरष चित्त धरि लेई ॥१४८८॥
परधान जु भूपति केरे, वय गुरु धनवान घनेरे ।
आये उठि करि सनमानौ, इह दोष बडौ इक जानौ ॥१४८९॥
पुनि व्याह करनकी बात, मिलिकैं जहँ सब बतलात ।
जिन श्रुत गुरु चरन चढावै, ताकौ भंडार रखावै ॥१४९०॥
निज घरकौ माल रखीजे, पद परि पद धरि बैठीजै ।
कोउ भयतें जाय छिपीजे, काहू दुख दूर न कीजे ॥१४९१॥

चौपाई

[1]कपडा धोवै धूपहि देई, गहणा राछ घडावै लोई ।
ले असलाख जंभाई छींक, केस संवारि करै तिन ठीक ॥१४९२॥
धोवै दालि बडी दै जहाँ, पापड सोंज बणावै तहाँ ।
मैदा छानन छपर बंधान, करन कढाई ते पकवान ॥१४९३॥
राज असन तिय तसकर तणी, चारों विकथा कौं भाखणी ।
करण कसीधादिक सींबणौ, करण नासिका कौं वींवणौ ॥१४९४॥
पंछी डारि पिंजरो धरै, अगनि जारि तन तापन करै।
परखें सुवरण रजतहि जोई, छत्र चमर सिर धारै कोई ॥१४९५॥

रिश्तेदार जिनालयमें मिल जावे तो उनसे मिल कर भेंट कर हर्षित हो, राजाके प्रधान पुरुष, अवस्थामें बडे तथा अधिक धनवान मनुष्योंके आने पर ऊठ कर उनका सन्मान करे, विवाह सम्बन्धी बात करनेके लिये मिलने पर किसीको बैठावे, देव शास्त्र और गुरु चरणोंकी चढोतरीको भण्डारमें रक्खे, अपने घरका माल रक्खे, पैर पर पैर रख कर बैठे, किसीके भयसे छिप कर बैठे, किसी दुखीका दुख दूर नहीं करे ॥१४८८-१४९१॥ कपडे धोकर धूपमें सुखावे, मन्दिरमें बैठ कर गहना बनवावे, अंगडाई, जमुहाई व छींक लेवे, केशोंकी संभाल करे, दाल धोकर मन्दिरमें बडी देवे, महिलाओंको एकत्रित कर पापड़ बनवावे, मैंदा छाननेके लिये छप्पर बँधवावे, (मैदा चालनेकी चलनी लगवावे), कड़ाईसे पक्वान्न बनवावे, राजकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथा और चोरकथा ये चार प्रकारकी विकथाएँ करे, कपडों पर कसीदा वा सिलाई करवावे, कान नाक छिदवावे, पक्षीको भीतर रखकर पिंजडेको मन्दिरमें टांगे, अग्नि जला कर शरीरको तपावे, सोना-चाँदीकी शुद्धताकी परीक्षा करे तथा शिर पर

---

१ कपडा धोय धुवावा देहि स०

वंदन आवे ह्वै असवार, पुनि तनको धारै हथियार ।
तेल अरगजादिक मिलवाय, [1]आवे चरम पादु धरि पाय ॥१४९६॥*
बांधे पाग पेंच फुनि देई, आवे तुररादिक ढांकेई ।
जूवा खेलै होड बदेय, निद्रा आवै शयन करेय ॥१४९७॥
मैथुन करै तथा तिसवात, चालै झोम शरीर खुजात ।
बात करण व्यापार हि तणी, चौपाई परि बैठन गिणी ॥१४९८॥
पान द्रव्य ले जेहै जोय, जलतें क्रीडा करिहै कोय ।
सबद जुहार परसपर करै, गेंद हि प्रमुख खेलि चित धरै ॥१४९९॥
जिनमंदिर परवेस जो करै, [2]सबद निसही न वि ऊचरै ।
पुनि कर जोडै बिनु जो जाय, ए दोन्यों आसातन थाय ॥१५००॥
ए चौरासी अघकर क्रिया, करनी उचित नहीं नरत्रिया ।
जिन मंदिर श्रुत गुरु लखि जानि, रहनौं अधिक विनय उर आनि ॥१५०१॥

दोहा

किसनसिंघ विनती करै, सुनौ भविक चित आनि ।
क्रिया हीण जिन-गृहि तजो, सजौ उचित सुखदान ॥१५०२॥

छत्र चमर आदि धारण कर तथा शरीर पर हथियार धारण कर कोई असवार वन्दनाके लिये आवे, तेल अरगजा आदि की मालिश करवावे, पैरोंमें चमड़ेके जूते पहनकर आवे, पाग बाँधे, उसमें पेंच (गुंडी) देवे, और पागमें तुर्रा, कलगी आदि खोंसकर सुशोभित होकर आवे (अथवा तेज तर्राटेके साथ आवे) जुआ खेले, होड़ बदे, नींद आने पर वहीं शयन करे, मैथुन करे, उसकी बात चलने पर शरीरमें झोख लेवे, शरीरको खुजलावे, व्यापार सम्बन्धी बात करे, चारपाई पर बैठे, पान-मसाला आदि साथ ले जावे, जलसे क्रीडा करे अर्थात् परस्पर पानी उछाले, परस्परमें जुहार शब्दका उच्चारण करे, गेन्द आदि खेलोंमें मन लगावे अर्थात् चौपड़ आदि खेले, जिनमन्दिरमें प्रवेश करते समय 'निसही निसही' शब्द न कहे और हाथ जोडे बिना भीतर जावे ये दोनों आसातनाएँ हैं। ये चौरासी पापकारी क्रियाएँ स्त्री-पुरुषोंको मन्दिरमें करना उचित नहीं है। जिन, जिनालय, शास्त्र और गुरुको देख कर हृदयमें अधिक विनय धारण करना चाहिये। कविवर किशनसिंह कहते हैं कि हे भव्यजीवों! चित्त लगा कर सुनो, जिनमन्दिरमें हीन क्रियाओंको छोडो और सुखदायक योग्य क्रियाओंको करो ॥१४९२-१५०२॥

---

१ बैठक करै पसारे पाय ग० * छन्द १४९६ के आगे न० और स० प्रतिमें निम्न छन्द अधिक है—
संख सीप कौडी ले जाय, कर पदकी अंगुरि चटकाय ।
और पान चरनन दबवाय, बैठक करै पसारे पाय ॥

२ शबद निशंक हीण ऊचरे । न० सो ही हीन क्रिया परिहरे स०

त्रेपन क्रिया तथा अवर क्रियाका मूल कथन

दोहा

त्रेपन किरियाको कथन, लिखियो संस्कृत जोइ ।
[1]गौतम मुखशशितें खिरो, सुधारूप है सोइ ॥१५०३॥

ता उपरी भाषा रची, विविध छंदमय ठानि ।
श्रावकको करनी जिती, किरिया कही बखान ॥१५०४॥

अतीचार द्वादश वरत, लगै तिनही निरधार ।
सूत्रनिमैतें पायकै, करी भाष विस्तार ॥१५०५॥

कछू त्रिवरणाचारतैं, जो धरिवेकौं जोग ।
सुणी तेम भाषी तहाँ, चहिये तिसो, नियोग ॥१५०६॥

*कछ्छ त्रिवरणाचारतें, नियम आदि बहु ठाम ।
कही जेम तस चाहिये, धरी भाष अभिराम ॥१५०७॥

जगतमांहि मिथ्यातकी, भई थापना जोर ।
क्रिया हीण तामैं चलन, दायक नरक अघोर ॥१५०८॥

ताहि निषेधनको कथन, सुन्यो जिनागम जेह ।
जिसो बुद्धि अवकास मुझ, भाषा रची मैं एह ॥१५०९॥

आगे त्रेपन क्रिया तथा अन्य क्रियाओंके मूल आधारका वर्णन करते हैं :–

त्रेपन क्रियाओंकी कथा संस्कृतमें जैसी कही गई है वही गौतमके मुखचन्द्रसे निकली है जो सुधारूप है। ग्रन्थकार कहते हैं कि हमने उस पर विविध छन्दमय भाषाकी रचना की है। इस रचनामें श्रावकके करने योग्य जितनी क्रियाएँ हैं उन सबका वर्णन किया है ॥१५०३–१५०४॥ बारह व्रत और उनके अतिचारोंका वर्णन तत्त्वार्थ सूत्रके सूत्रोमेंसे प्राप्त कर भाषा द्वारा विस्तृत किया है जो धारण करनेके योग्य है। ऐसा कुछ वर्णन हमने त्रिवर्णाचारमेंसे जैसा सुना था वैसा लिखा है। नियम आदि अनेक प्रकारका वर्णन हमने श्रावकाचारके आधार पर किया है। अर्थात् श्रावकाचारमें जैसा सुना वैसा सुन्दर भाषामें गुम्फित किया है ॥१५०५–१५०७॥ संसारमें मिथ्यात्वकी स्थापना बडे जोरसे हुई है उससे नरक देने वाली भयंकर हीन क्रियाएँ चल पडी हैं ॥१५०८॥ उन हीन क्रियाओंका निषेध करनेके लिये जैसा कथन मैंने जिनागममें सुना हैं वैसा अपनी बुद्धिके अनुसार भाषामें रचा है ॥१५०९॥ सूतककी

---

१ गौतम कृत पुस्तकनमें मडौ नाम सुण तेहि स० * ग० प्रतिमें यह दोहा नहीं है ।

मूलाचार थकी लिखी, सूतक विधि विस्तार ।
श्लोकनि संस्कृत ऊपरै, भाषा कीनी सार ॥१५१०॥

विद्यानुवाद पूरव थकी, भद्रबाहु मुनिराय ।
कथन कियो ग्रहशांतिकौ, तिह परिभाष बनाय ॥१५११॥

निज तन नित प्रतिकी क्रिया, अरु पूजा परबंध ।
श्लोकनि परि भाषा धरी, जहँ जैसो सम्बन्ध ॥१५१२॥

भुजंगीप्रयात छंद

कथामें कह्यो पंच इन्द्री निरोधं, कथामें कह्यो पंच पापं विरोधं ।
कथामें कह्यो त्यागिये लोभ क्रोधं, कथामें कह्यो मान मायादि सोधं ॥१५१३॥

कथा मध्य बाईस भाषे अभक्षं, कथामें कह्यो गोरसं भेद भक्षं ।
कथा मध्य कांजी निषेधं प्रत्यक्षं, कथामें मुरब्बादि मरजाद लक्षं ॥१५१४॥

कथा मध्य मूलं गुणं अष्ट भेदं, कथा मध्य रत्नत्रयं कर्म छेदं ।
कथा मध्य शिक्षाव्रतं भेद चारं, कथा मध्य तीन्यो गुणव्रत्त धारं ॥१५१५॥

कथा मध्य भाषी प्रतिज्ञा सु ग्यारा, कथा मध्य भाषे तपो भेद बारा ।
कथा मध्य भाषै चहू दान सारं, कथा मध्य भाषे निशाहार टारं ॥१५१६॥

कथा मध्य संलेखणा भेद भाख्यो, कथा मध्य सुद्धं समभाव आख्यो ।
कथा मध्य पानी क्रिया कौ विशेषं, कथा मध्य त्यागी कह्यो रागद्वेषं ॥१५१७॥

विधि मूलाचारमें विस्तारसे लिखी है उसीके संस्कृत श्लोकोंकी भाषा मैंने की है। भद्रबाहु मुनिने विद्यानुवाद पूर्वमें ग्रहशान्तिका जो कथन किया है उसीकी मैंने भाषा रचना की है। अपने शरीर सम्बन्धी क्रिया तथा पूजा प्रबन्धका जैसा वर्णन श्लोकोंमें किया गया है उसीके अनुसार सम्बन्ध मिलाते हुए मैंने भाषामय रचना की है ॥१५१०–१५१२॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि ऊपर पंच इन्द्रियोंके निरोधकी कथा की गई है। पाँच पापोंका विरोध किया गया है। उसी कथामें लोभ और क्रोधके छोड़नेकी बात कही गई है तथा मान और माया आदिको दूर करनेका वर्णन किया गया है ॥१५१३॥ उपर्युक्त कथामें बाईस अभक्ष्य कहे गये हैं, गोरसके भक्ष्य और अभक्ष्यरूप भेद बताये गये हैं, कांजीका निषेध किया गया है, और मुरब्बा आदिककी अभक्ष्यता बतलाई है। आठ मूल गुण, कर्मोको नष्ट करनेवाले रत्नत्रय, चार शिक्षाव्रत, तीन गुणव्रत, ग्यारह प्रतिमाएँ, बारह तप, चार प्रकारके दान, रात्रिभोजन त्याग, सल्लेखनाके भेद, शुद्ध साम्य भावका स्वरूप, पानी छाननेकी क्रिया,

कथामें कह्यो नेम सत्रा प्रमाणं, कथामें क्रिया जोषिता धर्म जाणं ।
कथामें कही मौन सप्तं निकायं, कथा मध्य भाषे जिते अंतरायं ॥१५१८॥
कथा मध्य भाषी ग्रहोकी जु शांति, कथामें कह्यो सूतकं दोइ भांति ।
कथा मध्य देही क्रियाको प्रमाणं, कथा मध्य पूजा विधानं बखानं ॥१५१९॥

दोहा

कलीकाल कारण लही, जगतमांहि अधिकार ।
प्रगटी क्रिया मिथ्यातकी, हीणाचार अपार ॥१५२०॥
तिनहि निषेधनको कथन, सुन्यो जिनागम माहि ।
ता अनुसारि कथा यहै, कह्यो जथारथ आहि ॥१५२१॥

कल्पित व्रत-निषेध कथन

दोहा

श्री जिन आगममें कहे, वरत एक सौ आठ ।
श्रावककौ करणै सही, इह सब जागा पाठ ॥१५२२॥
इनि सिवाय विपरीति अति, चलण थापियों मूढ ।
सुगम जाणि सो चलि पड्यो, सुणहु विशेष अगूढ ॥१५२३॥

छंद चाल

वनिता लखिकै लघु वेस, तिनिको इम दे उपदेस ।
दिनमें जीमो दुय बार, जलकी संख्या नहि धार ॥१५२४॥

राग द्वेषका परिहार, सत्रह नियम, क्रियाओंका पालन, मौनके सात स्थान, भोजनके अन्तराय, ग्रहोंकी शान्ति, सूतकपातकका भेद, शरीरकी क्रिया और पूजाकी विधिका वर्णन किया गया है ॥१५१४–१५१९॥

कलिकालका कारण पाकर जगतमें मिथ्यात्व और हीनाचारकी अनेक क्रियाएँ प्रकट हुई है उनका निषेध करनेके लिये जिनागममें जैसा वर्णन सुना है उसीके अनुसार यहाँ यथार्थ कथन किया है ॥१५२०–१५२१॥ आगे मनसे कल्पित व्रतोंका निषेध करते हैं :–

जिनागममें एक सौ आठ व्रत कहे गये हैं । श्रावकको उन व्रतोंका पालन करना चाहिये यह सर्वत्र कहा गया है ॥१५२२॥ इनके सिवाय अज्ञानी जनोंने अनेक विपरीत मतोंका प्रचलन कर रक्खा हैं और सरल जान कर उनका प्रचलन भी चल पड़ा है उनका कुछ स्पष्ट विशेष वर्णन सुनो ॥१५२३॥

बालक बालिकाओंकी छोटी अवस्था देख कर स्त्रियाँ ऐसा उपदेश देती है कि दिनमें दो बार भोजन करो, पानीकी संख्याका कोई नियम नहीं है । इस व्रतको वे दोकंत व्रत कहती हैं

दोकंत वरत धरि नाम, आगम न बखाण्यो ताम ।
[1]पय ले एकंत करांही, सिर-खंड सुनाम धरांही ॥१५२५॥

तंदुल केसर दधिमांही, करि गोली वरत कहांही ।
टीकी व्रत नाम सु लेई, वनिता सिर टीकी देई ॥१५२६॥

अरु तिलक वरतको धारै, बहु तिय सिर तिलक निकारै ।
करि देइ टको इक रोक, लेहै तिनकै अघ थोक ॥१५२७॥

कोथलीय व्रत धर नाम, बाँटे तिन तीसहि ठाम ।
मधि सोंठ मिरच धरि रोक, प्रभुता ह्वै भाषै लोक ॥१५२८॥

पुनि रोटी व्रत ही ठानै, बाँटे घर घर मन आनै ।
अर वरत खोपरा भाषै, एकन्त तीस अभिलाषै ॥१५२९॥

नारेल वरतको लेह, बाँटै घर घर धरि नेह ।
खीर जु व्रत नाम धरावै, निज घर जो दूध मंगावै ॥१५३०॥

चावल ता मांही डारी, निपजावै खीर जु नारी ।
भरि ताहि कचोला मांही, बाँटे बहु धरि हरषाही ॥१५३१॥

कांचलीय वरत तिय धरिहै, कांचली दसबीस जु करिहै ।
निज सगपणकी जे नारी, तिनको दे हेत विचारी ॥१५३२॥

परन्तु आगममें इसका वर्णन नहीं है । जिसमें दूध लेकर एकाशन कराती है उस व्रतका नाम श्रीखण्ड व्रत बताती हैं ॥१५२४–१५२५॥ जिसमें चावल, केशर और दहीकी गोलियाँ बनाकर एकाशन कराती हैं वह गोली व्रत कहलाता है । कितनी ही स्त्रियाँ टीकी व्रत लेती हैं वे परस्पर एक दूसरेको टीकी (बूंदा) लगाती हैं ॥१५२६॥ कितनी ही स्त्रियाँ तिलक व्रत लेती हैं वे अनेक स्त्रियोंके माथे पर तिलक लगाती हैं । कोई टका व्रत लेती हैं वे परस्पर एक दूसरेके हाथ टका (दो पैसा) का सिक्का रखती हैं ॥१५२७॥ कोई कोथली व्रत लेती हैं वे कपडेके रंग-बिरंगें बटुओंके भीतर सोंठ मिर्च तथा कुछ नकद सिक्का रखकर तीस की संख्यामें बाँटती हैं ॥१५२८॥ कोई रोटी व्रत लेती हैं तथा घर घर रोटियाँ बाँटती हैं । कोई खोपरा व्रत लेती हैं वे तीस एकाशन कर घर घर तीस गरी गोला बाँटती हैं । कोई नारियल व्रत लेती हैं वे तीस एकाशन कर घर घर तीस नारियल स्नेह पूर्वक बाँटती हैं। कोई खीर व्रत लेती हैं वे अपने घर दूध मँगा कर चावलोंकी खीर बनाती हैं तथा उसे कटोरेमें भर कर घर घर बाँटती हैं ॥१५२९–१५३१॥ कोई स्त्रियाँ कांचली व्रत लेती हैं । वे तीस कांचली

---

१ पखलों

तिन पहिरे जूं उपजाही, त्रस घात पाप अधिकाही ।
जिनको व्रत नाम धरावे, सो कैसे शुभ फल पावे ॥१५३३॥
व्रत करि घृत नाम बखानो, घृत दे घर घर मन आनो ।
बांटत माखी तह परिहै, उपजाय पाप दुख भरिहै ॥१५३४॥
चूडाव्रत नाम धराही, करिकै मनमें हरषाई ।
बांटत मन धरि अति राग, इसते मुझ बढ़ै सुहाग ॥१५३५॥
बिन न्योतो पर घर जाई, निज करते असन गहाई ।
भोजन कर निज घर आवे, व्रत नाम [1]धिगानो पावे ॥१५३६॥
भरि खांड रकेबी तीस, बांटे ते घर दसबीस ।
व्रत नाम रकेबी तास, करिहै मूरखता जास ॥१५३७॥
वनिता चैत्यालय जाही, पाछे विधि एम कराही ।
धरि अशन थाल इक माहीं, इक जल दुहूं ढांक धराहीं ॥१५३८॥
तिय चैत्यालयतें आवै, इक थाली आय उठावै ।
जो असन उघारे तीय, भोजन करि जल बहु पीय ॥१५३९॥
जल थाल उघाडे आयी, जल पीवे बैठि रहाही ।
इम वरत करम पति ब्यान्यो, सूत्रनिमें नहीं बखान्यो ॥१५४०॥

(चोली) बनवाती हैं और अपनी रिश्तेदार स्त्रियोंको बाँटती हैं। वे स्त्रियाँ पहिन कर जुआं उत्पन्न करती हैं जिससे त्रस हिंसाका अधिक पाप होता है। कोई अपने व्रतका नाम 'जिनका व्रत' रखती हैं सो नाम रखने मात्रसे शुभ फल कैसे प्राप्त हो सकता है? कोई घृत नामका व्रत रखती हैं वे घर घर घी बाँटती हैं उसमें मक्खियाँ पड़ कर मरती हैं उससे पापोपार्जन कर दुःख भोगती हैं॥१५३२–१५३४॥ कोई चूडा नामका व्रत रखती हैं वे घर घर चोटी बाँटती हैं और समझती हैं कि इससे हमारे सौभाग्यकी वृद्धि होती है ॥१५३५॥ कोई स्त्रियाँ नेवते के बिना ही दूसरेके घर जाकर अपने हाथसे भोजन प्राप्त करती हैं पश्चात् भोजन कर अपने घर वापिस आती हैं इस व्रतका नाम 'धिगानो व्रत' है ॥१५३६॥ कोई तीस रकेबियोंको खांड भर कर तीस घर बाँटती हैं उनके इस व्रतका नाम 'रकेबी व्रत' है। कोई स्त्री मन्दिर जाती है पश्चात् घरकी अन्य स्त्री एक थालीमें भोजन और एक थालीमें पानी रख कर दोनोंको अलग अलग ढाँक देती है। मन्दिरसे वापिस आने पर वह स्त्री पहले एक थाली उघाड़ती है यदि उसमें भोजन हुआ तो उसे खा कर कुछ जल पीती है। यदि पहली बार पानीकी थाली उघाडती है तो वहीं बैठ कर पानी पी लेती है, भोजन नहीं करती। इस व्रतका

[1] धिनोनी स०

इत्यादि कहाँलों ठीक, आगम ते अधिक अलीक ।
करिके शुभफलको चाहे, हियरे तिय अधिक उमाहै ॥१५४१॥

जो कलपित वरत जु मान, भाषै ते ते अघवान ।
जो सकल वस्तु ले आवै, जिन पूजा माहिं चढावै ॥१५४२॥

निज सगपन गेह मिलाय, बाँटै घर घर फिरि आय ।
भादोंके मास जु माहीं, तप करन सकति ह्वै नाहीं ॥१५४३॥

इम कहि एकन्त कराही, जिन–उक्त वरत सो नाही ।
बांटै जो वस्तु मंगाई, सोई व्रत नाम धराई ॥१५४४॥

जिनमत व्रत बिनु मरयाद, करिये मन उक्त प्रमाद ।
जिन सूत्रनिमें जे नांही, सुखदाय न ते व्रत आही ॥१५४५॥

जिन आज्ञाको जे गोपै, ते निज कृत सब शुभ लोपै ।
यातें सुनिये नर नारी, मनमें निश्चय अवधारी ॥१५४६॥

जिन भाषित जे व्रत कीजे, मन उक्त न कबहूँ लीजे ।
आज्ञा विधि जुत व्रत धार, सुरपद पावे निरधार ॥१५४७॥

नाम 'कर्मपति व्रत' कहा जाता है। आगममें इसका कोई वर्णन नहीं है ॥१५३७–१५४०॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि इन्हें आदि लेकर अनेक कल्पित व्रत हैं जो आगमकी अपेक्षा अलीक—मिथ्याव्रत हैं । इन्हें करके स्त्रियाँ अपने हृदयमें अधिक शुभ फलकी इच्छा करती हैं ॥१५४१॥

जो मनुष्य इन कल्पित व्रतोंको प्रमाण मान कर इनका उपदेश देते है वे पापी है। जो मनुष्य घरसें सकल वस्तुएँ ले जाकर जिनपूजामें चढ़ाते हैं और फिर अपने घर लाकर सगे सम्बन्धियोंके घर घर जाकर बाँटते हैं तथा कहते हैं कि भाद्रमासमें तप करनेकी शक्ति नहीं है इसलिये एकन्त करते हैं इसे वे 'जिनोक्त व्रत' कहते हैं परन्तु आगममें यह व्रत नहीं है। जो वस्तुएँ मँगा कर बाँटते हैं, व्रतका भी वही नाम रख लेते हैं । जिनमतके बिना अन्य जो मन उक्त–कल्पित व्रत है वे प्रमाद उत्पन्न करने वाले हैं। जिनागममें जिन व्रतोंका वर्णन नहीं हैं वे व्रत सुखदायक नहीं हैं ॥१५४२–१५४५॥ जो जिन आज्ञा को छिपाते हैं अर्थात् उसके विरुद्ध प्रवृत्ति करते हैं वे अपने व्रतके पुण्यका लोप करते हैं। इसलिये हे नरनारियों! सुन कर मनमें निश्चय करो कि हम जिनभाषित व्रतोंको करेंगे और मन उक्त—कल्पित व्रत कभी ग्रहण नहीं करेंगे । जो जिनाज्ञाके अनुसार व्रत धारण करते हैं वे निश्चय ही देव पद प्राप्त करते हैं ॥१५४६–१५४७॥

सवैया इकतीसा

त्रेपन क्रियाने आदि देके नाना भेद भांति,
क्रियाको कथन साखि ग्रन्थनकी आनिकै,
अवर मिथ्यात कलिकाल भई थापना जे,
तिनको निषेध कीयो आगमतें जानिकै;
व्रत मन उकति सुगम जानि चालि परै,
कहै नहि जिन तेऊ दुखे वृथा मानिकै;
अबै नर नारी मन लाय जो वरत धरै,
याहि समै शील तप व्रत जीय सांनिये ॥१५४८॥

छप्पय

बहु विधि क्रिया प्रसंग कही इह कथा मझारी,
अब उछाह मनमांहि आनि इह बात विचारी;
क्रिया सफल जब होई वरत विधि यामें आये,
मंदिर शोभा जेम शिखर पर कलश चढाये;
इह जान बात विधि व्रतनिकी, सुनी जेम आगम भनी ।
दरशन विशुद्ध जुत धरहु भवि इह विनती किसना तनी ॥१५४९॥

चाल छन्द

समकित जुत व्रत सुखदाई, अनुक्रमते शिव पहुँचाई ।
कछु नाम वरतके कहिये, भवि जन जे जे व्रत गहिये ॥१५५०॥

कविवर किशनसिंह कहते हैं कि हमने ग्रन्थोंकी साख देकर त्रेपन क्रियाओंको आदि लेकर क्रियाके नाना भेदोंका वर्णन किया है । इस समय कलिकालमें जिन मिथ्यामतों की स्थापना हुई है, उनका आगमानुसार निषेध किया है । सुगम जान कर जो अनेक मन उक्त—कल्पित व्रत चल पडे हैं, उन्हें वृथा दुःखदायक जान कर उनका कथन नहीं किया है । अब भी जो नर नारी मनोयोग पूर्वक व्रत धारण करते हैं वे शील, तप तथा व्रतके फलको प्राप्त होते हैं ॥१५४८॥

इस कथाके बीचमें प्रसंगवशात् अनेक प्रकारकी क्रियाओंका वर्णन किया है । अब मनमें उत्साह लाकर इस बातका विचार करते हैं कि क्रियाओंका वर्णन सफल तब होगा जब इसमें व्रतोंकी विधि भी आ जाय । जिस प्रकार शिखर पर कलश चढ़ जानेसे मन्दिरकी शोभा बढ़ जाती है उसी प्रकार व्रतोंकी विधि आ जानेसे इस कथाकी शोभा बढ़ जायेगी । यह जान कर व्रतोंकी जैसी आगमोक्त विधि मैंने सुनी है, वैसी कहता हूँ । हे भव्यजीवों ! सम्यग्दर्शनकी विशुद्धताके साथ उस विधिको धारण करो, यह किशनसिंहकी विनति है ॥१५४९॥

अष्टाह्निका व्रत कथन
चौपाई

अष्टाह्निका महाव्रत सार, है अनादि जाको नहि पार।
जे उत्कृष्ट भए नर तेह, [1]तिन पूरव व्रत कीन्हो एह ॥१५५१॥

वरत करनकी है विधि जिसी, जिन आगममें भाषी तिसी।
तीन बार इक वरस मझार, असाढ कातिक फागुण धार ॥१५५२॥

जे उतकिष्ट वरतको करै, [2]आठ–आठ उपवास जु धरै।
दूजो भेद कोमली जान, जिनमारगमें कह्यो बखान ॥१५५३॥

आठै दिन कीजे उपवास, नौमी एक भुक्ति परकास।
दसमी दिन कांजी करि सार, पाणी भात एक ही बार ॥१५५४॥

ग्यारस अल्प असन कीजिये, दुयवट तजि इकवट लीजिये।
मुख सोध्यो बारस [3]विधि एह, त्रिविधि पात्रको भोजन देय ॥१५५५॥

अंतराय तिनको नहि थाय, तो वह व्रत धरि असन लहाय।
अंतराय तिनिको जो परे, तो उस दिन उपवास हि करे ॥१५५६॥

सम्यग्दर्शनसे सहित व्रत सुखदायक होता है। वह अनुक्रमसे जीवको मोक्ष पहुँचा देता है इसलिये भव्यजीव जिन जिन व्रतोंको धारण करते हैं उनमेंसे कुछ व्रतोंके नाम कहता हूँ ॥१५५०॥

आष्टाह्निक व्रत कथन

आष्टाह्निक व्रत महान व्रतोंमें सारभूत है, अनादिसे चला आया है, इसका पार नहीं है। पूर्व कालमें जो उत्कृष्ट पुरुष हुए हैं उन सबने इस व्रतको धारण किया है ॥१५५१॥ इस व्रतके करनेकी जैसी विधि जिनागममें कही है वैसी कहता हूँ। यह व्रत एक वर्षमें तीन बार आता है—अषाढ़, कार्तिक और फागुनके अन्तिम आठ दिनोंमे धारण किया जाता है ॥१५५२॥ जो उत्कृष्ट व्रतको करते हैं वे तीनों शाखाओंमें आठ आठ उपवास करते हैं। इसका दूसरा भेद कोमली–सरल है जिनागममें इसका व्याख्यान इस प्रकार किया गया है ॥१५५३॥ अष्टमीके दिन उपवास करे, नवमीको एकभुक्त–एकाशन करे, दशमीको कांजी करे अर्थात् भात और पानी एक ही बार लेवे, एकादशीके दिन अल्प आहार ले अर्थात् एक चमचा प्रमाण एक अन्न लेकर मुख शुद्ध कर ले, द्वादशीके दिनकी विधि यह है कि तीन प्रकारके पात्रोंको आहार देवे और इस विधिसे देवे कि उन्हें अन्तराय नहीं आवे। यदि अन्तराय नहीं आया है तो व्रतका धारक भोजन करे, यदि अन्तराय आया है तो उस दिनका उपवास करे।

---

१ तन मन पूरव कीयो एह। स० २ सो उपवास आठ ही करे स० ३ व्रत न०

तेरसि दिन आंबिल कीजिये, ताकी विधि भवि सुनि लीजिये ।
एक अन्न षटरस विनु जानि, जलमें सूक लेई इक ठानि ॥१५५७॥
चउदस चित्त वेलडी थाय, भात नीर जुत मिरच [1]लहाय ।
पूरणवासीको उपवास, किये होय चिर अघको नास ॥१५५८॥
इह कोमलीकी विधि कही, जिन आगममें जैसी लही ।
आदि अंत करिये एकन्त, दस दिन धरिये शील महन्त ॥१५५९॥
जाके जिमि चउदस उपवास, चौदस पंदरस बेलो तास ।
तेरस आंबिलके दिन जेह, रहित विवेक आंवली लेह ॥१५६०॥
सदा सरद जाकी नहि जाय, उपजै जीव न संसै थाय ।
चउदस दिवस बेलडी करे, ता दिन इम अनीति विसतरे ॥१५६१॥
खाहि खेलरा अर काचरी, तथा तोरई निज मत हरी ।
तिनमें उपजै जीव अपार, सो व्रत दिन लेवों नहि सार ॥१५६२॥

दोहा

कांजीके दिन नीरमें, नाखि कसेलो लेह ।
तंदुल जल विनु अवर कछु, दरव न भाषो जेह ॥१५६३॥

त्रयोदशीके दिन अम्लाहार करे । अम्लाहारकी विधि इस प्रकार है कि छहों रस रहित एक अन्नको पानीमे उबाल कर एक बार लेवे । चतुर्दशीके दिन मनमे बेलडी (?) का विचार कर मिर्चके साथ भात और पानी लेवे । पूर्णिमाको उपवास रक्खे । उपवास करनेसे चिरसंचित पापोंका नाश होता है । यह कोमलीकी विधि जिनागमके अनुसार कही है । इस विधिमें व्रतके एक दिन पूर्व और एक दिन बादमें एकाशन करना चाहिये तथा दश दिन तक शील व्रत धारण करना चाहिये ॥१५५४-१५५६॥ जिसने चतुर्दशीका उपवास किया है उसके चतुर्दशी और पंचदशीका बेला होगा । त्रयोदशीके दिन अम्लाहार होगा । अम्लाहारके दिन कोई विवेकहीन मनुष्य इमली लेते हैं, यह ठीक नहीं है, क्योंकि इमलीमें सदा आर्द्रता रहनेसे निःसंदेह जीव उत्पन्न होते रहते हैं । कोई चतुर्दशीके दिन उपवास न कर बेलडी (?) करते हैं और उस दिन इस प्रकारकी अनीति करते हैं कि ककडी, काचरी तथा तोरई आदि हरित वनस्पतियोंका भक्षण करते हैं । इनमें अपार जीव उत्पन्न होते हैं इसलिये व्रतके दिन इनका लेना श्रेष्ठ नहीं है ॥१५६०-१५६२॥ कांजीके दिन पानीमें कोई कसैली वस्तु डाल कर लेवे तथा चावल और पानीके बिना अन्य कुछ न लेवे यह कहा गया है ॥ १५६३॥

---

१ मिलाय स०

चौपाई

तीजी विधि जु अठाई जानि, आठें तें चउवासहि ठानि ।
बारस असन पछै तिहुं वास, इहै भेद लखि पुण्य निवास ॥१५६४॥

दशमी तेरस जीमण होइ, बेला तीन करहु भवि लोय ।
चौथो भेद यहै जानिये, शीलसहित व्रत को ठानिये ॥१५६५॥

आठै दशमी बारस तीन, प्रोषध धरिये भव्य प्रवीन ।
चउदस पंदरस बेलो करे, पंचम विधि बुधजन उच्चरे ॥१५६६॥

आठै ग्यारस चौदस जान, तीन दिवस उपवास बखान ।
अथवा दोय करे नर कोय, एकासन पण छह दिन जोय ॥१५६७॥

यह व्रत संवर धरि मन लाय, सबै हरी तजिये दुखदाय ।
दस दिन शील वरत पालिये, संवरहूँ इह विधि धारिये ॥१५६८॥

वसु एकासण विधि जुत करे, पाँच पाप व्रत धरि परिहरै ।
घर आरंभ तजै अघदाय, दिवस आठलों शुभ उपजाय ॥१५६९॥

अब मरयादा सुनि भवि जीव, धरि त्रिशुद्धतासों लखि लीव ।
सत्रह बरष साखि इक जान, करि एकावन साख प्रमान ॥१५७०॥

आष्टाह्निक व्रतकी तीसरी विधि यह है कि अष्टमीसे एकादशी तक चार उपवास करे, द्वादशीको भोजन करे, पश्चात् तीन उपवास करे, यह भेद पुण्यका निवास है अर्थात् इस विधिसे व्रत करने पर सातिशय पुण्यका संचय होता है ॥१५६४॥ चौथी विधि यह है कि अष्टमी नवमीका, एकादशी द्वादशीका और चतुर्दशी पूर्णिमाका बेला करे एवं दशमी और त्रयोदशीको भोजन करे, साथ ही सभी दिन शील व्रतका पालन करे ॥१५६५॥ विद्वज्जनोंने आष्टाह्निक व्रतकी पाँचवी विधि यह कही है कि अष्टमी, दशमी और द्वादशीके तीन एकाशन भावपूर्वक करे। नवमी और एकादशीका उपवास रक्खे तथा चतुर्दशी और पूर्णिमाका बेला करे ॥१५६६॥ छठवीं विधि यह है कि अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी, इन तीन दिनोंका उपवास करे, शेष पाँच दिन एकाशन करे। अथवा अष्टमी और चतुर्दशीका उपवास करे, शेष छह दिनका एकाशन करे ॥१५६७॥ यह व्रत संवरका साधक है ऐसा विचार कर सभी प्रकारकी दु:खदायक वनस्पतिओंका त्याग करना चाहिये तथा शील व्रतका पालन करना चाहिये क्योंकि इसी विधिसे संवरकी साधना होती है ॥१५६८॥ एक विधि यह भी है कि विधिपूर्वक आठ एकाशन करे, व्रत रख कर पाँच पापोंका त्याग करे, पापके कारणभूत गृहारम्भों—गृहस्थीके कार्योंका परिहार करे तथा आठ दिन तक शुभ भाव रक्खे ॥१५६९॥ हे भव्यजीवो! अब

अथवा आठ वरषलों जान, बीस चार तसु साख बखान ।
पंच वरष करि पंदरा साख, धरि मन वच तन शुभ अभिलाख ॥१५७१॥
तीन वरषनो साख प्रमाण, एक वरष तिहु साख सुजाण ।
जैसी सकति देइ अवकास, सो विधि आदर करि भवि तास ॥१५७२॥
सकति प्रमाण उद्यापन करे, संवरतै कबहूँ नहि टरे ।
मैनासुंदरि अरु श्रीपाल, कियौ वरत फल लह्यो रसाल ॥१५७३॥
कोढ अठारह हो तन जास, सबै गये सुवरण परकास ।
और जु हुते सात सै वीर, तिनके निर्मल भये शरीर ॥१५७४॥
चक्री भयो नाम हरषेण, व्रत त्रिशुद्ध आराध्यो तेण ।
तिन फल पायौ सुख दातार, करम नासि पहुँचे भव-पार ॥१५७५॥
अंतराय पारो भवि सार, मौन सहित करिये आहार ।
व्रतमें हरी जिके नर खाय, संवर तास अकारथ जाय ॥१५७६॥
तातै व्रत धारी नर नार, मन वच क्रम हियरे अवधार ।
विधि माफिकते भविजन करो, सुर नर सुख लहि शिवतिय वरो ॥१५७७॥

इस व्रतकी मर्यादा सुनो तथा त्रियोगकी शुद्धतापूर्वक इसका निश्चय करो। सत्तरह वर्षका यह व्रत होता है उसकी इक्यावन शाखाएँ जानना चाहिये । अथवा आठ वर्षका यह व्रत होता है उसकी चौबीस शाखाएँ कही गई है । अथवा पाँच वर्षका यह व्रत होता हैं उसकी पन्द्रह शाखाएँ मानी गई है। अथवा तीन वर्षका यह व्रत होता है उसकी नौ शाखाएँ हैं अथवा एक वर्षका यह व्रत है उसकी तीन शाखाएँ कही गई है। जिसकी जैसी शक्ति और जैसा अवकाश हो तदनुसार आदरपूर्वक इस व्रतका पालन करना चाहिये ॥१५७०–१५७२॥

व्रत पूर्ण होने पर शक्तिके अनुसार उद्यापन करना चाहिये । ग्रन्थकार कहते हैं कि संवरके इस कार्यसे कभी पीछे नहीं हटना चाहिये । मैनासुन्दरी और श्रीपालने यह व्रत किया और उसका सुखदायक फल प्राप्त किया ॥१५७३॥ जिस श्रीपालके शरीरमें अठारह प्रकारका कुष्ठ रोग था उसका शरीर सुवर्णके समान प्रकाशमान हो गया । यही नहीं, उनके साथ रहने वालें सात सौ वीरोंके शरीर भी इस व्रत के प्रभावसे निर्मल हो गये ॥१५७४॥ हरिषेण चक्रवर्तीने त्रियोगकी शुद्धतापूर्वक इस आष्टाह्निक व्रतको धारण किया और उसके सुखदायक फलस्वरूप कर्म नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया ॥१५७५॥

हे भव्यजीवों! व्रतके दिन अन्तरायका पालन करो, मौनपूर्वक भोजन करो, और हरीका त्याग करो। क्योंकि व्रतके दिन जो हरी खाते हैं उनका व्रत व्यर्थ जाता है–उससे कर्मोंका संवर नहीं होता ॥१५७६॥ इसलिये व्रतधारक नर नारी, हृदयमें त्रियोगशुद्धिका विचार कर विधि

सकल वरसके दिनमें जान, परव अठाई भूषित मान ।
खग भूमीस मिलेच्छ नरेश, तिन करि पूज जेम चक्रेस ॥१५७८॥
चक्रीकी जो सेवा करे, सो मनवांछित सुख अनुसरे ।
आज्ञा भंग किये दुख लहे, ऐसे लोक सयाणे कहे ॥१५७९॥
तिम जो इनि दिन संवर धरे, तास पुण्य वरनन को करे ।
जो इन दिनमें अघ उपजाय, संख्यातीत तास दुख थाय ॥१५८०॥

दोहा

इहै अठाही व्रत धरो, प्रगट वखाण्यौ मर्म ।
सुरगादिककी वारता, लहै सास्वतो सर्म ॥१५८१॥

सोलह कारण, दश लक्षण, रत्नत्रय विधि कथन

चौपाई

सोलह कारण विधि सुनि लेह, जिन आगममें भाषी जेह ।
भादों माघ चैत तिहुँ मास, मध्य करे चित धरि हुल्लास ॥१५८२॥
वास इकंतर विधिजुत धरे, बीच दोय जीमण नहि करे ।
सोलह वरस करे भवि लोय, उद्यापन करि छांडे सोय ॥१५८३॥

पूर्वक व्रतका पालन करें और देव तथा मनुष्य गतिके सुख प्राप्त कर मुक्तिरमाको वरें ॥१५७७॥ ग्रन्थकार कहते है कि वर्षके समस्त दिनोंमें आष्टाह्निक पर्व उस प्रकार सुशोभित है कि जिस प्रकार भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंमें चक्रवर्ती सुशोभित होता है । जो चक्रवर्तीकी सेवा करता है वह मनवांछित सुखको प्राप्त होता है और जो उसकी आज्ञाका भंग करता है वह दुःख पाता है ऐसा ज्ञानी जन कहते है ॥१५७८–१५७९॥ इसी प्रकार इस आष्टाह्निक पर्वमें जो व्रत रखता है उसके पुण्यका वर्णन कौन कर सकता है? इसके विपरीत जो पापका उपार्जन करता है वह असंख्यात दुःखोंको प्राप्त होता है ॥१५८०॥ इसलिये हे भव्यजनों! इस आष्टाह्निक व्रत को धारण करो, इसके मर्मका हमने स्पष्ट वर्णन किया है । इसके फलसे स्वर्गादिककी तो बात ही क्या, शाश्वत सुख–मोक्ष सुख भी प्राप्त होता है ॥१५८१॥

सोलह कारण, दश लक्षण और रत्नत्रय व्रतकी विधिका कथन

अब जिनागमके कहे अनुसार सोलह कारण व्रतकी विधिको सुनो । यह व्रत भादों, माघ और चैत्र इन तीन मासोंमें आता है । हृदयमें उत्साह पूर्वक इसे धारण करना चाहिये । एक उपवास और एक एकाशन इस विधिसे करे, बीचमें लगातार दो जीमन न करे, इस प्रकार सोलह वर्ष तक करे और पूर्ण होने पर उद्यापन कर छोडे ॥१५८२–१५८३॥

सकति नहीं उद्यापन तणी, करै दुगुण व्रत श्री जिन भणी ।
दश लक्षण याही परकार, उत्कृष्टो दश वास हि धार ॥१५८४॥

दूजी विधि छह वासह तणी, करै इकंतर भाष्यौ गणी ।
मरजादा दश वरष हि जान, वरष मध्य तिहुँ बारहि ठान ॥१५८५॥

अवर सकल विधि करिहै जिती, संवर माहिं जानिये तिती ।
रत्नत्रयकी विधि ए सही, वरष मध्य तिहुँ बारह कही ॥१५८६॥

भादौ माघ चैत पखि सेत, बारसि करि एकान्त सुहेत ।
पोसह सकति प्रमाण जु धरै, अति उच्छाहतै तेलो करै ॥१५८७॥

पडिवा दिन करिहै एकन्त, पंच दिवस धरि सील महंत ।
वरस तीन मरयादा गहै, उद्यापन करि पुनि निरवहै ॥१५८८॥

सकति-हीन जो नर तिय होय, संवर दिवस न छांडै सोय ।
जाको फल पायो सो भणौ, नृप वैश्रवण विदेहा तणौ ॥१५८९॥

मल्लिनाथ तीर्थङ्कर होय, ताके पद पूजित तिहुँ लोय ।
बाल ब्रह्मचारी तप कियो, केवल पाय मुकति पद लियो ॥१५९०॥

यदि उद्यापन करनेकी शक्ति नहीं है तो व्रतको दूना करे, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है । इसी प्रकार दशलक्षण व्रत करना चाहिये । इसकी उत्कृष्ट विधि यह है कि दश उपवास करे । दूसरी विधि यह है कि छह उपवास और अन्तरालमें चार एकाशन करे अर्थात् ५, ७, ९, ११, १३ और १४ तिथिको उपवास करे और ६, ८, १० और १२ तिथिको एकाशन करे, ऐसा गणधरदेवने कहा है । इसकी मर्यादा दश वर्षकी है और सोलहकारणके समान यह भी एक वर्षमें तीन बार आता है ॥१५८४–१५८५॥ संवरकी साधनाके लिये अन्य जो विधि कही गई है वह सब इसमें भी जानना चाहिये । रत्नत्रय व्रतकी भी यही विधि है और वर्षमें तीन बार कहा गया है । इस व्रतमें भादों, माघ और चैत्रके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको एकाशन कर शक्तिके अनुसार प्रोषध धारण कर उत्साह पूर्वक त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाका तेला करे, पडिवा को एकाशन करे, और पाँच दिन तक शीलव्रतका पालन करे । इस व्रतकी मर्यादा तीन वर्षकी है । अन्तमें उद्यापन कर व्रतका समापन करे ॥१५८६–१५८८॥ जो स्त्री-पुरुष उद्यापन करनेमें शक्तिहीन हैं वे व्रतके दिनोंको छोडते नहीं है (अर्थात् एकाशन कर व्रतको पूर्ण करते हैं) शेष विधि यथापूर्व करते हैं । अब इस रत्नत्रय व्रतका फल जिसने प्राप्त किया उसका कथन करता हूँ । विदेहा नगरी में श्रवण राजा रहते थे उन्होंने विधिपूर्वक इस व्रतको धारण किया और अन्तमें वे मल्लिनाथ

अजहूँ जे या व्रतको धरै, दरसन त्रिविधि शुद्धता करै ।
ताको फल शिव है तहकीक, श्री जिन आगम भाष्यो ठीक ॥१५९१॥

लब्धि विधान व्रत
चौपाई

भादौ माघ चैत मधि जान, वदि पंदरसि एकन्तहि ठान ।
पडिवा दोयज तीज प्रवान, थापै तेलौ लबधि-विधान ॥१५९२॥

सकति प्रमाण जु पोसह धरै, चौथ दिवस एकासण करै ।
पांचौ दिवस शीलको पाल, तीन वरस व्रत करहि सम्हाल ॥१५९३॥

पुत्री तीन कुटुम्बी तणी, जिन व्रत लियो एम मुनि भणी ।
विधिवत करि उद्यापन कियो, तियपद छेदि देव पद लियो ॥१५९४॥

चय द्विज-सुत ह्वै पंडित नाम, गौतम गर्ग रु भार्गव नाम ।
महावीरके गणधर भये, तिनके नाम इन्द्र ए दिये ॥१५९५॥

इन्द्रभूति गौतमको नाम, अग्निभूत दूजो अभिराम ।
वायुभूत तीजेको सही, वरत तणो तीनों फल लही ॥१५९६॥

तीर्थंकर हुए । तीन लोक उनके चरणोंकी पूजा करता था, बाल ब्रह्मचारी रह कर उन्होंने तप किया और केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्तिपद पाया । आज भी सम्यग्दर्शनकी त्रिविध शुद्धता पूर्वक जो इस व्रतको धारण करते हैं वे उसके फलस्वरूप निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, ऐसा जिनागममें कहा गया है ॥१५८६–१५६१॥

लब्धि विधान व्रत

भादों, माघ और चैत्र मासके मध्य यह व्रत आता है। कृष्णपक्षकी पन्द्रसको एकाशन कर पडिवा, दूज और तीजके तेलाकी स्थापना करे ऐसा यह लब्धि-विधान व्रत है। शक्तिके अनुसार प्रोषध भी किया जा सकता है। चौथके दिन एकाशन करे, और पाँचों दिन शीलका पालन करे । तीन वर्ष तक सम्हाल कर इस व्रतको करे ॥१५६२–१५६३॥ एक कुटुम्बी गृहस्थकी तीन पुत्रियोंने मुनिराजके कहे अनुसार इस व्रतको किया, और विधिपूर्वक पालन कर अन्तमें उद्यापन किया जिसके फलस्वरूप स्त्रीलिंग छेद कर वे देवपदको प्राप्त हुई। वहाँ से चय कर एक ब्राह्मण पण्डितके यहाँ गौतम, गर्ग और भार्गव नामक पुत्र हुए जो भगवान महावीरके गणधर हुए। इन्द्रने तीनोंके नाम इस प्रकार रक्खे—गौतमका नाम इन्द्रभूति, गर्गका नाम अग्निभूति और भार्गवका नाम वायुभूति । तीनोंने व्रतका इस प्रकार फल प्राप्त किया—इन्द्रभूति उसी भवसे मोक्ष गये, दूसरे और तीसरेने भी उत्तम पद प्राप्त किया ।

इन्द्रभूत तद्भव शिव गयो, [1]दुहूँ तिहँ उत्तम पद लयो ।
यातैं जे भवि परम सुजान, [2]करो वरत पावो सुखथान ॥१५९७॥

दूजी विधि आगम इम कहै, पडिवा तीजहि प्रोषध गहै ।
दोयज दिवस करे एकन्त, इस मरयाद वरष छह सन्त ॥१५९८॥

पडिवा तीज एकान्त करेय, दोयजको उपवास धरेय ।
मरयादा भाषी नव वर्ष, करिये भवि मनमें धरि हर्ष ॥१५९९॥

पंच दिवसलों पालै शील, सुरगादिक सुख पावै लील ।
पुनि उत्तम नर पदवी लहै, दीक्षा धर शिवतिय-कर गहै ॥१६००॥

अक्षयनिधि व्रत

चौपाई

व्रत अक्षयनिधिका उपवास, श्रावण सुदि दशमी करि तास ।
भादों वदि जब दशमी होय, तिनहूँ के प्रोषध अवलोय ॥१६०१॥

अवर सकल एकंत जु धरै, सो दश वर्ष हि पूरो करै ।
उद्यापन करि छांडै ताहि, नांतर दुगुणो करिहै जाहि ॥१६०२॥

इसलिये जो परम ज्ञानी जीव हैं वे उन गणधरोको नमस्कार कर इस लब्धि विधानव्रतको धारण करे और उसके फल स्वरूप सुखका स्थान प्राप्त करें ॥१५६४–१५६७॥ इस व्रतकी दूसरी विधि शास्त्रोंमें यह भी कही गई है कि पडिवा और तीजका प्रोषध करे तथा दूजका एकाशन करे । इस व्रतकी मर्यादा छह वर्षकी कही गई है ॥१५६८॥ यदि पडिवा और तीजका एकाशन तथा दूजका उपवास करके कोई यह व्रत करता है तो उस व्रतकी मर्यादा नौ वर्ष की है । इसलिये हे भव्यजीवों ! मनमें हर्ष धारण कर इस व्रतका पालन करो ॥१५६६॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि जो पाँच दिन तक शीलका पालन करते हुए इस व्रतको धारण करते हैं वे स्वर्गादिक सुख भोग कर उत्तम मनुष्यपदको प्राप्त करते हैं और दीक्षा धारण कर मुक्तिवल्लभाको प्राप्त होते हैं ॥१६००॥

अक्षय निधि व्रतका वर्णन

अक्षय निधि व्रत श्रावण सुदी दसवींसे शुरू हो कर भादों वदी दसवींको समाप्त होता है । प्रारम्भ और अन्तिम दिन उपवास होता है और बीचके दिनोंमें एकाशन । दश वर्षमें यह व्रत पूर्ण होता है । उद्यापन करनेके बाद व्रतको छोड़ना चाहिये । यदि उद्यापनकी सामर्थ्य नहीं है तो व्रतको दूना करना चाहिये ॥१६०१–१६०२॥

---

१ दोहि पुत्र तदि भव शिव लहो । स० २ करिये व्रत पायो सुखथान स०

मेघमाला व्रत

चौपाई

वरत मेघमाला तसु नाम, भादव मास करे सुखधाम ।
प्रोषध पडिवा तीन बखान, आठै दुहुँ चौदसि दुहुँ जान ॥१६०३॥
सात वास चौईस इकंत, त्रिविधि शील जुत करिये संत ।
वरष पांचलों तसु मरयाद, सुर सुख पावै जुत अह्लाद ॥१६०४॥

जेष्ठ जिनवर व्रत

चौपाई

वरत जेष्ठ जिनवर भवि लोई, ज्येष्ठ मासमें करिये सोय ।
किशन पक्ष पडवा उपवास, एकासण चौदा पुनि तास ॥१६०५॥
प्रोषध शुकल प्रतिपदा करै, पुनि एकन्त चतुर्दश धरै ।
ज्येष्ठ मासके दिवस जु तीस, तास सहित व्रत करे गरीस ॥१६०६॥
वृषभनाथ जिन पूजा रचै, गीत नृत्य वाजित्र सुसचै ।
अति उछाह धरि हिये मझार, मरयादा लखि कथा विचार ॥१६०७॥

षट्रसी व्रत

अडिल्ल

दूध दही घृत तेल लूण मीठो सही,
तजै पाख दोय दोय सकल संख्या कही;

मेघमाला व्रतका वर्णन

सुखका स्थानभूत मेघमाला व्रत संपूर्ण भाद्र मासमें किया जाता है। तीन पडिवा, दो अष्टमी और दो चतुर्दशी इन सात तिथियोंमें उपवास तथा शेष चौबीस तिथियोंमें एकाशन किया जाता है। मन, वचन, कायसे शीलव्रतका पालन किया जाता है । पाँच वर्षकी इसकी मर्यादा है। इसके पालन करने वाले हर्षपूर्वक स्वर्गसुखको प्राप्त होते हैं ॥१६०३–१६०४॥

ज्येष्ठ जिनवर व्रतका वर्णन

कितने ही भव्यजीव ज्येष्ठ जिनवर व्रत करते हैं। यह व्रत जेठ मासमें किया जाता है। कृष्ण पक्षके पडिवा के दिन उपवास करनेके बाद चौदह एकाशन करे। पश्चात् शुक्ल पक्षके प्रतिपदाके दिन प्रोषध (उपवास) करे। पश्चात् चौदह एकाशन करे। जेठ मासके तीस दिन तक यह व्रत किया जाता है । वृषभनाथ भगवानकी गीत, नृत्य और वादित्रके साथ पूजा करे । हृदयमें अत्यन्त उत्साह रखकर मर्यादाको पूर्ण करे ॥१६०५–१६०७॥

षट्रसी व्रतका वर्णन

दूध, दही, घी, तेल, नमक और मीठा ये भोजन के छह रस है । इनमेंसे दो दो

करे असन इक बार व्रती इम व्रत सजै,
पख बारह मरयाद षट्रसी व्रत भजै ॥१६०८॥

पाख्या व्रत

अडिल्ल—लूण दीत, ससि हरी, मंगल मीठो हरै,
घिरत बुद्ध, गुरु दूध, दही भृगु परिहरै;
तेल तजे सनि इहै वरत पाख्या गहै,
मरयादा जिम नेम धरे जिम निरवहै ॥१६०९॥

ज्ञान पचीसी उपवास

अडिल्ल—प्रोषध चौदह चौदसिके विधिजुत करे,
तैसे ग्यारा ग्यारसिके प्रोषध धरे;
सब उपवास पचीस शीलव्रत जुत धरै,
ज्ञानपचीसी वरत जिनागम इम कहै ॥१६१०॥

सुखकरण व्रत

अडिल्ल—एक वास एकंत एक अनुक्रम करै,
मास चार पख एक इकन्तर इम धरै;
देव शास्त्र गुरु पूज सजै व्रत धरि सदा,
नाम तास सुखकरण, हरण दुख जिन वदा ॥१६११॥

पक्ष तक क्रमसे एक एक रसका त्याग कर एकाशन करे। यह षट्रसी व्रत है इसकी मर्यादा बारह पक्षकी है ॥१६०८॥

पाख्या व्रतका वर्णन

रविवारको नमक, सोमवारको हरी, मंगलवारको मीठा, बुधवारको घृत, गुरुवारको दूध, शुक्रवारको दही और शनिवारको तेलका त्याग करे, यही पाख्या व्रत कहलाता है। मर्यादा अपने नियमके अनुसार है अर्थात् जितने समयका नियम लिया है उसका निर्वाह करे ॥१६०९॥

ज्ञान पच्चीसी उपवासका वर्णन

जिनागममें ज्ञान पच्चीसी व्रतका स्वरूप ऐसा कहा गया है कि चौदह पूर्वोंका लक्ष्य रख कर चौदह चतुर्दशीके १४ और ग्यारह अंगोंका लक्ष्य रखकर ग्यारह ग्यारसोंके ११, इस तरह पच्चीस उपवास करे तथा शीलव्रतका पालन करे ॥१६१०॥

सुखकरण व्रतका वर्णन

चार माह और एक पक्ष तक अनुक्रमसे एक उपवास और एक एकाशन करे तथा देव-शास्त्र-गुरुकी पूजा साज-संगीतके साथ करे ऐसा यह सुखकरण तथा दुखहरण व्रत जिनेन्द्र भगवानने कहा है ॥१६११॥

समवसरण व्रत

दोहा—श्वेत किशन चौदसि तणी, प्रोषध बीस रु चार ।
शील सहित भविजन करै, समोसरण व्रत धार ॥१६१२॥

आकाश पंचमी व्रत

चौपाई—भादव सुदि पंचमि उपवास, करे वरत पंचमि आकास ।
वरष पंच मरयादा जास, शील सहित प्रोषध धरि तास ॥१६१३॥

अक्षय दशमी व्रत

चौपाई—श्रावण सुदि दशमी को सही, अक्षय दशमि व्रतको जन गही ।
प्रोषध करे शील जुत सार, तसु मरयाद वरष दश धार ॥१६१४॥

चंदन षष्ठी व्रत

चौपाई—भादव वदि छठि दिन उपवास, चंदन षष्ठी व्रत धर तास ।
मन वच काय शील व्रत धार, तसु परमाण वरष छह सार ॥१६१५॥

निर्दोष सप्तमी व्रत

चौपाई—भादों सुदि सातें निर्दोष, वरत करै प्रोषध शुभकोष ।
संख्या सात वरष लों जाहि, उद्यापन करि तजिये ताहि ॥१६१६॥

समवसरण व्रतका वर्णन

शुक्ल तथा कृष्ण—दोनों पक्षोंकी चतुर्दशियोंके चौबीस उपवास शील सहित करना समवसरण व्रत है । भव्यजीव इसें करते हैं ॥१६१२॥

आकाश पंचमी व्रत

भादों सुदी पंचमीके दिन उपवास करना आकाश पंचमी व्रत है । इस व्रतकी अवधि पाँच वर्षकी है । उपवासके दिन शीलव्रत रखना चाहिये ॥१६१३॥

अक्षय दशमी व्रत

श्रावण सुदी दशमीके दिन शील सहित उपवास करना अक्षय दशमी व्रत है । इसकी मर्यादा छह वर्षकी है ॥१६१४॥

चन्दन षष्ठी व्रत

भादों वदी षष्ठीके दिन उपवास करना तथा मन वचन काय से शीलव्रतका पालन करना चन्दन षष्ठी व्रत है । इसकी मर्यादा छह वर्षकी है ॥१६१५॥

निर्दोष सप्तमी व्रत

भादों सुदी सप्तमीको उपवास करना निर्दोष सप्तमी व्रत है । यह सात वर्ष तक किया जाता है, पुण्यका भण्डार है । उद्यापन करनेके पश्चात् इसे छोड़ना चाहिये ॥१६१६॥

सुगंध दशमी व्रत

चौपाई

व्रत सुगंध दशमीको जान, भादों सुदि दशमी दिन ठान ।
प्रोषध करे वरष दश सही, शील सहित मर्यादा गही ॥१६१७॥
[1]अष्ट द्रव्य सों पूजा करे, धूप विशेष खेय अघ हरे ।
धीवर-सुता हुती दुरगंध, व्रत-फल तस तन भयो सुगंध ॥१६१८॥

श्रवण द्वादशी व्रत

चौपाई

भादौं सुदि द्वादसि व्रत नाम, श्रवण द्वादशी जो अभिराम ।
बारह वरष लगे जो करै, शील सहित प्रोषध अनुसरै ॥१६१९॥

अनन्त चतुर्दशी व्रत

चौपाई

भादौ सुदि चौदसि दिन जानि, व्रत अनंत चौदसिको ठानि ।
तीर्थंङ्कर चौदहौ अनन्त, [2]रचै पूज सों जीव्र महंत ॥१६२०॥
प्रोषध करे शील जुत सार, चौदह वरष लगे निरधार ।
उद्यापन विधि करि वह तजै, सो जन स्वर्ग तणा सुख भजै ॥१६२१॥

सुगन्ध दशमी व्रत

भादों सुदी दशमीको सुगन्ध दशमी व्रत किया जाता है । इस दिन प्रोषध किया जाता है । दश वर्ष तक इसकी मर्यादा है । इस दिन शील व्रतका पालन करना चाहिये, अष्ट द्रव्यसे भगवान की पूजा करना चाहिये, धूप विशेष रूपसे चढ़ाना चाहिये, यह व्रत पापोंको हरनेवाला है । धीवरकी पुत्री दुर्गन्धाने इस व्रतके फलसे सुगन्धित शरीर प्राप्त किया था ॥१६१७–१६१८॥

श्रवण (श्रमण) द्वादशी व्रत

भादों सुदी द्वादशीके दिन श्रवण (श्रमण) द्वादशी व्रत किया जाता है । यह व्रत बारह वर्ष तक होता है । इस दिन शील सहित उपवास करना चाहिये ॥१६१९॥

अनन्त चतुर्दशी व्रत

भादों सुदी चौदसके दिन अनन्त चतुर्दशी व्रत होता है । इस दिन महान पुरुष चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ भगवानकी पूजा करते हैं, शील सहित प्रोषध करते हैं । यह व्रत चौदह वर्ष तक किया जाता है पश्चात् उद्यापन कर छोड़ा जाता है । इसके फलसे स्वर्ग सुखकी प्राप्ति होती है ॥१६२०–१६२१॥

---

१ जल—चंदन अक्षत सब करे न० २ रचि है पूजा जीव महंत न०, रचिहै पूजा तास महंत ।

नवकार पैंतीस व्रत

चौपाई—अपराजित मंत्र नवकार, अक्षर तसु पैंतीस विचार ।
करि उपवास वरण परमान, सातैं सात करो बुध मान ॥१६२२॥

पुनि चौदा चौदसि गनि सांच, पांचै तिथिके प्रोषध पांच ।
नवमी नव करिये भवि संत, सब प्रोषध पैंतीस गणंत ॥१६२३॥

पैंतीसी नवकार जु एह, जाप्य मंत्र नवकार जपेह ।
मन वच तन नर नारी करै, सुर नर सुख लहि शिवतिय वरै ॥१६२४॥

त्रेपन क्रिया व्रत

चौपाई—त्रेपन किरियाकी विधि जिसी, सुणिये बुध भाषी जिन तिसी ।
आठै आठ मूल गुण तणी, पाचै पांच अणुव्रत भणी ॥१६२५॥

तीन तीज गुणव्रतकी धार, शिक्षाव्रतकी चौथ जु चार ।
तप बारहकी बारसि जान, तिनके प्रोषध बारह ठान ॥१६२६॥

सामि भावकी पडिवा एक, ग्यारसि प्रतिमाकी दश एक ।
चौथ चार चहुं दानहि तणी, पडिवा एक जल-गालन भणी ॥१६२७॥

अणथमीय पडिवा अघ-रोध, तीनहुँ तीज चरण दृग बोध ।
ए त्रेपन प्रोषध जे करै, शील सहित तपको अनुसरै ॥१६२८॥

नवकार पैंतीस व्रत

अपराजित मन्त्र, नमस्कार मन्त्र कहलाता है, इसके पैंतीस अक्षर होते हैं । इन्हें लक्ष्य कर एक वर्षमें सात सप्तमियोंके सात, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह, पाँच पंचमियोंके पाँच और नौ नवमियोंके नौ, सब मिलाकर ३५ प्रोषध किये जाते हैं और नमस्कार मन्त्रका जाप किया जाता है। जो नर नारी मन वचन कायसे इस व्रतको करते हैं वे सुर नरके सुख प्राप्त कर मुक्ति रमाका वरण करते हैं ॥१६२२-१६२४॥

त्रेपन क्रिया व्रत

त्रेपन क्रिया व्रतकी विधि विद्वानोंने जैसी कही हैं उसे सुनिये । आठ मूलगुणोंकी आठ अष्टमी, पाँच अणुव्रतोंकी पाँच पंचमी, तीन गुणव्रतोंकी तीन तृतीया, चार शिक्षाव्रतोंकी चार चतुर्थी द्वादश तपोंकी बारह द्वादशी, साम्यभावकी एक पडिवा, ग्यारह प्रतिमाओंकी ग्यारह एकादशी, चार दानकी चार चतुर्थी, जलगालनकी एक पडिवा, अनस्तमित (अणथऊ) व्रतकी एक पडिवा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी तीन तृतीया, इस प्रकार इन त्रेपन तिथियोंमें जो नर नारी शील सहित प्रोषध करते हैं, तपश्चरण करते हैं वे देव और मनुष्य गतिके सुख भोग

सो नर तिय सुर नृप सुख पाय, अनुक्रमतें शिवथान लहाय ।
उद्यापन विधि करिये सार, सकति जेम नहि हीन विचार ॥१६२९॥

जिनेन्द्र गुण संपत्ति व्रत

चाल छन्द—**जिनगुण संपत्ति व्रत धार, सुनिये तिनको अवधार ।**
दस अतिसै जिन जनमत ही, लीजे उपजै लखि सति ही ॥१६३०॥
उपज्यौ जब केवल ज्ञान, दस अतिसै प्रगटै जान ।
इम अतिसय बीस जु केरी, करि बीस दसै सुखवेरी ॥१६३१॥
देवाकृत अतिसय जाणो, चौदस चौदह तिह ठाणो ।
वसु प्रातिहार्य जिन देव, वसु आठै करिये एव ॥१६३२॥
भावन सोलह कारण की, पडिमा षोडश करि नीकी ।
पांचौ कल्याणक जाकी, पांचौ पांचे करि ताकी ॥१६३३॥
प्रोषध ए त्रैसठि जाणो, जुत सील भविक जन ठाणो ।
उत्तम सुर नर सुख पावै, अनुक्रमतें शिव पहुँचावै ॥१६३४॥

पंचमी व्रत

चौपाई—**फागुण असाढ कातिकते एह, सित पंचमि तें व्रतको लेह ।**
पैसठ प्रोषध करिये तास, वरष पांच पांच परि मास ॥१६३५॥

कर क्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं । व्रत पूर्ण होने पर शक्तिके अनुसार उद्यापन करना चाहिये—न शक्तिसे हीन करे और न अधिक ॥१६२५–१६२६॥

जिनेन्द्र गुण संपत्ति व्रत

अब जिनेन्द्र गुण संपत्ति व्रतकी विधि सुन कर निश्चय करिये । जिनेन्द्र (तीर्थंकर)के जन्म लेते ही दश अतिशय होते हैं तथा केवलज्ञान उत्पन्न होने पर दश अतिशय प्रकट होते हैं । इस प्रकार इन बीस अतिशयोंको लक्ष्य कर बीस दशमी, देव कृत चौदह अतिशय होते हैं उन्हे लक्ष्य कर चौदह चतुर्दशी, आठ प्रातिहार्य होते हैं उन्हें लक्ष्य कर आठ अष्टमी, सोलह कारण भावनाओंको लक्ष्य कर सोलह पडिवा और पाँच कल्याणकोंको लक्ष्य कर पाँच पंचमी, इस प्रकार त्रेसठ प्रोषध करनेसे यह व्रत पूर्ण होता है । व्रतके दिनोंमें शीलव्रतका पालन करना चाहिये । जो भव्यजीव इस व्रतको करते हैं वे मनुष्य और देवगतिके उत्तम सुख प्राप्त कर अनुक्रमसे मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥१६३०–१६३४॥

सित पंचमी व्रत

फागुन, अषाढ अथवा कार्तिकके शुक्ल पक्षकी पंचमीसे यह व्रत लिया जाता है । इसमें पेंसठ प्रोषध किये जाते हैं जो पाँच वर्ष और पाँच माहमें पूर्ण होते हैं ॥१६३५॥ इस सित

श्वेत पंचमीको व्रत धार, कमलश्री पायो फल सार ।
भविसदत्त सुत मिलियो आय, तिनहूँ व्रत कीनो मन लाय ॥१६३६॥
तास चरित माहे विसतार, वरनन कीयो सब निरधार ।
अजहूँ नर तिय करिहै सोय, त्रिविध सुधी तैसो फल होय ॥१६३७॥

शील कल्याणक व्रत

दोहा

शील कल्याणक व्रत तणो, भेद सुनो जे संत ।
मन वच काय त्रिशुद्धि करि, धारौ भवि हरषंत ॥१६३८॥

चाल छन्द

तिरयंचणि सुर तिय नारी, चौथी बिनु चेतन सारी ।
पणि इन्द्रिनिते चहुँ गुणिये, तिनि संख्या बीस जु मुणिये ॥१६३९॥
मन वच तन तें ते बीस, गुणतै ह्वै तीस रु तीस ।
कृत कारित अनुमोदनतें, गुणिये पुनि साठहि गनते ॥१६४०॥
इक सौ अस्सी हुइ जोई, प्रोषध करु भवि धरि सोई ।
इक वरष मांहि निरधार, करिये पूरण सब सार ॥१६४१॥
इक दिन उपवास जु कीजै, दूजो दिन असन जु लीजै ।
तीजै दिन फिर उपवास, इम करहु इकंतर तास ॥१६४२॥

पंचमी व्रतको धारण कर कमलश्रीने श्रेष्ठ फल प्राप्त किया । जब भविष्यदत्त मिले तब उन्होंने भी मन लगा कर इस व्रतको किया । भविष्यदत्त चरित्रमें इसका विस्तारसे वर्णन किया गया है वहाँसे जानना चाहिये । आज भी जो ज्ञानी स्त्री पुरुष मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक इस व्रतको करते हैं वे भी उसी प्रकारके फलको प्राप्त होते हैं ॥१६३६-१६३७॥

शील कल्याणक व्रत

हे सत्पुरुषों ! अब शील कल्याणक व्रतका भेद सुनो और हर्षित होकर मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक उसे धारण करो ॥१६३८॥ तिरश्ची, देवी और मानुषी ये तीन चेतन स्त्रियाँ हैं और एक अचेतन स्त्री चित्राम आदिकी है । इन चार प्रकारकी स्त्रियोंमें पाँच इन्द्रियोंका गुणा करने पर बीसकी संख्या आती है । उसमें मन वचन कायका गुणा करने पर साठ होते हैं । उनमें कृत-कारित-अनुमोदनाका गुणा करने पर एकसौ अस्सी होते हैं । एकसौ अस्सी एकाशन और इतने ही उपवास करनेसे यह व्रत एक वर्षमें पूर्ण होता है ॥१६३९-१६४१॥ इसकी विधि यह है कि एक उपवास उसके बाद एक एकाशन, फिर एक उपवास तदनन्तर एक एकाशन इस प्रकार एक सौ अस्सी एकाशन और एक सौ अस्सी उपवास होते हैं । दोनोंमें

इक सौ अस्सी एकंत, इतने ही वास करंत ।
दिन साठ तीनसै धीर, पालै निति शील गहीर ॥१६४३॥
इह शील कल्याणक नाम, व्रत है बहुविधि सुखधाम ।
ह्वै चक्री काम कुमार, हरि प्रतिहरि बल अवतार ॥१६४४॥
तीर्थङ्कर पदवी पावै, समकित जुत व्रत जो ध्यावै ।
ऐसे लखि जे भवि जाण, करिये व्रत शील कल्याण ॥१६४५॥

शील व्रत

चाल छन्द

अब सुनहु शील व्रत सार, जैसो आगम निरधार ।
वैशाख सुकल छठि लीजै, प्रोषध उपवास करीजै ॥१६४६॥
अभिनंदन जिनवर मोषं, कल्याणक दिन शिव पोषं ।
शुभ शीलवरत तसु नाम, करि पंच वरष सुखधाम ॥१६४७॥

नक्षत्र माला व्रत

गीता छन्द

अश्विन नखतथकी जु वासर च्यार अधिक पंचास ही,
तिहि मध्य एकासन सताइस बीस सात उपवास ही;
जुत शील मन वच तन त्रिशुद्धहि करि विवेकी चावस्यों,
माला नक्षत्र सुनाम व्रत तैं छूटियै विधि-दाव स्यों ॥१६४८॥

मिलाकर तीनसौ साठ दिन लगते है। इस व्रतमें नित्य प्रति शील व्रतका पालन करना चाहिये। यह शील कल्याणक व्रत बहुत प्रकारके सुखोंका स्थान है। जो सम्यग्दर्शनके साथ इस व्रतका पालन करते हैं वे चक्रवर्ती, कामदेव, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र और तीर्थंकर पदवीको प्राप्त करते हैं, ऐसा सोच कर भव्यजीव इस व्रतका पालन करें ॥१६४२–१६४५॥

शील व्रत

अब श्रेष्ठ शील व्रतका वर्णन सुनो, जैसा कि आगममें कहा गया है। वैशाख शुक्ल षष्ठी के दिन प्रोषधोपवास कर यह व्रत किया जाता है। यह तिथि अभिनन्दन भगवानके मोक्ष कल्याणककी है अतः उनकी पूजा करना चाहिये। यह शीलव्रत पाँच वर्ष तक किया जाता है तथा सुखका स्थान है अर्थात् मनुष्य और स्वर्गके सुख देनेवाला है ॥१६४६–१६४७॥

नक्षत्र माला व्रत

वर्षमें अश्विनी नक्षत्रके चौपन दिन होते हैं उनमें सत्ताईस दिन एकाशन और सत्ताईस दिन उपवास करना चाहिये। विवेकी जन शील सहित मन वचन कायकी त्रिशुद्धता पूर्वक बडे उत्साहसे इस नक्षत्रमाला व्रतको धारण करें और कर्मके दावसे मुक्त होवे ॥१६४८॥

सर्वार्थसिद्धि व्रत

गीता छन्द

कातिक सुकल अष्टम दिवसतै, अष्ट वास जु कीजिये,
तसु आदि अंत इकंत दस दिन शील सहित गनीजिये;
जिनराज श्रुत गुरु पूज उत्सव सहित नृत्यादिक करै,
सर्वार्थसिद्धि जु नाम व्रत इह मोक्ष सुखको अनुसरै ॥१६४९॥

तीन चौबीसी व्रत

दोहा

व्रत चौबीसी तीनकी, सुकल भाद्रपद तीज ।
प्रोषध कीजै शील जुत, सुरसुख शिवको बीज ॥१६५०॥

श्रुतस्कन्ध व्रत

दोहा—श्रुत स्कन्ध व्रत तीन विधि, उत्तम मध्य कनिष्ठ ।
षोडश प्रोषध तीस दुय, वासर माहिं गरिष्ठ ॥१६५१॥

दस प्रोषध दिन तीसमें, मध्य सुविधि लखि लेह ।
वसु प्रोषध इक वासमें, है कनिष्ठ व्रत एह ॥१६५२॥

कथन विशेष कथा-मही, द्वादशाङ्गके भेद ।
त्रिविध जिनेश्वर भाषियो, कारण कर्म उछेद ॥१६५३॥

सर्वार्थ सिद्धि व्रत

कार्तिक शुक्ल अष्टमीके दिनसे आठ उपवास तथा उपवासके आदि और अन्तमें एकाशन, इस प्रकार दश दिन शील व्रत करे और देव शास्त्र गुरुकी पूजा नृत्य गान आदि के साथ करे। यह सर्वार्थ सिद्धि नामका व्रत, मोक्षसुखको देने वाला है ॥१६४९॥

तीन चौबीसी व्रत

भादों शुक्ला तीजको शील सहित प्रोषध करके यह तीन चौबीसी व्रत किया जाता है। इससे स्वर्ग और मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती है ॥१६५०॥

श्रुतस्कन्ध व्रत

श्रुतस्कन्ध व्रतकी विधि उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी है। बत्तीस दिनमें सोलह उपवास करना उत्तम विधि है, तीस दिनमें दश उपवास करना मध्यम विधि है और एक वर्षमें आठ उपवास करना जघन्य विधि हैं। इसका विशेष वर्णन तथा द्वादशांगके भेद कथामें कहे गये हैं । यह तीनों प्रकारका व्रत कर्मका उच्छेद करने वाला है, ऐसा जिनेन्द्र देवने कहा है ॥१६५१–१६५३॥

जिन मुखावलोकन व्रत

दोहा

जिन मुख अवलोकन वरत, करिये भादों मास ।
जिन मुख देखे प्रात उठि, अवर न पैखै वास ।।१६५४।।

चाल छन्द

प्रोषध इक मास इकन्तर, कांजी जुत करिये निरन्तर ।
अथवा चंद्रायण करिहै, लघु सकति इकन्त जु धरिहै ।।१६५५।।

संख्या धरि वस्तु जु केरी, तातैं नहि लै अधिकेरी ।
इह वरत महा सुखदाई, चहु गति भव-भ्रमण नसाई ।।१६५६।।

लघु सुख-संपत्ति व्रत

चाल छन्द

सुख संपत्ति व्रत दुय भेद, तिनकी विधि भवि सुनि एव ।
षोडश तिथि प्रोषध षट दश, लहैंही सुखदाय अनेकश ।।१६५७।।

बडा सुख संपत्ति व्रत

चाल छन्द

पडिवा इक दोयज दोई, तिहुँ तीज चौथ चहुँ जोई ।
पांचै पण छठ छह जाणो, सातैं पुनि सात बखाणो ।।१६५८।।

जिन-मुखावलोकन व्रत

जिन-मुखावलोकन व्रत भादों मासमें किया जाता है । इसमें प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर जिनेन्द्र देवका मुख देखे, अन्य कुछ न देखे ।।१६५४।। एक उपवास और शेष कांजीके साथ एकाशन करे अथवा चान्द्रायण व्रत करे अर्थात् कृष्ण पक्षमें प्रतिदिन एक एक ग्रास कम करता जावे और शुक्ल पक्षमें एक एक ग्रास बढ़ाता जावे । यदि शक्ति कम है तो एकाशन करे । खाने पीने की जितनी वस्तुओंकी संख्या निश्चित की है उससे अधिक न लेवे । ग्रन्थकार कहते हैं कि यह व्रत महा सुखदायी तथा चतुर्गतिरूप संसारके भ्रमणको नष्ट करने वाला है ।।१६५५–१६५६।।

लघु सुख संपत्ति व्रत

सुख संपत्ति व्रत के दो भेद हैं, एक लघु और दूसरा बड़ा । हे भव्यजीवों ! उसकी विधि इस प्रकार सुनो । सोलह तिथियोंके सोलह प्रोषध करना यह लघु सुखसंपत्ति व्रत है । इसके करनेसे अनेक सुखकी प्राप्ति होती है ।।१६५७।।

बड़ा सुखसंपत्ति व्रत

पडिवाका एक, दूजके दो, तीजके तीन, चौथके चार, पाँचमके पाँच, छठके छह, सातमके सात, आठमके आठ, नवमीके नौ, दशमीके दस, ग्यारसके ग्यारह, बारसके बारह, तेरसके तेरह,

आठैंके प्रोषध आठ, नवमी नव आगम पाठ।
दसमी दस ग्यारस ग्यारै, बारसिके प्रोषध बारै ॥१६५९॥
तेरसि तेरा गनि लीजै, चौदसिके चौदह कीजै।
पंदरसि पंदरह शिवकारी, बीस रु सौ प्रोषध धारी ॥१६६०॥
इह सुख संपत्ति व्रत नीको, भव भव सुखदायक जीको।
मन वच काया शुद्ध कीजै, भविजन नर भवफल लीजै ॥१६६१॥

द्वादश व्रत

चौपाई

बारा वरत तणी विधि जिसी, बारा भांति बखांणौ तिसी।
प्रोषध बारा कीजे सन्त, अरु बारा ही करिये एकन्त ॥१६६२॥
बारा कांजी तंदुल लेय, नीगोरस गोरस तजि देय।
अलप अहार असन इक भाग, लैहे करिहै दुय पय भाग ॥१६६३॥
इकठाणौ भोजन जल सबै, ले पुरसाय बार इक तबै।
मूंग मोठ चौला अरु चिणा, लेहि इकौण बीणि तत खिणा ॥१६६४॥
पाणी लूण थकी जो खाय, [1]नयड नाम ताको कहवाय।
घिरत छांडिये सब परकार, सो जाणो लूखौ जु अहार ॥१६६५॥
त्रिविधि पात्र साधरमी जाण, ताहि आहार देय विधि जाण।
ले मुख सोधि निरन्तर थाय, पाछै व्रत धर असन लहाय ॥१६६६॥

चौदशके चौदह और पन्द्रसके पन्द्रह, इस प्रकार एक सौ बीस प्रोषध करना बडा सुखसंपत्ति व्रत है। यह सुखसंपत्ति व्रत, व्रत करनेवाले जीवोंको भव भवमें सुखदायक है। हे भव्यजीवों! मनवचनकायको शुद्ध कर इस व्रतके द्वारा मनुष्यभवका फल प्राप्त करो ॥१६५८-१६६१॥

बारा व्रत

अब बारा व्रतकी विधि बारह प्रकारकी जैसी कही गई है वैसी कहता हूँ। इस व्रतमें बारह प्रोषध और बारह एकाशन होते हैं। बारह एकाशन इस प्रकार करे—१ कांजीके साथ चावल लेवे। २ घी, दूध, दहीरूप गोरसका त्याग कर निर्गोरस एकाशन करे। ३ अल्पाहार करे अर्थात् भोजन एक भाग और पानी दो भाग ले। ४ एकठाना अर्थात् एक बार परोसे हुए अन्न जलको ग्रहण करे। ५ एकान्न अर्थात् मूंग मौठ चौला चना आदिमेंसे किसी एक अन्नको लेवे। ६ नयड़ अर्थात् नमक और पानीके साथ एकाशन करे। ७ रूक्षाहार अर्थात् सब प्रकारसे घृतका परित्याग कर आहार लेवे। ८ मुखशोधी—अर्थात् तीन प्रकारके पात्रोंको विधिपूर्वक आहार दान देवे।

---

१ नजय स०

अंतराय हु है उपवास, करै नाम मुख सोध्यो तास ।
घरके लोक बुलाय कहेई, बिन जाँचै भोजन जल देई ॥१६६७॥
धरै थालमाहीं जो खाय, [1]किरिया जैन अयाची थाय ।
लूण सर्वथा त्यागे जदा, भांति अलूणाकी ह्वै तदा ॥१६६८॥
जिन पूजा सुन शास्त्र बखान, एक गेहको करि परिमाण ।
जाय उडंड तासके द्वार, भोजन लेहु कहै नर नार ॥१६६९॥
ठाम असन जलको जो गहै, वरत नाम निरमान जु कहै ।
बारा वरत भांति दस दोय, अनुक्रमि सेत पक्ष भवि लोय ॥१६७०॥
समकित सहित जु व्रतको धरै, त्रिविध शुद्ध शीलहि आचरै ।
करिहै पूरण वरष मझार, सो सुरपद पावे नर नार ॥१६७१॥

एकावली व्रत

अडिल्ल छन्द—सुनहु भविक एकावली विधि है जिसी,
सुकल प्रतिपदा पंचम अष्टम चउदसी;
कृष्ण चतुरथी आठै चउदसि जाणिये,
चउरासी उपवास वरष—मधि ठाणिये ॥१६७२॥

निरन्तराय आहार होने पर स्वयं आहार करे। ९ पात्रके अन्तराय आने पर स्वयं उपवास करे। १० अयाचित भोजन—घरके लोग स्वयं बुला कर ले जावें तब बिना माँगे भोजन और जल ग्रहण करे, थालीमें जो आ जाय उसे ही लेवे। ११ अलवणाहार—नमकका सर्वथा त्याग कर आहार लेवें और १२ उदण्डाहार—जिन पूजा और शास्त्र व्याख्यान सुननेके बाद किसी एक घरका परिमाण कर बिना निमन्त्रण भोजनके लिये जावे, वहाँ स्त्री पुरुष जो अन्न जल देवें उसे अभिमान छोड़कर ग्रहण करे, इस व्रतको निरभिमान व्रत भी कहते हैं। उपर्युक्त बारह प्रकारकी विधि बारह महिनोंके शुक्ल पक्षमें करे। ग्रन्थकार कहते हैं कि जो नरनारी सम्यग्दर्शनके साथ मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक इस व्रतको एक वर्षमें पूर्ण करते हैं वे देव पदको प्राप्त करते हैं ॥१६६२–१६७१॥

एकावली व्रत

हे भव्यजनों! अब एकावली व्रतकी यथार्थ विधि सुनो। प्रत्येक माह के शुक्ल पक्ष की पडिवा के १२, पंचमीके १२, अष्टमीके १२, चतुर्दशीके १२ तथा कृष्ण पक्षकी चतुर्थी के १२, अष्टमीके १२ और चतुर्दशीके १२ इस प्रकार एक वर्षमें ८४ उपवास करना चाहिये ॥१६७२॥ वीर्यकान्ति नामके राजाने विधिपूर्वक ये उपवास किये और आगममें कहे

---

१ फिरि जांचे न अजाची थाय स० न०

वीर्यकांति नृप प्रोषधकी विधि है तिसी,
उद्यापनकी रीति करी आगम जिसी;
दीक्षा धरि मुनि होय घोर तपको गह्यो,
केवलज्ञान उपाय मोक्षपदवी लह्यो ॥१६७३॥

दुकावली व्रत

दोहा

विधि दुकावली वरतकी, श्री जिन भाषी ताम ।
बेला सात जु मासमें, करिये सुनि तिथि नाम ॥१६७४॥

चाल छन्द

पखि श्वेत थकी व्रत लीजै, पडिवा दोयज लखि कीजै ।
पुनि पांचै षष्ठी जाणो, आठै नवमि छठि ठाणो ॥१६७५॥

चौदसि पूर्न्यों गिन लेह, बेला चहुँ पखि सित एह ।
तिथि चौथी पांचमी कारी, आठै नौमी सुविचारी ॥१६७६॥

चौदसि मावस परवीन, पखि किसन करै छठि तीन ।
इम सात मास इक माहीं, बारा मासहि इक ठाहीं ॥१६७७॥

चौरासी बेला कीजे, उद्यापन करि छांडीजे ।
इस व्रतते सुर शिव पावे, सुखको तहाँ ओर न आवे ॥१६७८॥

अनुसार उद्यापन किया । पश्चात् दिगम्बर दीक्षा ले कर घोर तप किया तथा केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पदवी प्राप्त की ॥१६७३॥

दुकावली व्रत

द्विकावली व्रतकी जैसी विधि जिनेन्द्र भगवानने कही है वैसी कहता हूँ । इस व्रतके लिये एक माहमें सात बेला करना चाहिये ॥१६७४॥ शुक्ल पक्षसे व्रतका प्रारम्भ करना चाहिये । शुक्ल पक्षमें पडिवा–द्वितीया, पंचमी-षष्ठी, अष्टमी-नवमी, चतुर्दशी-पूर्णिमा ये चार बेला तथा कृष्ण पक्षमें चतुर्थी–पंचमी, अष्टमी–नवमी, चतुदर्शी अमावस ये तीन बेला इस प्रकार एक माहके सात और बारह माहके चौरासी बेला करना चाहिये । व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन कर समापन करना चाहिये । इस व्रतसे देव और मोक्षका वह सुख प्राप्त होता है जिसका अन्त नहीं है ॥१६७५–१६७८॥

रत्नावली व्रत

चाल छन्द

रतनावलि व्रत इम करिये, प्रोषध सुदि तीजहि धरिये ।
पंचम अष्टम उपवास, सित पक्ष तिहु प्रोषध तास ॥१६७९॥

दोयज पंचम अँधियारी, आठैं प्रोषध सुखकारी ।
इक मास माहि छह जानो, वरस सतरि दुय ठानो ॥१६८०॥

उद्यापन सकति समान, करिके तजिये मतिमान ।
दृग जुत धरि शील धरीजै, तातै उत्तम फल लीजै ॥१६८१॥

कनकावली व्रत

चाल छन्द

कनकावलि व्रत सुण जैसे, आगम भाष्यो सुणि तैसे ।
सितपक्ष थकी उपवास, करिये विधि सुनिये तास ॥१६८२॥

प्रोषध सित पडिवा कीजै, पुनि वास पंचमी लीजै ।
सुदि दशमी वदि दोयज ही, वदि छठ बारस व्रत सजही ॥१६८३॥

छह वास मास इकमाहीं, करिये भवि भाव धराहीं ।
उपवास बहत्तरि जास, इक वरस मध्य कर तास ॥१६८४॥

रत्नावली व्रत

रत्नावली व्रतको इस प्रकार करना चाहिये। शुक्ल पक्षकी तृतीयासे व्रतका प्रारम्भ होता है अतः शुक्ल पक्षमें तृतीया, पंचमी और अष्टमीके तीन उपवास तथा कृष्ण पक्षमें द्वितीया, पंचमी और अष्टमीके तीन उपवास इस तरह एक माहमें छह और सब मिलाकर एक वर्षमें बहत्तर उपवास करना चाहिये । शक्तिके अनुसार उद्यापन कर व्रतका समापन करना चाहिये। व्रतके दिनोंमें सम्यग्दर्शनके साथ शील व्रतका भी पालन करना चाहिये। इससे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है ॥१६७९–१६८१॥

कनकावली व्रत

कनकावली व्रतका वर्णन जैसा आगममें कहा गया है वैसा कहता हूँ उसे सुनो। इस व्रतके उपवास शुक्ल पक्षसे प्रारम्भ होते हैं, उनकी विधि इस प्रकार हैं ॥१६८२॥ शुक्ल पक्षमें पडिवा, पंचमी और दशमीके उपवास तथा कृष्ण पक्षमें द्वितीया, षष्ठी और द्वादशीके उपवास इस तरह एक माहमें छह और एक वर्षमें बहत्तर उपवास होते हैं । हे भव्यजीवों ! भाव सहित इस व्रतको धारण करो ॥१६८३–१६८४॥

मुक्तावली व्रत

चाल छन्द

मुक्तावलि व्रत लघु एम, करिहि भविहि धरि प्रेम ।
भादौं सुदि सातै जाणो, पहिलो उपवास बखाणो ॥१६८५॥
आसोज किसन छठि तेरस, उजियारी करिये ग्यारस ।
कातिक वदि बारस ताम, सुदि तीज रु ग्यारस ठाम ॥१६८६॥
मगसिर वदि ग्यारसि जानो, प्रोषध सुदि तीजहि ठानो ।
नव नव प्रति वरष गहीजै, प्रोषध इक असी करीजै ॥१६८७॥
पूरो नव वरष मझारी, जुत शील करहु नर नारी ।
तातैं फल पावै मोटो, मिटिहै विधि उदय जु खोटो ॥१६८८॥

मुकुटसप्तमी व्रत

दोहा

श्रावण सुदि सप्तमी दिवस, प्रोषधको नर वाम ।
सात वरष तक कीजिये, मुकुट सप्तमी नाम ॥१६८९॥

नंदीश्वर पंक्ति व्रत

दोहा

नंदीश्वर पंकति वरत, सुनहु भविक चित लाय ।
किये पुण्य अति ऊपजै, भव आताप मिटाय ॥१६९०॥

मुक्तावली व्रत

लघु मुक्तावली व्रतकी विधि इस प्रकार है । हे भव्यजीवों ! उसे सुन कर प्रेमसे धारण करो । भादों सुदी सप्तमीके दिन इसका पहला उपवास कहा गया है पश्चात् आसोज वदी षष्ठी, त्रयोदशी, आसोज सुदी एकादशी, कार्तिक वदी द्वादशी, कार्तिक सुदी तृतीया और एकादशी, मगसिर वदी एकादशी तथा मगसिर सुदी तृतीयाका उपवास करना चाहिये। इस तरह एक वर्षके नौ और नौ वर्षके इक्यासी उपवास होते हैं । नौ वर्षमें व्रत पूर्ण होता है। जो नर नारी शील सहित इस व्रतका पालन करते हैं वे बहुत भारी फल प्राप्त करते हैं और अशुभ कर्मोका उदय दूर हो जाता है ॥१६८५-१६८८॥

मुकुट सप्तमी व्रत

जो स्त्री पुरुष श्रावण सुदी सप्तमीके दिन सात वर्ष तक उपवास करते हैं उनके इस व्रतका नाम मुकुट सप्तमी व्रत है ॥१६८९॥

नन्दीश्वर पंक्ति व्रत

हे भव्यजीवों ! अब मन लगा कर उस नन्दीश्वर पंक्ति व्रतका वर्णन सुनो जिसके करनेसे अतिशय पुण्य उत्पन्न होता है तथा संसारका संताप मिट जाता है ॥१६९०॥ सबसे

चौपाई

प्रथमहि चार इकंतर वास, करहु पछै बेलो इक तास ।
ता पीछै जु एकंतर करै, द्वादश प्रोषध विधि जुत धरै ॥१६९१॥

पुनि बेलो करिये हित जानि, बारा वास इकंतर ठानि ।
पाछै इक बेलो कीजिये, इक अतंर दश दुय लीजिये ॥१६९२॥

फिरि इक बेलो करि धरि प्रेम, वसु उपवास इकंतर एम ।
सब उपवास आठ चालीस, बिचि बेलो चहुँ कहे गणीस ॥१६९३॥

दधिमुख रतिकरके उपवास, अंजनगिरि चहुँ बेला तास ।
दिवस एक सो आठ मझार, वरत यहै पूरणता धार ॥१६९४॥

छप्पन प्रोषध भवि मन आन, करे पारणा बावन जान ।
लगते करे ना अंतर परै, अघ अनेक भवसंचित हरै ॥१६९५॥

पहले एक दिनके अन्तरसे चार उपवास करे, पश्चात् एक बेला करे, उसके पश्चात् एकान्तरसे विधि सहित बारह उपवास करे, पश्चात् एक बेला करे, फिर एकान्तरसे बारह उपवास करे, पश्चात् एक बेला करे, फिर एकान्तरसे बारह उपवास करे, पश्चात् एक बेला करे, फिर एकान्तरसे आठ उपवास करे। इस व्रतमें सब मिला कर ४८ उपवास और ४ बेला आते हैं ऐसा गणधर देवने कहा है । १६ दधिमुख और ३२ रतिकरोंके अडतालीस उपवास और चार अंजनगिरिके ४ बेला कहे गये हैं। एक सौ आठ दिनमें यह व्रत पूर्ण होता हैं। भव्यजीव अपने मनमें निश्चय करे कि इस व्रतमें ५६ प्रोषध और ५२ पारणाएँ होती हैं। व्रत प्रारम्भ करनेके बाद बीचमें खण्डित न हो, इसका ध्यान रक्खें । यह व्रत अनेक भवके संचित पापोंको नष्ट करता है ॥१६९१–१६९५॥

भावार्थ : इस व्रतका हरिवंश पुराणमें इस प्रकार वर्णन है :—नन्दीश्वर द्वीपकी एक एक दिशामें चार चार दधिमुख हैं, इसलिये प्रत्येक दधिमुखको लक्ष्य कर मनकी मलिनताको दूर करते हुए चार उपवास करने चाहिये। एक एक दिशामें आठ आठ रतिकर हैं इसलिये प्रत्येक रतिकरको लक्ष्य कर आठ उपवास करने चाहिये। एक एक दिशामें एक एक अंजनगिरि है इसलिये उसे लक्ष्य कर एक एक बेला करना चाहिये । इस प्रकार एक दिशाके बारह उपवास, एक बेला और तेरह पारणाएँ होती हैं। यह व्रत पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाके क्रमसे चारों दिशाओंमें करना चाहिये। इसमें अडतालीस उपवास, चार बेला और बावन पारणाएँ आती हैं । इस तरह यह व्रत एक सौ आठ दिनमें पूर्ण होता है। यह नन्दीश्वर व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ और जिनेन्द्र तथा चक्रवर्ती पदको प्राप्त कराने वाला है। (भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ४३३–४३४)

लघु मृदंग-मध्य व्रत

अडिल्ल छन्द

दोय वास फिर असन फिर तिहुँ चऊ करै,
पांच वास धरि चार तीन दुय अनुसरै;
दिवस तीसमें वास कहे तेईस है,
लघु मृदंग मधि सात पारणा जुत गहै ॥१६९६॥

बडा मृदंग मध्य-व्रत

गीता छन्द

उपवास इक करि दोय थापै तीन चहु पण छह धरै,
पुनि सात आठ रु चढै नवलों फेरि वसु सात जु करै,
छह पाँच चार रु तीन दुय इक वास इक्यासी गहै,
मिरदंग मधि जु नाम दीरघ पारणा सत्रह लहे ॥१६९७॥

धर्मचक्र व्रत

अडिल्ल छन्द

एक वास करि दोय तीन पुनि चहुं धरे,
ता पीछै करि पांच एक पुनि विस्तरे;

लघु मृदंग मध्यव्रत

दो उपवास, एक आहार, तीन उपवास, एक आहार, चार उपवास, एक आहार, पाँच उपवास, एक आहार, चार उपवास, एक आहार, तीन उपवास, एक आहार और दो उपवास, एक आहार, इस प्रकार तीस दिनमें तेईस उपवास और सात पारणाएँ लघु मृदंग व्रतमें होती है । इसे धारण करना चाहिये ॥१६९६॥

बडा मृदंग मध्य व्रत

एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास, एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, छह उपवास एक पारणा, सात उपवास एक पारणा, आठ उपवास एक पारणा, नौ उपवास एक पारणा, आठ उपवास एक पारणा, सात उपवास एक पारणा, छह उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, और एक उपवास एक पारणा, इस क्रमसे इक्यासी उपवास और सत्तरह पारणाओंके द्वारा अठानवे दिनमें यह बडा मृदंग मध्य व्रत पूर्ण होता है ॥१६९७॥

धर्मचक्र व्रत

एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा और एक उपवास एक पारणा, इस क्रमसे

दिन बाईस मझार वास षोडश कहे,
धरमचक्र व्रत धारि पारणा छह गहे ॥१६९८॥

बडी मुक्तावली व्रत

अडिल्ल छंद— एक वास दुय तीन चार पण थापई,
चार तीन दुय एक धार अघ कापई;
सबै वास पणवीस पारणा नव गही,
गुरु मुक्तावली वरत दिवस चौतीस ही ॥१६९९॥

भावना-पच्चीसी व्रत

अडिल्ल छंद

दसमी दस उपवास पंचमी पंच है,
आठै वसु उपवास प्रतिपदा दुय गहै;
सब प्रोषध पच्चीस शील जुत कीजिये;
ए भावना-पचीसी वरत गहीजिये ॥१७००॥

नवनिधि व्रत

अडिल्ल छंद

चौदा चौदसि चौदा रतन तणी करै,
नव निधिकी तिथि नवमी नव प्रोषध धरै;

बाईस दिनमें सोलह उपवास और छह पारणाओंके द्वारा यह धर्मचक्र व्रत पूर्ण होता है। इसे ग्रहण करना चाहिये ॥१६९८॥

बडी मुक्तावली व्रत

एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा और एक उपवास एक पारणा, इस प्रकार पच्चीस उपवास और नौ पारणाओंके द्वारा चौतीस दिनमें बडी मुक्तावली व्रत पूर्ण होता है। यह व्रत पापोंको नष्ट करने वाला है ॥१६९९॥

भावना पच्चीसी व्रत

दशमीके दश, पंचमीके पाँच, अष्टमीके आठ और प्रतिपदाके दो, इस प्रकार शीलका पालन करते हुए पच्चीस प्रोषध करना भावना पच्चीसी व्रत है। इसे ग्रहण करना चाहिये ॥१७००॥

नवनिधि व्रत

चौदह रत्नोंको लक्ष्य कर चौदह चतुर्दशी, नौ निधियोंको लक्ष्य कर नौ नवमी, रत्नत्रय

रतनत्रय तिहुँ तीज ज्ञान पण पंचमी,
नवनिधि प्रोषध एक तीस करि अघ गमी ॥१७०१॥

श्रुतज्ञान व्रत

दोहा

प्रोषध व्रत श्रुतज्ञानके, जिनवर भाषे जेम ।
सकल साठ अरु एक सौ, बुधि सुणि भवि धर प्रेम ॥१७०२॥

चौपाई

सुकल पाखमैं व्रत लीजिये, षोडश तिथि ताकी कीजिये ।
सोला पडिवा प्रोषध सार, सितकारी पखमैं निरधार ॥१७०३॥

दोयज दोय तीन कर तीज, चौथ चार पण पांचे लीज ।
छह छट्ठि सातै सात बखाणि, आठै आठ नवमी नव जाणि ॥१७०४॥

बीस दसै ग्यारा ग्यारसी, प्रोषध करि बारा बारसी ।
तेरसी तेरस वास बखाणि, चौदसि चौदह प्रोषध ठाणि ॥१७०५॥

पून्यो पन्दरह करि उपवास, अमावस पन्दरह करिये तास ।
शील सहित प्रोषध सब करे, भव भवके संचित अघ हरै ॥१७०६॥

सिंहनिःक्रीडित व्रत

दोहा

सिंहनिःक्रीडित तप तणो, कहूँ विशेष बखाण ।
विधिसों कीजे भावजुत, करम निरजरा ठाण ॥१७०७॥

को लक्ष्य कर तीन तृतीया और पाँच ज्ञानोंको लक्ष्य कर पाँच पंचमी, इस प्रकार इकतीस प्रोषध करनेसे नवनिधि व्रत पूर्ण होता है । यह पापोंको नष्ट करने वाला है ॥१७०१॥

श्रुतज्ञान व्रत

जिनेन्द्र भगवानने श्रुतज्ञान व्रतके कुल मिलाकर एक सौ साठ प्रोषध कहे हैं। हे भव्यजीवों ! प्रेमपूर्वक उसकी विधि सुनो । यह व्रत संपूर्ण पक्षकी अपेक्षा लिया जाता है उसमें सोलह तिथियाँ होती है उनका शुक्ल और कृष्ण पक्षकी अपेक्षा निर्धार होता है। अतः पडिवाके १६, दूजके २, तीजके ३, चौथके ४, पाँचमके ५, छठके ६, सातमके ७, आठमके ८, नवमीके ९, दसवीके २०, ग्यारसके ११, बारसके १२, तेरसके १३, चौदशके १४, पूर्णिमाके १५ और अमावसके १५, इस प्रकार सब मिला कर १६० प्रोषध होते हैं। शील सहित ये प्रोषध करने चाहिये । इस व्रतसे भव भवके पाप दूर हो जाते हैं ॥१७०२–१७०६॥

चाल छन्द

प्रथमहि करि इक उपवास, पुनि दोय एक तिहुं जास ।
दोय चारि तीन पणि कीजे, चव पाँच थापि करि दीजे ॥१७०८॥

चहुं पाँच तीन चहुं दोई, तिहुं एक दोय इक होई ।
सब वास साठि गण लीजे, तसु बीस पारणा कीजे ॥१७०९॥

अस्सी दिनमें व्रत एह, करि कह्यो जिनागम जेह ।
इह तप शिवसुखके दायक, कीन्हों पूरव मुनि-नायक ॥१७१०॥

लघु चौतीसी व्रत

दोहा

अतिशय लघु चौतीस व्रत, तास तणो कछु भेद ।
कथामांहि सुनियो जिसो, किये होय दुख छेद ॥१७११॥

सिंह निष्क्रीडित व्रत

अब सिंह निष्क्रीडित तपका विशेष व्याख्यान करते हैं, उसे भावसहित विधिसे करो, यह कर्मनिर्जराका स्थान है ॥१७०७॥ इस व्रतमें सर्व प्रथम एक उपवास एक पारणा, फिर दो उपवास एक पारणा, फिर एक उपवास एक पारणा, फिर तीन उपवास एक पारणा, फिर दो उपवास एक पारणा, फिर चार उपवास एक पारणा, फिर तीन उपवास एक पारणा, फिर पाँच उपवास एक पारणा, फिर चार उपवास एक पारणा, फिर पाँच उपवास एक पारणा, फिर पाँच उपवास एक पारणा, फिर चार उपवास एक पारणा, फिर पाँच उपवास एक पारणा, फिर तीन उपवास एक पारणा, फिर चार उपवास एक पारणा, फिर दो उपवास एक पारणा, फिर तीन उपवास एक पारणा, फिर एक उपवास एक पारणा, फिर दो उपवास एक पारणा, और अन्तमें एक उपवास एक पारणा, इस तरह साठ उपवास और बीस पारणाएँ की जाती हैं । अस्सी दिनमें यह व्रत पूरा होता है ऐसा जिनागममें कहा गया है। यह तप शिवसुखको देने वाला है। पूर्व कालमें मुनिराजोंने इसे किया है ॥१७०८–१७१०॥

विशेष—सिंह निष्क्रीडित व्रत जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टकी अपेक्षा तीन प्रकारका है। यहाँ जघन्य निष्क्रीडित व्रतकी विधि बतलाई गई हैं । मध्यम और उत्कृष्ट सिंह निष्क्रीडित व्रतकी विधि हरिवंश पुराणके ३४ वें सर्गमें देखिये ।

लघु चौंतीसी व्रत

अब लघु चौंतीसी व्रतका भेद जैसा कि कथा ग्रन्थोंमें कहा गया हैं उसे सुनो । इसके करनेसे दुःखका नाश होना है ॥१७११॥ जन्म सम्बन्धी दश अतिशयोंको लक्ष्य कर दश दशमी, इसी तरह केवलज्ञान सम्बन्धी दश अतिशयोंको लक्ष्य कर पुनः दश दशमी, देव कृत चौदह

अडिल्ल छन्द

दस दसमी जनमतके अतिशय दस तणी,
फिरि दस केवलज्ञान ऊपजै दस भणी;
चौदसी चौदह अतिशय देवन कृत कही,
चार चतुष्टय चौथ चार इह विधि गही ।।१७१२।।

षोडश आठै प्रातिहार्य वसु की गणी,
ज्ञान पाँचकी पाँचे पाँच कही भणी;
अरु षष्ठी छह लही सबै प्रोषध सुनो,
पाँच अधिक भवि साठ कीए फल बहु गुणो ।।१७१३।।

बारासै चौतीसीका व्रत

अडिल्ल छंद

*दोयज पांचे आठै ग्यारस चउदसी,
इनके प्रोषध करै सकल अघ जै नसी;
प्रोषध सब बारह सौ अरु चौतीस ही,
नाम वरत बारासै चौतीसी कही ।।१७१४।।

अतिशयोंको लक्ष्य कर चौदह चतुर्दशी, अनन्त चतुष्टयको लक्ष्य कर चार चतुर्थी, आठ प्रातिहार्यों को लक्ष्य कर सोलह अष्टमी, पाँच ज्ञानोंको लक्ष्य कर पाँच पंचमी और छह षष्ठी, इस प्रकार सब मिलाकर पैंसठ प्रोषध करनेसे यह व्रत पूर्ण होता है। इस व्रतका बहुत भारी फल होता है ।।१७१२–१७१३।।

बारहसौ चौंतीसा व्रत

द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशीके दिन प्रोषध करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इस व्रतके प्रोषध सब मिलकर बारह सौ चौंतीस होते हैं इसलिये इस व्रतका नाम 'बारह सौ चौंतीसा' प्रसिद्ध हो गया है ।।१७१४।।

विशेष :—मूलमें जो पाठ है वह अपूर्ण जान पडता है। अन्यत्र पुस्तकोंमें उपलब्ध पाठ टिप्पणीमें दिया है उसके अनुसार व्रतकी विधि इस प्रकार है—

द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, द्वादशी और चतुर्दशी इनके प्रोषध (उपवास) करे। ये उपवास पापोंका नाश करनेवाले हैं। एक माहके दोनों पक्षोंके दश उपवास हुए। एक वर्षके सब

---

* यह पाठ खंडित जान पडता है। अन्यत्र पूरा पाठ इस प्रकार है इसीमें छन्द १७१४की संगति बैठती है

अडिल्ल—दोयज पांचै आठे बारस चौदसी, इनके प्रोषध करे सकल अघ जो नशी।
दश प्रोषध इक मासमें द्वय पखके भये, एक वरषके इकसै बीस मिल सब ठये ।।
पूरण ह्वै दश वर्ष सार्ध त्रय मासमें, ह्वै बारासौ चौतीस प्रोषध जास में।
सम्यक् चारित तनी भावना चित गहै, बारह सौ चौतीसा व्रत मुनिजन कहै ।।

पंच परमेष्ठीका गुण व्रत

उक्तं च गाथा

अरहंता छैयाला सिद्धा अट्ठेव सूरि छत्तीसा ।
उवझाया पणवीसा साहूणं हुंति अडवीसा ॥१७१५॥

दोहा—कहूं पंच परमेष्ठिके, जे जे गुण सु गरीस ।
छियालीस वसु तीस-छह, अरु पचीस अडवीस ॥१७१६॥

अरहंतके गुण वर्णन

चौपाई

कहुं छियालिस गुण अरहंत, दस अतिशय जनमत ह्वै संत ।
केवलज्ञान भये दस थाय, दुहुकी बीस दसे करवाय ॥१७१७॥
प्रातिहार्यकी आठे आठ, चौथि चतुष्टय चहुं ए पाठ ।
सुरकृत अतिशय चवदह जास, चौदह चौदसि गनिये तास ॥१७१८॥*

सिद्धके आठ गुण वर्णन

चौपाई

अब सुनिये वसु सिद्धन भेद, करिये वास आठ सुणि तेह ।
समकित दूजो णाण बखाण, दंसण चौथो वीरज जाण ॥१७१९॥

मिलाकर एक सौ बीस हुए । यह व्रत दश वर्ष और साढे तीन माहमें पूर्ण होता है, सब मिला कर बारह सौ चौंतीस प्रोषध होते हैं । सम्यक्चारित्रकी भावना चित्तमें रखना चाहिये ऐसा मुनिजन कहते हैं । (स्व. पं. वारेलालजी टीकमगढ कृत 'जैन व्रत विधि संग्रह' पुस्तकसे संकलित)

पंच परमेष्ठी व्रत

अरहन्तके छियालीस, सिद्धके आठ, आचार्यके छत्तीस, उपाध्यायके पच्चीस, और साधुके अट्ठाईस मूल गुण है, ऐसा गाथामें कहा गया है। इसीका अनुवाद दोहा छन्दमें है । अरहन्त आदि परमेष्ठियोंके छियालीस, आठ, छत्तीस, पच्चीस और अट्ठाईस मूल गुण होते हैं ॥१७१५–१७१६॥

अब अरहन्तके छियालीस गुणोंका कथन करता हूँ :—जन्मके दश अतिशय और केवल ज्ञानके दश अतिशय, दोनोंके मिलाकर बीस दशमीके प्रोषध करना चाहिये । प्रातिहार्यकी आठ अष्टमी, चतुष्टयकी चार चतुर्थी, और देव कृत चौदह अतिशयोंकी चौदह चतुर्दशी, इस प्रकार सब मिलाकर छियालीस प्रोषध करनेसे अरहन्त गुण व्रत पूर्ण होता है ॥१७१७–१७१८॥
अब सिद्धोंके आठ गुणोंका वर्णन सुनो । उसे सुन कर आठ उपवास करना चाहिये ।

---

* छन्द १७१८के आगे न० और स० प्रतिमें यह छंद अधिक है—

सकल वास गन छहि चालीस, गुन अरहंत तनै नमि सीस ।
सील सहित प्रोषध कर सार, निहचै सुरपदके दातार ॥

[1]सूक्षम छट्ठो अवगाहन सही, अगुरुलघु सप्तम गुण गही ।
अव्याबाध आठमो धरै, इन आठौंकी आठै करै ॥१७२०॥

आचार्यके छत्तीस गुण

चौपाई

आचारिज गुण जेह छत्तीस, तिनकी विधि सुनिये निसि दीस ।
बारसि बारा तप दश दोय, षडावश्यकी छठि छह होय ॥१७२१॥
पांचै पांच पांच आचार, दश लक्षणकी दशमी धार ।
तीन तीज तिहुँ गुप्त जो तणी, प्रोषध ए छह तीस जो भणी ॥१७२२॥

उपाध्यायके पच्चीस गुण

चौपाई

गुण पचीस उवझाया जान, चौदह पूरव कहे बखान ।
ग्यारा अंग प्रकाशै धीर, ए पचीस गुण लखिये वीर ॥१७२३॥
चौदा चौदसके उपवास, ग्यारां ग्यारसि प्रोषध तास ।
उपाध्यायके गुण हैं जिते, वास पचीस वखाणे तिते ॥१७२४॥

साधुके अट्ठाईस गुण

चौपाई

साधु अठाईस गुण जानिये, [2]तिनि प्रोषध इनि विधि ठाणिये ।
पंच महाव्रत समिति जु पंच, इन्द्री विजय पंच गणि संच ॥१७२५॥

पहला सम्यक्त्व, दूसरा ज्ञान, तीसरा दर्शन, चौथा वीर्य, पाँचवाँ सूक्ष्मत्व, छठवाँ अवगाहनत्व, सातवाँ अगुरुलघुत्व और आठवाँ अव्याबाधत्व। इन आठ गुणोंको लक्ष्य कर आठ अष्टमीके प्रोषध करने चाहिये ॥१७१९–१७२०॥

अब आचार्यके जो छत्तीस गुण हैं उनकी विधि सुनो। बारह तपोंकी बारह द्वादशी, षडावश्यकोंकी छह षष्ठी, पाँच आचारोंकी पाँच पंचमी, दश लक्षण धर्मोंकी दश दशमी और तीन गुप्तियोंकी तीन तृतीया, इस प्रकार छत्तीस प्रोषध कहे गये हैं ॥१७२१–१७२२॥

उपाध्यायके चौदह पूर्व और ग्यारह अंगके भेदसे पच्चीस गुण होते हैं। उन्हें लक्ष्य कर चौदह पूर्वोंकी अपेक्षा चौदह चतुर्दशी और ग्यारह अंगोंकी अपेक्षा ग्यारह एकादशी, इस प्रकार पच्चीस प्रोषध करने पडते हैं। उपाध्यायके जितने गुण हैं उतने ही प्रोषध कहे गये हैं ॥१७२३–१७२४॥

साधु परमेष्ठीके अठ्ठाईस गुण होते हैं। उनके प्रोषधकी विधि इस प्रकार जाननी चाहिये। पाँच महाव्रत, पाँच समिति और पाँच इन्द्रिय विजय, इनकी पन्द्रह पंचमी, छह आवश्यकोंकी

---

१ सोहम स० सुहुम न० २ तिनके प्रोषध अठाइस मानिये स० न०

इनिकी पंद्रह पांचे करे, षड आवसिकी छठि छह धरे ।
भूमि सयन मज्जनको त्याग, वसन-त्यजन कचलोंच विराग ॥१७२६॥
भोजन करे एक ही बार, ठाडो होइ सो लेइ अहार ।
करे नहीं दातणकी बात, इनि सातोंकी पडिवा सात ॥१७२७॥
सब मिलि प्रोषध ए [1]अठवीस, करिहै भवि तरि ह्वै शिव ईस ।
पंच परमगुरु गुण सब जोड, सौ पर तियालीस धरि कोड ॥१७२८॥
करिये प्रोषध तिनके भव्य, सुरपदके सुखदायक सव्ब ।
अनुक्रम शिव पावै तहकीक, जिनवर भाष्यो है [2]इह ठीक ॥१७२९॥

पुष्पांजलि व्रत

अडिल्ल— भादौं तै वसु मास चैत परयंत ही,
तिनके सित पखमें व्रत पुष्पांजलि [3]कही;
पंचम तें उपवास पांच नवमी लगै,
किये पुण्य उपजाय पाप सिगरे भगै ॥१७३०॥

अथवा पांचे नवमी वास दुय ही करै,
छठि सातै दिन आठै तिहु कांजी करै;
छठि ए आठै एकंत वास तिहु कीजिये,
दोय वास एकंत तीनहूं लीजिये ॥१७३१॥

छह षष्ठी, भूमि शयन, स्नानत्याग, वस्त्रत्याग, केशलोंच, एकबार भोजन, खडे होकर पाणिपात्रसे आहार और अदन्तधोवन, इन सात शेष गुणोंकी सात प्रतिपदा, इस प्रकार सब मिलाकर अट्ठाईस प्रोषध होते हैं । जो भव्यजीव इन्हें करते हैं वे संसारसागरको पारकर मोक्षके स्वामी होते हैं । पाँचों परमेष्ठियोंके सब गुण एक सौ तेंतालीस होते हैं । जो भव्य इन एक सौ तेतालीस गुणोंको लक्ष्य कर एक सौ तेतालीस प्रोषध करते हैं वे स्वर्गके समस्त सुख प्राप्त कर क्रमसे मोक्षको प्राप्त होते हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवानने यथार्थ ही कहा हैं ॥१७२५–१७२९॥

पुष्पांजलि व्रत

भादोंसे लेकर चैत्र मास तक आठ माह होते हैं । इनके शुक्ल पक्षमें पुष्पांजलि व्रत कहा गया है। उसकी विधि इस प्रकार है। पंचमीसे लेकर नवमी तक पाँच उपवास करे, इससे जो पुण्य होता है वह समस्त पापोंको दूर भगा देता हैं ॥१७३०॥ अथवा पंचमी और नवमीके दो उपवास करे और षष्ठी, सप्तमी और अष्टमी इन तीनके कांजी व्रत करे। अथवा षष्ठी

---

१ वसुबीस स० न० २ सब स० न० ३ लही स० न०

दोहा

पांच वरष लौं वरत इह, करि त्रिशुद्धता धार ।
तातैं फल उतकिष्ट ह्वै, यामै फेर न सार ।।१७३२।।

शिवकुमारका बेला

चौपाई

शिवकुमारका बेला जान, सुनी कथा जिम कहूं बखान ।
चक्रवर्तिका सुत सुखधाम, शिवकुमार है ताको नाम ।।१७३३।।

घरमें तप कीनो तिह सार, बेला चौसठि वर्ष [1]मझार ।
त्रिया पांचसौके घर मांहि, करै पारणै कांजी आहि ।।१७३४।।

पूरण आयु महेन्द्र सुर थयो, तहं तें जंबूस्वामी भयो ।
दीक्षा धरि तप करि शिव गयो, गुण अनंत सुख अंत न पयो ।।१७३५।।

वरष हजार एक प्रति एक, बेला चौसठि धरि सुविवेक ।
करै आयु लघु जानी अबै, शील सहित धारो भवि सबै ।।१७३६।।

लगतै करण सकति को नाहि, आठै चौदस कर सक नाहि ।
इनमें अंतर पाडै नहीं, सो उतकिष्ट लहै सुख ग्रही ।।१७३७।।

और अष्टमीका एकाशन तथा शेष तीन तिथियोंके उपवास करे। अथवा कोई भी दो उपवास और तीन एकाशन करे ।।१७३१।। यह व्रत मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक पाँच वर्ष तक करना चाहिये । इस व्रतसे उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है ।।१७३२।।

शिवकुमारका बेला

अब 'शिवकुमारका बेला' जैसा कथामें सुना है, वैसा कहता हूँ । शिवकुमार चक्रवर्तीका पुत्र था, वह सब प्रकारके सुखोंका स्थान था। उसने घरमें ही चौसठ (हजार) वर्ष तक बेला तप किया। बेला के बाद पाँचसौ स्त्रियोंके घर कांजी का पारणा किया। आयु पूर्ण होने पर वह माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुआ, वहाँसे आकर जम्बू स्वामी हुआ तथा दीक्षा धारण कर मोक्षको प्राप्त हुआ। उसके गुण और सुखोंका अन्त नहीं था ।।१७३३–१७३५।। उसकी चौसठ हजार वर्षकी आयु थी इसलिये एक हजार वर्षका एक बेला, इस विधिसे चोसठ बेला उसने किये थे। जब उसे पता चला कि आयु अल्प रह गई है तब उसने शील सहित इस व्रतको धारण किया ।।१७३६।। यह बेला सप्तमी–अष्टमी तथा त्रयोदशी–चतुर्दशीका होता है। इसमें अन्तर नहीं पडना चाहिये। इस व्रतको करने वाला उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होता है ।।१७३७।।

---

१ हजार न० स० क०

तीर्थंकरोंका बेला

दोहा— ऋषभ आदि तीर्थशके, बेला बीस रु चार ।
आठै चौदस कीजिये, अंतर भूर न पार ॥१७३८॥

चौपाई

सातै आठमि बेलो ठान, नौमी दिवस पारणों जान ।
तेरसि चौदसि दुय उपवास, मावस पूण्यो भोजन तास ॥१७३९॥
अब पारणाकी विधि जिसी, सुणी वखाणत हों मै तिसी ।
बेला प्रथम पारणै एह, तीन आंजली शर्बत लेह ॥१७४०॥
अरु तेईस पारणा जान, तीन आंजली दूध बखान ।
इम बेला कीजै चौबीस, तिन तै फल अति लहै गरीस ॥१७४१॥

जिनपूजा पुरंदर व्रत

गीता छंद

अब वरत जिनपूजा पुरंदर, सुनहु भवि चित्त लायकै;
बारा महीना मांझ कोई मास इक हित दायकै;
ताकी सुकल पडिवा थकी ले अष्टमी लौं कीजिये,
प्रोषध इकंतर आठ दिनमें, पूज जिन शुभ लीजिये ॥१७४२॥

दोहा—वरत यह दिन आठको, [1]बार एक करि लेह ।
मन वच तन तिरकाल जिन, पूजै सुरपद देह ॥१७४३॥

तीर्थंकरोंका बेला

ऋषभदेव आदि तीर्थंकरोंके चौबीस बेला होते हैं जो अष्टमी और चतुर्दशीके किये जाते हैं। इस व्रतमें अन्तर नहीं डालना चाहिये ॥१७३८॥ बेलाकी विधि इस प्रकार है—सप्तमी और अष्टमीका बेला कर नवमीका पारणा करना चाहिये। पश्चात् त्रयोदशी और चतुर्दशीका उपवास कर अमावस या पूर्णिमाको भोजन करना चाहिये ॥१७३९॥ अब पारणाकी विधि, मैंने जैसी सुनी है, वैसी कहता हूँ। प्रथम बेलाके पारणेके दिन तीन अंजलि प्रमाण शर्बत लेना चाहिये और शेष तेईस पारणाके दिन तीन अंजलि प्रमाण दूध लेना चाहिये। इस प्रकार चौबीस बेला करना चाहिये, इससें श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति होती है ॥१७४०-१७४१॥

जिनपूजा पुरंदर व्रत

हे भव्यजनों! अब चित्त लगा कर 'जिनपूजा पुरंदर व्रत'का वर्णन सुनो। वर्षके बारह महिनोंमें कोई एक हितदायक महिना निश्चित कर लीजिये। उसके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे लेकर अष्टमी तक आठ दिन लगातार प्रोषध कर जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करो। यह व्रत

---

१ एक चित्त कर लेह स० न०

रोहिणी व्रत

दोहा

व्रत अशोक रोहणि तनो, करिहै जे भवि जीव ।
सात बीस प्रोषध सकल, धरि त्रिशुद्धता कीव ॥१७४४॥

अडिल्ल छंद

जिह दिन मांझे नक्षत्र रोहिणी आय है,
ताको प्रोषध करै सकल सुखदाय है;
अनुक्रमतें उपवास सताइस जानिये,
वरष सवा दुय मांहि पूर्णता मानिये ॥१७४५॥

कोकिला पंचमी व्रत

दोहा—अबै कोकिला पंचमी, वरत कहो विधि सार ।
शील सहित प्रोषध किये, सुरपदको दातार ॥१७४६॥

द्रुतविलंवित छंद

[1]पखि अँधारय मास असाढ ही, करिय प्रोषध कातिक लौं सही ।
तिथि सु पंचमीके उपवास ही, प्रति सुकोकिल पंचमिको लही ॥१७४७॥

दोहा

मरयादा या वरतकी, सुनहु भविक परवीन ।
पांच वरष लौं कीजिये, त्रिविध शुद्धता कीन ॥१७४८॥

आठ दिनका है इसलिये एक बार इसे करना चाहिये और मन वचन कायसे जिन देवकी पूजा करना चाहिये । इससे देवपदकी प्राप्ति होती है ॥१७४२–१७४३॥

रोहिणी व्रत

जो भव्यजीव अशोक रोहिणी व्रत करते हैं उन्हें मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक सत्ताईस प्रोषध करने चाहिये ॥१७४४॥ जिस दिन रोहिणी नक्षत्र हो उस दिन प्रोषध करना रोहिणी व्रत हैं। यह व्रत सकल सुखोंको देने वाला है। इसमें क्रमसे सत्ताईस उपवास होते हैं और यह सवा दो वर्षमें पूर्ण होता है ॥१७४५॥

कोकिला पंचमी व्रत

अब 'कोकिला पंचमी व्रत'की विधि कहते हैं । शील सहित प्रोषध करनेसे यह व्रत इन्द्र पदको देता है ॥१७४६॥ आषाढ़ मासके कृष्ण पक्षसे लेकर कार्तिक मासके कृष्ण पक्ष तक यह व्रत किया जाता है। प्रत्येक कृष्ण पक्षकी पंचमीको उपवास करना चाहिये ॥१७४७॥ इस व्रतकी मर्यादा पाँच वर्षकी है इसलिये हे चतुर भव्यजनों! पाँच वर्ष तक मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक इस व्रतको करो ॥१७४८॥

---

१ पाख अंधेरा मांहि पंचमी अषाढकी स० न०

कवल चंद्रायण व्रत

दोहा

वरत कवल चंद्रायणा, बारह मास मझार ।
एक महीनामें करै, एक बार चित धार ।।१७४९।।

चौपाई

करहि अमावसको उपवास, पीछै लै इक चढता ग्रास ।
पडिवा दिवस ग्रास इक लीन, दोयज दोय तीज दिन तीन ।।१७५०।।

चौथ चार पण पांचै सही, छट्ठी छह सातै सत लही ।
आठै आठ नवमि नो टेक, दशमी दस ग्यारसि दस एक ।।१७५१।।

बारसि बारह तेरसि जान, तेरसि चौदस चौदह ठान ।
पून्यो दिवस लेई दस पांच, सुकल पक्षकी ए विधि सांच ।।१७५२।।

कृष्ण पक्षकी पडिवा जास, चौदह ग्रास तणौ परगास ।
दोयज तेरह बारह तीज, चौथ ग्यार पंचमी दस लीज ।।१७५३।।

छह नव सातै आठ बखाण, आठै सात नवमि छह जाण ।
दसमी पांच ग्यारसी चार, बारसि तिहुं तेरसि दुय धार ।।१७५४।।

चौदस दिनहि ग्रास इक जाण, मावस दिवस पारणौ ठाण ।
एक मासको व्रत है एह, ग्रास लीजिये तिम सुणि लेह ।।१७५५।।

कवल चान्द्रायण व्रत

वर्षके बारह महिनोंमेसे किसी भी एक माहमें यह कवल चान्द्रायण व्रत एक बार किया जाता है ।।१७४९।। उसकी विधि इस प्रकार है—अमावस्याका उपवास करे, पश्चात् शुक्ल पक्षमें एक एक ग्रास बढाता हुआ आहार करे अर्थात् पडिमाको एक ग्रास, द्वितीयाको दो ग्रास, तृतीयाको तीन ग्रास, चतुर्थीको चार ग्रास, पंचमीको पाँच ग्रास, षष्ठीको छह ग्रास, सप्तमी को सात, अष्टमीको आठ, नवमीको नौ, दशमीको दश, एकादशीको ग्यारह, द्वादशीको बारह, त्रयोदशीको तेरह, चतुर्दशीको चौदह और पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रासका आहार करे । यह शुक्ल पक्षकी विधि है ।।१७५०–१७५१।। कृष्ण पक्षकी विधि इस प्रकार है—पडिमासे लेकर प्रतिदिन एक एक ग्रास कम करता जावे अर्थात् पडिमाको चौदह, द्वितीयाको तेरह, तृतीयाको बारह, चतुर्थीको ग्यारह, पंचमीको दश, षष्ठीको नौ, सप्तमीको आठ, अष्टमीको सात, नवमीको छह, दशमीको पाँच, एकादशीको चार, द्वादशीको तीन, त्रयोदशीको दो और चतुर्दशीको एक ग्रास का आहार करे, पश्चात् अमावस्याको पारणा करे। यह व्रत एक माहका है। अब ग्रास लेनेकी विधि सुनिये ।।१७५२–१७५५।। ग्रास लेनेकी विधि ऐसी है कि इतना बडा ग्रास

ग्रास लैनको ऐसी करै, मुखमें देत न करतैं परै ।
बीच पिवो पाणी न गहाय, अंतराय गल अटकै थाय ॥१७५६॥

जिनपूजा विधि जुत दिन तीस, करै वंदना गुरु नमि सीस ।
शास्त्र बखाण सुणै मन लाय, धरम कथामें दिवस गमाय ॥१७५७॥

पालै शील वचन मन काय, इह विधि महा पुण्य उपजाय ।
यातैं सुरपद होवै ठीक, अनुक्रम शिव पावै तहकीक ॥१७५८॥

मेरु पंक्ति व्रत

चौपाई

वरत मेरु पंकति जो नाम, तास करन विधि सुनि अभिराम ।
द्वीप अढाई मध्य सुजाण, पंच मेरु जे प्रकट बखाण ॥१७५९॥
जम्बूद्वीप सुदर्शन सही, विजय सु पूरब धातकी सही ।
अपर धातकी अचल प्रमान, प्राची पोहकर मंदर मान ॥१७६०॥

पुहकर अपर जु विद्युन्मालि, पंच मेरु वन बीस सम्हालि ।
तिनमें असी चैत्यगृह सार, तिनके व्रत प्रोषध निरधार ॥१७६१॥

सुनहु सुदरशन भूधर जेह, भद्रसाल वन चहुं दिसि तेह ।
जिनमंदिर तिह चार बखाण, प्रोषध चार इकंतर ठाण ॥१७६२॥

बनाया जाय जो मुखमें देते समय हाथसे नीचे न गिरे । ग्रासके बीचमें पानी नहीं पीना चाहिये । गलेमें ग्रासके अटक जाने पर अन्तराय मानना चाहिये ॥१७५६॥ व्रतके तीस दिन जिन पूजा, गुरु वन्दना, शास्त्र व्याख्यान तथा धर्मकथा श्रवणमें व्यतीत करने चाहिये । मन वचन कायासे शीलव्रतका पालन करना चाहिये । इस विधिसे व्रत करने पर महान पुण्यका उपार्जन होता है जिससे देवपदकी प्राप्ति होती है और अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥१७५७–१७५८॥

मेरुपंक्ति व्रत

अब मेरुपंक्ति व्रतकी मनोहर विधि सुनो । अढ़ाई द्वीपमें पाँच मेरु पर्वत हैं यह जगतमें प्रसिद्ध है । जम्बूद्वीपमें सुदर्शन मेरु, धातकी खण्डकी पूर्व दिशामें विजय और पश्चिम दिशामें अचल, पुष्करवर द्वीपके पूर्वमें मन्दर और पश्चिम दिशामें विद्युन्माली, इस प्रकार पाँच मेरु हैं । पाँचों मेरु सम्बन्धी बीस वन हैं और उनमें अस्सी जिनमन्दिर हैं । उन मन्दिरों और वनोंके उपवास कहे गये है ॥१७५९–१७६१॥ यह व्रत जम्बूद्वीपके सुदर्शन मेरुसे शुरू होता हैं । सुदर्शन मेरुका पहला वन भद्रशाल वन है । उसकी चार दिशाओंमें चार मन्दिर है । उन मन्दिरोंकी अपेक्षा चार उपवास और वनकी अपेक्षा एक बेला होता है । सुदर्शन मेरुके

पाछै बेलो कीजे एक, वन सौमनस दूसरो टेक ।
चार जिनेश्वर भवन प्रकाश, चार वास पुनि बेला तास ॥१७६३॥
नंदन वन जिन प्रोषध चार, पीछै ताके बेलो धार ।
पांडुक वन चउ जिनवर गेह, ताके चहु प्रोषध धरि एह ॥१७६४॥
पुनि बेलो धारो भवि सार, मेरु सुदरशन इह विसतार ।
प्रोषध सोलह बेला चार, व्रत दिन चहु चालीस मझार ॥१७६५॥
चार बीस उपवास बखाण, बीस जु तास पारणा जाण ।
ऐसे अनुक्रम करिये भव्व, पंच मेरु व्रत विधि सो सव्व ॥१७६६॥
[1]ध्यावत मेरु सुदरशन नाम, तेई नाम सबनि सुखधाम ।
वाही विधि सब वरत जु तणी, जाणो सही जिनागम भणी ॥१७६७॥
इनमें अन्तर पाडे नहीं, लगते प्रोषध बेला गही ।
सब प्रोषधको अस्सी जोड, बेला बीस करे चित कोड ॥१७६८॥
वास सकल एकसौ बीस, करे पारणा सत्तर तीस ।
सात महीना दिन दस मांहि, सकल वरत यह पूरण थाहि ॥१७६९॥

दूसरे वनका नाम सौमनस* वन है। इसके चारों दिशाओं सम्बन्धी मन्दिरोंके चार उपवास और वनका एक बेला होता है। तीसरा वन नन्दनवन है, इसके चार मन्दिरों सम्बन्धी चार उपवास और वन सम्बन्धी एक बेला होता है। चौथा वन पाण्डुक वन है, इसके भी चार दिशाओं सम्बन्धी चार मन्दिरोंके चार उपवास और वन सम्बन्धी एक बेला होता है। इस प्रकार सुदर्शन मेरु सम्बन्धी सोलह उपवास और चार बेला होते हैं। एक उपवासके बाद एक पारणा और एक बेलाके बाद एक पारणा करनेसे १६+१६+८+४=४४ दिनमें सुदर्शन मेरु सम्बन्धी व्रत पूर्ण होता है ॥१७६२–१७६५॥ इस प्रकार चार बेला और सोलह उपवास मिला कर चौबीस उपवास होते हैं और इनकी बीस पारणाएँ होती हैं। इसी अनुक्रमसे भव्य जीवोंको शेष चार मेरु पर्वतोंके भी उपवास और बेला करना चाहिये। यही पाँच मेरु पंक्ति व्रत कहलाता है। सुदर्शन मेरु सम्बन्धी व्रतके दिनोंमें सुदर्शन मेरुका ध्यान किया जाता है, अर्थात् उस नामकी जाप की जाती है। अन्य मेरु सम्बन्धी व्रतके दिनोंमें उन मेरुओंका ध्यान किया जाता है। व्रत प्रारम्भ करनेके बाद बीचमें अन्तर नहीं पडना चाहिये। व्रत प्रारम्भ करने पर पहले उपवास और पश्चात् बेला होता है अर्थात् पहले चार चैत्यालय सम्बन्धी चार उपवास और उसके बाद वन सम्बन्धी एक बेला करना चाहिये। उपवास और बेलाके दिनोंका योग एक सौ बीस ८०+४०=१२० होता है। इनकी पारणाके दिन

---

१ बन जे मेरु स०न० * मेरु पर्वतोंके वनोंका क्रम भद्रशाल वन, नन्दनवन, सौमनसवन और पाण्डुकवन प्रसिद्ध है।

सकल वास बेला बिच जाण, बीस इकंत जु कहे बखाण ।
ऐसे बीस दिवस जानिये, वरत मेरु पंकति मानिये ॥१७७०॥
शील सहित शुभ व्रत पालिये, हीण उदै विधिके टालिये ।
सुरपद पावै संशय नाहि, अनुक्रम भव लहि शिवपुर जाहि ॥१७७१॥

दोहा

वरत मेरु पंकत इहै, वरन्यो सुखदातार ।
करहु भविक समकित सहित, ज्यों पावै भवपार ॥१७७२॥
पंच मेरुके बीस वन, तहाँ असी जिनगेह ।
तिनके व्रतकी विधि सकल, पूरण कीनी एह ॥१७७३॥

पल्य विधान व्रत

दोहा

सुनहु पल्य विधान व्रत, जिन आगम अनुसार ।
वास बहत्तर कीजिये, बारा मास मझार ॥१७७४॥

चाल छन्द

आसोज किसन छठि तेरस, सुदि बेलो ग्यारस बारस ।
चौदसि सित प्रोषध धरिये, कातिक वदि बारसि करिये ॥१७७५॥

सौ होते हैं अर्थात् अस्सी उपवासोंकी ८० पारणा और बीस बेलाकी २० पारणाएँ होती है। यह व्रत सात माह और दश दिनमें पूर्ण होता है ॥१७६६–१७६९॥ समस्त उपवासों और बेलाओं के बीच पारणाके रूपमें एकन्त = एकाशन होता है । इस प्रकार मेरु पंक्ति व्रतकी विधि जानना चाहिये ॥१७७०॥ इस व्रतका शीलसहित पालन करना चाहिये अर्थात् व्रतके दिनोंमें ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनी चाहिये । कर्मोदयसे यदि कोई बाधा आती है तो उसे दूर करना चाहिये । इस व्रतके फलस्वरूप भव्यजीव स्वर्ग प्राप्त कर क्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥१७७१॥ ग्रन्थकर्ता श्री किशनसिंह कहते हैं कि हमने सुखदायक मेरुपंक्तिव्रतका वर्णन किया है इसलिये हे भव्यजीवों ! सम्यग्दर्शनके साथ इस व्रतका पालन करो जिससे संसारका पार प्राप्त कर सको। पाँच मेरुओंके बीस वन और उनके अस्सी जिनमन्दिर हैं। उन सबको लक्ष्य कर इस व्रतकी संपूर्ण विधि कही है ॥१७७२–१७७३॥*

पल्यविधान व्रत

जिनागमके अनुसार पल्य विधान व्रतका वर्णन सुनो, इसमें एक वर्षके बारह मासोंमें बहत्तर उपवास होते हैं ॥१७७४॥ उनकी विधि इस प्रकार है :—आसौज वदी छठ और तेरसका उपवास, आसौज सुदी ग्यारस और बारसका बेला तथा चौदसका उपवास करे।

---

* इस व्रतका विशेष वर्णन हरिवंश पुराण पर्व ३४ में देखिये ।

प्रोषध सुदि तेरसि बारसि, मगसिर वदि बारसु ग्यारसि ।
सुदि तीज अवर करि बारसि, वदि पोष दुतिय भवि पंदरसि ॥१७७६॥
सुदि पांचै सातै कीजै, पूनौको वास धरीजै ।
वदि माघ चौथ सातै गनि, चौदस उपवास धरो मनि ॥१७७७॥
सुदि सातै आठै बेलो, दशमी करि वास अकेलो ।
फागुण पांचै छठि कारी, बेलो सुणि तिथि उजियारी ॥१७७८॥
पडिवा पुनि ग्यारसि लीजे, पूनों दिन बेलों कीजे ।
वदि पडिवा दोयज बेलो, चैतको करा इक तेलो ॥१७७९॥
चौथि छठि ग्यारसि अठमी, सुदि साते को अर दशमी ।
वैशाख चौथ वदि धारी, दशमी बारसि पुनि कारी ॥१७८०॥
बेलो सुदि दोइज तीज, नौमी तेरसि दुहु लीज ।
सातें दशमी वदि जेठ, आठे दशमी पख सेत ॥१७८१॥
पूनोंको वास करीजे, आषाढ असित पख लीजे ।
दशमी प्रोषध तेरसि गनि, चौदस मावस तेलो भनि ॥१७८२॥
सुदि आठै दसमी पंदरस, उपवास करो करि मन वस ।
अब सांवण मधि जे वास, कहिहों भवि सुनियो तास ॥१७८३॥

कार्तिक वदी बारस, तथा कार्तिक सुदी बारस और तेरस, मगसिर वदी ग्यारस और बारस, मगसिर सुदी तीज और बारस, पौष वदी दूज और पन्द्रस (अमावस), पौष सुदी पाँचम, सातम और पूर्णिमा तथा माघ वदी चौथ, सातम और चौदशका उपवास करे ॥१७७५–१७७७॥ माघ सुदी सातम और आठमका बेला तथा दशमीका उपवास करे। फागुन वदी पाँचम और छठका बेला तथा फागुन सुदी एकम, ग्यारस और पूनमका उपवास करे। चैत्र वदी एकम और दूजका बेला तथा तेरस, चौदश और अमावसका तेला करे। चैत्र सुदी चौथ, छठ, ग्यारस, आठम और दसमका उपवास करे। वैशाख वदी चौथ, दसम और बारसका उपवास तथा वैशाख सुदी दूज और तीजका बेला करे। वैशाख सुदी नवमी तथा तेरसका उपवास, जेठ वदी सातम और दसम तथा जेठ सुदी आठम, दसम और पूनमका उपवास करे। आषाढ वदी दशमीका उपवास तथा तेरस, चौदस और अमावसका तेला करे ॥१७७८–१७८२॥ आषाढ़ सुदी आठम, दशम और पूनमका उपवास करे। श्रावण वदी चौथ, आठम, चौदश तथा श्रावण सुदी तीजका उपवास, बारस–तेरसका बेला और पूनमका उपवास करे एवं भादों वदी

वदि चौथि अष्टमी भावनि, पुनि चौदसि सित तृतिया भनि ।
बारसि तेरसको बेलो, पूनौको वास अकेलो ॥१७८४॥

भादो वदि दोयज वास, छठि सातै बेलो तास ।
बारसि उपवास धरीजै, सित पाखजु एम करीजै ॥१७८५॥

तेलो पांचै छठि सातै, पोषो नौमी करि यातैं ।
ग्यारस बारस तेरसको, तेलो प्रोषध पंदरसको ॥१७८६॥

उपवास आठ चालीस, तेला चहुँ करे गरीस ।
बेला छह जिनवर भाखे, जिन आगममें इह आखे ॥१७८७॥

ए वरष एकमें वास, सत्तरि दुय आगम भास ।
धारणे पारणो सन्त, करिये एकन्त महन्त ॥१७८८॥

धरि शील त्रिविधि नर-नारी, व्रत करहु न ढील लगारी ।
सुर ह्वै अनुक्रम शिव जाई, विधि पल्य तणी इह गाई ॥१७८९॥

रुक्मिणी व्रत

सवैया इकतीसा

लक्ष्मीमतीका भव मांहि व्रत कीनो इह,
श्वेत भाद्रपद आठै प्रोषध आदाय कै;
दोय जाम धरणे रु चार उपवास दिन,
पूजा रचै दोय याम पारणो बनायकै;

दूज और बारसका उपवास तथा छठ-सातमका बेला और भादों सुदी पाँचम, छठ, सातमका तेला करे और नवमीका उपवास करे तथा ग्यारस, बारस और तेरसका तेला एवं पूनमका उपवास करे ॥१७८३-१७८६॥ इस प्रकार इस व्रतमें अडतालीस उपवास, चार तेला और छह बेला जिनेन्द्र भगवानने कहे हैं। एक वर्षमें बहत्तर उपवास आगममें कहे गये हैं। उपवास के धारणा और पारणा के दिन एकाशन करना चाहिये। जो स्त्री पुरुष मन वचन कायकी शुद्धिके साथ शीलका पालन करते हुए इस व्रतको धारण करते हैं वे देव होकर क्रमसे मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इस तरह पल्य विधान व्रतकी विधिका कथन हुआ ॥१७८७-१७८९॥

रुक्मिणी व्रत

रुक्मिणी (कृष्णकी पट्टरानी)ने लक्ष्मीमतीके भवमें यह व्रत किया था। इसकी विधि इस प्रकार है :—भाद्रपद शुक्ल अष्टमीके दिन प्रोषध रख कर यह व्रत शुरू होता हैं। बीचमें पारणा करते हुए चार उपवास होते हैं, अर्थात् अष्टमी, दशमी, द्वादशी और चतुर्दशीका

कीनो आठ वरष लौ शुद्ध भाव देह त्यागि,
अच्युत सुरेशकी इन्द्रानी पद पायकै;
भई रुकमिणी कृष्ण वासुदेव पट तिया,
रुकमिणी नाम व्रत जाणो चित्त भायकै ॥१७९०॥

विमान पंक्ति व्रत

दोहा

व्रत विमान पंकति तणो, विधि सुनिये भवि सार ।
मन वच क्रम करिये सही, सुर सुरेश पद धार ॥१७९१॥

अडिल्ल छंद

सौधर्म रु ईशान स्वर्ग दुहुँतै गही,
पंच पचोत्तर लगै पटल त्रेसठ कही;
तिनकी चहु दिसि मांहि बद्ध श्रेणी जहाँ,
जैन भवन है अनेक अकृत्रिम ही तहाँ ॥१७९२॥

दोहा

तिनके नाम विधानको, वरत इहै लखि सार ।
जहाँ जहाँ जेते पटल, सा सुनिये विस्तार ॥१७९३॥

उपवास और बीचके दिनोंमें पारणाएँ होती हैं। उपवासके दिनोंमें दो दो प्रहर श्री जिनेन्द्र देवकी पूजा होती है। लक्ष्मीमतीने शुद्धभावसे आठ वर्ष तक यह व्रत किया। पश्चात् शरीर त्याग कर अच्युतेन्द्रकी इन्द्राणी हुई। वहाँसे चय कर श्री कृष्णकी रुक्मिणी नामकी पट्टरानी हुई। इसी कारण इस व्रतका 'रुक्मिणी व्रत' नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥१७९०॥

विमान पंक्ति व्रत

अब हे भव्यजनों! विमान पंक्ति व्रतकी विधि सुनो और मन वचन कायसे व्रत धारण करो। यह व्रत इन्द्र पदको देने वाला है ॥१७९१॥ सौधर्म और इशान स्वर्गसे लेकर पंच अनुत्तर विमानों तक सब त्रेसठ पटल कहे गये हैं। उनकी चारों दिशाओंमें श्रेणीबद्ध विमान हैं और उन विमानोंमें अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं। उनके नामोंको लक्ष्य कर इस व्रतका नाम 'विमान पंक्ति व्रत' है। अब जहाँ जहाँ जिस प्रकारसे पटल है उनका विस्तार सुनिये ॥१७९२–१७९३॥ सौधर्म और इशान, इन दो स्वर्गोंमें इकतीस, सनत्कुमार और माहेन्द्रमें सात, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें चार, लान्तव और कापिष्ठमें दो, शुक्र और महाशुक्रमें एक,

चौपाई

दुय सुर गनि इकतीस विख्यात, सनतकुमार महेन्द्रहि सात ।
चार ब्रह्म ब्रह्मोत्तर सही, लांतव कापिष्ठ है द्वय सही ॥१७९४॥

एक सुक्र महासुक्रह धार, एकहि शतार अरु सहसार ।
आणत प्राणत आरण तीन, अच्युत लग छह पटल प्रवीण ॥१७९५॥

नव नव गैवेयक जानिये, नव नवोत्तर इक मानिये ।
पंच पंचोत्तर पटल जु एक, ए त्रेसठ सुणि धरि सुविवेक ॥१७९६॥

अबै वरत प्रोषध विधि जिसी, कथा प्रमाण कहों सुनि तिसी ।
एक पटल प्रति प्रोषध चार, करै एकन्तर चित अवधार ॥१७९७॥

प्रोषध लगते बेलो एक, करि भविजन मन धरि सुविवेक ।
ता पीछै प्रोषध चहुँ जान, तिनके पीछै बेलो ठान ॥१७९८॥

चहुँ प्रोषध बेलो चहुँ वास, छठ चहुँ अनसन पुनि छठ तास ।
इह विधि त्रेसठ बार विधान, चहुँ प्रोषध छठ अनुक्रम जान ॥१७९९॥

त्रेसठ बार जु पूरण थाय, इक लगतो तेलो करवाय ।
बीच इकंतर असन जु करै, एक भुक्त अंतर नहि परै ॥१८००॥

इनके बेला अरु उपवास, अनसन दिवस रु तेलो जास ।
अरु सब दिन इकठे करजोड, सो सुणल्यों भवि चित धरि कोड ॥१८०१॥

शतार और सहस्रारमें एक, आनत, प्राणत और आरणमें तीन तथा अच्युतमें तीन इस प्रकार छह, नौ ग्रैवेयकोंके नौ, अनुदिशोंका एक और पंचानुत्तर विमानोंका एक, इस प्रकार सब त्रेसठ पटल हैं। इन पटलोंके बीचमें इन्द्रक और चारों दिशाओंमें श्रेणीबद्ध विमान रहते हैं ॥१७९४-१७९६॥ अब इस व्रतके प्रोषधोंकी विधि सुनिये। एक पटलके प्रति श्रेणीबद्ध विमानोंकी अपेक्षा क्रमसे चार उपवास तथा इन्द्रक विमानकी अपेक्षा एक बेला होता है। पश्चात् दूसरे पटलके इन्द्रककी अपेक्षा एक बेला और उसके बाद क्रमसे चार उपवास होते हैं। इसी प्रकार त्रेसठ पटलों सम्बन्धी बेला और उपवास जानना चाहिये। चार उपवास, बेला और *षष्ठी, इस क्रमसे प्रत्येक पटल सम्बन्धी उपवासादि जानना चाहिये। त्रेसठ पटलोंका व्रत पूर्ण होने पर एक तेला करना चाहिये। बेला और उपवासोंके बीचमें पारणाके दिन एकाशन करे। इस

---

* हरिवंश पुराणमें षष्ठीका उल्लेख नहीं है। २५२ उपवास, ६३ बेला और १ तेला—सब मिलाकर ३१६ स्थान और इतनी ही पारणाओंका उल्लेख है।

छह सौ दिवस सतानवै जाण, वरत दिवस मरयाद बखाण ।
वास इकन्तर दुइसे जाण, तिन ऊपर बावन परवान ॥१८०२॥

त्रेसठ छठ तेलो इक जान, अब सब वास जोड इम मान ।
वास इक्यासी पर सय तीन, असन तीनसै सोला जान ॥१८०३॥

इह व्रत तीन भुवनमें सार, विधिजुत किये देवपद धार ।
अनुक्रम शिव जैहै तहकीक, अवधारहु भवि चित धरि ठीक ॥१८०४॥

निर्जरापंचमी व्रत

सवैया इकतीसा

प्रथम असाढ सेत पंचमीको वास करे,
कातिकलों मास पांच प्रोषध गहीजिये,
आठ परकार जिनराज पूजा भावसेती,
उद्यापन विधि करि सुकृत लहीजिये,
कीयो नागश्रिय सेठसुता एक वरषलों,
सुरगति पाय विधि कथातें पईजिये,
निर्जर पंचमी व्रत इह सुखकार भाव,
शुद्ध कीए दुःखनिकों जलांजलि दीजिये ॥१८०५॥

व्रतके सब दिनोंका योग छह सौ संतानवे (६९७) होता है अर्थात् यह व्रत इतने दिनोंमें पूर्ण होता है। इसमें २५२ उपवास, २५२ एकान्तर (एकाशन), ६३ छठ, और एक तेला होता है। सब उपवास तीन सौ इक्यासी, और आहार तीन सौ सोलह जानना चाहिये ॥१७९७–१८०३॥ ग्रन्थकार कहते हैं कि यह व्रत तीन लोकमें श्रेष्ठ है। इसे विधिपूर्वक करनेसे देवपद प्राप्त होता है और अनुक्रमसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। ऐसा हे भव्यजीवों! हृदयमें निश्चय करो ॥१८०४॥

निर्जरा पंचमी व्रत

सर्व प्रथम आषाढ़ सुदी पंचमीका उपवास करे, पश्चात् कार्तिक सुदी तक प्रत्येक मासकी सुदी पंचमीका उपवास कर पाँच उपवास करे। उपवासके दिन अष्ट द्रव्यसे जिनराजकी भावपूर्वक पूजा करे, पश्चात् उद्यापन करे। यह व्रत सेठकी पुत्री नागश्रीने एक वर्ष तक किया था तथा उसके फलस्वरूप देवगतिको प्राप्त किया था। इस व्रतको निर्जरा पंचमी व्रत कहते है। शुद्धभावसे करने पर यह व्रत सुख उत्पन्न करता है तथा दुःखोंको दूर करता है ॥१८०५॥

कर्मनिर्जरणी व्रत

सवैया इकतीसा

दरसणके निमति चौदसि आसाढ सुदि,
सावणकी चौदस [1]उपास ज्ञान कीजिये;
भादों सुदि चौदसको प्रोषध चारित्र केरो,
तप जोग चौदसि असौज सित लीजिये ।
एई चार प्रोषध वरष मांहि विधि सेती,
कर्म निर्जरनी सुव्रत सुन लीजिये,
धनश्रीय सेठ सुता करि सुरपद पायों,
अजों भावि भवि करिवेको चित दीजिये ॥१८०६॥

आदित्यवार व्रत

दोहा

सुणो वरत आदित्यकी, विधि भाषी है जेम ।
कथा प्रमाणसु कहत हों, दायक सब विधि क्षेम ॥१८०७॥

चौपाई

[2]प्रथम असाढ अठाई मांही, दीत वार वास एक कराहि ।
सांवण मांहि करे पुनि चार, चार वास कर भादों मझार ॥१८०८॥

कर्म निर्जरणी व्रत

सम्यग्दर्शनके निमित्त आषाढ़ सुद चतुर्दशी, सम्यग्ज्ञानके निमित्त श्रावण सुद चतुर्दशी, सम्यक् चारित्रके निमित्त भादों सुद चतुर्दशी और सम्यक् तपके निमित्त आसौज सुद चतुर्दशी, इन चार दिनोंके चार उपवास प्रति वर्ष करनेसे कर्म निर्जरणी व्रत होता है । किसी समय धनश्री नामक सेठकी पुत्रीने इस व्रतको करके देवपद प्राप्त किया था । हे भव्यजीवों ! आज भी इस व्रतको करनेके लिये अपना चित्त लगाइये ॥१८०६॥

आदित्यवार (रविवार) व्रत

अब आदित्यवार (रविवार) व्रतकी विधि जिस प्रकार आगममें कही गई है उसे सुनो । रविवार व्रत कथाके अनुसार उसकी सर्व क्षेमकारी विधि कहता हूँ ॥१८०७॥

आषाढ़ मासके अष्टाह्निका पर्वमें अर्थात् अष्टमीसे लेकर पूर्णिमा के बीचमें जो रविवार पडे वह प्रथम रविवार है उसके पश्चात् श्रावणके चार और भाद्रपदके चार इस प्रकार नौ रविवारोंमें यह व्रत पूर्ण होता है । व्रतके दिनोंमें मद्य, मांस, मधु और मैथुन इन चार

---

१ सुग्यान काज ग० २ प्रथम असाढ सेत पख जोय, दीत वार व्रत एक जु होय । स० न०; प्रथम एक माहे आषाढ, आठाई पून्यू विचि आठ । ख० ग०

तजै चकार मकार विचार, वरष एक मांहे नव बार ।
करै वरष नवलों निरधार, उजुमण करो सकति संभार ॥१८०९॥
उत्तम प्रोषधकी विधि जाण, आमिल दूजी जगत वखाण ।
तृतीय प्रकार कह्यो इक ठान, एक भुक्ति विधि चौथी जान ॥१८१०॥
संयम शील सहित निरधार, वरष जु नवको इह विसतार ।
वरष एकमें कीयो चहैं, दीत आठ चालीस जु गहै ॥१८११॥
विधि वाही चहु बार बखाण, पार्श्वनाथ जिनपूजा ठाण ।
कीजे उद्यापन चहु सार, पीछै तजिये व्रत निरधार ॥१८१२॥
उद्यापनकी शक्ति न होय, दूणो व्रत करिये भवि लोय ।
सेठ नाम मतिसागर जाण, त्रिया गुणवती जास बखाण ॥१८१३॥
तिह इह व्रतको फल पाइयौं, विधितै कथामांहि गाइयौं ।
इह जाणी कर भविजन करौं, व्रत फल तै शिवतियकू वरो ॥१८१४॥

कर्मचूर व्रत

चौपाई

कर्मचूर व्रतकी विधि एह, आठ भांति भाषत हों जेह ।
आठै आठ भांति जो करै, चौसठि आठे पूरा परै ॥१८१५॥

मकारोंका विचार भी नहीं करना चाहिये । यह व्रत नौ वर्ष तक किया जाता है। व्रत पूर्ण होने पर शक्ति के अनुसार उसका उद्यापन करना चाहिये ॥१८०८–१८०९॥ व्रतकी उत्तम विधि यह है कि व्रतके दिनोंमें उपवास किया जाय, द्वितीय विधि अम्लाहारकी है, तृतीय विधि एकठाणाकी है अर्थात् एक बार थालीमें जो आ जाय उतना ही ग्रहण किया जाय और चौथी विधि एकाशन करनेकी है ॥१८१०॥ संयम और शील सहित व्रतका पालन करना चाहिये । यह नौ वर्षमें किये जाने वाले व्रतका विस्तार है। यदि कोई एक वर्षमें ही व्रत करना चाहे तो एक वर्षमें अडतालीस रविवारोंका व्रत करे। इसकी विधि भी ऊपर कहे अनुसार चार प्रकारकी है। व्रतके दिनोंमें पार्श्वनाथ भगवानकी पूजा करना चाहिये । पश्चात् उद्यापन कर व्रतका समापन करना चाहिये । यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो व्रतको दूना करना चाहिये । मतिसागर नामक सेठ और उनकी गुणवती स्त्रीने यह व्रत कर उसका फल प्राप्त किया था ऐसा रवि व्रत कथा में कहा गया है । ग्रन्थकार कहते हैं कि हे भव्यजनों ! ऐसा जानकर इस व्रतको करो और उसके फलस्वरूप मुक्ति रमाका वरण करो ॥१८११–१८१४॥

कर्मचूर व्रत

अब कर्मचूर व्रतकी विधि आठ प्रकारसे कहते हैं। इस व्रतमें आठ अष्टमी आठ आठ प्रकारसे की जाती है। सब मिलाकर चौसठ अष्टमियोंमें यह व्रत पूरा होता है। पहले आठ

प्रोषध आठ करै विधि सार, इक ठाणा वसु एक ही बार ।
[1]एक गास ले इक दिन मांहि, आठहि नयैड करे सक नाहि ॥१८१६॥

करहि इक फल्यो हरित तजेय, सीत दिवस तन्दुल इक लेय ।
लाडू तिथि इक लाडू खाय, कांजी आठ करै सुखदाय ॥१८१७॥

दोहा—वरष दोय वसु मासमें, व्रत पूरो है एह ।
शील सहित व्रत कीजिये, दायक सुर शिवगेह ॥१८१८॥

अनस्तमित व्रत

चौपाई

अनस्तमित व्रत विधि इम पाल, घटिका दुय रवि अथवत टालि ।
दिवस उदय घटिका दुय चढै, तजि आहार चहु विधि व्रत बढै ॥१८१९॥
याकी कथा विशेष विचार, भाषी त्रेपन क्रिया मझार ।
याते कही नहीं इह ठाम, निसिभोजन तजिये [2]अविराम ॥१८२०॥

पंचकल्याणक व्रत

दोहा

व्रत कल्याणक पंचकी, प्रोषध तिथि विधि जाण ।
आचारज गुणभद्रकृत, उत्तर पुराण प्रमाण ॥१८२१॥

आठ अष्टमियोंमें प्रोषध उपवास करे, फिर आठ अष्टमियोंमें एकठाणा करे अर्थात एक बार जो परोसा जाय उतना ही ग्रहण करे, फिर आठ अष्टमियोंमें एक एक ग्रास ले, पश्चात् आठ अष्टमियोंमें ऊनोदर करे, तदनन्तर आठ अष्टमियोंमें हरित वनस्पतिका त्याग कर कोई एक फल ले, फिर आठ अष्टमियोंमें केवल चावलका आहार ले, तदनन्तर आठ अष्टमियोंमें एक लाडूका आहार ले, और उसके बाद आठ अष्टमियोंमें कांजीका आहार करे । इस तरह यह व्रत दो वर्ष आठ माहमें पूर्ण होता है। शील सहित इस व्रतका पालन करना चाहिये । यह व्रत देव गति और मोक्ष सम्बन्धी सुखोंका घर है ॥१८१५–१८१८॥

अनस्तमित व्रत

अनस्तमित व्रतकी विधिका इस प्रकार पालन करना चाहिये। सूर्यास्त होनेके दो घडी पहलेसे सूर्योदय होनेके दो घडी बाद तक चारों प्रकारके आहारका त्याग करनेसे यह व्रत वृद्धिको प्राप्त होता है। इस व्रतकी विशेष कथा त्रेपन क्रियाओंके वर्णनमें कही जा चुकी है। इसलिये यहाँ नहीं कही गई है। सार यह है कि रात्रिभोजनका निरन्तर त्याग करना चाहिये ॥१८१९–१८२०॥

पंच कल्याणक व्रत

पंच कल्याणक व्रतके प्रोषधोकी तिथियोंका निर्णय गुणभद्राचार्य विरचित उत्तर पुराणके

---

१ असन पानि एकठा लेय, दूजी बेर नहीं जल ग्रेह । न० स० २ अभिराम ग०

तीर्थङ्कर चौवीसके, गरभ कल्याणक सार ।
तिथि उपवास तणी सुनो करिये तिस मन धार ॥१८२२॥

गर्भकल्याणक

पद्धरी छन्द

दोयज असाढ वदि वृषभधीर, छठि वासुपूज्य सुदि छठि जु वीर ।
मुनिसुव्रत सांवण दुतिय श्याम, दसमी कारी जिन कुंथुनाम ॥१८२३॥
सित दोयज सुमति सुगरभ एव, भादौं वदि सातै सांति देव ।
सुदि छठि सुपारस उदर मात, नमि वदि कुवांरि दोयज विख्यात ॥१८२४॥
कातिक वदि पडिवा जिन अनन्त, सुदि छठि नेमि प्रभु सूर महन्त ।
पद्मप्रभु वदि छठि माघ मास, फागुण वदि नौमी सुविधि भास ॥१८२५॥
अरनाथ सुकल तृतिया बखाण, आठै संभव उर मात ठाण ।
शशिप्रभ वदि पाँचै चैत एव, आठै सीतल दिन गरभमेव ॥१८२६॥
सुदि एकै जिनवर मल्लि जानि, वदि तीज पार्श्व वैशाख मानि ।
सुदि छठि अभिनंदन गरभवास, जिन धर्मनाथ तेरसि प्रकास ॥१८२७॥
श्रेयांस जेठ वदि छठि गरीस, दशमी दिन उच्छव विमल ईश ।
जिन अजित अमावसि उदर मात, चौबीस गरभ उत्सव विख्यात ॥१८२८॥

अनुसार करता हूँ ॥१८२१॥ सर्व प्रथम चौबीस तीर्थंकरोंके गर्भकल्याणक सम्बन्धी उपवासोंकी तिथियोंका वर्णन करता हूँ उसे मन स्थिर कर सुनो ॥१८२२॥

गर्भकल्याणककी तिथियाँ—आषाढ़ वदी द्वितीया वृषभदेवकी, आषाढ़ सुदी षष्ठी वासुपूज्य और महावीरकी, श्रावण वदी द्वितीया मुनिसुव्रतनाथकी, श्रावण वदी दशमी कुन्थुनाथकी, श्रावण सुदी द्वितीया सुमतिनाथकी, भादों वदी सप्तमी शान्तिनाथकी, भादों सुदी षष्ठी सुपार्श्वनाथकी, कुंवार (आसोज) वदी द्वितीया नमिनाथकी, कार्तिक वदी पडिवा अनन्तनाथकी, कार्तिक सुद षष्ठी नेमिनाथकी, माघ वदी षष्ठी पद्मप्रभुकी, फागुन वदी नवमी सुविधिनाथकी, फागुन सुद तृतीया अरनाथकी, फागुन सुदी अष्टमी संभवनाथकी, चैत्र वदी पंचमी चन्द्रप्रभकी, चैत्र वद अष्टमी शीतलनाथकी, चैत्र सुदी पडिवा मल्लिनाथकी, वैशाख वदी तृतीया पार्श्वनाथकी, वैशाख सुद षष्ठी अभिनन्दननाथकी, वैशाख सुदी त्रयोदशी धर्मनाथकी, जेठ वद षष्ठी श्रेयांसनाथकी, जेठ वद दशमी विमलनाथकी और जेठ वद अमावास्या अजितनाथकी गर्भकल्याणक तिथि प्रसिद्ध है ॥१८२३–१८२८॥ इस प्रकार चौबीस तीर्थंकरोंकी गर्भकी तिथियाँ कही । अब हे भव्यजनों ! मन स्थिर कर उनकी जन्मतिथियाँ सुनो ॥१८२९॥

दोहा

बीस चार जिनवर गरभ, वासर कहे बखाण ।
अबै जन्मदिन तिथि सकल, सुनि भवि चित हित आन ।।१८२९।।

जन्मकल्याणक व्रत

पद्धरी छन्द

आसाढ दसमी वदि नमि जिनेश, सावण वदि छठि नेमीश्वरेश[1] ।
कातिक वदि तेरस पदम संत, मगसिर सुदि नौमी पुष्पदंत ।।१८३०।।
ग्यारसि मल्लिजु जनमावतार, अरनाथ जनम चौदसि सुसार ।
पूरणमासी सम्भव सुदेव, शशिप्रभ वदि ग्यारसि पौष एव ।।१८३१।।
ग्यारस दिन पारसनाथ जान, शीतल जिन बारसि किसन मान ।
सित चौथ विमल नामजु उछाह, दशमी सित उच्छव अजित नाह ।।१८३२।।
बारसि अभिनंदन जनम लीय, तेरसि जिन धर्म प्रकाश कीय ।
ग्यारसि फागुण श्रेयांसस्वामि, जिन वासुपूज्य चौदसि प्रमाणि ।।१८३३।।
वदि चैत नवमि [2]रिसहेस स्वामि, दसमी मुनिसुव्रत पय नमामि ।
सुदि तेरस जन्मे वीरनाथ, जिन सुमति दसमि वैशाख श्याम ।।१८३४।।
सुदि पडिवा जनमे कुंथुवीर, बारसि वदि जेठ अनन्त धीर ।
चौदसि श्री शांति कियो प्रकाश, सित बारसि जनमे श्री सुपास ।।१८३५।।*

जन्मकल्याणककी तिथियाँ—आषाढ़ वदी दशमी नमिनाथकी, श्रावण वदी षष्ठी नेमिनाथकी, कार्तिक वदी त्रयोदशी पद्मप्रभकी, मगसिर सुदी नवमी पुष्पदन्तकी, मगसिर सुदी एकादशी मल्लिनाथकी, मगसिर सुदी चतुर्दशी अरनाथकी, मगसिर सुदी पूर्णिमा संभवनाथकी, पौष वदी एकादशी चन्द्रप्रभकी, पौष वदी एकादशी पार्श्वनाथकी, पौष वद द्वादशी शीतलनाथकी, पौष सुदी चतुर्थी विमलनाथकी, पौष सुदी दशमी अजितनाथकी, पौष सुदी द्वादशी अभिनन्दननाथकी, पौष सुदी त्रयोदशी धर्मनाथकी, फागुन सुदी एकादशी श्रेयांसनाथकी, फागुन सुदी चतुर्दशी वासुपूज्यकी, चैत्र वदी नवमी ऋषभनाथकी, चैत्र वदी दशमी मुनिसुव्रतनाथकी, चैत्र सुदी त्रयोदशी महावीरकी, वैशाख वदी दशमी सुमतिनाथकी, वैशाख सुदी पडिमा कुन्थुनाथकी, जेठ वदी द्वादशी अनन्तनाथकी, जेठ वदी चतुर्दशी शान्तिनाथकी और जेठ सुदी द्वादशी सुपार्श्वनाथकी जन्मतिथि है ।।१८३०–१८३५।।

१ नेमी वरेश स० न० २ वृषभेष स० न०
* छन्द १८३५ के आगे स० न० प्रतिमें निम्नलिखित दोहा अधिक है —

जन्म कल्याणक तिथि कही, तीर्थंकर चौबीस ।
तप कल्याणक विधि कहौ, मन वच क्रम नमि सीस ।।

तपकल्याणक

पद्धरी छन्द

नमिनाथ दशमि आसाढ श्याम, सावण सुदि छठ तप नेमिनाथ ।
कातिक वदि तेरस पदम धीर, मगसिर वदि दशमी महावीर ॥१८३६॥

सुदि एकै दीक्षा पुहुपदन्त, दशमी दिन अरजिन तप महन्त ।
जिन मल्लि तजो ग्यारसि सुगेह, सुदि पून्यों संभव तप गनेह ॥१८३७॥

चन्द्रप्रभ ग्यारस कृष्ण पौष, ग्यारसि पारस तप ऋद्धि मोख ।
सीतल जिन वदि द्वादसीय माह, सुदि चौथ विमल तप लियहु नाह ॥१८३८॥

नवमी दिन दीक्षा अजित देव, बारस अभिनन्दन सुतप भेव ।
तेरसि जिन धर्म तपो प्रशंस, फागुण वदि ग्यारसि श्री श्रेयांस ॥१८३९॥

प्रभु वासुपूज्य चौदस सुजान, वदि चैतर नवमी रिसहमान ।
मुनिसुव्रत दसमि विशाख श्याम, सुदि पडिवा कुंथु जिनेस नाम ॥१८४०॥

सित नवमि लियो तप सुमतिवीर, जिन शांति जेठ वदि चौथ धीर ।
वदि बारसि तप जिनवर अनंत, बारस सुपार्श्व सित जेठ सन्त ॥१८४१॥

दोहा

तप कल्याणकको कथन, उत्तर पुराणह मांहि ।
काढि कियो अब ज्ञानको, सुनिहु चित्त इक ठांहि ॥१८४२॥

तपकल्याणककी तिथियाँ—आषाढ़ वदी दशमी नमिनाथकी, श्रावण सुदी षष्ठी नेमिनाथकी, कार्तिक वदी त्रयोदशी पद्मप्रभकी, मगसिर वदी दशमी महावीरकी, मगसिर सुदी पडिवा पुष्पदन्तकी, मगसिर सुदी दशमी अरनाथकी, मगसिर सुदी एकादशी मल्लिनाथकी, मगसिर सुदी पूर्णिमा संभवनाथकी, पौष कृष्ण द्वादशी चन्द्रप्रभकी, पौष वदी एकादशी पार्श्वनाथकी, पौष वदी द्वादशी शीतलनाथकी, माघ सुदी चतुर्थी विमलनाथकी, माघ सुदी नवमी अजितनाथकी, माघ सुदी द्वादशी अभिनन्दननाथकी, माघ सुदी त्रयोदशी धर्मनाथकी, फागुन वदी एकादशी श्रेयांसनाथकी, फागुन वदी चतुर्दशी वासुपूज्यकी, चैत्र वदी नवमी ऋषभनाथकी, वैशाख वदी दशमी मुनिसुव्रतनाथकी, वैशाख सुदी पडिमा कुन्थुनाथकी, वैशाख सुदी नवमी सुमतिनाथकी, जेठ वदी चतुर्थी शान्तिनाथकी, जेठ वदी द्वादशी अनन्तनाथकी और जेठ सुदी द्वादशी सुपार्श्वनाथकी तप कल्याणक तिथि है ॥१८३६–१८४१॥ यह तप कल्याणकका वर्णन उत्तरपुराणसे लेकर किया है। अब ज्ञान कल्याणकका वर्णन करते हैं सो चित्तको स्थिर कर सुनो ॥१८४२॥

ज्ञान कल्याणक

पद्धरी छन्द

जिन नेमिश्वर पडिवा कुंवार, संभवजिन चौथहि ज्ञान धारि ।
कातिक सुदि दोयज पुहुपदन्त, लहि केवल बारस अर महंत ॥१८४३॥

मगसिर सुदि ग्यारस मल्लिबोध, ग्यारस नमि हणिया कर्म जोध ।
शीतल वदि चौदसि पौष ज्ञान, सुदि दशमी सुमति केवल महान ॥१८४४॥

सुदि ग्यारसि अजित सुबोध पाय, चौदस अभिनन्दन ज्ञान थाय ।
पून्यों लहि केवल धर्मवीर, श्रेयांस अमावस माघ धीर ॥१८४५॥

सुदि वासुपूज्य दोयज प्रकाश, छठि विमलनाथ केवल विभास ।
फागुण वदि छठि जु सुपार्श्व ईश, सातै चन्द्रप्रभु नमूँ शीश ॥१८४६॥

फागुन वदि ग्यारस वृषभ जान, वदि चैत चौथ पारस बखान ।
अमावस श्री जिनवर अनंत, सुदि तीज कुंथु केवल लहंत ॥१८४७॥

सुदि ग्यारस सुमतिजु बोध पाय, पदम प्रभु पून्यो ज्ञान थाय ।
सुव्रत नौमी वैशाख श्याम, सुदि दसै वीर जिन बोध पाम ॥१८४८॥

दोहा

ज्ञानकल्याणक वर्णयो, उत्तर पुराणमें जेम ।
अब निर्वाणप्रमाण तिथि, सुनहु भविक धर प्रेम ॥१८४९॥

ज्ञान कल्याणककी तिथियाँ--कुंवार (आसोज) वदी पडिमा नेमिनाथकी, कुंवार वदी चतुर्थी संभवनाथकी, कार्तिक सुदी द्वितीया पुष्पदन्तकी, कार्तिक वदी द्वादशी अरनाथकी, मगसिर सुदी एकादशी मल्लिनाथकी, मगसिर सुदी एकादशी नमिनाथकी, पौष वदी चतुर्दशी शीतलनाथकी, पौष सुदी दशमी सुमतिनाथकी, पौष सुदी एकादशी अजितनाथकी, पौष सुदी चतुर्दशी अभिनन्दननाथकी, पौष सुदी पूर्णिमा धर्मनाथकी, माघ वदी अमावास्या श्रेयांसनाथकी, माघ सुदी द्वितीया वासुपूज्यकी, माघ सुदी षष्ठी विमलनाथकी, फागुन वदी षष्ठी सुपार्श्वनाथकी, फागुन वदी सप्तमी चन्द्रप्रभकी, फागुन वदी एकादशी ऋषभनाथकी, चैत्र वदी चतुर्थी पार्श्वनाथकी, चैत्र वदी अमावास्या अनन्तनाथकी, चैत्र सुदी तृतीया कुन्थुनाथकी, चैत्र सुदी एकादशी सुमतिनाथकी, चैत्र सुदी पूर्णिमा पद्मप्रभकी, वैशाख वदी नवमी मुनिसुव्रतनाथकी और वैशाख सुदी दशमी महावीरकी ज्ञानकल्याणककी तिथि है ॥१८४३-१८४८॥ उत्तर पुराणमें जैसा ज्ञानकल्याणकका वर्णन है तदनुसार हमने वर्णन किया । अब हे भव्यजनों! प्रेमपूर्वक निर्वाण कल्याणककी तिथियोंका वर्णन सुनो ॥१८४९॥

निर्वाण कल्याणक

पद्धरी छन्द

आसाढ विमल आठें असेत, सुदि साते शिव नेमी सहेत ।
सावण सुदि सातै पार्श्वनाथ, पून्यों श्रेयांस लहि मोक्ष साथ ॥१८५०॥
भादों सुदि आठे पुहपदंत, जिन वासुपूज्य चौदस नमंत ।
सीतल जिन आठे सित कुंवार, कातिक मावस भव वीर पार ॥१८५१॥
वदि महाचतुर्दशि वृषभनाम, पद्मप्रभु फागुन चौथ श्याम ।
सातै सुपार्श्व शिव लहिय धीर, चंद्रप्रभु सातै त्रिजगतीर ॥१८५२॥
वदि बारसि मुनिसुव्रत बखाण, सुदि पांचै मल्लि जिनेश जाण ।
वदि चैत मावसी नंतनाथ, इस वासर अर जिन मोक्ष साथ ॥१८५३॥
सुदि पांचै शिव जिन अजित पाय, सुदि छठ संभव निर्वाण थाय ।
सुदि ग्यारसि सुमति सुमोक्ष धीर, नमि वदि चौदस वैशाख तीर ॥१८५४॥
सुदि एकै शिव-दिन कुंथु जाण, अभिनंदन छठ निर्वाण ठाण ।
वदि चौदसि जेठ सु शांतिनाथ, सुदि चौथ धर्म शिव कियो साथ ॥१८५५॥

दोहा

कल्याणक निर्वाणकी तिथि चौबीस विचार ।
कही जेम भाषी तिसी, उत्तर पुराण मझार ॥१८५६॥

निर्वाण कल्याणककी तिथियाँ--अषाढ़ सुद अष्टमी विमलनाथकी, आषाढ़ सुद सप्तमी नेमिनाथकी, श्रावण सुद सप्तमी पार्श्वनाथकी, श्रावण सुद पूर्णिमा श्रेयांसनाथकी, भादों सुद अष्टमी पुष्पदन्तकी, भादों सुद चतुर्दशी वासुपूज्यकी, कुंवार सुद अष्टमी शीतलनाथकी, कार्तिक वद अमावास्या महावीरकी, माघ वद चतुर्दशी ऋषभनाथकी, फागुन वद चतुर्थी पद्मप्रभकी, फागुन वद सप्तमी सुपार्श्वनाथकी, फागुन वद सप्तमी चन्द्रप्रभकी, फागुन वद द्वादशी मुनि-सुव्रतनाथकी, फागुन सुद पंचमी मल्लिनाथकी, चैत्र वद अमावास्या अनन्तनाथकी, चैत्र वद अमावास्या अरनाथकी, चैत्र सुद पंचमी अजितनाथकी, चैत्र सुद षष्ठी संभवनाथकी, चैत्र सुद एकादशी सुमतिनाथकी, वैशाख वद चतुर्दशी नमिनाथकी, वैशाख सुद पडिवा कुन्थुनाथकी, वैशाख सुद षष्ठी अभिनन्दननाथकी, जेठ वद चतुर्दशी शान्तिनाथकी और जेठ सुद चतुर्थी धर्मनाथकी निर्वाणकल्याणककी तिथि है ॥१८५०-१८५५॥

निर्वाण कल्याणककी चौबीस तिथियोंका विचार, उत्तर पुराणमें जैसा कहा गया है तदनुसार किया है ॥१८५६॥ जब पंचकल्याणक व्रत पूर्ण हो जावे तब उसका अच्छी तरह

ह्वै सम्पूरण व्रत जबै, कर उद्यापन सार ।
आगममें जिन भाषियो, सो भवि सुन निरधार ॥१८५७॥

उद्यापनकी विधि

चौपाई

पाँच कीजिये जिनवर गेह, पाँच प्रतिष्ठा कर शुभ लेह ।
झालरि झाँझ कंसाल रु ताल, छत्र चमर सिंघासन सार ॥१८५८॥
भामंडल पुस्तक भंडार, पंच पंच सब कर निरधार ।
घंटा कलश ध्वजा पण थाल, चन्द्रोपक बहु मोल विशाल ॥१८५९॥
पुस्तक पाँच चैत गृह धरै, तिन बाँचै, भविजन भव तरै ।
[1]चार संघको देय आहार, जिन आगम भाषी विधि सार ॥१८६०॥*
इतनी विधि जो करी न जाय, सकति प्रमाण करै सो आय ।
सकति उलंघ न करनी कही, सकतिवान किरपन ह्वै नहीं ॥१८६१॥
काहू भाँति कछु नाहीं थाय, तो दूणो व्रत कर चित लाय ।
अबै वरत करिहै नर नार, करै दान सुन हिय अवधार ॥१८६२॥
गरभ कल्याणकको दत्त जान, मैदाका करि खाजा आन ।
बांटै सबको धर अहलाद, करे इसी विधि हर परमाद ॥१८६३॥

उद्यापन करना चाहिये । आगममें जिनेन्द्र भगवानने उद्यापनकी जैसी विधि कही है उसे सुन कर हे भव्यजनों ! उसका निश्चय करो ॥१८५७॥

उद्यापनकी विधि—पाँच जिनमन्दिर बनवा कर उनमें पाँच प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराये । झालर, झांझ, कंसाल, ताल, छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डल और पुस्तक भंडार पाँच-पाँचकी संख्यामें चढ़ावे । घंटा, कलश, ध्वजा, थाल, चंदेवा और पुस्तक, पाँच-पाँचकी संख्यामें मंदिरमें रक्खे । उन स्थापित पुस्तकोंको पढ़ कर भव्यजीव संसार सागरसे पार होंगे । जिनागममें कहे अनुसार चतुर्विध संघको आहार दान देवे ॥१८५८-१८६०॥ यदि इतनी विधि करनेकी शक्ति न हो तो अपनी शक्तिके अनुसार करे । शक्तिको उल्लंघ कर नहीं करे, और शक्तिमान कृपणता न करे। यदि किसी भाँति कुछ भी करनेकी सामर्थ्य न हो तो व्रतको दूने दिन करे । जो नरनारी इस समय व्रत करे वे प्रभावनाके लिये बाँटने योग्य वस्तुओंका वर्णन सुने । गर्भ-कल्याणक व्रतके उपलक्ष्यमें मैदाके खाजा बनवा कर प्रसन्नता पूर्वक सबको बाँटे, प्रमाद न

१ चार संघको दे बहु दान, विनय करे उर उन गुन जान । स०न०

* छन्द १८६० के आगे स०न० प्रतिमें निम्न चौपाई अधिक है—

भुखित दुखित जो प्रानीजन, तिन्हे देहु उर करुना आन ।
अभयदान औषध आहार, जिन आगम विधि भाषी सार ॥

जनम कल्याणक दत्त विस्तरै, चिणा भिजोय रु विरहा करै ।
मोदक फल घर बाँटै नार, चित्तमांहि अति हित अवधार ॥१८६४॥

तप कल्याणक दत्त अवधार, बाँटे पापर खिचडी धार ।
जिन आगमहि बखाणी नहीं, युक्तिमान मानस विधि गही ॥१८६५॥

ज्ञानकल्याणक पूरा थाय, जवै दान दे मन चित लाय ।
पाठ मंगाय जु बाँटै तिया, मनमें हरष सफल निज जिया ॥१८६६॥

करके कल्याणक निर्वाण, तास दानको करै बखान ।
मोतीचूर रु मगद कसार, लाडू कर बाँटे सब नार ॥१८६७॥

बीस चार घरकी मर्याद, दे अतिमान हिये अहलाद ।
मनकी उकति उपावै घणी, जिन शास्त्रनि माहे नहि भणी ॥१८६८॥

यातें सुनिये परम सुजान, जिन आगम भाष्यो परमान ।
थोडो किये अधिक फल देय, भाव सहित कर सुरपद लेय ॥१८६९॥

अडिल्ल

जिम जिन आगम कह्यो दान तिम दीजिये,
निज मन युक्ति उपाय कबहु नहि कीजिये;
कलीकाल नहि जोग संघ नहि पाइये,
धर्मवंत लखि पुरुष ताहि चित लाइये ॥१८७०॥

करे। जन्मकल्याणक व्रतके उपलक्ष्यमें चना भिगो कर उनके बिरहा, मोदक तथा फल प्रसन्न चित्तसे घरघर बाँटे। तप कल्याणक व्रतके उपलक्ष्यमें बाजराके पापड़ तथा खिचडी बाँटे। ज्ञानकल्याणकके उपलक्ष्यमें जब दान देवे तो अनेक ग्रन्थोंको मँगा कर प्रसन्नता पूर्वक बाँटे। निर्वाणकल्याणक व्रतके उपलक्ष्यमें मोतीचूर, मगद तथा कंसारके लाडू चौबीस घरोंमें बाँटे। ग्रन्थकर्ता कविवर किशनसिंह कहते हैं कि :—किस व्रतके उपलक्ष्यमें क्या बाँटना, इसका आगम में कोई कथन नहीं है, यहाँ हमने लौकिक दृष्टिसे कथन किया है। मनमें अनेक प्रकार के उत्साह उत्पन्न होते हैं उन सबका आगममें कथन नहीं किया जा सकता। इसलिये हे ज्ञानी जनों ! सुनो, जिनागममें तो यह कहा है कि अच्छे भावसे दिया हुआ थोड़ा दान भी बहुत फल देता है अतः भावपूर्वक दान देकर देवपद प्राप्त करो ॥१८६१–१८६९॥

ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि जिनागममें जिस प्रकार दान देना कहा है उसी प्रकार देना चाहिये। अपने मनकी युक्ति बना कर कभी नहीं देना चाहिये। कलिकालमें उन योगीजनोंका

दोहा

भोजनादि निज सकति जुत, दानादिक विधि सार ।
करि उपजाये पुण्य बहु, यामें फेर न सार ॥१८७१॥

एकासन कर धारणे, अवर पारणे जान ।
शील सहित प्रोषध सकल, करहु सुभवि चित आन ॥१८७२॥

मरहटा छन्द

कल्याणक सारं पंच प्रकारं गरभ जनम तप णाण,
पंचम निर्वाणं वरत प्रमाणं कहियो महापुराण ।
तिनकी विधि भाखी जिम जिन आखी किये लहै सुरगेह,
अनुक्रम शिव पावे जे मन भावे ते सब जानी एह ॥१८७३॥

निर्वाण कल्याणकका बेला

चौपाई

जे जे तीर्थंकर निर्वाण, गये तास दिनकी तिथि ठाण ।
तिह दिनको पहिलो उपवास, लगतो दूजो वास प्रकाश ॥१८७४॥

इह विधि बारह मास मझार, बेला करिये बीस रु चार ।
बेला कल्याणक निर्वाण, वरत नाम लखिये बुधमाण ॥१८७५॥

संघ दुर्लभ हो रहा है, इसलिये धर्मी पुरुषोंका मनमें ध्यान करना चाहिये ॥१८७०॥ अपनी शक्तिके अनुसार सहधर्मी जनोंको भोजनादि कराने तथा शक्ति अनुसार प्रभावना बाँटनेसे बहुत पुण्यका उपार्जन होता है इसमें संशय नहीं है। एकाशन, धारणा, पारणा और उपवास आदि समस्त विधिको हे भव्यजनों ! शीलसहित उत्साह पूर्वक करो ॥१८७१–१८७२॥ गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण, ये पंच कल्याणक कहे गये है, इस पंच कल्याणक व्रतका कथन महापुराणमें हुआ है। जिन––जिनेन्द्र भगवान अथवा जिनसेनाचार्यने उसकी विधि जैसी कही है वैसी मैंने यहाँ निरूपित की है। इस व्रतको जो ग्रहण करते हैं वे देवगतिको प्राप्त होते हैं और अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं अतः मनको जैसा प्रिय हो वैसा करो ॥१८७३॥

निर्वाण कल्याणकका बेला

जो तीर्थंकर जिस तिथिको मोक्ष गये हैं उस तिथिका पहला उपवास और उसीसे संलग्न दूसरा उपवास करना चाहिये। इस विधिसे बारह मासमें चौबीस बेला हो जाते हैं। यही निर्वाण कल्याणक बेला नामका व्रत जानना चाहिये ॥१८७४–१८७५॥

लघु कल्याणकका व्रत

दोहा

गरभ जनम तप ज्ञान शिव, तीर्थङ्कर चौवीस ॥
वरसमांहि तिथि सबनको, करै एक सौ बीस ॥१८७६॥

छप्पय

रिषभ गरभ वदि दुतिय गर्भ छठि वासुपूज गनि,
आठै विमल सुमोक्ष दशमि नमि जनम रु तप भनि;
वर्धमान छाठ सुकल गरभ माताके आये,
सुदि सातै जिन नेमि करम हणि मोक्ष सिधाये;
आसाढ मास माहे दिवस, उछाह माहि जिन जाणियो ।
छह कल्याणक सातमो, छह जिनवरको ठाणियो ॥१८७७॥

मुनिसुव्रत जिनदेव गरभ वदि दोयज वासर,
कुंथु गरभ वदि दसे सुमति सित तीज गरभ वर;
नेमनाथ सित छठी जनम दिन तप पुनि धरियो,
साते पारसनाथ मोक्ष लहि भवदधि तरियो;
श्रेयांसनाथ निरवान पद, पून्यूंके दिन सरदही ।
सावण सुमास छहि दिन विषै, सात कल्याणक है सही ॥१८७८॥

लघु कल्याणक व्रत

चौबीस तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण कल्याणककी तिथियाँ एक वर्षमें एक सौ बीस होती हैं ॥१८७६॥ आषाढ़ वद द्वितीयाको ऋषभनाथका गर्भ, आषाढ़ वद षष्ठीको वासुपूज्यका गर्भ, आषाढ़ वद अष्टमीको विमलनाथका मोक्ष, आषाढ़ वद दशमीको नमिनाथका जन्म तथा तप, आषाढ़ सुद षष्ठीको महावीरका गर्भ, और आषाढ़ सुद सप्तमीको नेमिनाथका निर्वाण कल्याणक होता है । इस प्रकार आषाढ़ माहमें छह तीर्थंकरोंके सात कल्याणक दिवस आते हैं ॥१८७७॥ श्रावण वद द्वितीयाको मुनिसुव्रतनाथका गर्भ, श्रावण वद दशमीको कुन्थुनाथका गर्भ, श्रावण सुद तृतीयाको सुमतिनाथका गर्भ, श्रावण सुद षष्ठीको नेमिनाथका जन्म तथा तप, श्रावण सुद सप्तमीको पार्श्वनाथका मोक्ष, श्रावण सुद पूर्णिमाको श्रेयान्सनाथका निर्वाण कल्याणक होता है । इस प्रकार श्रावण माहमें छह तीर्थंकरोंके सात कल्याणक दिवस आते हैं ॥१८७८॥ भादों वदी सप्तमीको शांतिनाथका गर्भ, भादों सुद षष्ठीको सुपार्श्वनाथका गर्भ, भादों सुद अष्टमीको सुविधिनाथका मोक्ष, भादों सुद चतुर्दशीको वासुपूज्यका

वदि भादों जिन शांति गरभ सातै माता उर,
सुदि छठि गरभ सुपास अष्टमी मोक्ष सुविधि पर;
वासुपूज्य निर्वाण चतुर्दशि भादों जाणो,
वदि दोयज आसोज गरभ नमि जिनवर मानो;
लहि मोक्ष नेमि एकै सुकल, आठै शीतल शिव गये।
दुह मास मांहि दिन सातमैं, कल्याणक सातहि भये ॥१८७९॥

गरभ अनन्त जिनेश प्रतिपदा कातिक करियो,
संभव केवल चौथ त्रयोदसि पद्म जनम लियो;
तप पुनि तेरसि पद्म मोक्ष सनमति जु अमावस,
सुविधि ज्ञान सित बीज नेमि छठि मात गरभ वस;
अरनाथ चतुष्टय विधि हणिवि, केवलज्ञान उपानियो।
दिन सात कल्याणक आठ सब काती मांहि सुजानियो ॥१८८०॥

सन्मति तप वदि दसैं सुविधि सुदि एकैं तप गन,
पुहुपदंत नम जनम दसम तप अरहनाथ भन;
मल्लि जनम तप ज्ञान कल्याणक लिहु सित ग्यारस,
नमि सित ग्यारसि ज्ञान जनम अरनाथ सु चौदस;
संभव जु कल्याणक जनम तप, दुहूँ पूरणवासी थये।
दिन सात कल्याणक एकदश, मगसिर माही वरणये ॥१८८१॥

निर्वाण, आसौज वद द्वितीयाको नमिनाथका गर्भ, आसौज सुद एकमको नेमिनाथका मोक्ष, आसौज सुद अष्टमीको शीतलनाथका निर्वाण कल्याणक दिवस होता है। इस प्रकार दो माहमें सात तीर्थंकरोंके सात कल्याणक दिवस आते हैं ॥१८७९॥ कार्तिक वद पडिमाको अनन्तनाथका गर्भ, कार्तिक वद चतुर्थीको संभवनाथका केवलज्ञान, कार्तिक वद त्रयोदशीको पद्मप्रभका जन्म तथा तप, कार्तिक वद अमावास्याको महावीरका निर्वाण, कार्तिक सुदी द्वितीयाको सुविधिनाथका ज्ञान, कार्तिक सुद षष्ठीको नेमिनाथका गर्भ और कार्तिक वद द्वादशीको अरहनाथका केवलज्ञान कल्याणक होता है इस प्रकार कार्तिक माहमें सात तीर्थंकरोंके आठ कल्याणक दिवस आते हैं ॥१८८०॥ मगसिर वद दशमीको महावीरका तप, मगसिर सुद एकमको सुविधिनाथका तप, मगसिर सुद नवमीको पुष्पदन्तका जन्म, मगसिर सुद दशमीको अरहनाथका तप, मगसिर सुद एकादशीको मल्लिनाथका जन्म, तप तथा ज्ञान, मगसिर सुद एकादशीको नमिनाथका ज्ञान, मगसिर सुद चतुर्दशीको अरहनाथका जन्म और मगसिर सुद पूर्णिमाको संभवनाथका

पारसनाथ सु जनम अवर तप ग्यारसि कारी,
जनम चन्द्रप्रभ तास दिवस दिक्षाहू धारी;
चौदस शीतल ज्ञान सुमति सुदि दसमी विधि तसु,
ग्यारस केवल अजित जिनेश्वर प्रगट भयो जसु;
प्रभु अभिनंदन चौदसि दिवस, लोकालोक प्रकासियो ।
दिन पाँच कल्याणक आठ जुत, पौष महीनो भासियो ॥१८८२॥*

वदि छठि गरभ सु पदम जनम तप शीतल बारसि,
चौदसि शिव जिन ऋषभ ज्ञान श्रेयांस अमावसि;
अभिनंदन जिन सेत प्रतिपदा दीक्षा धारी,
वासुपूज्य लहि ज्ञान सुकल दुनिया सुखकारी;
सुदि चौथि विमल तप जनम पुनि विमल ज्ञान छठि प्रगट ही ।
नवमी तप दसमी जनम दुहु अजित कल्याणक दिवस ही ॥१८८३॥

अभिनंदन जिन जनम सुकल बारसि दिन जानो;
धरमनाथ जिन जनम अवर तप तेरसि मानो;

जन्म तथा तप कल्याणक होता है, इस प्रकार मगसिर माहमें सात तीर्थंकरोंके ग्यारह कल्याणक दिवस आते हैं ॥१८८१॥

पौष वद एकादशीको पार्श्वनाथका जन्म तथा तप, पौष वद एकादशीको चन्द्रप्रभका जन्म तथा तप, पौष वद चतुर्दशीको शीतलनाथका ज्ञान, पौष सुद दशमीको सुमतिनाथका ज्ञान, पौष सुद एकादशीको अजितनाथका केवलज्ञान और पौष सुद चतुर्दशीको अभिनन्दननाथका ज्ञान कल्याणक होता है, इस प्रकार पौष माहके पाँच दिवसोंमें छह तीर्थंकरोंके आठ कल्याणक कहे गये हैं[1] ॥१८८२॥

माघ वद षष्ठीको पद्मप्रभका गर्भ, द्वादशीको शीतलनाथका जन्म और तप, चतुर्दशीको ऋषभनाथका निर्वाण, अमावसको श्रेयांसनाथका ज्ञान माघ सुद पडिवाको अभिनंदननाथका तप, द्वितीयाको वासुपूज्यका ज्ञान, चतुर्थीको विमलनाथका जन्म तथा तप, षष्ठीको विमलनाथका

---

* यहाँसे आगे छन्द १८८३ से १९१३ तकके छन्द मुद्रित प्रतियोंमें अनुपलब्ध है अतः ये नरयावलीसे प्राप्त वि० सं. १८७० की हस्तलिखित प्रतिसे लिये गये है । क० प्रतिमें कुछ पद्य उपलब्ध है ।

१ पौष सुदी पूर्णिमाको धर्मनाथका ज्ञानकल्याणक भी होता है ।

पूरनमासी ज्ञान प्रगट जिन धरम जिनेश्वर,
माह महीना माहि भये कल्याणक जे वर;
दुहु छप्पय माहि तेरह दिवस उच्छव सोलह लखि समै ।
मन वचन काय कर सीस धुनि किशनसिंघ चरननि नमै ॥१८८४॥

पदम मोक्ष वदि चौथि सुपारसनाथ ज्ञान छठि,
शशिप्रभ साते ज्ञान मोक्ष पुनि जानि सुपारसि;
पुष्पदंत जिन गरभ जनम श्रेयांस तप ग्यारसि,
पुनि जिन वृषभ सुबोध मोक्ष मुनिसुव्रत चारसि;
तप जनम वासुपूजि हि चतुदशि तीज गरभ अर जिन सही ।
सिव मल्लि पंचमी फालगुन आठे संभव गरभ ही ॥१८८५॥

दोहा

फागुन दिन ग्यारह बिषै कल्याणक जिनराय ।
पन्द्रह किये त्रिजगपती, नमै किसन सिर नाय ॥१८८६॥

छप्पय

पारस चौथि सुज्ञान चन्द्रप्रभ गरभ पंचमि य,
आठे सीतल गरभ ऋषभ जनम रु तप नवमि य;
सुव्रत दसमिय जनम अवर सुदि तेरसि सन्मति,
मावसि ज्ञान अनंत मोक्ष जिन अरहजु सिव गति;

ज्ञान, नवमीको अजितनाथका तप और दशमीको जन्म, सुद द्वादशीको अभिनन्दननाथका जन्म, त्रयोदशीको धर्मनाथका जन्म तथा तप, और पूर्णिमाको धर्मनाथका ज्ञान कल्याणक हुआ। इस प्रकार दो छप्पयोंमें प्रतिपादित उत्सवके तेरह दिनोंमें सोलह कल्याणक हुए। कवि किशनसिंह शिर झुकाकर मन वचन कायसे उन तीर्थंकरोंके चरणोंमें नमस्कार करते हैं ॥१८८३–१८८४॥

फागुन वद चतुर्थीको पद्मप्रभका मोक्ष, षष्ठीको सुपार्श्वनाथका ज्ञान, सप्तमीको चन्द्रप्रभका ज्ञान तथा सुपार्श्वनाथका मोक्ष, एकादशीको पुष्पदन्तका गर्भ, श्रेयांसनाथका जन्म तथा तप, वृषभनाथका ज्ञान, मुनिसुव्रतका मोक्ष, चतुर्दशीको वासुपूज्यका जन्म तथा तप, सुद तृतीयाको अरहनाथका गर्भ, पंचमीको मल्लिनाथका मोक्ष और अष्टमीको संभवनाथका गर्भ कल्याणक होता है। इस प्रकार फागुनके ग्यारह दिनोंमें तीर्थंकरोंके पन्द्रह कल्याणक हुए। किशनसिंह उन्हें मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं ॥१८८५–१८८६॥

चैत्र वद चतुर्थीको पार्श्वनाथका ज्ञान, पंचमीको चन्द्रप्रभका गर्भ, अष्टमीको शीतलनाथका

सुदि मल्लि गरभ एक तृतिय कुंथु बोध पंचमि अजित ।
निरवान जु छठि संभव सुमति ग्यान ग्यारसि रु भव नसि ॥१८८७॥

दोहा

पूनौ चैत सुमासमै, पद्मप्रभ जिन ग्यान ।
तेरह दिन माहै भए, सत्रह सुभ कल्यान ॥१८८८॥

छप्पय

दोइज पारस गरभ नवमि मुनिसुव्रत ग्यान हि,
चौदसि सिव नमिनाथ कुंथु सुदि पडिमा मानहि,
जनम रू तप सिव तीनि गरभ छठि सिव अभिनंदन,
नवमी दीक्षा सुमति दसमि तप सुव्रत वंदन;
सित दसमी ग्यान लहि वीर जिन सुमति गरभ सो ग्यारही ।
सुदि तेरसि गर्भ जु धर्म जिन जानि मास वैशाख ही ॥१८८९॥

दोहा

ए नव दिन वैशाखमें तेरह सुभ कल्यान ।
सुर नर नागपती कियो नमै किसन धरि ध्यान ॥१८९०॥

गर्भ, नवमीको ऋषभनाथका जन्म तथा तप, दशमीको मुनिसुव्रतका जन्म, चैत्र सुद त्रयोदशीको महावीरका जन्म, अमावसको अनन्तनाथका ज्ञान तथा मोक्ष, अरहनाथका मोक्ष, चैत्र सुद एकम को मल्लिनाथका गर्भ, तृतीयाको कुन्थुनाथका ज्ञान, पंचमीको अजितनाथका निर्वाण, षष्ठीको संभवनाथका मोक्ष, एकादशीको सुमतिनाथका ज्ञान तथा मोक्ष और पूर्णिमाको पद्मप्रभ तीर्थंकर का ज्ञान कल्याणक होता है। इस प्रकार चैत्रके तेरह दिनोंमें सत्रह कल्याणक हुए है ॥१८८७–१८८८॥

वैशाख वद द्वितीयाको पार्श्वनाथका गर्भ, नवमीको मुनिसुव्रतका ज्ञान, चतुर्दशीको नमिनाथ का मोक्ष, वैशाख सुद पडिमाको कुन्थुनाथका जन्म, तप तथा मोक्ष, षष्ठीको अभिनन्दननाथ का गर्भ और मोक्ष, नवमीको सुमतिनाथका तप, दशमीको मुनिसुव्रतका तप, दशमीको महावीर का ज्ञान, एकादशीको सुमतिनाथका गर्भ और त्रयोदशीको धर्मनाथ भगवानका गर्भ कल्याणक हुआ हैं। इस प्रकार वैशाख मासके नौ दिनोंमें तेरह शुभ कल्याणक हुए है। इस प्रकार सुरपति नरपति और नागपतिने इनके उत्सव किये है। किशनसिंह ध्यान धारण कर उन सब तीर्थंकरोको नमस्कार करते हैं ॥१८८९–१८९०॥

छप्पय

शांतिनाथ तप चौथि गरभ श्रेयांस सु छठि सहि,
विमल गरभ वदि दसमि जनम बारसि जु अनंत हि;
बारस ही तप जानि शांति शिव जनम सु चौदस,
अजित जिनेश्वर गरभ जेठ वदी जान अमावस;
धरमनाथ दिन चौथहि बारसि जनम सुपास ही ।
बारसि सुपारस तप दिवस भाष्यो जेठ सुमास ही ॥१८९१॥

दोहा

जेठ मास नव दिवसमें, कल्यानक दस एक ।
सुर नरनाग खगेश किय, नमहि त्रिविधि कटि टेक ॥१८९२॥

उच्छव जिन चौबीसके, भये एकसौ बीस ।
वरस मध्य दिन बानवै, व्रत इहि विधि वावीस ॥१८९३॥

लघु कल्यानक नाम या, ताकी विधि सुनि लेह ।
वरष मांहि पूरन करै, सुरपद दायक एह ॥१८९४॥

चौपाई

एक कल्यानक जिहि दिन होय, एकाठानौ करि भवि लोय ।
दो कल्यानकके दिन सही, करिये नयड जिसो विधि कही ॥१८९५॥

जेठ वद चतुर्थीको शान्तिनाथका तप, षष्ठीको श्रेयांसनाथका गर्भ, दशमीको विमलनाथका गर्भ, द्वादशीको अनन्तनाथका जन्म तथा तप, चतुर्दशीको शान्तिनाथका जन्म तथा मोक्ष, जेठ वद अमावसको अजितनाथका गर्भ, जेठ सुद चतुर्थीको धर्मनाथका जन्म और द्वादशीको सुपार्श्वनाथका जन्म तथा तप कल्याणक हुआ है। इस प्रकार जेठ मासके नौ दिनोंमें ग्यारह कल्याणक हुए हैं, जिनका सुर, नाग, नर और विद्याधर राजाओंने उत्सव किया है। उन्हें मन वचन कायसे नमस्कार करता हूँ ॥१८९१-१८९२॥

चौबीस तीर्थंकरोंके एक सौ बीस कल्याणक होते हैं और वे वर्षके बानवै (९२) दिन में संपन्न होते हैं । इस व्रतका नाम लघु कल्याणक व्रत है। इसकी विधि सुनो । इस व्रतको एक वर्षमें पूर्ण करना चाहिये । यह व्रत देवपदको देने वाला है ॥१८९३-१८९४॥ जिस दिन एक कल्याणक हो उस दिन एकठाणा करना चाहिये । जिस दिन दो कल्याणक हों उस दिन ऊनोदर करना चाहिये । जिस दिन तीन कल्याणक आवे उस दिन कांजी आहार करना चाहिये

तीनि कल्यानक जिहि दिन थाय, कांजी करिये भवि चित लाय ।
चारि कल्यानक भेला होय, प्रोषध करिये संशै खोय ॥१८९६॥

दोहा

व्रत पचहत्तर तिथि सुविधि, मास वरष मरजाद ।
प्रोषध असन विशेष जो, करिये तज परमाद ॥१८९७॥

सो भाषी याके विषै, लखि करिये मतिमानि ।
सकति उलंघ न कीजिये, सकति न तजिये जानि ॥१८९८॥

वास धारनौं पारनौं, करिये दुहु एकांत ।
नीर न लीजै तिहि विषै, सो प्रोषध जु महंत ॥१८९९॥

अन्नदवास विधि प्रथम ही, कही तीन परकार ।
जैसी सकति गहीजिये, तैसो फल है सार ॥१९००॥

व्रत सब भाषे तिन विषै, करै पुरुष वा नारि ।
सील पालिवो दुहुनिको जिन भाष्यो निरधारि ॥१९०१॥

आदरतै व्रत लीजिये, करिये तिम निरवाह ।
बिन आदर करिवो इसौं, जिम कन तजि भुस चाह ॥१९०२॥

और जिस दिन चार कल्याणक हों उस दिन निःसंदेह प्रोषध करना चाहिये ॥१८९५–१८९६॥

इस प्रकार पचहत्तर व्रतोंकी तिथि, विधि, मास तथा अवधिका वर्णन किया। प्रोषध और आहार विशेष, जिस व्रतका जैसा कहा है वैसा प्रमाद छोड कर करना चाहिये। सब व्रतोंकी विधि इस ग्रन्थमें कही गई हैं उसे देख कर करना चाहिये। शक्तिका उल्लंघन नहीं करना चाहिये और शक्तिका त्याग भी नहीं करना चाहिये। उपवासके धारणा और पारणाके दिन एकाशन करना चाहिये, दुबारा पानी भी नहीं लेना चाहिये इसे उत्कृष्ट उपवास कहा गया हैं ॥१८९७–१८९९॥ अवदवास (अनुपवास) की विधि उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी कही गई है। जैसी शक्तिसे उसे ग्रहण किया जाय उसीके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार सब व्रतोंका वर्णन पूर्ण हुआ। व्रतको चाहे पुरुष करें, चाहे स्त्री करें, दोनोंको शीलव्रतका पालन करना चाहिये ऐसा जिनेन्द्र भगवानने कहा है। आदर पूर्वक व्रत लेना चाहिये और आदर पूर्वक उसका निर्वाह करना चाहिये। बिना आदर के व्रत करना सो दाना छोड़ कर भूसा ग्रहण करनेके समान है ॥१९००–१९०२॥

छन्द त्रिभंगी

अष्टानिका धारण सोलह कारण व्रत दस लक्षण रतनत्रयं,
शुभ लवधि विधानं अखय निधानं मेघ सु माला षटरसियं ।
ज्येष्ठादिक जिनवर रस पाख्यावर ग्यान पचीसी अखय दसै,
समवादिक सरणं व्रत सुखकरणं सुभ पंचमी आकास लसै ॥१९०३॥

निरदोष सप्तमी सुगंध दसमी चन्दन छठि बारसि श्रवणं,
किरिया त्रेपन मिति जिनगुण संपति पैंतीसी नवकार मनं ।
चौदसि जु अनंतं पंचमि सेतं सीलकल्यानक सील व्रतं,
सुरपद सुख शीला नक्षत्रमाला तिहु चौबीसी वरत मनं ॥१९०४॥

सरवारथ सिद्धं दायक रिद्धं श्रुतस्कंधं सुखदायक ही,
जिनमुख अवलोकन बारा व्रत गनि सुखसंपति लघु वृद्धि कही ।
सुभकरि एकावलि दुतिय दुकावलि रतनावलि नवकार लियं,
लहुरी मुकतावलि सुरसुख आवलि मुकुट सपतमी विसुद्धि कियं ॥१९०५॥

नंदीसुर पंकति धरमचक्र मिति द्वय मृदंगमधि लघु परिमं,
मुक्तावलि वृद्धि दोतसमृद्धि भावन पंचमि व्रत धरमं ।
नवनिधि श्रुतग्यानं वरत त्रिधानं हरिनिःक्रीडित तप चरियं,
अतिसय चौतीसी संवरतगरीसम बारा सौ चौतीस लयं ॥१९०६॥

गुन श्री अरहंतं सिद्ध महंतं छह चालीस रु आठ सुनं,
गुन सूरि छतीसं अरु पच्चीसं उपाध्याय सुखदाय सुनं ।

आष्टाह्निक व्रत, सोलह कारण व्रत, दश लक्षण व्रत, रत्नत्रय व्रत, लब्धि विधान व्रत, अक्षय निधान व्रत, मेघमाला व्रत, षडरस त्याग, ज्येष्ठ जिनवर, रस पाख्या, ज्ञान पच्चीसी, अक्षय दशमी, समवसरण, आकाश पंचमी, निर्दोष सप्तमी, सुगन्ध दशमी, चन्दन षष्ठी, श्रवण द्वादशी, त्रेपन क्रिया, जिन गुण संपत्ति, पैंतीसी नवकार, अनन्त चतुर्दशी, शुक्ल पंचमी, शील कल्याणक, शील व्रत, नक्षत्र माला, तीन चौबीसी, सर्वार्थ सिद्धि, श्रुत स्कन्ध, जिनमुखावलोकन, बारा व्रत, लघु सुख संपत्ति व्रत, बडी सुख संपत्ति व्रत, एकावली, द्विकावली, रत्नावली, नवकार, लघुमुक्तावली, कनकावली, मुकुट सप्तमी, नन्दीश्वर पंक्ति व्रत, धर्मचक्र, लघु मृदंग मध्य व्रत, बड़ा मृदंग मध्य व्रत, बडी मुक्तावली, भावना पच्चीसी, नवनिधि, श्रुतज्ञान, सिंह निष्क्रीडित व्रत, तपश्चरण, अतिशय चौंतीसी, बारा सौ चौंतीसी, पंच परमेष्ठी गुणव्रत के अन्तर्गत अरहन्त के ४६ गुण, सिद्ध के ८ गुण, आचार्य के ३६ गुण, उपाध्याय के २५ गुण और साधुके २८

वसु बीस साधु भनि पहुपांजलि गनि सिवकुमार बेला कहियं,
चौवीस तीर्थङ्कर बेला व्रतधर पूज पुरंदर विधि लहियं ॥१९०७॥

कोकिल पाँचे भनि नक्षत्र रोहिणी चंद्रायण निर्जर पाँचै,
पन मेरु पंकति विमान पंकति रुकमणि व्रत पल्यजु साँचै ।
करमहि निरजरिणी रविव्रत करनी करमचूर अनथमिय गनी,
लघु वृद्ध कल्यानक छह निरवानं तीर्थंकर चौबीस भनी ॥१९०८॥

छप्पय

कथाकोष महि कहे एक सौ आठ वरत पर,
व्रत पचहत्तर इहां कह्यो जिस पाठ लह्यो वर;
प्रोषध तिथि विधि असन कथा अनुसार बखानी,
ताही सुनि भवि एहु करहु भवि उत्तम प्रानी;
बाकी जु वरतको कथन जो सुनत होइ हुल्लास चित ।
व्रत कथाकोष माहे सकल करि त्रिशुद्ध सुन लेहु मित ॥१९०९॥

छन्द त्रिभंगी

धरमनि विसतरनी पाप कतरनी सुभ गति करनी दुख हरनी ।
किरिया विधि वरनी असुभ विहरनी शिव घर धरनी नीसरनी ॥१९१०॥

गुण, पुष्पांजलि, शिवकुमारका बेला, चौबीसी तीर्थंकर बेला, जिनपूजा पुरन्दर, कोकिला पंचमी, नक्षत्र रोहिणी, कवल चान्द्रायण, निर्जरा पंचमी, पंच मेरु पंक्ति, विमान पंक्ति, रुक्मिणी, पल्य विधान, कर्म निर्जरणी पंचमी, रविव्रत, कर्मचूर, अनस्तमित, पंच कल्याणक और लघु पंच कल्याणक, इन सब व्रतोंका वर्णन ऊपर किया गया है । यद्यपि कथा कोषमें अेक सौ आठ व्रत कहे गये है परन्तु यहां हमे जैसा पाठ मिला उसके अनुसार पचहत्तर व्रतोंका वर्णन किया गया हैं। पौषधकी तिथि तथा विधि, तथा पारणाका वर्णन व्रत कथाके अनुसार किया गया है उसे सुन कर हे उत्तम भव्य प्राणियों ! श्रद्धापूर्वक ये व्रत करो। शेष व्रतोंका कथन सुनते समय हृदयमें बड़ा हर्ष उत्पन्न होता है इसलिये हे भव्यजनों ! व्रत कथा कोषमें जो समस्त व्रतोंका वर्णन किया गया है उसे मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक सुनो॥१९०३–१९०९॥

ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि जो क्रियाकी विधि धर्मका विस्तार करने वाली है, पापको कतरने वाली है, शुभगतिको करने वाली है दुःखको दूर करनेवाली है, अशुभको हरनेवाली है, और मोक्षमहलकी भूमि पर चढनेके लिये नसैनी स्वरूप है, उस क्रिया विधिका मैंने यहाँ वर्णन किया हैं ॥१९१०॥

छप्पय

क्रियाकोस यह कथा सुनहु भवि मन वच तन करि,
मरम तासु चित आनि भाव धरि क्रिया चलन पर;
जे व्रतधारी पुरुष जगत सुख भजि सिव पावे,
क्रियाहीन अव्रती भटकि दुरगति हि सिधावे;
यह जानि सुखद भजि दुखद तजि कथा भविकजनको सरन।
वकता वखानि श्रोता सुनौ सकल संघ मंगल करन ॥१९११॥

कुण्डलिया छन्द

इन्द्रिन केरे लोलपी, कथन क्रिया सुनि भेद,
पाप धर्म नहीं ठीक कछु, मनमें पावे खेद।
मनमें पावे खेद चित्त अदयामय जाको,
झूठ अदत्त कुसील संग नहि छोडे ताको।
बहु आरंभ अपार संघ छूटे जो अनेरो,
त्रये जगतके मांहि लोलपी इन्द्रिन केरो ॥१९१२॥

अघटारन जे भविकजन, इन्द्रिय करत निरोध,
कथा सुनत मन वचन तन, उर उपजावै बोध।

हे भव्यजीवों ! क्रियाकोषकी यह कथा मन वचन कायसे सुनो, और उसके मर्म को हृदयमें लाकर भावपूर्वक क्रिया पर चलनेमें तत्पर होओ। जो पुरुष व्रत धारण करते हैं वे संसार सुखको प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं और क्रिया हीन अव्रती मनुष्य दुर्गतियोंमें भटकते हैं। इसलिये वक्ता–पण्डित जन, सकल संघका मंगल करनेवाली तथा भव्य जीवोंको शरणरूप इस कथाका व्याख्यान करें और श्रोतागण इसका श्रवण करे ॥१९११॥ जो इंद्रिय विषयोंके लोभी मनुष्य है उनकी क्रियाका भेद सुनों। उन्हे क्या पाप हैं? और क्या धर्म है? इसका कुछ निर्णय नहीं होता। क्रियाकी बात सुनकर वे मनमें खेदको प्राप्त होते हैं। उनका चित्त दयासे रहित होता है, वे असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह पापको नहीं छोडते हैं, बहुत भारी आरंभ करते हैं तथा संघको छोड़ दूर दूर रहते हैं इस प्रकार इंद्रियलोलुप-इंद्रिय विषयोंके लोभी मनुष्योंकी तीनों लोकोंमें प्रवृत्ति होती है ॥१९१२॥ इनके विपरीत पापको दूर करने वाले जो भव्य पुरुष इन्द्रिय विषयोंका निरोध करते हैं, मन वचन कायसे कथाको सुन कर हृदयमें ज्ञानको उत्पन्न करते हैं, क्रोध, मान, माया और लोभका त्याग करते हैं, दया धर्मको धारण करते हैं, सत्य बोलते हैं, चोरीका त्याग करते हैं, शीलको पालते हैं, और परि-

उर उपजावै बोध क्रोध माया मद त्याजै,
दया धरम सत कहै चौर्य तजि सीलहि साजै ।
परिग्रह करै प्रमान तिको दुरगति दुख वारन,
सुर नर हुइ सिव लहै भविकजन जे अघटारन ॥१९१३॥

छन्द त्रिभंगी

खंडेल सुवालं वंसविसालं नागर वालं देस थियं;
रामापुर वासं देव निवासं धर्म प्रकासं प्रगट कियं ।
सिंघ ही कल्याणं सब गुण जाणं गोत्र पाटणी सुजस लियं,
पूजा जिनरायं श्रुत गुरु पायं नमै सकति जिनदान दियं ॥१९१४॥
तसु सुत दोयं गुरु सुखदेवं लहुरो आणंदसिंघ सुणौ,
सुखदेव सुनंदन जिनपद वंदन ज्ञानभान किसनेस मुणौ ।
किसनै इह कीनी कथा नवीनी निज हित चीनी सुरपदकी,
सुखदाय क्रिया भनि इह मन वच तन शुद्ध पले दुरगति रदकी ॥१९१५॥

ग्रहका परिमाण करते हैं वे दुर्गतिके दुःखका निवारण कर देव तथा मनुष्य होकर मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥१९१३॥

ग्रन्थकार प्रशस्ति

नागरवाल देशके उस रामापुर नगरमें, जो देव निवासके समान था तथा जहाँ धर्मका प्रकाश प्रकट था, खंडेलवाल, विशाल परिवारसे युक्त सिंघही कल्याण रहते थे, जो सब गुणोंके जानकार, पाटनी गोत्री तथा सुयशसे सहित थे, जिनराजकी पूजा करते थे, श्रुतकी आराधना करते थे, गुरु चरणोंमें विनत थे तथा शक्तिके अनुसार दान करते थे। उनके दो पुत्र थे—बडेका नाम सुखदेव और छोटेका नाम आनन्दसिंह था। सुखदेवके दो पुत्र थे––ज्ञानभान और किशनेश । ये दोनों पुत्र जिनेन्द्र भगवानके भक्त थे । उनमेंसे किशनेश (किशनसिंह)ने इस नवीन कथाकी रचना की है। यह कथा आत्महितकी पहिचान करानेवाली है, देवगतिके सुखको देनेवाली है, इस कथामें कही हुई क्रियाओंका जो मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक पालन करता है वह दुर्गतियोंसे दूर रहता है ॥१९१४–१९१५॥ *माथुर वसन्तरायको समस्त

---

* किशनसिंहने रात्रिभोजन त्यागव्रत कथाके अंतमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

माथुर वसंतराय बोहराको परधान, संघही कल्याणदास पाटणी बखानिये ।
रामपुर वास जाको सुत सुखदेव सुधी, ताको सुत किशनेश कवि नाम जानिये ॥
तिहि निशिभोजन त्यजन व्रत कथा सुनी, ताकी कीनी चौपाईसु आगम प्रमाणिये ।
भूलि चूकि अक्षर घट जा वाको बुध जन, सोधि पढि वीनती हमारी मनि आनिये ॥

दोहा

माथुर राय बसन्तको, जाने सकल जहान ।
तसु प्रधान सुतको तनुज, किसनसिंह मतिमान ॥१९१६॥

अडिल्ल

क्षेत्र विपाकी कर्म उदै जब आइयो,
निजपुर तजिकै सांगानेर बसाइयो ।
तह जिन धर्म प्रसाद गनै दिन सुख लही,
साधरमी जन सजन मान दे हित गही ॥१९१७॥

दोहा

इह विचार मन आनियो, क्रिया कथन विधि सार ।
होय चौपई बंध तो, सब जनकूं उपगार ॥१९१८॥
सब ही जन वांचौ पढौ, सुणौ सकल नर नार ।
सुखदाई मन आणिये, चलौ क्रिया अनुसार ॥१९१९॥

छन्द चाल

व्याकरण न कबही देख्यो, छन्द न नजरां अवलेख्यो ।
लघु दीरघ वरण न जाणूं, पद मात्रा हूं न पिछाणूं ॥१९२०॥
मति हीन तहां अधिकाई, पटुता कबहू नहि पाई ।
मनमांही बोहि आई, त्रेपन किरिया सुखदाई ॥१९२१॥

संसार जानता था। उनके बडे पुत्रका नाम सिंघही कल्याणदास था। किशनसिंह इन्हींके पौत्र थे ॥१९१६॥ ग्रंथकर्ता किशनसिंह कहते है कि जब क्षेत्र विपाकी कर्म उदय आया तब अपना नगर छोड़ मैं सांगानेरमें रहने लगा। यहाँ जिनधर्मके प्रसादसे दिन सुखसे व्यतीत होने लगे। साधर्मीजनोंने सन्मान देकर बडे सन्मानसे मुझे अपनाया ॥१९१७॥ वहाँ रहते हुए मेरे मनमें विचार आया कि यदि क्रियाकी विधिको चौपाई बद्ध (छंदोबद्ध) रचा जाय तो उससे सब लोगोंका उपकार होगा। इसी भावनासे यह ग्रंथ रचा गया है। इसे समस्त नरनारी वांचे, पढें, सुनें, मनमें विचार करें तथा क्रियाके अनुसार चलें ॥१९१८-१९१९॥

मैंने कभी व्याकरण नहीं देखा है, छन्दों पर भी दृष्टि नहीं डाली है, मैं लघु और दीर्घ वर्णको नहीं जानता हूँ, मात्राओं को भी नहीं पहिचानता हूँ। अत्यधिक मतिहीन हूँ और कविता करनेकी सामर्थ्य मुझे प्राप्त नहीं हैं फिर भी मनमें विचार आया कि त्रेपन क्रियाओंकी सुखदायक कथा रचूँ ॥१९२०-१९२१॥ यह कथा संस्कृतमें हैं परन्तु मैंने भाषामें रची है।

इह कथा संस्कृत केरी, भाषा रचिहों शुभ वेरी ।
कछु अवर ग्रंथतें जानी, नानाविध किरिया आनी ॥१९२२॥

धर क्रियाकोष तिस नाम, पूरण करिहो अभिराम ।
जिम मूढ समुद्र अवगाहैं, निज भुजतै उतरो चाहै ॥१९२३॥

गिरिपरि तरुको फल जानी, कुबजक मनि तोरन ठानी ।
शशि नीर कुण्डके मांही, करतें शशि-बिंब गहाही ॥१९२४॥

तिम सज्जन मुझको भारी, हँसिहै संशय नहि कारी ।
बुधजन मो क्षिमा करीजे, मेरो कछु दोष न लीजे ॥१९२५॥

जो अशुद्ध होय पद याही, शुधकरिपढियो भवि ताही ।
अधिको नहि कहनो जोग, बुध जनको यही नियोग ॥१९२६॥

अडिल्ल

किसनसिंह इह अरज करै सब जन सुनो,
कर मिथ्यातको नाश निजातम पद मुनो;
क्रिया सहित व्रत पाल करण वश कीजिये,
अनुक्रम लहि शिवथान शाश्वतो जीजिये ॥१९२७॥

सवैया इकतीसा

सत्रह सौ सम्वत, चौरासी यासु भादौं मास
वर्षा रितु स्वेत तिथि पून्यो रविवार है,

संस्कृत कथा ग्रन्थसे तथा कुछ अन्य ग्रन्थोंसे सार लेकर इस ग्रन्थकी रचना की है । इस मनोहर कथाको 'क्रियाकोष' नामसे पूर्ण किया है । जिस प्रकार कोई अज्ञानी समुद्रमें प्रवेश कर भुजाओंसे उसे पार करना चाहे, अथवा कोई बौना पुरुष पर्वत पर खडे वृक्षका फल तोड़ना चाहे अथवा कोई जलके कुण्डमें पड़ते हुए चन्द्रमाके बिम्बको हाथसे पकडना चाहे तो उसकी लोग हँसी करते हैं उसी प्रकार सज्जन पुरुष मेरी हँसी करेंगे, इसमें संशय नहीं हैं । इसलिये मैं विद्वज्जनोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे क्षमा करे, मेरे दोषोंको ग्रहण न करें । जो पद इसमें अशुद्ध हो उसे भव्यजन शुद्ध कर पढें । अधिक कहना योग्य नहीं हैं, क्योंकि विद्वज्जनोंका यही नियोग है ॥१९२२–१९२६॥

किशनसिंह यह अर्ज करते हैं कि हे जीवों ! सुनो । सब लोग मिथ्यात्वका नाश कर निज आत्मपदको पहचानो, क्रिया सहित व्रतोंका पालन कर इन्द्रियोंको वशमें करो तथा अनुक्रमसे मोक्षपद प्राप्त कर सदा जीवित रहो अर्थात् अजर अमर पदको प्राप्त करो ॥१९२७॥

सत्रह सौ चौरासी संवत, वर्षा ऋतु, भाद्र मास, पूर्णिमा तिथि, रविवार दिन, शत-

शतिभिषा रवि धृतनाम जोग कुम्भ शशि,
सिंघको दिनेस मुहूरत अति सार है;
ढुंढाहर देस जान बसे सांगानेर थान,
जैसिंह सवाई महाराज नीतिधार है,
ताके राजसमै परिपूरण की इह कथा
भव्यनिको हृदय हुलास देनहार है ॥१९२८॥

दोहा दोइसै चौवन है पैंतीस इकतीसा,
मरहठा पांच चाल छः सौ बीस ठाने है,
सातसय बाणवे सु चौपाई छब्बीसा छप्पै
पद्धरी पैंतीस तेरा सोरठा बखाने है;
अडिल्ल बहत्तरि नाराच आठ गीता दस
कुण्डलिया तीन छह तेईसा प्रमानै है,
द्रुतविलम्बित चार आठ है भुजंगी तीन
त्रोटक त्रिभंगी नव छन्द ऐते आने है ॥१९२९॥

अडिल्ल छन्द

क्रियाकोस मध्य छन्द जाति सत्रह भये,
अरु बारह उक्तं च अवर सूत्रनतें लये;
गाथा दो दश श्लोक चाहिए जहँ जिसौ,
तहाँ साखि दै कथन कियो सोभै तिसौ ॥१९३०॥

भिषा नक्षत्र, धृति योग, कुम्भ राशि और सिंहके सूर्य, इस प्रकार शुभ मुहूर्तमें ढुंढाहर देशके सांगानेर शहरमें जयसिंह सवाई महाराजके राज्यमें रहते हुए इस कथाको पूर्ण किया है। यह कथा भव्यजीवोंके हृदयमें उल्लासको देनेवाली है ॥१९२८॥

इस कथामें दो सौ चौवन दोहे हैं पैंतीस सत्रया इकतीसा हैं, पाँच मरहठा हैं, छह सौ बीस चाल छन्द है, सातसौ बानवे (७९२) चौपाई हैं, छव्वीस छप्पय हैं, पैंतीस पद्धरी हैं, तेरह सोरठे हैं, बहत्तर अडिल्ल हैं, आठ नाराच हैं, दश गीता हैं, तीन कुंडलिया हैं, छह सवैया तेईसा हैं, चार द्रुतविलंबित हैं, आठ भुजंगप्रयात हैं, तीन त्रोटक हैं और नौ त्रिभंगी हैं ॥१९२९॥ क्रियाकोष ग्रंथमें सत्रह जातिके छन्द हैं और बारह उक्तंच है जो दूसरे ग्रंथोंसे लिये गये हैं। उनमें दो गाथा और दश श्लोक हैं। जहाँ जिसकी आवश्यकता थी वहाँ उसकी साक्षीके लिये उक्तंचका कथन किया गया है। उक्तंच यथास्थान सुशोभित हैं ॥१९३०॥ इस

सवैया तेईसा

छन्द कहे इह ग्रंथ मझार लिये गनि जे उक्तं च धराई,
दोय हजार मही लखि घाट पच्यासिय एह प्रमान कराई ।
जो न मिले तुक अक्षर मात कहै पुनरुक्त न दोष ठराहीं,
तो मुझको लखि दीन प्रवीन हंसो मति मैं तुम पाय पराहीं ।।१९३१।।

ग्रंथ लिखै इह लेखकको यह है मरयाद सिलोक किती है,
छन्दनिके सब अक्षर जोरि रुप ध्वनि अंक जु मांधि तिठी है ।
ते सब वर्ण बत्तीस प्रमाण श्लोकनिकी गणती जु इती है,
दोय हजार परी नवसे लखि लेहु जिके भवि शुद्धमती है ।।१९३२।।

छप्पय

मंगल श्री अरिहंत सिद्ध मंगल सिव-दायक,
आचारज उवझाय साधु गुरु मंगल–लायक;
मंगल जिनमुख खिरी दिव्य धुनिमय जिनवाणी,
मंगल श्रावक नित्य समकिती मंगल जानी,
मंगल जु ग्रन्थ इह जानियो, वक्ता–मुख मंगल सदा ।
श्रोता जु सुनै निज गुण मुनै, मंगलकर तिनको सदा ।।१९३३।।

ग्रन्थमें जो छन्द आये हैं उनकी गणना ऊपर कही गई है । इसी तरह 'उक्तंच' द्वारा जो उद्धृत किये गये हैं उनका प्रमाण भी बताया गया है। सब छन्दोंका प्रमाण पचासी कम दो हजार अर्थात् १९१५ है। यदि कहीं तुक (अन्यानुप्रास) न मिलती हो, अक्षर और मात्राओंकी कमी हो, और कथन करनेमें पुनरुक्त दोष दूर न होता हो अर्थात् पुनरुक्ति होती हो तो चतुर जन मुझे दीन देख कर हँसे नहीं, मैं उन ज्ञानीजनोंके चरणोंमें पड़ता हूँ ।।१९३१।। यदि कोई लेखक इस ग्रन्थकी प्रतिलिपि करे तो ग्रन्थका परिमाण जाननेकी विधि यह है कि सब छन्दोंके अक्षर जोड़कर जितना प्रमाण हो उसमें श्लोक–अनुष्टुप छन्दके ३२ अक्षरोंका भाग देनेसे पूर्ण ग्रन्थके श्लोकोंका प्रमाण निकलता है वह प्रमाण दो हजार नौ सौ होता है ।।१९३२।।

श्री अरहंत भगवान् मंगलस्वरूप है, मोक्षदायक सिद्ध परमेष्ठी मंगलस्वरूप है, आचार्य, उपाध्याय और साधु मंगलरूप है, जिनेन्द्र भगवानके मुखसें खिरी हुई दिव्यध्वनिरूप जिनवाणी मंगलरूप है, श्रावक तथा सम्यक्त्वके धारक पुरुष मंगलरूप है। यह ग्रन्थ स्वयं मंगलरूप है। जो वक्ता अपने मुखसे इस ग्रन्थका व्याख्यान करे तथा जो श्रोता इसका श्रवण करे उसके लिये ये सब मंगलकारी होवें ।।१९३३।।

दोहा

किसनसिंह कवि वीनती, जिन श्रुत गुरुसों एह ।
मंगल निज तन सुपद लखि, मुझहि मोक्षपद देह ॥१९३४॥

चौपाई

जबलों धर्म जिनेश्वर सार, जगतमांहि वरतै सुखकार ।
तबलों विस्तारो यह ग्रंथ, भविजन सुर-शिव-दायक पंथ ॥१९३५॥

॥ भद्रं भूयात् ॥

किशनसिंह कहते हैं कि मेरी यही विनती है कि जिन देव, शास्त्र तथा गुरु स्वयं मंगलरूप हैं वे अपने मंगलमय पदका विचार कर मुझे मोक्षपद प्रदान करें ॥१९३४॥ जब तक जगतमें जिनेन्द्र देव प्रतिपादित श्रेष्ठ धर्म सुशोभित रहे तब तक भव्यजनोंको मोक्ष-सुख देने वाला यह ग्रन्थ विस्तारको प्राप्त होता रहे ॥१९३५॥

इस प्रकार कविवर किशनसिंह विरचित क्रियाकोष ग्रन्थका पन्नालाल साहित्याचार्य विरचित हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ ।

श्रावण वदी ३, वि. सं. १९३८

परिशिष्ट—१

तीर्थङ्करका नाम	गर्भकल्याणक	जन्म कल्याणक
आदिनाथ	आषाढ कृ. द्वितीया	चैत्र कृष्णा नवमी
अजितनाथ	ज्येष्ठ कृ. अमावास्या	पौष शुक्ला दशमी
सम्भवनाथ	फाल्गुन शु. अष्टमी	माघ शु. पूर्णिमा
अभिनन्दननाथ	वैशाख शु. षष्ठी	पौष शु. द्वादशी
सुमतिनाथ	श्रावण शु. द्वितीया	वैशाख कृ. दशमी
पद्मप्रभ	माघ कृ. षष्ठी	कार्तिक कृ. त्रयोदशी
सुपार्श्वनाथ	भाद्रपद शु. षष्ठी	ज्येष्ठ शु. द्वादशी
चन्द्रप्रभ	चैत्र कृ. पंचमी	पौष कृ. एकादशी
सुविधिनाथ	फाल्गुन कृ. नवमी	माघ शु. नवमी
शीतलनाथ	चैत्र कृ. अष्टमी	पौष कृ. द्वादशी
श्रेयांसनाथ	ज्येष्ठ कृ. एकादशी	फाल्गुन शु. एकादशी
वासुपूज्य	आषाढ कृ. षष्ठी	फाल्गुन शु. चतुर्दशी
विमलनाथ	ज्येष्ठ कृ. दशमी	पौष शु. चतुर्थी
अनन्तनाथ	कार्तिक कृ. प्रतिपदा	ज्येष्ठ कृ. द्वादशी
धर्मनाथ	वैशाख शु. त्रयोदशी	पौष शु. त्रयोदशी
शान्तिनाथ	भाद्रपद कृ. सप्तमी	ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी
कुन्थुनाथ	श्रावण कृ. दशमी	वैशाख शु. प्रतिपदा
अरनाथ	फाल्गुन शु. तृतीया	माघ शु. चतुर्दशी
मल्लिनाथ	चैत्र शु. प्रतिपदा	माघ शु. एकादशी
मुनिसुव्रतनाथ	श्रावण कृ. द्वितीया	चैत्र कृ. दशमी
नमिनाथ	भाद्रपद कृ. द्वितीया	आषाढ कृ. दशमी
नेमिनाथ	कार्तिक शु. षष्ठी	श्रावण कृ. षष्ठी
पार्श्वनाथ	वैशाख कृ. तृतीया	पौष कृ. एकादशी
महावीर	क्रियाकोष	चैत्र शु. त्रयोदशी

पंच—कल्याणककी तिथियाँ

तपः कल्याणक	ज्ञान कल्याणक	मोक्ष कल्याणक
चैत्र कृष्णा नवमी	फाल्गुन कृ. एकादशी	माघ कृ. चतुर्दशी
पौष शुक्ला नवमी	पौष शुक्ल एकादशी	चैत्र शु. पंचमी
माघ शु. पूर्णिमा	अश्विन कृ. चतुर्थी	चैत्र शु. षष्ठी
पौष शु. द्वादशी	पौष शु. चतुर्दशी	वैशाख शु. षष्ठी
वैशाख शु. नवमी	पौष शु. दशमी	चैत्र शु. एकादशी
कार्तिक कृ. त्रयोदशी	चैत्र शु. पूर्णिमा	फाल्गुन कृ. चतुर्थी
ज्येष्ठ शु. द्वादशी	फाल्गुन कृ. षष्ठी	फाल्गुन कृ. सप्तमी
पौष कृ. एकादशी	फाल्गुन कृ. सप्तमी	फाल्गुन कृ. सप्तमी
माघ शु. प्रतिपदा	कार्तिक शु. द्वितीया	भाद्रपद शु. अष्टमी
पौष कृ. द्वादशी	पौष कृ. चतुर्दशी	अश्विन शु. अष्टमी
फाल्गुन कृ. एकादशी	माघ कृ. अमावास्या	श्रावण शु. पूर्णिमा
फाल्गुन कृ. चतुर्दशी	माघ कृ. द्वितीया	भाद्रपद शु. चतुर्दशी
पौष शु. चतुर्थी	माघ शु. षष्ठी	आषाढ कृ. अष्टमी
ज्येष्ठ कृ. द्वादशी	चैत्र कृ. अमावास्या	चैत्र कृ. अमावास्या
पौष शु. त्रयोदशी	पौष शु. पूर्णिमा	ज्येष्ठ शु. चतुर्थी
ज्येष्ठ कृ. चतुर्थी	पौष शु. नवमी	ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी
वैशाख शु. प्रतिपदा	चैत्र शु. तृतीया	वैशाख शु. प्रतिपदा
माघ कृ. दशमी	कार्तिक शु. द्वादशी	चैत्र कृष्णा अमावास्या
माघ कृ. एकादशी	मार्गशीर्ष शु. एकादशी	फाल्गुन शु. पंचमी
वैशाख कृष्णा दशमी	वैशाख कृ. नवमी	फाल्गुन कृ. द्वादशी
मार्गशीर्ष शु. एकादशी	आषाढ कृ. दशमी	वैशाख कृ. नवमी
श्रावण शु. षष्ठी	आश्विन कृ. प्रतिपदा	आषाढ शु. सप्तमी
पौष कृ. एकादशी	चैत्र कृ. चतुर्थी	श्रावण शु. सप्तमी
माघ कृ. दशमी	वैशाख सु. दशमी	कार्तिक कृ. अमावास्या

परिशिष्ट—२

उद्धृत श्लोक क्रमानुसूची

		पृष्ठ	गाथा
१	गुणवय तव सम पडिमा	१०	६१
२	हेमंते तीस दिणा गिण्हे	१२	७६
३	इक्खु दही संजुत्तं	१८	११६
४	चउ एइंदी विण्णि	१६	१२४
५	अन्नजलं किंचिठिई	७६	४८९
६	भोजने षड्रसे पाने	९७	६२०
७	स्नान भूषण वस्त्रादौ	६७	६२१
८	संवत्सराणमेकत्वं	१२६	७६५
९	लूतास्यतन्तुगलिते	१२६	७६६
१०	षट् त्रिशदंगुलं	१२७	७६८
११	तस्मिन् मध्य	१२७	७९९
१२	राहु अरिट्ठविमाणा	२२२	१४०२
१३	स्नानं पूर्वामुखी भूय	२२७	१४३४
१४	अरहंता छैयाला सिद्धा	२७४	१७१५

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास द्वारा संचालित

श्री परमश्रुतप्रभावक मण्डल (श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला) के

प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची

(१) गोम्मटसार जीवकाण्ड

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत मूल गाथाएँ, श्री ब्रह्मचारी पं० खूबचन्दजी सिद्धान्त-शास्त्रीकृत संस्कृत छाया तथा नयी हिन्दी टीका युक्त। अबकी बार पंडितजीने धवल, जय-धवल, महाधवल और बडी संस्कृतटीकाके आधारसे विस्तृत टीका लिखी है। षष्ठावृत्ति।

मूल्य–तीस रुपये।

(२) गोम्मटसार कर्मकाण्ड

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत मूल गाथाएँ, पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृत छाया और हिन्दी टीका। पं० खूबचन्दजी द्वारा संशोधित जैन सिद्धान्त-ग्रन्थ है। पंचमावृत्ति।

मूल्य–अट्ठाईस रुपये।

(३) स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा

स्वामिकार्तिकेयकृत मूल गाथाएँ, श्री शुभचन्द्रकृत बडी संस्कृत टीका तथा स्याद्वाद महा-विद्यालय वाराणसीके प्रधानाध्यापक पं० कैलासचन्द्रजी शास्त्रीकृत हिन्दी टीका। डॉ० आ० ने० उपाध्येकृत अध्ययनपूर्ण अंग्रेजी प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक संपादन। द्वितीयावृत्ति।

मूल्य–उन्नीस रुपये।

(४) परमात्मप्रकाश और योगसार

श्री योगीन्दुदेवकृत मूल अपभ्रंश दोहे, श्री ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीका व पं० दौलतरामजी-कृत हिन्दी टीका। विस्तृत अंग्रेजी प्रस्तावना और उसके हिन्दीसार सहित। महान् अध्यात्मग्रंथ। डॉ० आ० ने० उपाध्येका अमूल्य सम्पादन। नवीन चतुर्थ संस्करण। मूल्य–अठारह रुपये।

(५) ज्ञानार्णव

श्री शुभचन्द्राचार्यकृत महान् योगशास्त्र। सुजानगढ़ निवासी पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत हिन्दी अनुवाद सहित। पंचमावृत्ति। मूल्य–पच्चीस रुपये।

(६) प्रवचनसार

श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित ग्रन्थरत्नपर श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत तत्त्वप्रदीपिका एवं श्री जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीकाएँ तथा पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनी भाषाटीका। डॉ० आ० ने० उपाध्येकृत अध्ययनपूर्ण अंग्रेजी अनुवाद तथा विशद प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक सम्पादन। चतुर्थावृत्ति। मूल्य–छत्तीस रुपये।

(७) बृहद्द्रव्यसंग्रह

आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित मूल गाथाएँ, संस्कृत छाया, श्री ब्रह्मदेवविनिर्मित संस्कृतवृत्ति और पं० जवाहरलाल शास्त्रीप्रणीत हिन्दीभाषानुवाद। षड्द्रव्यसप्ततत्त्वस्वरूप-वर्णनात्मक उत्तम ग्रन्थ। चतुर्थावृत्ति। मूल्य–बारह रुपये पचास पैसे।

(८) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

श्री अमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक । पं० टोडरमल्लजी तथा पं० दौलतरामजीकी टीकाके आधार पर पं० नाथूरामजी प्रेमी द्वारा लिखित नवीन हिन्दी टीका सहित। श्रावकमुनिधर्मका चित्तस्पर्शी अद्भुत वर्णन। षष्ठावृत्ति। मूल्य—पाँच रुपये।

(९) पञ्चास्तिकाय

श्री कुन्दकुन्दाचार्यविरचित अनुपम ग्रन्थराज। श्री अमृतचन्द्राचार्यकृत 'समयव्याख्या' (तत्त्वप्रदीपिका वृत्ति) एवं श्री जयसेनाचार्यकृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामक संस्कृत टीकाओंसे अलंकृत और पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनी भाषाटीकाके आधारपर पं० पन्नालालजी बाकली-वालकृत प्रचलित हिन्दी अनुवाद सहित। चतुर्थावृत्ति। मूल्य—तीस रुपये।

(१०) स्याद्वादमञ्जरी

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यकृत अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका तथा श्री मल्लिषेणसूरिकृत संस्कृत टीका। श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी० कृत हिन्दी अनुवाद सहित। न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है। बडी खोजसे लिखे गये ८ परिशिष्ट हैं। चतुर्थावृत्ति।
मूल्य—इक्कीस रुपये।

(११) इष्टोपदेश

श्री पूज्यपाद-देवनन्दि आचार्यकृत मूल श्लोक, पंडितप्रवर श्री आशाधरकृत संस्कृतटीका, पं० धन्यकुमारजी जैनदर्शनाचार्य एम० ए० कृत हिन्दीटीका, बैरिस्टर चम्पतरायजीकृत अंग्रेजी टीका तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित हिन्दी, मराठी, गुजराती एवं अंग्रेजी पद्यानुवादों सहित भाववाही आध्यात्मिक रचना। तृतीय आवृत्ति। मूल्य—बारह रुपये।

(१२) लब्धिसार (क्षपणासार गर्भित)

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीरचित करणानुयोग ग्रन्थ। पंडितप्रवर टोडरमल्लजीकृत बडी टीका सहित। श्री फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीका अमूल्य सम्पादन। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—तेंतालीस रुपये।

(१३) द्रव्यानुयोगतर्कणा

श्री भोजकविकृत मूल श्लोक तथा व्याकरणाचार्य ठाकुरप्रसादजी शर्माकृत हिन्दी अनुवाद। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—ग्यारह रुपये पचीस पैसे।

(१४) न्यायावतार

महान् तार्किक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकरकृत मूल श्लोक व जैनदर्शनाचार्य पं० विजयमूर्ति एम० ए० कृत श्री सिद्धर्षिगणिकी संस्कृतटीकाका हिन्दीभाषानुवाद। न्यायका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१५) प्रशमरतिप्रकरण

आचार्य श्री उमास्वातिविरचित मूल श्लोक, श्री हरिभद्रसूरिकृत संस्कृतटीका और पं० राजकुमारजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित सरल अर्थ सहित वैराग्यका बहुत सुन्दर ग्रन्थ है। प्रथमावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१६) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र (मोक्षशास्त्र)

श्री उमास्वातिकृत मूलसूत्र और स्वोपज्ञ भाष्य तथा पं० खूबचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत विस्तृत भाषाटीका। तत्त्वोंका हृदयग्राह्य गम्भीर विश्लेषण। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१७) सप्तभङ्गीतरङ्गिणी

श्री विमलदासकृत मूल और पंडित ठाकुरप्रसादजी शर्मा कृत भाषाटीका। न्यायका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। तृतीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१८) समयसार

आचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित महान् अध्यात्म ग्रन्थ। आत्मख्याति, तात्पर्यवृत्ति, आत्मख्यातिभाषावचनिका—इन तीन टीकाओं सहित तथा पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित। तृतीयावृत्ति। मूल्य—बत्तीस रुपये।

(१९) इष्टोपदेश

मात्र अंग्रेजी टीका व पद्यानुवाद। मूल्य—पचहत्तर पैसे।

(२०) परमात्मप्रकाश

मात्र अंग्रेजी प्रस्तावना व मूल गाथाएँ। मूल्य—दो रुपये।

(२१) योगसार

मूल गाथाएँ व हिन्दी सार। मूल्य—पचहत्तर पैसे।

(२२) कार्तिकेयानुप्रेक्षा

मूल गाथाएँ और अंग्रेजी प्रस्तावना। मूल्य—दो रुपये पचास पैसे।

(२३) प्रवचनसार

अंग्रेजी प्रस्तावना, प्राकृत मूल, अंग्रेजी अनुवाद तथा पाठांतर सहित। मूल्य—पाँच रुपये।

(२४) अष्टप्राभृत

श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित मूल गाथाओंपर श्री रावजीभाई देसाई द्वारा गुजराती गद्य पद्यात्मक भाषान्तर। मूल्य—दो रुपये।

(२५) मोक्षमाला (भावनाबोध सहित)

श्रीमद् राजचन्द्रकृत मूल गुजराती ग्रन्थका श्री हंसराजजीकृत हिन्दी अनुवाद। इसमें जैन धर्मको यथार्थ समझानेका प्रयास किया है। भाषाशैली बहुत सुन्दर और सरल है। इसमें १०८ शिक्षापाठ हैं। साथमें भावनाबोधमें बारह भावनाओंका सुन्दर दृष्टान्तसहित वर्णन है। तृतीयावृत्ति। मूल—छः रुपये।

(२६) क्रियाकोष

कवि किशनसिंहकृत हिंदी काव्यमय रचना। श्रावककी त्रेपन क्रियाओंका सुंदर वर्णन। श्रावकाचारका उत्तम ग्रंथ। पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यकृत हिंदी भावार्थ सहित। प्रथमावृत्ति। मूल्य—छब्बीस रुपये।

अधिक मूल्यके ग्रन्थ मँगानेवालोंको कमिशन दिया जायेगा। इसके लिये वे हमसे पत्रव्यवहार करे।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगासकी ओरसे

प्रकाशित ग्रन्थ

गुजराती ग्रन्थ

१ श्रीमद् राजचन्द्र २ मोक्षमाला (भावनाबोध सहित) ३ तत्त्वज्ञान ४ पत्रशतक ५ आत्मसिद्धिशास्त्र ६ सुबोधसंग्रह ७ श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला ८ श्रीमद् राजचन्द्र आत्मकथा ९ श्रीमद् लघुराजस्वामी (प्रभुश्री) उपदेशामृत १० नित्यक्रम ११ नित्यनियमादि पाठ (भावार्थ सहित) १२ आत्मसिद्धि–विवेचन १३ समाधि–सोपान (रत्नकरण्ड श्रावकाचारके विशिष्ट स्थलोंका अनुवाद) १४ आठ दृष्टिनी सज्झाय (भावार्थ सहित) १५ आलोचनादि पद संग्रह १६ आलोचनादि पद संग्रह (संक्षिप्त) १७ सहजसुखसाधन १८ ज्ञानमंजरी १९ धर्मामृत (अप्राप्य) २० समयसार (अप्राप्य) २१ पूजासंचय २२ तत्त्वज्ञान तरंगिणी २३ परमात्मप्रकाश २४ सुवर्णमहोत्सव (आश्रम परिचय) २५ पूजादि स्मरणांजलि काव्यो २६ श्रीमद् राजचन्द्र उपदेशछाया ।

हिंदी अनुवाद

१ श्रीमद् राजचन्द्र २ श्रीमद् राजचन्द्र उपदेशछाया ३ श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला ४ नित्यनियमादि पाठ (भावार्थयुक्त)

बालबोध लिपि (देवनागरी लिपि, भाषा गुजराती)

१ नित्यक्रम २ तत्त्वज्ञान

अंग्रेजी ग्रन्थ

1 A Great Seer 2 *Mokśamālā* (not available)

आश्रम द्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंका विस्तृत सूचीपत्र मंगाइये । सभी ग्रन्थों पर डाकखर्च अलग रहेगा ।

: प्राप्ति स्थान :

१. श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम
स्टेशन अगास, पोस्ट–बोरिया
वाया आणंद (गुजरात)
पिन : ३८८ १३०

२. श्री परमश्रुतप्रभावक मण्डल
(श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला)
चोकसी चेम्बर, खारा कुवा, जौहरी बाजार
बम्बई–४०० ००२

□